बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक संपादक

रजनीश कुमार शुक्ल

अतिथि संपादक

नंद किशोर पाण्डेय

संपादक

अशोक मिश्र

हिंदी साहित्य का वैश्विक चिंतक : कमल किशोर गोयनका

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन

बहुवचन
अंक : 61-62 (अप्रैल-सितंबर 2019) ISSN- 2348-4586
प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

संपादकीय संपर्क :
संपादक बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)
मो. संपादक- 7888048765, 09422386554, ईमेल- bahuvachan.wardha@gmail.com
E-mail : amishrafaiz@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : रामानुज अस्थाना
ईमेल- ramanujasthana123@gmail.com फोन- 07152-232943, मो. 09422823617

© **संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित**
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं विश्वविद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका न मिलने की शिकायत इस पते पर करें :
प्रचार प्रसार : सुरेश कुमार यादव
फोन : 07152-232943, मो. 09730193094, ईमेल- s.ujala80@gmail.com

बिक्री और प्रसार कार्यालय :
प्रकाशन विभाग, **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय**
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र) भारत
फोन : 07152-232943, फैक्स : 07152-230903

वार्षिक सदस्यता के लिए बैंक ड्राफ्ट **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय** के नाम से, जो वर्धा में देय हो, ऊपर लिखित बिक्री कार्यालय के पते पर भेजें। मनीऑर्डर स्वीकार्य नहीं।

यह अंक : रु.150/-
सामान्य अंक : 75/- वार्षिक शुल्क रु. 300/- द्विवार्षिक शुल्क रु. 600/- व्यक्तिगत संस्थाओं के लिए वार्षिक शुल्क रु. 400/- द्विवार्षिक रु. 800/- (डाक खर्च सहित)
विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 15 अमेरिकी डालर/7 ब्रिटिश पाउंड
समुद्री डाक : एक प्रति 8 डालर/5 ब्रिटिश पाउंड
आवरण : प्रीडा क्रिएशंस

BAHUVACHAN
A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI
PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHIANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA) INDIA.

मुद्रण : विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स ई-33, सेक्टर A 5/6 ट्रोनिका सिटी यू.पी.एस.आई.डी.सी औद्योगिक क्षेत्र, लोनी, जिला- गाजियाबाद- 201102 (उ.प्र.) फोन- 0120-2696090

अनुक्रम

अतिथि संपादक की कलम से...

यशस्वी रचनाकारों के शोधार्थी और नवीन के प्रतिष्ठाता 5

डॉ. कमल किशोर गोयनका का आलोचनात्मक लेखन

प्रेमचंद और समाजवाद 14

प्रेमचंद : राष्ट्र एवं स्वराज्य का कथात्मक महासमर 34

प्रेमचंद : रामविलास शर्मा और मैं 44

'गोदान' की रचना का रहस्य : रूपरेखा अंग्रेजी में 58

प्रेमचंद : उर्दू से हिंदी में आना-अनसुलझे सवाल 63

प्रेमचंद का संस्कृति चिंतन 95

प्रेमचंद आलोचना के मिथक तथा उपेक्षा-अवमूल्यन की दिशाएं 107

प्रेमचंद का एक अप्राप्य लेख : पूंजीवाद से भयंकर है साम्यवाद 114

संस्मरण

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री : गंगा की निर्मलता, पावनता एवं संस्कृति के प्रतीक-मनीषी 117

बुलंदशहर : मेरी मातृ-भूमि व संस्कार-भूमि 125

लिखते-पढ़ते

प्रेमचंद पर काम करते हुए जीना चाहता हूं... 130

मूल्यांकन

हिंदी के माहिर-ए-प्रेमचंद (प्रेमचंद विशेषज्ञ) डॉ. गोयनका/ज्ञानचंद जैन 137

कमल किशोर गोयनका का साथ/मंगलमूर्त्ति 141

गोयनका बनाम प्रेमचंद/सभापति मिश्र 149

अनुसंधान और आलोचना के शिखर पुरुष/व्यास मणि त्रिपाठी 156

प्रेमचंद मिशन के समर्पित योद्धा/कमलेश भट्ट कमल 163

प्रेमचंद अध्ययन की नई राहों का अन्वेषण/नवीन नंदवाना 171

गोयनका की रचनाधर्मिता : एक अनुशीलन/ए.अच्युतन 180

प्रेमचंद और डॉ. गोयनका/आदर्श मिश्र 187

व्यास-पुरुष : कमल किशोर गोयनका/विनय षडंगी राजाराम 193

प्रेमचंद साहित्य के अनन्यतम अध्येता/कृष्ण वीर सिंह सिकरवार 196

प्रवासी-संस्मरण

मॉरीशस बंधु : कमल किशोर गोयनका/अभिमन्यु अनत 203

सृजनरत डॉ. कमल किशोर गोयनका/सत्यदेव टेंगर 207

वैश्विक भारतीयता की अंतश्चेतना के उपासक/पुष्पिता अवस्थी 211

डॉ. गोयनका और प्रवासी हिंदी साहित्य/उषा राजे सक्सेना 216

प्रवासी-साहित्य और डॉ. गोयनका/पुष्पा सक्सेना 221

सत्य के मेरुदंड पर विकसित कमल/अनिल प्रभा कुमार 230

गोयनकाजी : मेरी दृष्टि में/अनीता कपूर 235

गोयनकाजी-एक हस्ती/अर्चना पैन्यूली 237

संवाद

'रचनाकार अलग से प्रगतिशील नहीं' 241

(डॉ. कमल किशोर गोयनका से जयप्रकाश मानस की बातचीत)

आँखिन-देखी

शोध-साधना की अद्‌भुत उपलब्धि : प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य/विष्णुकांत शास्त्री 255

अप्राप्य और अज्ञात का साक्षात्कार/विजयेंद्र स्नातक 262

कुछ उनकी, कुछ अपनी/ कुसुम गोयनका 264

प्रेमचंद, 'क्रिकेट मैच' तथा राष्ट्रप्रेम/इंद्रनाथ चौधुरी 267

अनन्य प्रेमचंद का असाधारण संपादन/विजय बहादुर सिंह 274

साधक-समीक्षक डॉ. गोयनका/प्रेमशंकर त्रिपाठी 282

गांधी की पत्रकारिता में प्रतिमानों का संधान/कृपाशंकर चौबे 287

कहानियों में प्रेमचंद/श्रीभगवान सिंह 295

गोयनका काजल भी, किरकिरी भी/देवेंद्र दीपक 302

कमल किशोर उर्फ प्रेमचंद गोयनका/रमेश दवे 306

सारस्वत साधना की प्रतिमूर्ति : डॉ. गोयनका/अर्चना पांडेय 314

लेखकों की प्रतिक्रियाएं 317

'प्रेमचंद चित्रात्मक जीवनी' : कुछ मत-सम्मत ३२६

चिट्ठी-पत्री 329

छायाचित्रों में गोयनका ३३५

अतिथि संपादक की कलम से...

यशस्वी रचनाकारों के शोधार्थी और नवीन के प्रतिष्ठाता

प्रेमचंद के अध्येता एवं विशेषज्ञ के रूप में चर्चित तथा स्थापित हिंदी के बड़े साहित्यकार डॉ. कमल किशोर गोयनका का साहित्यिक संघर्ष मामूली नहीं है। दिल्ली विश्वविद्यालय के शोधार्थी के रूप में उन्होंने प्रेमचंद पर कार्य प्रारंभ किया। अनुसंधान के क्रम में उन्हें हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार से संबंधित वे दुर्लभ सामग्रियां प्राप्त हुईं जिनसे हिंदी जगत अपरिचित था। इस क्षेत्र में गोयनका के आगमन से पूर्व जो सामग्री प्राप्त थी, उसे ही पूर्ण मानकर प्रेमचंद की छवि को निर्मित किया गया था। बाद में प्राप्त सामग्री ने प्रेमचंद के लेखन को और अधिक व्याप दिया तथा प्रगतिशील लेखकों द्वारा गढ़ी गई अधूरी प्रतिमा को पूर्ण किया। गोयनका बहुत भाग्यशाली लेखक हैं। उनके लेखन को केंद्र में रखकर हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों ने चर्चा की। हिंदी के शोध और आलोचना के क्षेत्र में लेखकों का अभाव नहीं है। इसके बावजूद बहुत बड़े लेखकों का लेखन-चिंतन और शोध अचर्चित रह जाता है। गोयनका के शुरुआती लेखन से ही चर्चा होने लगी थी। बहुत-सी बातें उनके विरोध में की गईं। बस विरोध में की गईं। विरोध करने वाले लेखकों के पास तर्क कम, भावुकता और यथार्थ से दूर की बातें अधिक थीं, अधिक हैं। गोयनका सटीक, सप्रमाण, यथार्थ और सत्य बोल रहे थे। उन्होंने प्रेमचंद पर अपनी लिखी कोई 35 पुस्तकों में कहीं भी वह नहीं कहा, जो प्रेमचंद नहीं थे। कुछ लोग पार्टी लाइन पर तथा वैचारिक धरातल पर जीवन भर उनके विरोध में लिख-लिखकर उनके यश को चतुर्दिक फैलाते रहे। हिंदी के प्राध्यापक, विद्यार्थी, शोधार्थी और आम पाठक पुस्तकालयों में ढूंढकर, दुकानों से खरीदकर एक-दूसरे से मांग-जांचकर, फोटोकॉपी कराकर तथा पत्रिकाओं को टटोल-टटोलकर कमल किशोर गोयनका को पढ़ते रहे। पाठक को हमेशा यह लगा कि एक लेखक है जो पूरे प्रेमचंद की बात कर रहा है। आधे-अधूरे प्रेमचंद को पढ़ते-सुनते सहृदय ऊब चुका था। गोयनका के लेखन पर विस्तार से डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह जैसे लेखकों ने लिखा। इसके अतिरिक्त जैनेंद्र कुमार, श्रीनारायण चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, गोपाल राय, चंद्रकांत बांदिवडेकर, विष्णु प्रभाकर, कल्याणमल लोढ़ा, विजयेंद्र स्नातक, विष्णुकांत शास्त्री, अमृतलाल नागर, विवेकी राय, मृणाल पाण्डे, देवेश ठाकुर तथा मलयज जैसे लेखकों ने लिखा है। प्रेमचंद के संदर्भ में जो तथ्य हैं उन्हें स्वीकार करने में कोई असुविधा नहीं होनी चाहिए

थी। हर लेखक को तुलनात्मक रूप से दरिद्र बताकर ही उसे बड़ा सिद्ध नहीं किया जा सकता। गुलाम देश में गरीबी चहुंओर थी। शिक्षकों का वेतन बहुत कम था। ऐसे में आर्थिक स्थिति का कमजोर होना स्वाभाविक है। किसी को गरीब सिद्ध करने की होड़ कामरेड या जनसंघी होने का मापदंड नहीं हो सकता। विचारधारा अलग होने से तथ्यों का बंटवारा नहीं होता। प्रेमचंद की जन्म शताब्दी 1979 में मनाई गई। गोयनका प्रेमचंद जन्म शताब्दी राष्ट्रीय समिति के संस्थापक थे। जैनेंद्र कुमार अध्यक्ष थे। श्रीमती इंदिरा गांधी संरक्षक थीं और इस समिति के संस्थापक महासचिव का पद डॉ. कमल किशोर गोयनका को दिया गया। महासचिव के रूप में उन्होंने मॉरीशस में प्रेमचंद जन्म शताब्दी समारोह का आयोजन किया।

प्रेमचंद विशेषज्ञ के रूप में गोयनका की वैश्विक प्रतिष्ठा भी कई लोगों के ईर्ष्या का कारण रही। कई लेखकों के प्रेमचंद संबंधी शोधों और विचारों के खंडन ने उनको विरोधियों की आँखों की किरकिरी बनाया। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। स्वयं गोयनका ने अलग-अलग स्थानों पर लिखे गए लेखों में उदाहरण सहित इसकी चर्चा की है। प्रेमचंद पर लगभग 35 पुस्तकें गोयनका की प्रकाशित हुई हैं। विरोध भी उसी प्रमाण में हुआ। वे अकेले अपने विरोध में लिखे गए सारे लेखों और पंक्तियों का उत्तर देते रहे हैं। उनकी भूमिकाओं को पढ़ने से कहीं ऐसा नहीं लगता कि किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। जो प्रेमचंद के जीवन और साहित्य में है उसे ही उन्होंने लिखा और कहा। कुछ भी कल्पित तथा अप्रामाणिक नहीं लिखा। प्रामाणिकता की ताकत को प्रदर्शित न करने वालों को दृश्य और झटका बार-बार लगता रहा। इस संबंध में गोयनका के 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य-1' का एक उद्धरण पढ़ा जाना चाहिए-'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' तथा 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' की सर्वाधिक आलोचनाएं प्रकाशित हुईं। सुधीश पचौरी ने 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' की प्रशंसा की और उसमें प्रेमचंद को हिंदू बनाने की साजिश भी देखी और अधिकांश प्रगतिशीलों की यही स्थापना रही, यद्यपि वे एक भी ऐसा उदाहरण .पेा नहीं कर पाए जिससे (अहिंदू) प्रेमचंद को हिंदू बनाने के मेरे षड्यंत्र को सिद्ध किया जा सके। उनके दिमाग में पार्टी का जो आदेश एवं कुटिल सिद्धांत ठूंसा गया था, उसने उनके विवेक का हरण कर लिया था। देश के वामपंथी लेखक अंदर से आहत थे, उनके प्रेमचंद संबंधी विश्वासों-धारणाओं का भंजन हो रहा था और वे आत्म-रक्षा में मुझे गालियां तथा बदनाम करने से और क्या कर सकते थे? प्रेमचंद-साहित्य पर उनका जो एकाधिकार था, वह खंड-खंड होकर बिखर गया था और वे विधवा के आँसू बहाने के अलावा कुछ और नहीं कर सकते थे।'

षड्यंत्रपूर्वक प्रेमचंद की छवि को आहत करने वाले लेखकों के सामने साफ-सुथरा लेखन क्या होता है, उसकी समझ और दृष्टि गोयनका ने दी है। तमाम प्रकार की आक्रामकता, असहिष्णुता, विद्रूपता तथा वीभत्स आक्रमणों के बीच निर्द्वंद्व, निष्कंप तथा धारदार रूप में खड़े रहे। विरोध तथा समर्थन के रूप में *हंस, वर्तमान साहित्य, अक्षरा, लोकयज्ञ, समीक्षा, आउटलुक, पुस्तक-वार्ता, गर्भनाल, विश्वभारती पत्रिका, गवेषणा, समास, आजकल* आदि पत्रिकाओं में

गोयनका के कार्य की चर्चा हुई। प्रेमचंद पर विरोध के तमाम लेखों और टिप्पणियों में गोयनका के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। वे तमाम प्रकार के विरोधों, अपमानों और बदले की भावना के बावजूद किसी दबाव में नहीं आए। वे लिखते हैं, 'मेरे साथ तो वामपंथियों ने बार-बार दुर्व्यवहार किया, झूठे आरोप लगाए, बदनाम किया, मुझे प्रोफेसर नहीं होने दिया, लेकिन नामवर सिंह, राजेंद्र यादव, परमानंद श्रीवास्तव, मैनेजर पांडेय, मधुरेश आदि दिग्गज पहलवानों ने मेरे लेखों में उठाए गए किसी भी प्रश्न का उत्तर देने का साहस नहीं किया। इनके पास चूंकि कोई उत्तर नहीं था। अतः बिल्ली के पास खंभा नोचने के अलावा कोई और रास्ता नहीं था। मैं निरंतर अपनी राह पर चलता रहा, वामपंथियों के झूठे दावों और झूठे आरोपों का उनकी ही भाषा में उत्तर देता रहा और कई बार संवाद करने की भी कोशिश की, किंतु प्रति उत्तर देने के लिए कभी कोई हाजिर नहीं हुआ और बड़े-बड़े संवादी-प्रतिवादी सब गायब हो गए। कभी-कभी मैंने अपनी यह मनःस्थिति अपने कुछ अग्रज साहित्यकारों के सम्मुख व्यक्त की तो उन्होंने मुझे सदैव सांत्वना दी और मुझे साहस के साथ डटे रहने का आशीर्वाद दिया।'

डॉ. रमेश कुंतल 'मेघ' ने एक पत्र लिखकर हौसला बुलंद रखने की उन्हें सलाह दी। इस पत्र को 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य-1' में छापा गया है। यह पत्र केवल उन्हें हौसला नहीं देता, मार्क्सवादियों के दंभ और भेदभाव से जुड़ी हुई बहुत-सी बातों को उजागर करता है। पत्र का कुछ अंश यहां प्रस्तुत करना जरूरी लगता है। डॉ. मेघ ने लिखा, 'क्या आपको अपने जीवन-पर्यंत कार्य पर विश्वास नहीं है? क्या आप मौसमी मुर्गों की दंभी आवाजों को कालजयी मानते हैं? क्या अन्य कोई है जिसने आपकी तरह इतने विशाल पैमाने पर सर्वांगीण 'प्रेमचंदायन' को उत्कर्ष दिया है? टिककर आत्ममंथन करें? मैं मानता हूं कि प्रेमचंद को आपने 'आर्काइवल संपूर्णता' प्रदान की है। इसकी महत्ता कई-कई दशकों तथा शती तक रहेगी। अतः आह्लादित रहें कि प्रेमचंद आपके पास हैं, साथ हैं और रहेंगे।

अनेक नामवर हैं जिनकी उम्मीदें लुट गई हैं, ख्याल भी मिट गए हैं, लेकिन वे ताकतवर 'उत्सव पुरुष' हैं। जुलूस उनके पीछे है, क्योंकि वे ऐसे मुकामों पर हैं जहां से मधुकरी/ नौकरी/ पुरस्कार/ खुशफहमी की पुड़ियां बांट सकते हैं। हिंदी में हम इन्हें 'नवमाफिया' कह सकते हैं। अतः इनके तिलिस्म के जादू मंतर अब काम नहीं करते, बस मीडिया इन्हें गुब्बारे जैसा फुलाते हैं और कुछ प्रकाशक इन्हें मुनाफे का गेट पास मानते हैं। आप टिकट खरीदकर तमाशा देखने की आदत डालें।'

'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' एक बड़े लेखक के प्रति समझ बनाने के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ के द्वितीय भाग में प्रेमचंद द्वारा तथा प्रेमचंद को लिखे गए पत्रों का संकलन है। इसमें हिंदी-अंग्रेजी और उर्दू में लिखे गए पत्र हैं। इनकी पुस्तकों की भूमिकाओं को एकत्र पढ़ने का सुख है। इसमें प्रेमचंद की पुस्तकों की 21 भूमिकाएं हैं। प्रेमचंद द्वारा अन्य लेखकों की पुस्तकों की 13 भूमिकाएं हैं। 'प्रताप', 'माधुरी', 'युवक', 'समालोचक' तथा 'हंस' हिंदी मासिक से ली गई सामग्री प्रेमचंद को समझने में सहायक तो है ही, आज की पीढ़ी को नए ढंग से समृद्ध करने

वाली है। परिशिष्ट में दी गई सामग्री की चर्चा उन पर बात करते समय नहीं होती है। इसमें प्रेमचंद के शेष अनुपलब्ध साहित्य की सूचना के अतिरिक्त छह शीर्षकों के अंतर्गत ऐसी सामग्री है जो प्रेमचंद सहित इस युग के लेखन को समझने में सहयोगी तो है ही, भविष्य के लिए दृष्टि देने वाली भी है।

प्रेमचंद की कुछ कृतियों की भूमिकाएं उनके साहित्यिक मित्रों तथा प्रकाशकों ने लिखी हैं। इन्हें भी श्रमपूर्वक एकत्र किया गया है। यह भूमिकाएं प्रेमचंद को समझने के लिए आवश्यक हैं। 'नव-निधि' कहानी संग्रह का 'निवेदन' नाथूराम प्रेमी ने लिखा है। दिसंबर, 1917 में प्रेमचंद कितने प्रतिष्ठित हो गए थे, यह इस 'निवेदन' को पढ़कर समझा जा सकता है। प्रेमचंद पर स्वतंत्रता के बाद तो बहुत लिखा गया। इसमें नाथूराम प्रेमी ने अपनी बात के साथ ही धौलपुर स्टेट के 'सेशन जज' को भी उद्धृत किया है। इस भूमिका को ढूंढने वाले गोयनका सचमुच प्रेमचंद हितैषी हैं। नाथूराम प्रेमी ने लिखा है, 'इसे हिंदी भाषा-भाषियों का सौभाग्य ही समझना चाहिए कि इधर कुछ समय से श्रीयुत् प्रेमचंदजी हिंदी में भी गल्पों की रचना करने लगे हैं। आपकी हिंदी भी बड़ी अच्छी होती है। 'सरस्वती', 'प्रताप' आदि पत्रों में आपकी हिंदी गल्पें पढ़कर हमारा चित्त इस ओर आकर्षित हुआ। हिंदी में स्वतंत्र लेखकों का प्रायः अभाव है। यह देखकर हमने आपसे कुछ गल्पों के लिख देने के लिए प्रार्थना की और उसे आपने प्रसन्नता से स्वीकार किया। यह गल्प-संग्रह आपकी उसी स्वीकारता का फल है।

इस संग्रह की एक गल्प 'रानी सारन्धा' को हमने अगस्त के 'जैन हितैषी' में भी प्रकाशित किया था। उसे पढ़कर धौलपुर स्टेट के 'सेशन जज' और हिंदी के दार्शनिक लेखक श्रीयुत् लाला कन्नोमल जी एम.ए. ता. 30.10.17 के पत्र में लिखते हैं, 'इस अंक में सब ही लेख अच्छे हैं; 'रानी सारंधा' नामक लेख हिंदू जाति की वीरता का एक बड़ा उज्ज्वल आदर्श है। यह ऊंचे-से-ऊंचे वीर रस के भावों से परिपूर्ण है। इसके पढ़ने में मेरी अजीब हालत हो गई है। अश्रुपात रुक नहीं सका है। इस लेख की प्रशंसा जितनी की जाए कम है। इसके लिखने वाले को मेरा हार्दिक साधुवाद है।'

प्रेमचंद ने जो पत्र लिखे और प्रेमचंद को जो पत्र लिखे गए, ये पत्र उनके व्यक्तित्व को समझने के लिए बहुत जरूरी हैं। 1923 में कलकत्ता, हिंदी पुस्तक भवन के प्रकाशक और विक्रेता गंगाप्रसाद भोलीछा ने अपने पत्रों की शुरुआत वंदेमातरम् से की है। गोयनका ने 'प्रेमचंद पत्र कोश' नाम से स्वतंत्र पुस्तक ही संपादित की है। किसी लेखक के पत्रों का इतना बड़ा संकलन दिखलाई नहीं पड़ता। यह संग्रह 515 पृष्ठों का है। यह पत्र प्रेमचंद के साथ-साथ उस युग को समझने के लिए उपयोगी है। इन पत्रों को पढ़कर प्रेमचंद की साहित्य संबंधी धारणाओं को समझा जा सकता है। संग्रह में कई निहायत व्यक्तिगत पत्र हैं जो बहुत करीबी मित्रों को अपनी पीड़ा-व्यथा व्यक्त करते हुए लिखे गए हैं। इन पत्रें से प्रेमचंद की एक आम मनुष्य की छवि बनती है। कुछ लोग अति प्रगतिशीलता में मनुष्य ही नहीं रहने देना चाहते। पत्रों का संग्रह कर गोयनका ने कोई गुनाह नहीं किया है, लेकिन लेखकों का एक बहुत बड़ा वर्ग गोयनका के

पीछे पड़ गया है, जैसे यह पत्र और कहानियां प्रेमचंद की न होकर गोयनका की हों। यथार्थ की वकालत करते हुए यथार्थ से मुंह फेरने की आदत को लंबे समय तक छुपाया नहीं जा सकता। धीरे-धीरे साहित्य के पाठकों सहित जनता ने इस छवि को समझा और ऐसे विचारों से स्वयं को दूर कर लिया। धनपतराय ने एक पत्र रामदास गौड़ को लिखा है। यह पत्र 1931 का है। यह वह समय है जिसके बारे में आलोचकों का कहना है कि प्रेमचंद अतियथार्थ की ओर मुड़ गए थे। वे अपने पत्र में लिखते हैं-

रामदास गौड़
'हंस'
गणेशगंज, लखनऊ

प्रिय बंधुवर,

बहुत दिनों से आपको एक पत्र लिखने के लिए दिल मजबूर कर रहा था और आज मजबूर हो गया हूं।

मेरी लड़की का 19वां साल है। ढाई साल हुए उसका विवाह भी हो गया है। पर लड़की का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता जाता है। एक बार कोई साल भर से ज्यादा हुआ, वह रात को डर गयी थी। तभी से उसे एक-न-एक शिकायत लगी रहती है। कभी सिर में दर्द है, कभी ज्वर है, कभी पसलियों में दर्द है। दुर्बल भी हो गई है। कई चिकित्सकों की दवाई भी की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। मुझे कुछ ऐसा भ्रम हो रहा है कि इसमें कोई रहस्य है। इस मकान में दो-तीन किरायेदार दो-दो, चार-चार दिन रहकर ऊबकर चले गये थे। मैं ही छह महीने रहा। कह नहीं सकता वहां कोई आसेब था, या क्या बात हुई? पर संदेह हो रहा है कि जरूर कुछ-न-कुछ था और मैं चाहता हूं कि आप एक बार दया करके लड़की को देख लें। यदि कोई अनुष्ठान हो सके तो बताएं और न हो सके तो जैसी ईश्वर की इच्छा होगी, वह तो होगा ही। आप दिसंबर की तारीख में काशी में होंगे? अगर उस वक्त मैं लड़की को लेकर आऊं तो आपसे भेंट हो जाएगी? मैं 21-11-31 को पटना जा रहा हूं। वहां से मैं एक दिन के लिए काशी में रुकूंगा। क्या आप 23 या 24 को घर पर मिल सकेंगे? पाकर मुझे सूचना दीजिए।

यह तो आपको मालूम ही होगा कि अब मेरा संबंध नवल किशोर प्रेस से नहीं रहा, पर लड़कों के कारण मई तक यहां रहना पड़ेगा। बीच में उनका नाम कटाना मसलहत नहीं मालूम हुई। मई से स्थायी रूप से देहात में रहूंगा।

कृपया पत्र का उत्तर शीघ्र दीजिएगा।

भवदीय
धनपतराय

प्रेमचंद बड़े हिंदू थे। वे हिंदुत्व की कमजोरियों से भी परिचित थे। उनके लेखन का अधिकांश हिंदू के इर्द-गिर्द है। नामवर सिंह की पीड़ा यह थी कि गोयनका प्रेमचंद को हिंदुत्व के रंग में रंग रहे हैं। गोयनका कभी इस बात से विचलित नहीं हुए कि उन्हें वामपंथी मार्क्सवादी

किसी तरह का कोई प्रमाण-पत्र पकड़ा रहे हैं। वे दावे के साथ सगर्व प्रेमचंद के हिंदुत्व के पक्ष को रखते हैं और ऐसे लोगों पर प्रहार करते हैं जो इतने बड़े लेखक की खंडित छवि के साथ जीना चाहते हैं और उसे ही अपनी वैचारिक धारणाओं के कारण प्रसारित कर रहे हैं तथा जो प्रेमचंद हैं उससे अलग गढ़ रहे हैं। गोयनका ने लिखा है, 'नामवर सिंह और उनके वामपंथी चेले विगत कई दशकों से प्रेमचंद को साम्यवाद के रंग में रंगने का कार्य करते रहे हैं और उसके अनेक प्रमाण मैं उजागर कर चुका हूं, परंतु मलयज, सुधीश पचौरी, नामवर सिंह में से कोई एक भी प्रेमचंद को हिंदू बनाने का प्रमाण आज तक नहीं दे सका है। प्रेमचंद हिंदू थे, उन्होंने इसका उल्लेख कई बार किया है, अमृतराय और अमृतलाल नागर भी उन्हें हिंदू लेखक मानते हैं, परंतु इससे इन वामपंथियों को न मालूम क्या तकलीफ होती है? नामवर सिंह हिंदू हैं, शिवकुमार मिश्र हिंदू हैं, मैनेजर पांडेय हिंदू हैं और अधिकांश हिंदी के प्रगतिशील लेखक हिंदू हैं। इन्हें अपने हिंदू होने पर जब कोई ग्लानि नहीं है तो इन्हें प्रेमचंद के हिंदू होने पर क्यों छटपटाहट होती है? असल में यह राजनीतिक ड्रामा है और यह दुरंगी हिंदूपन है जिसकी सफाई के लिए प्रेमचंद ने अपने साहित्य की रचना की। प्रेमचंद को उर्दू का हिंदू लेखक होने के कारण वह यश उर्दू में नहीं मिला जो उन्हें उर्दू का मुस्लिम लेखक होने पर मिलता। अपनी इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति उन्होंने अपने एक पत्र में यह लिखकर की थी कि किस हिंदू को उर्दू में फैज (लाभ) हुआ है जो मुझे होगा। प्रेमचंद का साहित्य 95 प्रतिशत से अधिक हिंदू समाज पर आधारित है, वे अपने आलोचनात्मक विवेक से हिंदू समाज का अवलोकन करते हैं, उसका चित्रण करते हैं और उसके गुणावगुणों को समाज के सम्मुख रखते हैं।'

कमल किशोर गोयनका ने प्रवासी साहित्य को प्रकाश में लाने के लिए जो श्रम किया है उसका मूल्यांकन अभी शेष है। अभिमन्यु अनत को भारत में कथा साहित्य के क्षेत्र में जो प्रतिष्ठा मिली है, उस यश को प्रचारित-प्रसारित करने वाले प्रारंभिक साहित्यकारों में गोयनका हैं। उन्होंने उनके कई उपन्यासों की भूमिका लिखी और पुस्तकों के प्रकाशन में सहायता पहुंचाई। जब मॉरीशस पर बात होती है तो वे केवल अभिमन्यु अनत पर ही टिककर नहीं रहते। 'मॉरीशस की हिंदी कहानियां' संग्रह में उन्होंने अभिमन्यु अनत, जयदत्त जीऊत, दीपचंद बिहारी, धर्मवीर घूरा, पुष्पा बम्मा, पूजानंद नेमा, बीबी साहेबा फर्जअली, बीरसेन जागासिंह, भानुमति नागदान, महेश रामजियावन, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, मोहनलाल बृजमोहन, रामदेव धुरंधर, लोचन बिदेशी, वेणीमाधव रामखेलावन, सोनालाल नेमधारी, हेमराज सुंदर, लक्ष्मी प्रसाद रामयाद, ठाकुरदत्त पाण्डेय, नारायण पंत दसोई, बृजलाल रामदीन 'करुण', दिमलाला मोहित, धर्मानंद, इंदुभूषण (सूर्यप्रसाद मंगर भगत) और जयनारायण राय की कहानियां संगृहीत की हैं। ये वे विदेशी लेखक हैं जिनकी हिंदी में लिखी गई रचनाओं को संकलित कर प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक की विस्तृत भूमिका में इन्होंने इन कहानीकारों के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। मॉरीशस की श्रेष्ठ कहानियों को एकत्र पढ़ने के लिए उनके द्वारा किया गया एक बड़ा उपक्रम है। विदेशियों द्वारा लिखी गई रचनाओं के अनुवादों का संग्रह हुआ है। उनकी चर्चा भी हुई है।

भारत के बाहर एक ही देश में इतनी बड़ी मात्रा में गुणवत्तायुक्त लेखन हुआ है, इसका बोध कई प्रकार के संग्रहों से हिंदी जगत को डॉ. गोयनका ने कराया है। मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता तथा समाज-सुधार के क्षेत्र में कितने प्रकार की गतिविधियां संचालित हो रही हैं, इसकी सूचना प्राप्त करने के लिए इन्होंने कई यात्राएं कीं। हिंदी के द्विवेदी युगीन लेखकों, पुरानी पत्रिकाओं तथा आर्य समाज ने मॉरीशस के लेखन को किस प्रकार प्रभावित किया, उसका लेखा-जोखा भी डॉ. कमल किशोर गोयनका के लेखन में देख सकते हैं। वहां की हिंदी कहानी को नए सिरे से कालबद्ध करने का प्रयास चुनी हुई कहानियों के माध्यम से किया।

मॉरीशस में हुए विभिन्न शोधों तथा वहां के साहित्यिकारों द्वारा विभिन्न पत्रिकाओं में दी गई सूचनाओं के आधार पर गोयनका ने मॉरीशस की हिंदी काव्य यात्रा का प्रारंभिक चरण 1913 से 1935 माना है। दूसरा चरण 1935 से 1968 बताते हुए इस कालखंड में वहां हुए काव्य विकास को विस्तारपूर्वक रेखांकित किया है। इस कालखंड में बृजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' ऐसे कवि हैं जिनके 49 काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी जगत को इसकी विस्तृत जानकारी गोयनका के लेखन से प्राप्त हुई। मॉरीशस की हिंदी कविता का तीसरा चरण वहां की स्वतंत्रता यानी 1968 से प्रारंभ होता है। स्वतंत्रता के पश्चात गद्य और पद्य में आए परिवर्तनों को बहुत बारीकी से इन्होंने रेखांकित किया है। मॉरीशस के साहित्य का सबसे बड़ा नाम अभिमन्यु अनत है। इनके गद्य पर लेखन के साथ ही कविताओं का संग्रह इन्होंने प्रकाशित किया है। मॉरीशस के लोग दिल्ली में गोयनका को कितना मानते हैं, यह अभिमन्यु अनत के कुछ पत्रों से पता चलता है। वहां के किसी व्यक्ति को, किसी प्रकार की जरूरत हुई तो उसके लिए भी अभिमन्यु अनत गोयनका को पत्र लिखते हैं। ऐसा ही एक पत्र यहां उद्धृत करना सम्यक प्रतीत होता है।

Abhimanyu Unnauth
Samvadita
Triolet, Mauritius
10-6-1997

प्रिय भाई कमल किशोरजी,

दिल्ली पहुंचने वाला हर आदमी अब डॉ. कमल किशोर का सहयोग हेतु चले आते हैं। लगता है आप अपने देश के प्रधानमंत्री से अधिक प्रसिद्धि पा चुके हैं इस देश में। मेरी एक स्टूडेंट जिसे मैंने चालीस वर्ष बाद देखा अपनी बेटी देविना के साथ आपके सहयोग के लिए मेरे पास आ गई। उसकी बेटी देविना दिल्ली पहुंच रही है अंग्रेजी बी.ए. अध्ययन के लिए। वे दिल्ली पहुंचते ही आपसे संपर्क करेंगे। मिरांडा कॉलेज की इच्छा रखे हुई है। आप जैसा कि हमेशा करते रहे हैं, वैसे ही देविना की भी मदद कर दें। उसके पूरे परिवार को मैं अच्छी तरह जानता हूं। बड़े ही संपन्न और अच्छे लोग हैं।

अपना ही
अभिमन्यु अनत

'दुर्गा' मॉरीशस से निकलने वाली हस्तलिखित पत्रिका थी। सूरज प्रसाद मंगर एस.एम. 'भगत' ने 'ज्वालामुखी' के नाम से इस पत्रिका का संपादन किया था। इसमें प्रकाशित आलेखों का संग्रह करके सुव्यवस्थित रूप से गोयनका ने प्रकाशित करवाया है। इसका विमोचन मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में हुआ। इस तरह के शोध कार्य भारत से प्रकाशित पुरानी पत्रिकाओं पर भी नहीं हुए हैं। प्रेमचंद का स्वर्गवास 8 अक्टूबर, 1936 को हुआ। 'दुर्गा' पत्रिका के नवंबर, 1936 के अंक में शोक संवेदना प्रेमचंद के योगदान को विस्तारपूर्वक स्मरण करते हुए छपी। गोयनका ने मॉरीशस के साहित्यकारों पर ही नहीं लिखा, विश्वभर में हिंदी पर किए जा रहे कार्यों तथा रचनात्मक लेखन पर उनका ध्यान है। इस दृष्टि से इन्होंने विश्व भर म्रें प्रकाशित हो रही हिंदी की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं को केंद्र में रखते हुए लिखा है। अमेरिका, इंग्लैंड, सूरीनाम के साहित्य पर इन्होंने विस्तारपूर्वक लिखा। कई रचनाकारों की पुस्तकों की भूमिकाएं भी लिखीं। इस दृष्टि से पं. रामरूप रामसाहा, बीरसेन जागासिंह, पूजानंद नेमा, सुमति बुधन, लोचन बिदेशी, हेमराज सुंदर, मोहनलाल बृजमोहन का नाम उल्लेखनीय हैं।

यूरोप के देशों में हिंदी लेखन और पत्रकारिता की स्थिति की एकत्रित सूचना जहां गोयनका से प्राप्त होती है वहीं पड़ोसी देश नेपाल में हो रही हिंदी की हलचल को जानने के लिए इन्हें पढ़ना जरूरी है। कभी ढाका की हिंदी पत्रकारिता से साहित्य जगत परिचित भी था, प्रभावित भी। वहां से समय-समय पर 'धर्मनीति तत्व', 'विद्याधर्म दीपिका', 'द्विज', 'नागरी हितैषी', 'तत्व दर्शन', 'मेल मिलाप', 'बिहार बंधु', 'मौजी' तथा 'साहित्य' पत्रिकाएं प्रकाशित हुई हैं। इन पत्रिकाओं पर हिंदी के शोधार्थियों द्वारा कार्य किया जाना चाहिए। जापान, चीन से हिंदी पत्रिका प्रकाशित होती हैं। गोयनका ने विश्वभर से निकलने वाली हिंदी पत्रिकाओं की सूचना तथा उनके विषय में संक्षिप्त जानकारी भी हिंदी पाठकों को उपलब्ध कराई है।

'गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान' महात्मा गांधी पर लिखी गई पुस्तकों में अपने ढंग की अकेली पुस्तक है। अठारह अध्यायों में गांधी की पत्रकारिता पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। 1903 में दक्षिण अफ्रीका से महात्मा गांधी के सहयोग से 'इंडियन ओपिनियन' साप्ताहिक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। 'वेजिटेरियन' समाचार पत्र में मात्र 22 वर्ष की उम्र में उनका साक्षात्कार इंग्लैंड में छपा। गांधीजी ने 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' तथा 'हरिजन' का संपादन किया। 'बाम्बे क्रॉनिकल' तथा 'सत्याग्रही' के भी एक व दो अंक उनके संपादन में प्रकाशित हुए। अपने द्वारा संपादित पत्रिकाओं में उन्होंने भारत की समस्याओं को उठाया। भारतीयों को प्रेरित किया और अंग्रेजी सरकार को भारत छोड़ने के लिए बाध्य किया। उनमें गांधीजी ने जो लिखा उसके विषय बहुत व्यापक हैं। प्रकाशन से लेकर प्रबंधन तक की व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए गांधी की पत्रकारिता पर इस पुस्तक में विचार किया गया है।

'बहुवचन' के इस अंक के लिए हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों ने रचनात्मक सहयोग किया है। कई आप्रवासी लेखकों ने उनके योगदान को बहुत गहराई से याद किया है। हिंदी के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनके द्वारा किए गए कार्यों का लघु दस्तावेज है यह अंक। सामग्री की

विविधता इस अंक को पूर्ण बनाती है। कोई पचास वर्षों से उनके साथ जुड़े हुए हिंदी के वरिष्ठ लेखकों ने जिस प्रकार से उनके लेखकीय योगदान को रेखांकित किया है वह बतलाता है कि वैचारिक रूप से आर-पार होने पर भी किसी के द्वारा किए कार्य को लाख चाहकर भी अनदेखी नहीं की जा सकती है। प्रेमचंद विशेषज्ञ के रूप में इनकी विशिष्ट पहचान है। यह उनके लेखन और शोध का विशेष क्षेत्र है। हिंदी के वरिष्ठ रचनाकारों प्रभाकर माचवे, जगदीश चतुर्वेदी, रवींद्रनाथ त्यागी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विष्णु प्रभाकर, यशपाल, रामकुमार वर्मा, मंजुल भगत और दिनेश नंदिनी डालमिया जैसे अनेक प्रतिष्ठित लेखकों को अपने लेखन के केंद्र में रखकर इन्होंने पुस्तकें लिखी हैं या उन्हें किसी न किसी रूप में संपादित कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। डॉ. कमल किशोर गोयनका को हिंदी के बड़े साहित्यकारों ने स्नेह और आदर से याद किया है। कई बड़े लेखकों से निर्भय होकर उन्होंने दो-दो हाथ किए हैं। अपनी वैचारिक दृढ़ता, शोध और प्रामाणिकता के कारण हर बार विजयी हुए हैं। 82 वर्ष की उम्र में लेखन के क्षेत्र में निरंतर बनी हुई सक्रियता युवा पीढ़ी को प्रेरित करने वाली है। यह आशा भी बलवती होती है कि अभी बहुत कुछ अचर्चित, अलिखित, अदृश्य हिंदी पाठकों के लिए सुलभ होना शेष है। यह अंक विश्व भर में हिंदी के क्षेत्र में काम कर रहे भारतीयता तथा हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष कर रहे लेखकों तथा पाठकों को अवश्य पसंद आएगा।

डॉ. कमल किशोर गोयनका के स्वस्थ और दीर्घायु होने की कामना के साथ 'बहुवचन' का यह विशेषांक पाठकों को सौंपते हुए आश्वस्त की अनुभूति हो रही है। कुलपति, प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल बधाई के पात्र हैं कि उनके संरक्षक, संपादकत्व में यह अंक प्रकाशित हो रहा है। अशोक मिश्रजी का प्रयत्न व प्रतीक्षा दोनों श्लाघनीय है।

नंद किशोर पाण्डेय

(नंद किशोर पाण्डेय)

प्रेमचंद और समाजवाद

प्रेमचंद के मार्क्सवाद और रूसी क्रांति एंव प्रगतिशीलता के विचार-दर्शन को लेकर कई दशकों से हिंदी आलोचना में चर्चा और विवेचन होता रहा है, लेकिन यह विवेचन प्रायः हिंदी के प्रगतिशील आलोचकों, लेखकों एवं कम्युनिस्ट नेताओं की ओर से ही हुआ है। स्वाभाविक था, प्रगतिशील लेखकों और कम्युनिस्ट नेताओं ने इस चर्चा-विवेचन का उपयोग उन्हें मार्क्सवादी लेखक सिद्ध करने में किया। इसके लिए उन्हें यह भी लिखना पड़ा कि अपने अंतिम वर्षों में प्रेमचंद का गांधीवाद से मोह-भंग हो गया था और इसके बाद वे मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हो गए थे। इस स्थापना से प्रेमचंद का हित तो नहीं हुआ, लेकिन प्रगतिशील आलोचकों एवं लेखकों ने हिंदी साहित्य में यह स्थापित कर दिया था कि प्रेमचंद मार्क्सवादी लेखक थे और वे खूनी क्रांति के द्वारा सर्वहारा के राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इन प्रगतिशील लेखकों ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की प्रेमचंद की अध्यक्षता को लेकर भी अपने पक्ष में वातावरण बनाया और अनेक क्षेत्रों में उसका विस्तार किया। उस स्थापना के साथ यह भी एक चमत्कारपूर्ण तथ्य है कि ये मार्क्सवादी आलोचक एवं लेखक यह भी मानते हैं कि प्रेमचंद ने मार्क्सवाद का पूर्ण अध्ययन नहीं किया था और वे उससे पूर्णतः अवगत नहीं थे। डॉ. रामविलास शर्मा ने सन् 1941 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद' में लिखा है, 'उनकी कृतियों से यह नहीं जान पड़ता कि उन्होंने समाजवाद का शास्त्रवत् अध्ययन किया था या समाजवादी सिद्धांतों के अनुसार रचे गए साहित्य के अनुसार साहित्य भी गढ़ने की चेष्टा की थी।'[1] यही बात लगभग 40 वर्ष के बाद मार्क्सवादी आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंदः विरासत का सवाल' में लिखी है। वे लिखते हैं कि मार्क्स का नाम प्रेमचंद ने कहीं नहीं लिया है, मार्क्सवादी दर्शन का जिक्र भी उन्होंने नहीं किया है, कदाचित मार्क्सवादी दर्शन को उसके सुसंगत रूप में जानने पहचानने का सुयोग इस युग के दूसरे तमाम बुद्धिजीवियों की भांति उन्हें भी नहीं मिला था।[2]

हिंदी के मार्क्सवादी आलोचकों के ये निष्कर्ष उपलब्ध तथ्यों के विपरीत हैं। प्रेमचंद ने 'मार्क्स' का उल्लेख अपने लेख 'इस्लामी सभ्यता'[3] में करते हुए लिखा है कि कार्ल मार्क्स और रूसी को जिन सिद्धांतों का श्रेय दिया जा रहा है, वास्तव में उनका जन्मदाता अरब के मरूस्थल का उम्मी मुहम्मद था जिसने इस्लाम धर्म को जन्म दिया। प्रेमचंद के इस कथन से हमारे कम्युनिस्ट लेखक संभवतः सहमत नहीं होंगे लेकिन इस प्रमाण को वे अस्वीकार नहीं कर सकते

कि सन् 1925 में वे 'कार्ल मार्क्स' का उल्लेख कर रहे थे और वे उसके सिद्धांतों से परिचित थे। 'स्वदेश' 18 मार्च 1928 को अपने लेख 'राज्यवाद और साम्राज्यवाद में प्रेमचंद ने लिखा 'साम्यवाद से ऐसी ही लंबी चौड़ी आशाएं बांधी गई थीं, मगर अनुभव यह ही रहा है कि साम्यवाद केवल पूंजीपतियों पर मजदूरों की विजय का आंदोलन है। न्याय के अन्याय पर, सत्य के मिथ्या पर विजय पाने का नाम नहीं। वह सारी विषमता, सारा अन्याय, सारी स्वार्थ-परता, जो पूंजीवाद के नाम से प्रसिद्ध है, साम्यवाद के रूप में आकर अणुमात्र भी कम नहीं होती, बल्कि उससे और भी भयंकर हो जाने की संभावना है।' वे जरा मुसोलिनी, हिटलर, स्टालिन लेनिन, चर्चिल, आदि की चर्चा 'जागरण' और 'हंस' में लिखी अपनी संपादकीय टिप्पणियों में बार-बार करते हैं तथा कुछ स्थानों पर तो वे मार्क्सवादी शब्दावली का प्रयोग करते रहे हैं। उनके पत्रों एवं लेखों में 'बोल्शेविस्ट उसूल' (पत्र, 21 दिसंबर, 1919), 'रक्तमय अशांति' ('मर्यादा', बैशाख' संभवत् 1979), 'क्रांति' ('हंस : जून, 1931), 'रूस धर्म को अफीम का नशा कहता है' (हंस : अक्टूबर- नवंबर 1932), 'शांतिमय क्रांति' ('हंस अक्टूबर-नवंबर, 1932), 'जाटर-सत्ता' ('जागरण', फरवरी, 1933), 'वर्गवाद' ('जागरण' 17 अप्रैल, 1933), 'कम्युनिज्म और फासिज्म' ('जागरण' 21 अगस्त, 1933), 'सोशलिज्म' ('जागरण, 9 अक्टूबर, 1933) 'वर्ग संग्राम का भीषण रूप' ('जागरण' 10 अप्रैल, 1933), 'समाजवादी डिक्टेटरशिप' ('जागरण' 15 जनवरी, 1934)', 'सर्वहारा वर्ग' (पत्र, इंद्रनाथ मदान को, 26 दिसंबर, 1934), आदि शब्दों एव वाक्यों का यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है। जिससे स्पष्ट है कि वे मार्क्सवाद तथा रूस में हुई बोल्शेविक क्रांति से पूर्णतः अवगत थे। प्रेमचंद के कुछ लेख भी रूस की स्थिति, साम्यवाद और महाजनी सभ्यता आदि के युगीन संदर्भों पर आधारित हैं। ये लेख हैं- 'पुराना जमाना : नया जमाना' ('जमाना' उर्दू पत्रिका, फरवरी, 1919)', 'रूस और जर्मनी की संधि' ('मर्यादा' अप्रैल, 1922)', 'रूस का भाग्य-विधाता' ('जागरण' 31 अक्टूबर 1932)' 'सोवियत रूस की उन्नति' (जागरण, 28 नवंबर, 1932), 'रूसी साहित्य और हिंदी' (हंस, मई 1933), 'भारत- 1983 में' (जागरण 21 अगस्त, 1933), 'भावी महासमर' (जागरण 22 मई, 1933), 'रूस में समाचार-पत्रों की उन्नति' (जागरण, 21 अगस्त, 1933), 'कांग्रेस और सोशलिज्म' (जागरण 9 अक्टूबर, 1933), 'जवाहर लाल नेहरू का व्याख्यान' (जागरण, 20 नवंबर, 1933), 'समाजवाद का आतंक' (जागरण, 19 फरवरी, 1934), 'रूस और जापान में तनाव' (जागरण, 19 फरवरी, 1934), 'रूस का नैतिक उत्थान' (जागरण, 26 फरवरी, 1934), 'रूस में धर्म-विरोधी आंदोलन' (जागरण, 19 मार्च, 1934), 'रूस में पूंजीवाद' (जागरण, 23 अप्रैल, 1934), 'रूसी कहानियां' (हंस, मार्च, 1935), 'साम्यवाद का बिगुल' (हंस, जून, 1936), 'मजहबी सभ्यता' (हंस', सितंबर, 1936) आदि।

ये सभी संदर्भ, लेखादि इसके प्रमाण हैं कि प्रेमचंद कार्ल मार्क्स, मार्क्सवाद, लेनिन की बोल्शेविक खूनी क्रांति, जार की सत्ता और कम्युनिस्ट सत्ता तथा उसके क्रिया-कलापों एवं विचार-दर्शन से पूर्णतः परिचित थे। वे अपने समय के सबसे अधिक अध्ययनशील हिंदी के लेखक थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से यूरोप, रूस आदि का साहित्य पढ़ा था और

ज्ञान-विज्ञान तथा विश्व-राजनीति के संबंध में जो पुस्तकें भारत में आ रही थीं, वे उनसे सीधे संपर्क में थे। इसके भी प्रमाण उपलब्ध हैं कि उन्होंने समाजवाद पर कई पुस्तकें पढ़ी थीं तथा उस समय के प्रतिष्ठित समाजवादियों-संपूर्णानंद, आचार्य नरेंद्रदेव आदि, से उनके गहरे संबंध थे। वैसे भी, रूस की खूनी क्रांति (सन् 1917) से काफी पहले 'समाजवाद' की चर्चा सारे विश्व में आरंभ हो चुकी थी। यहां तक कि स्वामी विवेकानंद भी इससे अछूते नहीं रहे। विवेकानंद जब इंग्लैंड में थे तब उनसे अनेक समाजवादी और प्रजातंत्रवादी नेता उनसे मिलने आए थे[4] और उन्होंने 'समाजवाद' की आवश्यकता पर लंदन में सन् 1896 में कहा था, 'यहां इंग्लैंड में यही प्रकट हो रहा है कि समाजवाद अथवा जनता द्वारा शासन-सा कोई स्वरूप, उसे आप चाहे जिस नाम से पुकारें, उभरता आ रहा है। लोग निश्चय ही यह चाहेंगे कि उनकी पार्थिव आवश्यकताओं की पूर्ति हो, वे कम काम करें, उनका शोषण न हो, युद्ध न हो और भोजन आदि मिले।[5] विवेकानंद ने समाजवाद की परिभाषा देते हुए कहा कि जो समाज के आधिपत्य के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता का त्याग चाहता है, वह सिद्धांत समाजवाद कहलाता है और जो व्यक्ति के पक्ष का समर्थन करता है, वह व्यक्तिवाद कहलाता है।[6] वे अपने व्याख्यानों में भारत के 'सामाजिक साम्यवाद' की चर्चा करते हैं और 'सार्वभौम साम्यवाद' की भी, परंतु उनका दृढ़ मत है कि साम्यवादी सिद्धांतों का आधार आध्यात्मिक ही होना चाहिए।[7] उनका मत था कि कोई भी समाजवादी सभ्यता, जो धर्म पर अथवा मनुष्य के भीतर के शुभ पर आधारित न हो, स्थायी नहीं हो सकती, लेकिन धर्म इस समस्या की जड़ तक पहुंच सकता है।[8]

महात्मा गांधी भी अपने समय में समाजवाद और साम्यवाद पर विचार करने से बच नहीं पाए। समाजवाद उस काल-खंड में स्वराज्य और स्वाधीनता के साथ महत्वपूर्ण विषय था जिसके कारण साधारण जनता को न्यायपूर्ण समानता और शोषण मुक्त व्यवस्था मिलने की संभावना उत्पन्न हो गई थी। अतः महात्मा गांधी को भी समाजवाद और साम्यवाद पर विचार करना आवश्यक था। गांधी 'समाजवाद' को मानते हैं और उसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि समाजवाद का यह अर्थ है कि लोग स्वावलंबी बनें। ऐसा होने पर ही उनका लूटा जाना बंद हो सकेगा।[9] उनका मत है कि 'ईशोपनिषद्' के पहले मंत्र में ही समाजवाद ही नहीं साम्यवाद विद्यमान है।[10] इसीलिए वे 'पाश्चात्य समाजवाद या साम्यवाद' को उचित नहीं मानते क्योंकि उसमें हिंसा का रंग चढ़ा हुआ है।[11] वे समाजवाद को स्पष्ट करते हैं और कहते हैं कि कारखानों का या तो राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए या तो उन्हें राज्य के स्वामित्व में रखा जाए। वे मानव हित के लिए चलाए जाएं, लोभ के लिए नहीं, तथा धन की आपा-धापी बंद हो एवं मजदूरों का जीवन सुधरे।[12] लेकिन गांधी रूसी ढंग के समाजवाद को स्वीकार नहीं करते। वे स्पष्ट कहते हैं कि रूसी ढंग का जबरदस्ती थोपा गया समाजवाद भारत को कभी स्वीकार नहीं होगा। मैं 'अहिंसक साम्यवाद' में आस्था रखता हूं।[13] गांधी के विचार में 'अहिंसा' और सृजनात्मक कार्यक्रम' उसके मूल में हैं। गांधी 'शोषण' के विरुद्ध हैं[14] तथा 'वर्ग-युद्ध' के विरोधी हैं[15] पूंजीपति एवं मजदूर दोनों को चाहते हैं[16] स्वराज्य के लिए 'आर्थिक स्वतंत्रता' चाहते हैं[17] और कहते हैं कि साम्यवादी दल के अस्तित्व में आने से पहले ही कांग्रेस श्रमिकों और कृषकों के

लिए स्वराज्य की कल्पना कर चुकी थी।[18] फिर भी वे मानते हैं कि कम्युनिस्टों से उनका झगड़ा नहीं है, मतभेद है।[19] वे कई बार समाजवादियों से अपने अंतर को स्पष्ट करते हैं। गांधी मानते हैं कि सब संपत्ति प्रजा की है- 'सबै भूमि गोपाल की' लेकिन समाजवादियों के घृणा और हिंसा से राज-सत्ता पर नियंत्रण तथा समानता को बलपूर्वक लागू करने के वे समर्थक नहीं हैं।[20] वे कहते हैं कि आप देश को अपने विचारों का अनुगामी बनाने के लिए हिंसा का पथ ग्रहण कर सकते हैं, परंतु आप कितने लोगों को मारेंगे? करोड़ों का विनाश तो नहीं कर सकते जबकि आज आप मुट्ठी-भर से अधिक नहीं हैं।[21] वे स्पष्ट देखते हैं और कहते हैं कि समाजवादी और साम्यवादी अपने विचारों एवं सिद्धांतों का अपने जीवन में आचरण नहीं करते। आप साम्यवादी होने का दावा करते हैं, परंतु साम्यवादी जीवन व्यतीत करते दिखाई नहीं देते। गांधी कहते हैं कि यदि साम्यवाद में हमारी श्रद्धा है, तो हम कम-से-कम अपनी निजी जायदाद तो समाज को अर्पण कर दें। एक भी कौड़ी जब तक कोई रखेगा, तब तक वह समाजवादी नहीं है।[22] गांधी आचरण पर बल देते हैं और उसे अहिंसा का मार्ग कहते हैं। इस कारण वे स्वयं को 'सबसे बड़ा कम्युनिस्ट'[23] होने का दावा करते हैं। वे इसी आधार पर जवाहर लाल नेहरू के समाजवाद से स्वयं को थोड़ा अलग मानते हैं। नेहरू परिणाम पर जोर देते हैं और अहिंसा के अतिरिक्त अन्य साधनों से भी समाजवाद लाना चाहते हैं, परंतु गांधी अहिंसा के सिद्धांत से टस-से-मस नहीं होते।[24] गांधी मानते हैं कि उनका जो भारतीय समाजवाद है, वह एक दिवा-स्वप्न है, वैसे ही जैसे समाजवादियों का एक नई व्यवस्था के बनाने का है, लेकिन वे भी एक नए ढंग की व्यवस्था बनाना चाहते हैं जो विश्व को अचंभे में डाल देगी।[25] उनका समाजवाद या साम्यवाद अहिंसा तथा श्रम व पूंजी और जमींदार व रैयत के सामंजस्यपूर्ण सहयोग पर आधारित है।[26] गांधी इसकी संभावना स्वतंत्र भारत में देखते हैं और मानते हैं कि तब अमीरों और गरीबों के पास बराबर की सत्ता होगी, लेकिन यदि स्वेच्छा से संपत्ति का त्याग नहीं किया जाता और जो सत्ता संपत्ति से प्राप्त होती है, उसे खुशी-खुशी नहीं छोड़ा जाता तथा संपत्ति का उपयोग मिल-जुलकर, सबकी भलाई के लिए नहीं किया जाता तो निश्चय ही इस देश में खूनी क्रांति आएगी।

प्रेमचंद समाजवाद को लेकर विवेकानंद, गांधी, बोल्शेविक क्रांति तथा अपने युग की आवश्यकताओं से प्रभावित थे और वे समाजवाद का अपना दर्शन विकासित कर रहे थे। भारत में उस समय स्वराज्य की लड़ाई शुरू हो चुकी थी। इस लड़ाई का आधार विदेशी दासता से मुक्ति का संकल्प तो था ही, साथ ही समता एवं न्याय पर आधारित समाज की रचना का स्वप्न भी जुड़ा हुआ था। इस प्रकार समाजवादी भी उस युग की प्रमुख मांग थी। इसी कारण बोल्शेविक क्रांति और गांधी के आविर्भाव से पहले ही प्रेमचंद की दिशा शोषण-मुक्त समाज के निर्माण की थी। उनके इस चिंतन को विवेकानंद, गांधी और मार्क्स के अनुयायियों ने दृढ़ आधार दे दिया और वे अपने लेखों के साथ अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अपने समाजवादी-दर्शन को रूप देते रहे। उनके लेखों में समाजवाद का चिंतन पक्ष तथा सर्जनात्मक कृतियों में भारतीय समाजवाद तथा भारतीय समाजवादियों व कम्युनिस्टों के चरित्र का उद्‌घाटन

किया गया है। प्रेमचंद ने समाजवाद की परिभाषा में कहा है कि समाजवाद यही तो कहलाता है कि मनुष्य मात्र को समान भाव से शिक्षित होने और काम करने का अवसर दिया जाए, सभी काम बराबर समझें जाए, सभी सम्मान रूप से प्रेम और शांति के साथ रहकर जीवन-व्यतीत करें। इससे ऊंचा और पवित्र मानव संस्कृति का उद्देश्य और क्या हो सकता है।[27] उन्होंने एक अन्य स्थान पर लिखा कि आज राज्य का आधार स्तंभ है समता। उसका अर्थ है, प्रजातंत्र के लिए समान अवसर, समान सुविधा और समान सत्ता की व्यवस्था करना, और जो राज्य इस सत्ता को स्वीकार नहीं करता, वह बहुत दिन तक टिक नहीं सकता।[28] प्रेमचंद मानते हैं कि बीसवीं सदी सोशलिज्म की सदी है जो संभव है आगे चलकर कम्युनिज्म का रूप धारण कर ले। भारत जैसे देश में जहां आबादी का बड़ा हिस्सा गरीबों का है, जिनमें पढ़े-अनपढ़े सब तरह के मजूर हैं सोशलिज्म के सिवा उनका आदर्श हो ही क्या सकता है।[29] इस दृष्टि से विवेकानंद, गांधी और प्रेमचंद एक ही लक्ष्य के पथिक बन जाते हैं।

प्रेमचंद के समाजवादी-दर्शन में हमें वे मुसोलिनी, हिटलर, स्टालिन जैसे तानाशाहों का समर्थन करते हुए मिलते हैं। वे कहते हैं कि मुसोलिनी, हिटलर तथा स्टालिन राष्ट्र के सच्चे सेवक हैं औ यही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। राष्ट्र उनकी संपत्ति नहीं है और न राष्ट्र का धन उनके भोग के लिए है। इनकी डिक्टेटरशिप चंद रोज है, या स्थायी, पर इसमें संदेह नहीं कि इस वक्त वे डिमाक्रेसी से कहीं उपयोगी हो रही है।[30] वे इसे 'समाजवाद का आतंक' भी कहते हैं, तथा यह मानने लगते हैं कि यह डिक्टेटरशिप का युग है।[31] एक स्थान पर प्रेमचंद मानते हैं कि सोवियत का आदर्श कम्युनिस्ट पार्टी या डिक्टेटरशिप नहीं है। यह अस्थायी है। उसका आदर्श एक ऐसा साम्यवाद है जिसमें आदमी स्वार्थ से नहीं, केवल समाज के हित के लिए बगैर किसी दबाव के जीएगा और मरेगा, जब सभी मनुष्य होंगे, ऊंच-नीच या शासक और शासित का भेद-भाव मिट जाएगा।[32]

प्रेमचंद का डिक्टेटरशिप का यह समर्थन स्थायी न रह सका। मुसोलिनी, हिटलर तथा स्टालिन शासन-तंत्र में वे जो प्रजा का हित देख रहे थे, वे उनके जीवन-काल में ही धाराशायी हो गया। यदि वे जीवित रहते और दूसरा विश्व-युद्ध देखते तो उन्हें अवश्य ही वे मानव के भयंकर शत्रु के रूप में पहचानते। 'हिटलर की तानाशाही' शीर्षक से तो उन्होंने 'हंस' के मई, 1934 के अंक में संपादकीय लिखा और उसके अत्याचारों पर टिप्पणी की। रूस के स्टालिन के बारे में उन्होंने 'हंस' के मई 1933 के अंक में लिखा कि रूस का साम्राज्यवाद से कोई संबंध नहीं[33] लेकिन अपने इस मत का स्वयं खंडन करते हुए 22 मई, 1933 को अर्थात् उसी महीने 'जागरण' में 'भावी महासमर' संपादकीय में उन्होंने लिखा कि साम्राज्य-विरोधी रूस भी चाहता है कि जमाना सोवियत हो जाए। उसे, विचार का साम्राज्य चाहिए। इसी प्रकार वे लेनिन और स्टालिन के रूस के बारे में समझते थे कि वहां पूंजीवाद समाप्त हो गया है, परंतु 23 अप्रैल, 1934 की उनकी टिप्पणी में यह स्वीकार किया कि वे भ्रम में थे। उन्होंने लिखा- 'हम समझ रहे थे कि कम-से-कम एक ऐसा देश है, जिसने पूंजीवाद पर विजय कायम कर दी है, लेकिन मालूम होता है कि हम भ्रम में थे।'[34] अपने सन् 1921 में लिखे लेख- 'स्वराज्य के फायदे' में

उन्होंने आशा व्यक्त की थी कि बोल्शेविज्म का कोई सुधरा रूप आगे बचा रहेगा, लेकिन वे अपने जीवन के अंतिम वर्षों में देख रहे थे कि रूस का स्टालिन और उसकी कम्युनिस्ट व्यवस्था हिटलर की तरह ही व्यवहार कर रही थी। वे जिस 'फासिज्म और नाजिज्म' को समाजवाद के रूप समझ रहे थे, वे उनके समय में ही अपना असली चेहरा दिखाने लगे थे, और इस तरह उनके भ्रम टूट गए थे। वे समझ रहे थे कि 'कम्युनिज्म और फासिज्म जिस रूप में विकसित हो रहा है, उससे वे प्रजा-हित के लिए अपने उद्देश्य से भटक जाएंगे और तब उनकी सत्ता भी समाप्त होने की भविष्यवाणी करते हुए 'जागरण', 21 अगस्त,1933 को लिखा, 'कम्युनिज्म और फासिज्म का आधिपत्य इसलिए नहीं है कि उनके पीछे सैनिक शक्ति है, बल्कि इसलिए कि वे प्रजा-हित को ही अपना आधार बनाए हुए हैं। ज्यों ही वे इस आदर्श से गिर जाएंगे, जनता फिर चंचल हो जाएगी और फिर किसी दूसरी तरह इस समस्या को हल करने की चेष्टा करेगी।'[35] बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में रूस में कम्युनिस्ट शासन के पतन की घटना को देखते हुए उनकी भविष्य-दृष्टि की प्रशंसा करनी पड़ेगी। वे देख रहे थे कि राजनीति के नए सिद्धांतों पर चलकर विश्व में नए राष्ट्र बन रहे थे तथा वे बलवान और संगठित भी हो रहे थे, किंतु उन्हें संदेह था कि इससे संसार में सुख और शांति में वृद्धि होगी।[36]

प्रेमचंद के समाजवाद-दर्शन पर विवेकानंद और गांधी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे एक स्थान पर तो विवेकानंद की ही शब्दावली में समाजवाद का संबंध वेदांत के एकात्मवाद से जोड़ते हुए लिखते हैं, 'यहां तो वेदांत के एकात्मवाद ने पहले ही समाजवाद के लिए मैदान साफ कर दिया है। हमें उस एकात्मवाद को केवल व्यवहार में लाना है। जब सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा का निवास है, तो छोटे-बड़े अमीर-गरीब का भेद क्यों?'[37] प्रेमचंद विवेकानंद और गांधी के इस विचार से सहमत हैं कि यूरोप के समाजवाद के स्थान पर भारतीय समाजवाद हो, जिस पर 'भारतीयता' की छाप हो, जिसमें स्वार्थ और लूट प्रधान न हो, नीति और धर्म प्रधान हो।[38] विवेकानंद और गांधी का दर्शन भी 'नीति और धर्म' पर ही स्थित है। इसी कारण प्रेमचंद अपने समाजवादी दर्शन में मार्क्स और लेनिन की हिंसक क्रांति, वर्ग-संघर्ष, भूमि पर राज्य का अधिकार, मजदूरों की प्रमुखता और हड़ताल आदि को स्वीकार नहीं करते। प्रेमचंद 'हंस' के जून, 1931 में लिखते हैं- 'महात्मा गांधी क्रांति नहीं चाहते और न क्रांति से आज तक किसी जाति का उद्धार हुआ है। महात्मा गांधी ने हमें जो मार्ग बतलाया है उससे क्रांति की भीषणता के बिना ही क्रांति के लाभ प्राप्त हो सकते हैं।'[39] वे सर्वत्र हिंसक क्रांति का विरोध करते हैं और 'द्वेषमय हिंसा' करना तथा उसकी सराहना करना दोनों को 'धर्म-विरुद्ध' मानते हैं।[40] वे संघर्ष को पशुता का तथा सहयोग को मानवता का लक्षण मानते हैं[41] और इसलिए वे वर्ग-संघर्ष को स्वीकार नहीं करते। प्रेमचंद ने इंद्रनाथ मदान को 26 दिसंबर, 1934 को पत्र लिखा था कि मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले। विकास को छोड़कर और किस जरिए से हम इस मंजिल पर पहुंच सकते हैं। लोगों का चरित्र ही निर्णायक तत्व है। कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती जब तक कि हम व्यक्तिशः उन्नत न हों। कहना संदेहास्पद है कि क्रांति से हम कहां पहुंचेंगे। यह हो सकता है कि हम उसके जरिए

और भी बुरी डिक्टेटरशिप पर पहुंचें जिसमें रंग मात्र व्यक्ति-स्वाधीनता न हो। मैं 'रंग-ढंग सब बदल देना चाहता हूं पर ध्वंस नहीं चाहता।'[42] इन विचारों के मूल में महात्मा गांधी की अहिंसा, सहयोग, हृदय-परिवर्तन, ट्रस्टीशिप, व्यक्ति-स्वातंत्र्य आदि का सीधा प्रभाव है, बल्कि यह कहना उचित होगा कि गांधी के इन विचारों के कारण वे मार्क्सवाद का भारतीयकरण कर पाए। प्रेमचंद इस प्रभाव के कारण महात्मा गांधी को सोशलिज्म और कम्युनिज्म से भी आगे बढ़ा हुआ मानते थे, क्योंकि वे उनके विचार में 'अपरिग्रहवादी' थे।[43] गांधी स्वयं को कम्युनिस्ट कहते थे और प्रेमचंद ने भी एक बार स्वयं को कम्युनिस्ट कहा था, परंतु गांधी कार्ल मार्क्स के अर्थ में स्वयं को कम्युनिस्ट नहीं मानते थे, वैसे ही प्रेमचंद भी शास्त्रीय अर्थ में कम्युनिस्ट या समाजवादी नहीं थे। प्रेमचंद ने एक इंटरव्यू में कहा था, 'मैं कम्युनिस्ट हूं, मगर मेरा कम्युनिस्ट बिलकुल भिन्न प्रकार का है।

XXX हमारे समाज में जमींदार, साहूकार, यह किसान का शोषण करने वाला समाज बिलकुल रहेगा ही नहीं।'[44] प्रेमचंद इस इंटरव्यू में रूसी, इंग्लैंड तथा गांधी के कम्युनिज्म को स्वीकार करके अपने कम्युनिज्म को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद मार्क्स की नकल नहीं, करते, लेकिन शोषण से मुक्ति की उनकी नीति को स्वीकार करते हैं, परंतु गांधी से अनेक विचारों को लेते हैं और अपना समाजवाद निर्मित आदर्श है। वे जवाहरलाल नेहरू के भी समर्थक हैं, क्योंकि गांधी विचार और आचरण दोनों में समाजवादी हैं, जबकि प्रेमचंद के अनुसार नेहरू विचार से सोशलिस्ट हैं, व्यवहार से नहीं।[45]

प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में समाजवाद और साम्यवाद का एक दूसरा रूप मिलता है। उन्होंने अपने लेखों, इंटरव्यूओं आदि में समाजवाद का अपना सैद्धांतिक रूप प्रस्तुत किया और उस युग के समाजवादी-दर्शन के गुणवगुणों के विवेचन के उपरांत अपना भारतीय समाजवाद का रूप तैयार किया लेकिन सर्जनात्मक साहित्य में उन्हें जीवन में आए समाजवादी सत्यों का उद्‌घाटन करना था। वे देख रहे थे कि जवाहरलाल नेहरू जैसे सोशलिस्ट कांग्रेसी विचार से समाजवादी थे, व्यवहार में नहीं और महात्मा गांधी भी बार-बार कहते हैं कि बलपूर्वक सभी को समान बनाने से अच्छा यह है कि हम स्वयं समानता के सिद्धांतों का अपने आचरण में प्रयोग करें। हम अपनी संपत्ति समाज को दान कर दें। भारत के साम्यवादी स्वयं को साम्यवादी कहते हैं पर साम्यवादी जीवन व्यतीत करते नहीं दिखाई देते, क्योंकि वहां एक-एक के आचरण की कोई योजना नहीं है।[46] प्रेमचंद की दृष्टि भी यही है। वे देखना चाहते हैं तथा पाठकों को दिखाना चाहते हैं कि जो लोग भारत में समाजवाद तथा साम्यवाद लाना चाहते हैं, वे स्वयं समाजवाद को कैसे जी रहे थे। स्वाभाविक था, इसके लिए चरित्रों का निर्माण करना था और यह उपन्यास, कहानी और नाटक में ही संभव था। सन् 1917 में बोल्शेविक क्रांति और सन् 1919 में 'बोल्शेविक' उसूलों के कायल होने का उल्लेख करने के बाद प्रेमचंद सन् 1920 से 1936 तक की कहानियों और उपन्यासों में भारतीय कम्युनिस्टों के चिंतन और व्यवहार का बड़ी यथार्थता के साथ चित्रण करते रहे। उनकी ऐसी कहानियों में- 'पशु से मनुष्य' (प्रभा, फरवरी, 1920), 'ब्रह्म का स्वांग' (प्रभा, मई, 1920), 'हार की जीत' (मर्यादा, मई 1922),

'दो सखियां' (माधुरी, फरवरी-मई, 1928), 'कैदी' (हंस, जुलाई, 1933), तथा 'पंडित मोटेराम की डायरी' (जागरण, जुलाई, 1934) आदि उल्लेखनीय हैं तथा उपन्यासों में, जिनमें समाजवाद और भारतीय साम्यवादियों का चित्रण हुआ है, उनमें 'प्रेमाश्रम' (जनवरी, 1922), 'रंगभूमि' (फरवरी, 1925) तथा 'गोदान' (जून, 1936) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रेमचंद ने सन् 1923 में 'संग्राम' नाटक लिखा जिसमें समाजवादी चिंतन का उल्लेख है तथा इसी वर्ष टाल्स्टाय की कहानियों का अनुवाद 'टाल्स्टाय की कहानियां, भी प्रकाशित हुआ।

प्रेमचंद के सर्जनात्मक साहित्य में महात्मा गांधी और मार्क्स के दर्शन का प्रभाव लगभग एक ही समय पर पड़ता है। सन् 1919 में गांधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया था और इसी वर्ष प्रेमचंद ने बोल्शेविक उसूलों के कायल होने की बात लिखी थी। इसके तुरंत बाद उनकी कहानियों और उपन्यासों में इन दोनों का ही प्रभाव आना आरंभ हो गया, परंतु इन प्रभावों में जहां महात्मा गांधी के चिंतन-बिंदुओं का प्रभाव निरंतर बढ़ता जाता है, और समाधान के लिए भी वे गांधी की ओर जाते हैं, वहां वे मार्क्सवाद से शोषण-मुक्ति और किसान-मजदूर के शासन का विचार तो लेते हैं लेकिन समाधान और किसी अनुकूल निर्णय के लिए वे मार्क्स या लेनिन की और नहीं देखते। यही कारण है कि उनके संपूर्ण साहित्य में एक भी ऐसा पात्र नहीं है जो मार्क्सवादी दर्शन का प्रतिरूप बन सके या समग्रता में उसे प्रस्तुत कर सके। इस दृष्टि से 'रंगभूमि' (1925) का नायक सूरदास ऐसा पात्र है जो गांधी-दर्शन का प्रतिरूप है और उनके अहिंसा सिद्धांत, धर्म एवं न्याय की लड़ाई, विदेशी सत्ता से असहयोग औद्योगीकरण का विरोध एवं कृषि जीवन का समर्थ, विचार और आचरण में समानता आदि को जीवन में उतारता है। यह एक प्रकार से मार्क्सवाद पर गांधीवाद की विजय का ही प्रतीक है।

प्रेमचंद के सर्जनात्मक साहित्य में, यदि समाजवाद को जन-सेवा का आधार माना जाए, तो दो प्रकार के चरित्र मिलते हैं। एक जो समाजवाद एवं साम्यवाद के विचारों के बिना भी जनता का निःस्वार्थ भाव से सेवा करते हैं, तथा दूसरे वे, जो समाजवाद और साम्यवाद के विचारों के समर्थक हैं लेकिन आचरण वे सामंतवाद और पूंजीवाद के अनुयायी हैं। पहले प्रकार के पात्रों में 'पशु से मनुष्य' (फरवरी, 1920) कहानी का प्रेमशंकर, 'ब्रह्म का स्वांग' (मई, 1920) कहानी की वृन्दा, 'प्रेमाश्रम' (1922) उपन्यास का प्रेमशंकर तथा 'रंगभूमि' (1925) उपन्यास का नायक सूरदास उल्लेखनीय है जो समाजवाद के नारे के बिना भी मानवीयता का नया आदर्श प्रस्तुत करते हैं। प्रेमशंकर उनका ऐसा पात्र है जो 'पशु से मनुष्य' तथा 'प्रेमाश्रम' में समान रूप से मिलता है तथा उसकी चरित्र-रचना भी लगभग समान है। दोनों रचनाओं का प्रेमशंकर अमेरिका से कृषि-विज्ञान का अध्ययन करके लौटता है। उनका कोई पात्र रूस जाकर लौटकर नहीं आता। प्रेमशंकर कृषि और बागवानी को आजीविका का साधन बनाते हैं। कुछ लोग उनके साथ काम करते हैं, पर कोई मालिक नहीं, मजदूर नहीं। बस वे मुखिया हैं और अन्य साथियों की तरह ही रहते हैं। वे इस 'सहकारिता' से छोटे-बड़े तथा मोटे-पतले का भेद मिटाकर वर्गों में होने वाले संग्राम को मिटाना चाहते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि 'सहकारिता' ही इस भीषण संग्राम के संकट से मुक्त कर सकती है, पर वे स्वयं को 'सोशलिस्ट' नहीं मानते। प्रेमशंकर

कहते हैं, 'मैं सोशलिस्ट' या 'डिमोक्रेट' कुछ नहीं हूं। मैं केवल न्याय और धर्म का दीन सेवक हूं। मैं निःस्वार्थ सेवा को विद्या से श्रेष्ठ मानता हूं।'[47] इस प्रकार बोल्शेविक क्रांति के बाद जन्में पात्र प्रेमशंकर भी मार्क्स से प्रेरणा नहीं लेता, बल्कि गांधी के 'न्याय और धर्म' के सिद्धांत से समतामूलक समाज की रचना में प्रवृत्त होता है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का पात्र प्रेमशंकर लेखक के समाजवादी-दर्शन को विकसित करता है और उसे भारतीय रूप देता है। इस उपन्यास में जो खलनायक ज्ञानशंकर है वह साम्यवाद की रूपरेखा बताता है, परंतु प्रेमशंकर 'साम्यवाद' की चर्चा और प्रेरणा के बिना[48] ही 'रामराज'[49] की स्थापना करता है। प्रेमचंद के अनुसार ज्ञानशंकर अपनी असमर्थता के कारण, 'साम्यवादी' बन जाता है, लेकिन उसका नशा जल्दी दूर हो जाता है। ज्ञानशंकर आगे चलकर साम्यवाद की कलई खोलते हुए कहता है, 'सिद्धांत रूप से हम चाहे इसकी कितनी ही प्रशंसा करें पर उसका व्यवहार में लाना असंभव है। मैं यूरोप के कितने ही साम्यवादियों को जानता हूं जो अमीरों की भांति रहते हैं मोटरों पर सैर करते हैं और साल में छह महीने इटली या फ्रांस में विहार किया करते हैं।'[50] यह साम्यवादियों का वह रूप है जो ज्ञानशंकर देख रहे थे, लेकिन अपने भाई प्रेमशंकर का व्यावहारिक साम्यवाद इसलिए संभव हो पाया क्योंकि वे रूस से नहीं भारत के जीवन-मूल्यों और यहां की जमीन की आवश्यकतानुसार उसकी रचना करते हैं। प्रेमशंकर 'संतोषमय, निष्कर्ष और निःस्पृह जीवन' जीते हैं जिससे 'शांति और जो सहृदयता उत्पन्न होती है। वे 'प्रेमाश्रम' की स्थापना करते हैं जो संतोष और सुविचार की तपोभूमि थी। यहां न ईर्ष्या का संताप था, न लोभ का उत्साह, न तृष्णा का प्रकोप। यहां धन की पूजा न होती थी और न दीनता पैरों तले कुचली जाती थी। xxx यहां सब एक-दूसरे के सेवक, एक-दूसरे के मित्र और हितैषी थे।[51] यही प्रेमशंकर का 'रामराज' है और प्रेमचंद का अंग्रेजी दासता का प्रस्तुत विकल्प। तुलसीदास ने भी मुगलों की दासता के विकल्प के रूप में 'राम-राज्य' का प्रारूप प्रस्तुत किया था। प्रेमचंद का यह 'रामराज' रूस से नहीं भारत की आत्मा से निकलता है। 'प्रेमाश्रम' का जमींदार मायाशंकर इस 'रामराज' को और विकसित करता है। वह अपनी प्रजा को स्वतंत्र कर देता है और किसानों को उनकी भूमि का स्वामी बना देता है एवं शोषण के सभी दरवाजे बंद कर देता है। यह गांधी के हृदय-परिवर्तन और ट्रस्टीशिप का प्रभाव है, परंतु प्रेमचंद इसे अपने समाजवाद का अंग बना लेते हैं। मायाशंकर एक बड़ा कार्य और करता है। वह रूसी कम्युनिज्म के इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता कि भूमि राज्य की संपत्ति है। वह इस धारणा का प्रतिवाद करते हुए कहता है- 'भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार उसका उपयोग करता है।'[52] इस प्रकार प्रेमचंद अपने प्रेमशंकर और मायाशंकर पात्र से भारतीय समाजवाद का प्रारूप निर्मित करते हैं। यह भारतीय मूल्यों तथा भारतीय जीवन-दृष्टि पर आधारित है, न कि रूसी क्रांति पर। 'प्रेमाश्रम' के पात्र बलराज की इस उक्ति से कि 'रूस' और 'बलगारी' में काश्तकारों का राज है, यह उपन्यास रूसी क्रांति या मार्क्सवादी चेतना का उपन्यास नहीं बन जाता। हमारे मार्क्सवादी आलोचक यही गलती करते हैं कि एक उल्लेख मात्र को उपन्यास का प्रतिपाद्य बना देते हैं और उसके वास्तविक प्रतिपाद्य को, उसकी

आत्मा और मूल संवेदना को ओझल कर देते हैं। इस आलोचनात्मक छल से प्रेमचंद मार्क्सवादी लेखक नहीं बन सकते।[53]

प्रेमचंद की एक कहानी है 'ब्रह्म का स्वांग'। इसमें एक नारी पात्र है वृंदा और उसका पति जिसका नाम 'पुरुष' है। वृंदा 'स्त्री' के नाम से कहानी में आती है। यह कहानी विवेकानंद के अद्वैतवाद और प्रेमचंद के वेदांतीय एकात्मवाद पर आधारित है। प्रेमचंद विवेकानंद के शब्दों में कहते हैं कि पश्चिम के समाजवाद की प्रगति देखकर ही सोशल लीग ने यह नतीजा निकाला है कि समाजवाद विध्वंसात्मक है, लेकिन क्या यह जरूरी है कि यूरोप के समाजवाद ने जिस नीति को अपनाया, उसे भारत भी अपनाए। यूरोप में जैसी परिस्थिति थी वैसी भारत में नहीं है। यहां तो वेदांत के एकात्मवाद ने पहले ही से समाजवाद के लिए मैदान साफ कर दिया है। हमें उस एकात्मवाद को केवल व्यवहार में लाना है। जब सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा का निवास है, तो छोटे-बड़े, अमीर-गरीब का भेद क्यों?[54] प्रेमचंद इसी अद्वैतवाद को 'ब्रह्म का स्वांग' कहानी की नायिका वृंदा के माध्यम से चित्रित करते हैं वह इस एकात्मवाद को व्यवहार में उतारती है। उसका पति उसे समझाता है कि हम सब एक ही पिता की संतान हैं। हम सब एक हैं। ऊंच-नीच का भेद करना अन्याय है। वृंदा इस अमृत-वाणी को सुनकर इसे व्यावहारिक रूप देती है और धोबिन के सिर में तेल लगाकर तथा महरी के साथ बैठकर बर्तन धुलवाती है। वह समझती है कि इनकी आत्मा में भी उसी के समान ईश्वर की ज्योति है। उसका पति इससे दुःखी होता है कि उसकी पत्नी साम्य के सिद्धांत को व्यवहार में लाती है। वह मानती है कि हम साम्यवाद की प्रशंसा करेंगे, उसके पक्ष में तर्क देंगे परंतु उसे व्यवहार में लाना असंभव है। वृंदा इसके बाद भी वैसा ही व्यवहार करती है। वह नीच स्त्रियों को भद्र स्त्रियों के साथ बिठा देती है और कंगले-भिखारियों को घर की सारी पूरी-मिठाइयां बांट देती है। पति उसकी भर्त्सना करता है और कहता है कि ईश्वर यदि चाहता तो प्राणी मात्र को समान सुख देता और ऊंच-नीच की भेद रहित सामाजिक व्यवस्था बनाता। यह व्यवस्था उसकी आज्ञा से ही चल रही है, अतः ये बेसिर-पैर की बातें, अर्थात् एकात्मवाद की मूर्खता बंद करो। वृंदा सोचती है, हम स्वार्थ के लिए ब्रह्म भी स्वांग बनाते हैं, लेकिन वह निराश नहीं होती। उसे विश्वास है, शीघ्र ही यह अंधकार नष्ट होगा और ब्रह्म ज्योति चमकेगी।[55] इस कहानी में प्रेमचंद वृंदा के साथ है। वह जिस रूप में अद्वैतवाद को व्यावहारिक बनाती है, वे उसका समर्थन करते हैं, लेकिन वे उसके पति के साम्यवादी छल को, सिद्धांत और व्यवहार के अंतर को बड़े व्यंग्यात्मक रूप में अभिव्यक्ति करते हैं।

प्रेमचंद प्रेमशंकर और वृंदा जैसे पात्रों के साथ हैं जो मार्क्सवाद को पढ़े बिना उसका पालन करते हैं। इस प्रकार के पात्र प्रायः अशिक्षित, निर्धन और ग्रामीण परिवेश वाले हैं। प्रेमशंकर इसके अपवाद हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास भिक्षुक है, अंधा है पर जनता का सेवक है, त्यागी है और सब का कल्याण चाहता है। वह अहिंसा का अनुयायी है और औद्योगीकरण का विरोधी है। वह कर्मशील है और गीता के कर्मयोग को जीवन में उतारता है। प्रेमचंद मानते हैं कि भगवान कृष्ण का कर्मयोग स्वार्थ-मुक्त करके परमार्थ की ओर ले जाता है तथा भातृ-भाव

की सृष्टि करता है।[56] 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर भी कर्मवादी है, लेकिन यह कर्मवाद रूस से नहीं आया है। यह दुःखद स्थिति है कि ऐसे पात्रों की संख्या अधिक नहीं है, संभवतः इसलिए भी कि प्रेमशंकर, वृंदा, सूरदास जैसे पात्र समाज में कम ही होते हैं और साथ ही इसलिए भी कि हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट उन जैसा जीवन जीना नहीं चाहते। इसी कारण 'प्रेमाश्रम' का ज्ञानशंकर साम्यवादियों पर व्यंग्य करता है और वृंदा का पति उसे उसके वेदांतीय एकत्व को व्यवहार में लाने पर फटकार लगाता है। 'रंगभूमि' का प्रमुख सेवक भी इसी प्रकार का साम्यवादी है और राजा का बेटा विनय भी। प्रभु सेवक के चरित्र के बारे में तथा उनके साम्यवादी स्वरूप के बारे में प्रेमचंद 'रंगभूमि' में लिखते हैं, 'प्रभु सेवक और कितने ही विलास-भोगियों की भांति सिद्धांत रूप से जनवाद के कायल थे। जिन परिस्थितियों में उनका लालन-पालन हुआ था, जिन संस्कारों से उनका मानसिक और आत्मिक विकास हुआ था, उनसे मुक्त हो जाने के लिए जिस नैतिक साहस की उद्दंडता की जरूरत है, उससे वह रहित थे। वह विचार-क्षेत्र में त्याग के भावों को स्थान देकर प्रसन्न होते थे और उस पर गर्व करते थे। उन्हें शायद कभी सूझा ही न था कि इन भावों को व्यवहार रूप में भी लाया जा सकता है। वह इतने संयमशील न थे कि अपनी विलासिता को उन भावों पर बलिदान कर देते। साम्यवाद उनके लिए मनोरंजन का एक विषय था और बस।'[57] इसी प्रकार 'रंगभूमि' का विनय भी राजकुमार होते हुए भी साम्यवादी है लेकिन वह अपने स्वार्थ को छोड़ नहीं पाता। प्रेमचंद उसके बारे में लिखते हैं, 'गाड़ी में बैठते ही उनका साम्यवाद स्वार्थ का रूप धारण कर लेता है।'[58] इन भद्र समाज के पात्रों का सामंतीय संस्कार साम्यवादी होने पर भी समाप्त नहीं होता। प्रेमचंद इस यथार्थता से परिचित हैं। विनय अपनी गोली से आत्म-हत्या करता है, लेकिन सूरदास पुलिस की गोली से मरता है और शहीद हो जाता है। विनय अपने सामंतीय संस्कारों के कारण सूरदास जैसी गौरवपूर्ण मृत्यु से वंचित रहता है। जनसेवक और साम्यवादी में यही अंतर है।

प्रेमचंद की कुछ अन्य कहानियों और उपन्यास में भी ऐसे ही छद्म साम्यवादी मिलते हैं। वे अपनी व्यंग्य की धारा से इनके दोहरे चरित्र को उद्घाटित करते चलते हैं। 'हार की जीत (मई, 1922) कहानी में प्रो. हरिदास भाटिया साम्यवादी हैं और साम्यवाद पर एक पुस्तक लिख रहे हैं। वे 'सिद्धांतों के भक्त' थे लेकिन उन्हें व्यवहार में लाना उचित न समझते थे। इसी कारण वे 'धन की अवहेलना' नहीं कर सकते थे। वे अपनी पुत्री लज्जावती के लिए धनी और तालुकेदार शारदाचरण को वर के रूप में चुनते हैं, परंतु लज्जावती उससे कहती है कि कॉलेज की शीतल छाया में पला हुआ तुम्हारा साम्यवाद बहुत दिनों तक सांसारिक जीवन की लू और लपट को न सह सकेगा।[59] 'दो सखियां' (फरवरी-मई, 1928) कहानी विनोद भी साम्यवादी है। उसे राजाओं से चिढ़ है। वह मानता है कि समाज की सारी व्यवस्था, सारा संगठन संपत्ति-रक्षा के आधार पर हुआ है।[60] यह ऐसा साम्यवादी है जो विवाह को आवश्यक मानता है और स्त्री-पुरुष दोनों को स्वाधीन बनाना चाहता है। वह उन्मुक्त काम का उपासक है, परंतु जब वह अपनी पत्नी को पर पुरुष के साथ देखता है तो उसका सारा साम्यवाद बह जाता है और आत्म-हत्या की चेष्टा करता है। इस कहानी का अंत साम्यवादी सिद्धांतों से न होकर

आत्म-समर्पण, सेवा-भाव, सहृदयता और आत्मीयता जैसे भारतीय जीवन-मूल्यों से होता है। 'पंडित मोटेराम की डायरी' (जुलाई, 1934) कहानी में भी मोटेराम के द्वारा साम्यवाद का मजाक उड़ाया गया है, जब मोटेराम जैसे ब्राह्मण प्रेमचंद के व्यंग्य-बाणों से बच नहीं पाए हैं। 'कैदी' (जुलाई, 1933) कहानी तो रूसी शासक जार के विरुद्ध लेनिन और उसके कामरेड़ों की हिंसक क्रांति पर आधारित है, पर यहां भी प्रेमचंद रूसी कम्युनिस्टों के स्वार्थी, धोखेबाज तथा क्रांति के झूठे संकल्पों का सत्य उद्‌घाटित करते हैं तथा यह भी निष्कर्ष देते हैं कि हिंसा से नहीं मनुष्य अहिंसा, प्रेम और समर्पण से ही बदला जा सकता है। प्रेमचंद हिंदुस्तानी ही नहीं रूसी कम्युनिस्टों को भी पहचान रहे थे। वे तो निजी सुख और विलास के लिए साथी कामरेड के साथ गद्दारी कर रहे थे और उसके विरुद्ध अदालत में झूठी गवाही दे रहे थे। ऐसे में हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट अपने रूसी कम्युनिस्ट गुरुओं से भिन्न कैसे हो सकते थे?

यहां 'गोदान' में प्रस्तुत हिंदुस्तानी कम्युनिस्टों के चरित्र का विवेचन भी आवश्यक है, क्योंकि हिंदुस्तान के कम्युनिस्ट आलोचक मानते हैं कि 'गोदान' एक मार्क्सवादी कृति है। रूस प्रगति प्रकाशन मास्को में कार्य करने वाले मदनलाल 'मधु' ने लिखा है कि 'गोदान' के रचना के समय प्रेमचंद ने 'वर्ग-संघर्ष' के सत्य को स्वीकार कर लिया था।[61] डॉ. शिवकुमार मिश्र का मत है कि 1931 के बाद प्रेमचंद मार्क्स अथवा समाजवाद के नए यथार्थ, विशेष बुद्धिवादिता और मानसिकता से जुड़ गए थे। इस कारण 'गोदान' में क्रांतिकारी पक्षधरता' तथा 'यथार्थवादी कला का उत्कर्ष' मिलता है। उन्हें अब गांधीवाद नहीं मार्क्स या समाजवाद अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है।[62] डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे अनेक मार्क्सवादी प्रतीत होता है।[63] डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे अनेक मार्क्सवादी आलोचक 'गोदान' को समग्रता में पढ़े बिना ही ऐसे निष्कर्ष निकाल लेते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने अपने एक भाषण में कहा था कि कहानीकार (रचनाकार) का विश्वास मत करो, कहानी (रचना) का विश्वास करो[64] लेकिन सत्य इसके विपरीत है। ये मार्क्सवादी विद्वान कई बार प्रेमचंद पर विश्वास करते हैं और कई बार उपन्यास या कहानी पर और वह भी इस अंश पर जिसे ये विद्वान मार्क्सवाद की स्थापना के लिए उपयुक्त समझते हैं। इनके समीक्षा शास्त्र की एक विशेषता यह भी है कि ये समीक्षक रचना में विद्यमान मार्क्सवाद के विरोधी वक्तव्यों और प्रसंगों को नहीं देखते और चाहते हैं कि अमार्क्सवादी समीक्षक भी उन्हें नहीं देखें या उनका उल्लेख करें। 'गोदान' का प्रमाण ही यहां लेते हैं। 'गोदान' अधिकांश मार्क्सवादी समीक्षकों की दृष्टि में मार्क्सवादी रचना है, लेकिन इसमें मार्क्सवाद और हिंदुस्तानी कम्युनिस्टों की जो कटु आलोचना है, उसे ये मार्क्सवादी समीक्षक नहीं देखते। 'गोदान' में प्रो. मेहता एक ऐसे पात्र हैं जिनके विचारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। डॉ. रामविलास शर्मा (विख्यात मार्क्सवादी समीक्षक) ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' में लिखा है कि प्रो. मेहता प्रेमचंद के विचारों के प्रतीक हैं तथा होरी उनकी परिश्रम करने की दृढ़ इच्छा-शक्ति का। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि यदि प्रो. मेहता और होरी को जोड़ दिया जाए तो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत कुछ प्रेमचंद से मिलता-जुलता होगा।[65] अब यदि 'गोदान' में प्रो. मेहता साम्यवाद तथा हिंदुस्तानी कम्युनिस्टों की आलोचना करते हैं तथा उन पर व्यंग्य करते

हैं तब भी ये कम्युनिस्ट समीक्षक उसका उल्लेख भी नहीं करते। यहां तक कि डॉ. रामविलास शर्मा भी प्रो. शर्मा को प्रेमचंद की विचार-संतान मानने पर भी प्रो. मेहता के इस पक्ष को पाठकों के सामने नहीं लाते। मार्क्सवादी समीक्षक प्रो. प्रकाशचंद्र गुप्त भी यही मानते हैं कि मेहता प्रेमचंद के विचारों के प्रतीक हैं।[66]

प्रो. मेहता प्रकृति के पुजारी हैं। वर्तमान उनके लिए सब-कुछ है। ईश्वर जीवन, क्रीड़ा, चहक और प्रेम में है। मातृत्व महान गौरव का पद है। नारी-हृदय धरती के समान है, धैर्यवान, शांतिपूर्ण और सहिष्णु। नारी वफा और त्याग की मूर्ति है। मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं और नारी ने इस आदर्श को प्राप्त कर लिया है। संसार में सबसे बड़ा अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं। सच्चा आनंद, सच्ची शांति केवल सेवा-व्रत में है। सेवा ही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्‌गम है। धन-संग्रह से उन्हें प्रेम नहीं है। मेहता स्वयं को 'पक्का आदर्शवादी' कहता है, किंतु दूसरे स्थान पर वह स्वयं को 'आइडियालिस्ट' और 'मेटीरियलिस्ट' दोनों ही बताता है। वह 'समता' को अप्राकृतिक मानता है और ओंकारनाथ को उत्तर देते हुए कहता है कि बुद्ध, प्लेटो और ईसा सभी समता के प्रवर्तक थे, पर समता स्थायी नहीं बन सकी।[67] प्रो. मेहता अपने इन्हीं विचारों के कारण साम्यवाद के समता-सिद्धांत पर सीधी चोट करते हुए कहते हैं, 'धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं, लेकिन बुद्धि को, चरित्र को और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता।'[68] वह मनुष्य जाति की इस विभिन्नता को सिद्धांत का रूप देते हुए यहां तक कहता है कि मैं इस सिद्धांत का समर्थक हूं कि संसार में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। इसे मिटाने की चेष्टा करना मानव-जाति के सर्वनाश का कारण होगा।[69] प्रो. मेहता यह तर्क इसलिए देता है क्योंकि वह समता को अप्राकृतिक मानता है। प्रकृति में जो कुछ है वह स्थायी है। प्रो. मेहता हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट और रूसी कम्युनिज्म पर भी गहरी चोट करता है। वह अपने समय के कम्युनिस्टों को देखता है और पाता है कि उनके विचारों और आचरण में घोर अंतर है। वह रायसाहब की बैठक में होने वाले वाद-विवाद में कहता है, 'मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है तो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी मगर जीवन रईसों का-सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से -भरा हुआ।'[70] प्रो. मेहता उससे भी कठोर शब्दों में हिंदुस्तानी कम्युनिस्टों पर व्यंग्य करते हुए अनेक नकली साम्यवादी चेहरे को उजागर करते हुए कहता है, 'मैं तो केवल इतना जानता हूं, हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं। हैं तो व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिंदगी का विरोधी हूं।'[71] वह रूस के साम्यवाद पर भी चोट करता है और इसे अस्वीकार करता है कि राज कर्मचारियों के मिल मालिक बन जाने से प्रामाणिक विषमता समाप्त हो गई है। वह कहता है, 'आप रूस की मिसाल देंगे। वहां इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज कर्मचारियों का रूप ले लिया है।'[72] प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापक सज्जाद जहीर को 12 जून, 1936 को लिखे पत्र का यह अंश भी हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट के चरित्र का वर्णन इसी रूप में करता है, 'महज जबानी इश्तिराकियत (साम्यवाद) से क्या

हासिल? मैं ऐसे कितने नौजवानों को जानता हूं जो मजलिसे अहबाब (दोस्तों की सभा) में सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट सब कुछ हैं, मगर जब जवांमर्दी दिखाने का मौका आता है हरमसरा (अंतःपुर) में रूपोश (छिप) जाते हैं।'

इस विवेचन से कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आते हैं। प्रेमचंद के साहित्यिक रंगमंच पर आने से पूर्व ही देश-विदेश में समाजवाद का विवेचन-विश्लेषण शुरू हो गया था। यहां तक कि हिंदू सन्यासी विवेकानंद भी नई सदी में समाजवाद की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे और राष्ट्र-नायक गांधी भी समाजवाद की अनिवार्यता की स्थापना करते हुए उसे हिंदू-धर्म के जीवन-मूल्यों और मानवीयता के साथ संयुक्त करके राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे थे। विवेकानंद ने समाजवाद को धर्म और अध्यात्म से जोड़ा और गांधी ने भी उसे धर्म एवं नीति का आधार दिया। इन दोनों विचारकों ने हिंदू धर्म की नींव पर समाजवाद को परिभाषित किया, लेकिन कार्ल मार्क्स का समाजवाद या साम्यवाद धर्म को अफीम मानता था और उसमें हिंदू जीवन के मानवीय मूल्यों-अहिंसा, सेवा, त्याग हृदय परिवर्तन, संस्कारों एवं दुष्प्रवृत्तियों का परिष्कार, साधन की पवित्रता, वाणी एवं आचरण की एकता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सहकारिता, परमार्थ और समविष्टवाट आदि के लिए कोई स्थान नहीं था। फिर भी इस 'पश्चिमी समाजवाद' का साहित्य भारत में आ रहा था और जवाहर लाल नेहरू, संपूर्णानंद, आचार्य नरेंद्र देव जैसे नेता समाजवाद की और उन्मुख हो रहे थे। प्रेमचंद समाजवाद की इन विभिन्न धाराओं को चौराहे पर खड़े होकर देख रहे थे और वे देशी एवं विदेशी समाजवाद के आदर्शों एवं मूल्यों को समझने की चेष्टा कर रहे थे। प्रेमचंद ने विवेकानंद, गांधी और मार्क्स को पढ़ा था। विवेकानंद पर तो उन्होंने लेख लिखा था। गांधी के साथ तो वे असहयोग आंदोलन से ही थे। मार्क्स की प्रेरणा से रूस में हुई वोल्शेविक क्रांति की चर्चा भी वे लगभग इसी समय से कर रहे थे। जो मार्क्सवादी समीक्षक यह यह मानते हैं कि प्रेमचंद को मार्क्सवाद का अधूरा ज्ञान था, वे भ्रम में हैं। संभवतः वे इसे सिद्ध इसलिए करते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि उनके साहित्य में साम्यवाद का शास्त्रीय चित्रण नहीं मिलता। इसका कारण वे उनकी अज्ञानता को मानते हैं, न कि उनकी असहमति और अस्वीकृति को लेकिन सत्य इसके विपरीत है। उन्होंने सन् 1925 में मार्क्स का उल्लेख किया और उसके सिद्धांतों का श्रेय हजरत मुहम्मद को दिया। उनके साहित्य में मार्क्सवाद की शब्दावली भरी पड़ी है और रूस के कम्युनिज्म पर वे यदा-कदा लिखते रहे हैं। उन्हें रूस का कम्युनिज्म कुछ क्षणों के लिए मोहित करता है, परंतु शीघ्र ही उनका भ्रम टूट जाता है और वे स्टालिन आदि की प्रशंसा करते-करते रूसी कम्युनिज्म के समाप्त होने तक की भविष्यवाणी करते हैं। वे कम्युनिज्म से शोषण से मुक्ति और समता का विचार लेते हैं, यद्यपि ये विचार भी उन्हें विवेकानंद, गांधी और अपने युग से मिलते हैं, परंतु साम्यवाद इन विचारों को और पुष्ट करता है। फिर भी वे मार्क्स और रूसी कम्युनिज्म के अर्थ में कम्युनिस्ट नहीं बन पाते हैं। वे कहते हैं कि मैं कम्युनिस्ट हूं पर मेरा कम्युनिज्म रूस, गांधी आदि से भिन्न प्रकार का है। वे रूस का कम्युनिज्म देख रहे थे जहां पूंजीवाद और साम्राज्यवाद कायम था। वे हिंदुस्तान के कम्युनिस्टों और समाजवादियों को भी देख रहे थे जो जवाहर लाल नेहरू के समान

विचारों से समाजवादी थे, व्यवहार और आचरण से नहीं। वे मानते थे कि विलासमय जीवन वाले ये हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट कभी समाजवाद की स्थापना नहीं कर पाएंगे। इस कारण प्रेमचंद इन हिंदुस्तानी कम्युनिस्टों की कटु आलोचना करते हैं और उन्हें अपने व्यंग्य का शिकार बनाते हैं। अतः प्रेमचंद का समाजवाद निश्चय ही मार्क्सवाद का समाजवाद नहीं है। मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा भी यह स्वीकार करते हैं कि प्रेमचंद का जन्म सर्वहारा वर्ग में नहीं हुआ था, न उन्होंने सर्वहारा वर्ग के क्रांति-दर्शन मार्क्सवाद को पूरी तरह अपनाया था और न उन्होंने कुटीर उद्योगों के स्थान पर मशीनी उद्योग को महत्व दिया और न स्वाधीनता आंदोलन एंव समाजवाद के निर्माण में मजदूर वर्ग की भूमिका को ही स्वीकार किया।[72] डॉ. शर्मा के ये विचार ही प्रेमचंद के समाजवाद को मार्क्सवादी मुखौटा पहनाने की कुचेष्टा को धराशायी कर देते हैं परंतु प्रेमचंद का अपने लेख 'राज्यवाद और साम्राज्यवाद' (स्वदेश', 18 मार्च, 1928 गोरखपुर तथा 'दस्तावेज-108 पृ. 34) में इससे भी भयंकर निष्कर्ष यह है कि 'साम्यवाद से ऐसी ही लंबी लंबी-चौड़ी आशाएं बांधी गई थीं, मगर अनुभव यह हो रहा है कि साम्यवाद केवल पूंजीपतियों पर मजूरों की विजय का आंदोलन है। न्याय के अन्याय पर, सत्य के मिथ्या पर विजय पाने का नाम नहीं है। यह सारी विषमता, सारा अन्याय, सारी स्वार्थपरता, जो पूंजीवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रेमचंद का समाजवाद भारतीय था। भारतीयता और भारतीय जीवन-मूल्य, जो हिंदू संस्कृति की देन हैं, उनके समाजवाद के अंग हैं, अतः डॉ. रामविलास शर्मा के इस विचार में कोई संगति नहीं है कि वे समाजवादी आदर्श के लिए 'राष्ट्रवाद' और किसी हद तक 'कथित भारतीयता' को भी छोड़ने के लिए तैयार थे।[73] इस निष्कर्ष के लिए वे कोई प्रमाण नहीं दे पाए। यह मार्क्सवादियों की कमजोर है कि वे बिना प्रमाण के फतवेबाजी करते हैं और विचारों एवं धारणाओं को उलटने-पलटने और बदलने को कभी उचित मानते हैं।[74] डॉ. नामवर सिंह ऐसा करते हैं, अतः वे इसे सिद्धांत बना देते हैं। प्रेमचंद जन्म-शताब्दी के अवसर पर हैदराबाद में आयोजित एक गोष्ठी में मेरी उपस्थिति में उन्होंने कहा था कि होरी एक हिंदू किसान है और यह होरी ही प्रेमचंद है। मैंने तत्काल खड़े होकर इस नए चिंतन का जब समर्थन किया तो वेणु गोपाल ने मंच पर आकर धमकाते हुए कहा कि डॉ. नामवर सिंह बताएं कि वे गोयनका के करीब आए हैं या गोयनका उनके करीब। डॉ. नामवर सिंह इसी शताब्दी के अवसर पर 'हरिश्चंद्र सभा' की विचार-गोष्ठी में इसके विपरीत मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यदि प्रेमचंद को होरी माना और समझा गया तो मेरा सारा भाषण व्यर्थ हो जाएगा।[75] यह विचारों और धारणाओं का वैसा परिवर्तन नहीं है, जैसा 'काल प्रयोजन' के इंटरव्यू में उन्होंने कहा है। यह अवसर और श्रोताओं के अनुकूल और 'वाही-वाही' लूटने की चालाकी है। विचार और धारणा का वास्तविक परिवर्तन तो डॉ. रामविलास शर्मा ने किया था जब उन्होंने आर्यों को इस देश का मूल निवासी धोषित किया, लेकिन उनका यह वैचारिक परिवर्तन डॉ. नामवर सिंह और उनके चेलों को स्वीकार नहीं हुआ। डॉ. नामवर सिंह ने 'आलोचना' का एक अंक रामविलास शर्मा को अर्पित करते हुए उनके इस वैचारिक परिवर्तन को घोर हिंदूवादी, भगवाकरण का

प्रतिरूप बताया। डॉ. नामवर सिंह स्वयं अपनी धारणाओं, विचारों का परिवर्तन करें तो वह साहित्य-नीति के अनुकूल है, लेकिन यदि डॉ. रामविलास शर्मा करें तो वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य हो जाते हैं। प्रेमचंद के संबंध में भी वामपंथी इसी नीति पर चलते रहे हैं।

प्रेमचंद भारतीय थे और अपने युग के भारतीय पुनर्जागरण के संवाहक थे। वे पश्चिमी संस्कृति और विदेशी विचार से भारत को बचाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंनें सन् 1926 में 'प्रेम-द्वादशी' की भूमिका में लिखा था कि वे अपने कथा साहित्य में 'भारतीय आत्मा' को सुरक्षित रखना चाहते हैं। प्रेमचंद का यह विचार उनके साहित्य का केंद्रीय विचार है और यही उनके विचारों का मूलाधार है। प्रेमचंद महात्मा गांधी के समान यह समझते थे कि भारत में वही जीवन-दृष्टि फलीभूत और स्वीकार्य हो सकती हो सकती है जो भारत की सनातन दष्टि से मेल खाती हो। प्रेमचंद निश्चय ही इतिहास, धर्म, परंपरा आदि के उन तत्त्वों के विरोधी थे जिन्होंने मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव, असमानता के साथ शोषण और दमन का चक्र चलाया हुआ है। हिंदू धर्म के आडंबर, अस्पृश्यता, भेद-भाव, कर्महीनता आदि के वे घोर आलोचक थे, परंतु इससे वे हिंदू जीवन-दृष्टि और उसके सनातन मानवीय पक्ष के भी आलोचक नहीं हो जाते। विवेकानंद और गांधी ने भी हिंदू धर्म की बुराइयों की कुछ आलोचना की लेकिन बीसवीं शताब्दी की नई चेतना के अनुकूल जो विचार-दृष्टि एवं मानवीय मूल्य हिंदूधर्म की सनातन-दृष्टि में थे, वे उन्होंने स्वीकार किए और उनकी आधार पर ही उन्होंने भारत की मुक्ति और विकास का दर्शन प्रस्तुत किया। इस प्रकार विवेकानंद, गांधी औऱ प्रेमचंद लगभग एक ही प्रकार से भारत के सनातन धारणाओं और जीवन-दर्शन के प्रवक्ता और संवाहक थे। प्रेमचंद जिस 'भारतीय आत्मा' को सुरक्षित का संकल्प ले रहे थे, उससे पूर्व स्वामी विवेकानंद, अरविंद, स्वामी दयानंद, गांधी आदि अनेक भारतीय विचारक उसी भारतीयता आत्मा, रमेशचंद्र शाह के शब्दों में आत्म-बिंब' को आविष्कृत करने का प्रयत्न कर रहे थे।

प्रेमचंद की इस 'भारतीय आत्मा' में पुरातन भारत के 'सत्यं, शिवं, सुंदरं' के साथ धर्म के मानवीय और आध्यात्मिक चेतना का योगदान है। उनके अप्रैल, 1936 के 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन के दिए गए अध्यक्षीय व्याख्यान तक में ये विचार प्रमुखता से मिलते हैं। 'हंस' के अप्रैल, 1932 में छपे लेख 'जीवन में साहित्य का स्थान' में उन्होंने लिखा कि जीवन और साहित्य का उद्देश्य आनंद है और सच्चा आनंद, 'सुंदर और सत्य' से मिलता है। उनके अनुसार भारतीय साहित्य का आदर्श 'त्याग और उत्सर्ग' में है, 'भोग' और 'अधिकार' में नहीं और इन आदर्शों की सृष्टि 'व्यास और वाल्मीकि ने की है। भारत राष्ट्र की ये 'सबसे मूल्यवान संपत्ति है।[76] हिंदू धर्म में सत्य नीति, त्याग, सेवा, परोपकार, प्रेम, साहिष्णुता, बलिदान, परमार्थ आदि जो मानवीय मूल्य है, प्रेमचंद के जीवन-भर उनकी आत्मा के अंग बन रहे। उन्होंने 'श्रीकृष्ण और भावी जगत' शीर्षक लेख लिखा जो 'कल्याण' के अगस्त, 1931 के अंक छपा था। इस लेख में उन्होंने 'धर्म' के संबंध में लिखा था कि 'भारत की संस्कृति धर्म की भित्ति पर खड़ी की गई है। हमारे समाज और राज्य की संपूर्ण व्यवस्था धर्म पर अवलंबित थी, लेकिन पाश्चात्य देशों में धर्म को जीवन से पृथक रखा गया, जिसका फल यह हुआ कि आज संसार

में जीवन-संग्राम ने प्रचंड रूप धारण कर रखा है और यह ईश्वरहीन सभ्यता किसी संक्रामक रोग की भांति फैलती जा रही है। जातियों और राष्ट्रों में अविश्वास है, आपस में संघर्ष। स्वामी और मजूर, अमीर और गरीब में भीषण युद्ध हो रहा है। xxx ईश्वरहीन उद्योग में शांति कहां? xxx ऐसे समय में संसार के उद्धार का एक ही उपाय है और वह कर्मयोग। xxx हिंसामय एकतंत्र में विशेष अंतर नहीं है। आधिभौतिकवाद के धर्महीन तत्त्वों से संसार का उद्धार न होगा। उसमें आध्यात्मिकता की स्फूर्ति डालनी होगी। xxx समाष्टिवाद और बोल्शेविज्म उसके (यूरोप) वह नए आविष्कार हैं जिनसे वह संसार में युगांतर कर देना चाहता है। उनके समाज का आदर्श इसके आगे और जा ही नहीं सकता था, किंतु अध्यात्मवादी भारत इससे संतुष्ट होने वाला नहीं। वह अपने परलोक को ऐहिक स्वार्थ पर बलिदान नहीं कर सकता। वह अध्यात्मवाद से भटककर दूर जा पड़ा था जिसके फलस्वरूप उसे एक हजार वर्ष तक गुलामी करनी पड़ी। अबकी वह चेतेगा तो संसार को भी अपने साथ जगा देगा और उस व्यापक, मातृभाव की स्थापना करेगा जो संसार के सुख और शांति का एकमात्र साधन है। अब की इस जागृति में ऊंच-नीच, छोटे-बड़े का भेद मिट जाएगा। समस्त संसार में अहिंसा और प्रेम का जयघोष सुनाई देगा और भगवान श्रीकृष्ण कर्मयोग के जन्मदाता के रूप में संसार के उद्धारकर्ता होंगे।'

प्रेमचंद 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अधिवेशन में दिए गए व्याख्यान में भी इसी भाव-भूमि एवं चिंतन-बिंदुओं की स्थापना करते हैं। वे सत्य, सुंदर एवं शिव की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हैं और लगभग बारह स्थानों पर 'आध्यात्मिक तृप्ति', 'आध्यात्मिक सामंजस्य', 'आध्यात्मिक सुख','आध्यात्मिक बंधन', 'भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म', 'आध्यात्मिक उच्चता', 'आध्यात्मिक और भागवत सभ्यता' आदि की विभिन्न संदर्भों और प्रश्नों की व्याख्या में शब्दों का प्रयोग करके यह स्थापित कर देते हैं कि उनका साहित्य तथा समाजवाद का दर्शन हिंदू धर्म एवं अध्यात्म की मूल आत्मा पर ही स्थापित है। इस व्याख्यान में मार्क्स, मार्क्सवाद और उसकी शब्दावली किसी भी चर्चा नहीं हैं। यहां तक कि 'बंधुत्व और समता' की स्थापना के लिए उन्होंने महात्मा बुद्ध, हजरत ईसा तथा हजरत मुहम्मद आदि धर्म-प्रवर्तकों का तो उल्लेख किया तथा उन्हें श्रेय भी दिया, किंतु यहां भी उन्होंने मार्क्स का उल्लेख तक नहीं किया। मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भी सन् 1941 में प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद' में स्वीकार किया था कि उनके साहित्य चिंतन पर 'भारतीयता' का प्रभाव है।[77] प्रेमचंद की भारतीय समाजवाद की रूप-संरचना में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के व्याख्यान में व्यक्त विचारों को भी हमें ध्यान में रखना होगा। इस व्याख्यान में भी अध्यात्म, नैतिकता और संस्कृति की मानवीय धारणाएं, मूल्य, आचार-विचार संस्कार और आस्थाओं को संयुक्त करके जो साहित्य-दर्शन दिया गया वह उनके भारतीय समाजवाद की रूप-रचना में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी करता है। अब तो मार्क्सवादी लेखक भी प्रेमचंद के 'यूटोपियाई आदर्शवाद' के साथ धर्म और संस्कृति की अनिवार्यता को स्वीकार कर रहे हैं।[78] इन मार्क्सवादियों ने देखा कि जो रूस का 'वैज्ञानिक समाजवाद' था वह तो नष्ट हो गया किंतु प्रेमचंद का 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। ओमप्रकाश ग्रेवाल इसी कारण अब समाजवाद में धर्म, संस्कृति और नैतिकता के संयोग के साथ विचार,

संस्कार, मूल्य, व्यक्ति की अस्मिता, आस्था, जनतंत्र आदि को आवश्यक मानते हैं।[79] डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे मार्क्सवादी अभी 'मार्क्सवादी विवेक' से ही सब कुछ देखना चाहते हैं।[80] मार्क्सवादी विवेक ईसाई और इस्लाम के समान एकाधिकारवादी विचार है जो अपने अनुयायियों का समाज बनाता है, लेकिन प्रेमचंद का विवेक भारतीय था जो अनुयायी नहीं बल्कि बेहतर मनुष्य और उसके समाज की संरचना के लिए भारतीय समाजवाद की कल्पना कर रहा था। हिंसक क्रांति से न तो संस्कृति बदलती है और न समाजवाद के 'मार्क्सवादी यूटोपिया' को स्थायी बनाया जा सकता है। प्रेमचंद अपने 'भारतीय विवेक' से इसे समझ रहे थे और यहां के धर्म, अध्यात्म, अहिंसा, सत्य, सुंदर, शिव, न्याय, नैतिकता आदि के समन्वित रूप पर समाजवाद का स्वरूप निर्मित कर रहे थे। वे स्वतंत्रता और समाजवाद के लिए 'न्याय और सत्य' के लिए ही लड़ रहे थे और वे इसे 'न्याय और सत्य' ही के हथियारों, से लड़ना चाहते थे।[81] प्रेमचंद ने 'सत्य के मेरे प्रयोग' और 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' या 'कैपिटल' जैसी पुस्तकें नहीं लिखीं, परंतु वे हिंदू संस्कृति की सनातन मानवीय धारणाओं और मूल्यों के साथ युग-जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को साथ रखकर अपने समाजवाद का प्रारूप प्रस्तुत कर रहे थे। अपने इस 'भारतीय समाजवाद' कर स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने 'हंस' के अप्रैल, 1932 के अंक में स्पष्ट रूप से लिखा था, 'कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है, जो वास्तविक रूप में जन-सत्ता चाहती है; जो जात-पांत के झगडों से अलग रहकर राष्ट्र के उद्धार का प्रयत्न करती है, जो दरिद्र किसानों के हित को सबसे ऊपर रखती है; विभिन्नता में एकता उत्पन्न करके राष्ट्र को बलवान बनाना चाहती है, जिसका मुख्य सिद्धांत यह है, कि देश का शासन, देश के हित के लिए हो हम अपने ही देश में दलित और अपमानित न रहें, हममें यह व्यापक बेकारी न रहे, हमारी जनता पशुओं की भांति जीवन न व्यतीत करे। हम वह स्वराज्य चाहते हैं, जिसमें हमें राष्ट्र की इच्छानुसार परिवर्तन और सुधार करने का अधिकार हो, जिसमें हमारे ही धन से पलने वाले कर्मचारी हमी को कुत्ता न समझें, जिसमें हम अपनी संस्कृति का निर्माण आप कर सकें। हम वह स्वराज्य चाहते हैं, जिसमें हम भी उसी तरह रह सकें, जैसे फ्रांस या इंग्लैंड (यहां वे रूस का उल्लेख नहीं करते-गोयनका) में लोग रहते हैं। इसके साथ ही हम उन बुराइयों से भी बचना चाहते हैं, जिनमें अन्य अधिकांश राष्ट्र पड़े हुए हैं। हम पश्चिमी सभ्यता की कृत्रिमताओं को मिटाकर उस पर भारतीयता की छाप लगाना चाहते हैं। हम वह स्वराज्य चाहते हैं, जिनमें स्वार्थ और लूट प्रधान न हो, नीति और धर्म प्रधान हो।'[82]

प्रेमचंद ने स्वराज्य, समाजवाद और धर्म को संयुक्त करके अपने समाजवाद का रूप प्रस्तुत किया। वे हिंदू के लिए स्पष्ट कहते हैं कि जो समाजवाद का समर्थक नहीं, वह हिंदू नहीं है।[83] इस विचार-धारा पर विवेकानंद और गांधी का प्रभाव है। उनके इस 'भारतीय समाजवाद' पर मार्क्स के प्रभाव को देखना और सिद्ध करना राजनीतिक छल-कपट है। प्रेमचंद की त्रासदी यह है कि उन्हें अब तक उस रूप में प्रस्तुत किया गया, जो वे नहीं थे। प्रेमचंद की दूसरी त्रासदी यह है कि वे भारत की स्वतंत्रता और कांग्रेसी समाजवाद का चरित्र नहीं देख सके और पहले ही संसार से विदा हो गए। महात्मा गांधी ने तो स्वतंत्रता देखी, परंतु उनके समाजवाद की

कल्पना उनके जीवन-काल में ही छिन्न-भिन्न हो गई। प्रेमचंद यदि गांधी के समान स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जीवित रहते तो वे भी अपने 'भारतीय समाजवाद' के महल को ढहता हुआ देख लेते। आज कम्युनिस्ट लेखक 'रूसी समाजवाद' का विकल्प तलाश कर रहे हैं, लेकिन प्रेमचंद के 'भारतीय समाजवाद' का कोई विकल्प नहीं है। भारत में जब भी समाजवाद आएगा, तो निश्चय ही एक दिन आएगा, वह विवेकानंद, गांधी और प्रेमचंद का 'भारतीय समाजवाद' ही होगा। मार्क्स यदि भारत में पैदा हो तो उसे भी भारतीयता के इसी मार्ग पर चलना होगा। भारत की जनता ऐसी ही है। मानवीयता उसकी संस्कृति है, फिर भी कोई भी विचार भारतीय बनकर ही जीवन का अंग बन सकता है। □

संदर्भ सूची

1. 'प्रेमचंद', सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट, प्रथम सं. 1941 पृ. 109, 2. 'प्रेमचंद : विरासत का सवाल' प्रथम सं. 1981, पृ. 64, 3. 'प्रताप' साप्ताहिक दिसं., 1925 का विशेषांक, बाद में 'इंडिया टुडे' साहित्य वार्षिकी, 1995, पृ.24-26 पर पुनः प्रकाशित।, 4. 'विवेकानंद साहित्य' खंड-10 पृ.347,5. वही, खंड-4 पृ. 243, 6. वही, खंड-7, पृ. 357, 7. वही, खंड-4, पृ. 252, 8. वही, खंड-4, पृ. 243, 9. 'गांधी वांङमय' खंड-59, पृ. 238, 10. वही, खंड-64, पृ. 426, 11. 'गांधी वांङमय' खंड-58, पृ. 227, 12. वही, खंड-25, पृ. 269, 13. वही, खंड-64, पृ. 348, 14. वही, खंड-69, पृ. 410, 15. वही, खंड-58, पृ. 227, 16. वही, खंड-58, पृ. 123, 17. वही, खंड-64, पृ. 216, 18. वही, खंड-45, पृ. 317, 19. वही, खंड-58, पृ. 123, 20. वही, खंड-83, पृ. 31, 21. वही, खंड-45, पृ. 316, 22. 'गांधी वांङमय' खंड-62, पृ. 245, 23. वही, खंड-83, पृ. 32, 24. वही, खंड-64, पृ. 348, 25. वही, खंड-73, पृ. 19, 26. वही, खंड-58, पृ. 259, 27. वही, खंड-75, पृ. 174, 28. 'जागरण', 11 दिसंबर, 1933, 29. वही, 25 सितंबर, 1933, 30. 9 अक्टूबर, 1933, 31. 'जागरण', 18 सितंबर, 1933, 32. वही, 15 जनवरी, 1934, 33. 23 अप्रैल, 1934, 34. 'विविध-प्रसंग'-2, पृ. 308, 35. 'विविध-प्रसंग'-2, पृ. 342, 36. वही, पृ. 198, 37. 'हंस', अक्टूबर-नवंबर, 1932, 38. 'जागरण' 11दिसंबर, 1933, 39. 'हंस', अप्रैल, 1932, 40. 'विविध-प्रसंग'-2, पृ. 78, 41. 'हंस', सितंबर, 1931, संकलित 'विविध-प्रसंग'-2, पृ.342, 42. 'जागरण', 3 अप्रैल, 1933, 43. 'चिट्ठी-पत्री'- 2 पृ. 237, 44. 'जागरण', 9 अक्टूबर, 1933, 45. 'प्रेमचंद' का अप्राप्य, पृ. 314, 46. 'जागरण', 9 अक्टूबर, 1933, 47. 'गांधी वांङमय' खंड-45, पृ. 316, खंड-66, पृ. 473, खंड-62, पृ. 245, 48. 'पशु से मनुष्य' कहानी से, 'मानसरोवर'-8 पृ. 101, 49. 'प्रेमाश्रम' पृ. 390, 50. वही, पृ. 410, 51. वही, पृ. 390, 52. वही, पृ. 140, 53. 'प्रेमाश्रम' पृ. 353 तथा 389, 54. वही, पृ. 403, 55. 'जागरण' 11 दिसंबर, 1933 'विविध-प्रसंग'-2 पृ. 224 पर संकलित, 56. वही, पृ. 223-24, 57. 'मानसरोवर', खंड-8 में संकलित, 58. 'श्रीकृष्ण और भावी जगत' लेख से, 'कल्याण', अगस्त, 1931 के कृष्णांक में प्रकाशित, 59. 'रंगभूमि', पृ. 411, 60. वही, पृ. 437, 60. 'मानसरोवर'-8 में संकलित 'हार की जीत' कहानी से, 61. 'मानसरोवर'-4 में संकलित 'दो

सखियां' कहानी से, 62. 'गोर्की और प्रेमचंद : दो अमर प्रतिमाएं', प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1980 पृ. 290, 63. प्रेमचंद : विरासत का सवाल, पृ.67-70,169,171, 64. 'प्रेमचंद : विविध आयाम', सं. डा. दिनेश प्रसाद सिंह, में संकलित उनके भाषण से पृ.22, 65. 'प्रेमचंद और उनका युग' चौथा संस्करण, पृ. 106, 66. 'गोदान-विमर्श' सं. महेंद्र भटनागर में संकलित लेख से पृ. 31, 67. 'गोदान' पृ. 185-90, 274, 135, 140, 152-58, 68. वही, पृ. 54-55, 69. 'गोदान' पृ. 54, 70. वही, पृ. 52, 71. वही, पृ. 52, 72. वही, पृ. 59, 73. प्रेमचंद और उनका युग, चौथा संस्करण, पृ. 106, 109, 165, 203, 74. वही, पृ. 110, 75. डॉ. नामवर सिंह की भेंटवार्ता से, 'कला-प्रयोजन'-25 जुलाई-सितंबर, 2001 पृ. 211 उनके अनुसार साहित्य-नीति में विचारों और धारणाओं को बदलना गुनाह नहीं है।, 76. 'प्रेमचंद : विविध आयाम' सं. डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह में संकलित डॉ. नामवर सिंह' के व्याख्यान से, पृ.30, 77. 'विविध प्रसंग'-3 पृ. 141-43, 78. प्रेमचंद, प्रथम संस्करण- 1941, पृ. 1 एवं 11,79. देखिए 'कथन', 2003, मासिक पत्रिका में रमेश उपाध्याय, पूरन चंद्र जोशी आदि के वक्तव्य। 80. 'कथन', 2003, मासिक पत्रिका, पृ. 68-71 81. 'कसौटी'-5 मासिक पत्रिका, पृ. 151-57, 82. 'समर-यात्रा' में नायक का कथन 83. 'जागरण' 11 दिसंबर, 1933 में प्रकाशित लेख 'हिंदू सोशल लीग का फतवा से देखिए 'विविध-प्रसंग'-2 पृ.244।

प्रेमचंद : राष्ट्र एवं स्वराज्य का कथात्मक महासमर

प्रेमचंद के जन्म से लेकर उनके देहांत (1880-1936) तक का समय राजनीतिक हलचलों, स्वराज्य आंदोलन तथा साम्राज्यवादी अंग्रेजी सत्ता के क्रूर एवं भयानक अत्याचारों से भरा था। भारत के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम (1857) के बाद अंग्रेजों के अंकुश, दमन एवं अत्याचार में वृद्धि होती गई, लेकिन उपनिवेशिक शक्तियों के इस भारत विरोधी कुशासन के बावजूद देश में एक नवजागरण की लहर उत्पन्न हुई और स्वदेशी 'स्वराज्य' स्वाधीनता तथा आत्म-बिंब की तलाश की प्रवृत्ति तीव्र होती गई। स्वामी दयानंद ने, 'सत्यार्थ प्रकाश' (1883) में लिखा, 'कोई कितना ही कहे, परंतु स्वदेशीय राज्य सर्वोपरि होता है।' अंग्रेजी शासन के साथ ईसाई मिशनरियों के आतंकपूर्ण धर्म प्रचार एवं धर्मांतरण की भी भारतीय जनता में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। ह्यूम ने 1885 में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की और वह धीरे-धीरे एक राष्ट्रीय संस्था बनती चली गई। रूस-जापान युद्ध में रूस की हार और जापान की जीत तथा अंग्रेजों की बंग-भंग योजना ने राजनीतिक चेतना का तीव्रता से विकास किया। बंग-भंग ने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग एवं बायकाट के अर्थ में गुणात्मक परिवर्तन कर दिया जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनता के शक्तिशाली आधार बने। इधर 'आनंद-मठ' (1882) के 'बंदेमातरम्' गीत ने बंगाल के साथ पूरे देश में देश-भक्ति, एवं स्वाधीनता की आकांक्षा को तीव्र किया और वर्ष 1947 तक वह देश के स्वाधीनता-संग्राम का राष्ट्रीय गीत बना रहा। रवींद्रनाथ ठाकुर ने सन् 1896 में कांग्रेस अधिवेशन में मंच से इसका पहली बार गायन किया। देश में जन-जागरण, राष्ट्र-भाव, देश-भक्ति तथा स्वराज्य का भाव अनेक सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं तथा राष्ट्र नायकों ने किया और जब प्रेमचंद ने बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में अपना लेखन शुरू किया तो उनके सामने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष लेखन का आधी शताब्दी से भी अधिक का इतिहास था और भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग की परिस्थितियां तथा साहित्यिक प्रवृत्तियां थीं। उनके समय में देश में पूर्व पश्चिम का द्वंद्व तथा पश्चिम के सभी राजनीतिक-दार्शनिक आदि विचार आ रहे थे और प्रजातंत्र, अधिनायकवाद, लोकशाही, साम्राज्यवाद, गांधीवाद, समाजवाद आदि विभिन्न सत्तात्मक प्रणालियां भी सामने घटित हो रही थीं। प्रेमचंद इन सभी के बीच से गुजर रहे थे और अपने राजनीतिक चिंतन में युग के अनुरूप बढ़ते जा रहे थे। उनकी

कुछ उक्तियां यहां प्रस्तुत हैं जो उनके राजनीतिक दर्शन के विविध रूपों तथा उनमें परिवर्तनशीलता को उद्घाटित करते हैं-

1. महारानी (विक्टोरिया) दया की भंडार थीं। रहमदिली और हमदर्दी उनकी घुट्टी में पड़ी थी। XXX महारानी का स्वभाव बहुत स्नेहशील था। XXX विद्वानों और कलाकारों का आदर करना उनके स्वभाव का अंग था।' XXX उन्होंने रिआया के दिलों में घर कर लिया था।(जमाना-अगस्त, 1905 में प्रकाशित लेख, महारानी विक्टोरिया की जीवनी' से; 'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग'-खंडः एक पृष्ठ 45-49)

2. 'खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।' (दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'सोजेवतन, जून, 1908 में प्रकाशित तथा 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली, खंड-एक, पु. -76 पर संकलित)

3. 'अब हिंदुस्तान के कौमी ख्याल में 'हुब्बे वतन' (देश-प्रेम) के जज्बात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं। ये चंद कहानियां इसी असर का आगाज (आरंभ) हैं। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद (सख्त) जरूरत है, जो नई नस्ल के जिगर पर हुब्बे वतन (देश-प्रेम) की अजमद (महिमा) का नक्शा जमाए।' ('सोजेवतन', जून, 1908 की भूमिका से, संकलित प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड- दो, पृष्ठ-329)

4. 'महात्मा गांधी के पदार्पण से राष्ट्रीय जीवन में एक विचित्र स्फूर्ति और सजीवता का विकास हो गया।' ('कर्मवीर गांधी' की भूमिका से, सन् 1916, डॉ. रामदीन गुप्त की पुस्तक 'प्रेमचंद और गांधीवाद', पृ. 111 पर उद्धृत)

5. 'मैं अब करीब-करीब वाल्शेविक उसूलों का कायल हो गया हूं।' (मुंशी दयानारायण निगम को 21 दिसंबर, 1919 को लिखे पत्र से, 'प्रेमचंद :पत्रकोश', पृ. 216)

6. प्रेमचंद ने अपने उर्दू लेख 'पुराना जमानाः नया जमाना' ('जमाना, फरवरी, 1919) में रूसी क्रांति की प्रशंसा की, किंतु निर्बलों और अनाथों की हिमायती के दावे को खारिज करते हुए लिखा, 'जनतंत्र का यह नया पहलू अपनी भौगोलिक परिधि के बाहर निकलकर निर्बलों और अनाथों की हिमायत करेगा या पूंजीपति 'राष्ट्र' की बनिस्पत 'अ-राष्ट्रों' के साथ ज्यादा इंसानियत और हमदर्दी का बर्ताव करेगा, शायद गलत साबित हो। उसे राज सिंहासन और स्वर्ण मुकुट से प्रेम नहीं, लेकिन राजकीय अधिकार-भावना और राज्य-संचालन की वासना से वह भी मुक्त नहीं। बहुत संभव है कि 'अ-राष्ट्रों' पर जनतंत्र का अत्याचार पूंजीपतियों से कहीं अधिक घातक सिद्ध हो। जब कुछ थोड़े से पूंजीपतियों की स्वार्थपरता दुनिया को उलट-पुलटकर रख दे सकती है तो एक पूरे राष्ट्र की सम्मिलित स्वार्थपरता क्या कुछ न कर दिखाएगी। वह भी जत्थे-बंदी की एक सूरत है, ज्यादा ठोस।' (प्रेमचंदः विविध-प्रसंग', खंड-पृ. 265-66)

7. 'मैं उनका (महात्मा गांधी) का चेला हो गया। चेला तो उसी समय हुआ, जब वह गोरखपुर आए थे। दुनिया में मैं महात्मा गांधी का सबसे बड़ा मानता हूं। उनका भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों, वह इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिए आंदोलन मचा रहे हैं। मैं लिखकर उनको उत्साह दे रहा हूं। महात्मा गांधी हिंदू-मुसलमानों की एकता चाहते

हैं, तो मैं भी हिंदी और उर्दू को मिला करके हिंदुस्तानी बनाना चाहता हूं।' ('प्रेमचंदः घर में शिवरानी देवी, पृ. 94)

8. 'मैं किसी पार्टी में नहीं हूं, इसलिए कि दोनों में कोई पार्टी (गरम दल एवं नरम दल) कुछ अमली काम नहीं कर रही है। मैं तो आने वाली पार्टी का मेंबर हूं जो कोतुहुन्नास (साधारण-जन) की सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल अमल बनाए।' (मुंशी दयानारायण निगम को 17 फरवरी, 1923 को लिखे पत्र से, 'प्रेमचंद : पत्रकोश' पृ. 241)

9. 'एक समय था जब साम्यवाद निर्बल राष्ट्रों को आशा से आंदोलित कर देता था। सारे संसार में जब प्रजावाद की प्रधानता हो जाएगी, फिर दुःख या पराधीनता या सामाजिक विषमता का कहीं नाम भी न रहेगा। साम्यवाद से ऐसी ही लंबी-चौड़ी आशाएं बांधी गई थीं, मगर अनुभव यह हो रहा है कि साम्यवाद केवल पूंजीपतियों पर मजदूरों की विजय का आंदोलन है, न्याय के अन्याय पर, सत्य के मिथ्या पर, विजय पाने का नाम नहीं। यह सारी विषमता, सारा अन्याय, सारी स्वार्थपरता जो पूंजीवाद के नाम से प्रसिद्ध है, साम्यवाद के रूप में आकर अणु मात्र भी कम नहीं होगी, बल्कि उससे और भी भयंकर हो जाने की संभावना है।' (स्वदेश', गोरखपुर, 18 मार्च, 1928 के अंक में प्रकाशित लेख 'राज्यवाद और साम्राज्यवाद' से, इसे कमल किशोर गोयनका ने 'दस्तावेज' में प्रकाशित कराया अभी असंकलित है)

10. 'धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। XXX यह जरूर चाहता हूं कि दो-चार ऊंची कोटि की पुस्तकें लिखूं पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है।' (बनारसीदास चतुर्वेदी को 3 जून, 1930 को लिखे पत्र से, 'प्रेमचंद : पत्रकोश, पृ. 367)

11. My whole Careers have lean devoted to politics. I have been danaling politics for the last thirty years, although not directly. All my words have a politics bearing how can I eschew politics now? ... My wife is a whule hogger and has just got 6 weeks S.I. for picketing,"

(आनंदराव जोशी को लिखे 26 नवंबर, 1930 के पत्र से; प्रेमचंद : पत्रकोश? पृ. 21)

12. 'महात्मा गांधी क्यों भारत के हृदय पर राज्य कर रहे है? इसीलिए कि वह इस विकल जागृति के जीते-जागते अवतार हैं। वह भारत के सत्य, धर्म, नीति और जीवन के सर्वोत्तम आदर्श हैं।' ('हंस', मई, 1930 में प्रकाशित 'दमन' शीर्षक लेख से)

13. महात्मा गांधी क्रांति नहीं चाहते और न क्रांति से आज तक किसी जाति का उद्धार हुआ है।'('हंस', जन, 1931 में प्रकाशित लेख 'देश की वर्तमान परिस्थिति' से 'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग, खंड-2, पृ.78)

14. 'महात्माजी ने राजनीति को उसकी गंदगियों से पाक कर दिया है। उनकी राजनीति और धर्मनीति दोनों एक हैं।'('हंस', सितंबर, 1931 में प्रकाशित लेख 'महात्माजी की विजय-यात्रा से, 'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग, खंड-2, पृ. 80)

15. महात्मा गांधी देवता हैं। सारा भारत उनकी पूजा करता है।' ('जागरण', 7 अगस्त, 1933 में प्रकाशित लेख, भविष्य से)

16. 'कम्युनिज्म और फासिज्म का अस्तित्व इसलिए नहीं है कि उनके पीछे सैनिक शक्ति है बल्कि इसलिए कि वे प्रजाहित को ही अपना आधार बनाए हुए हैं। ज्यों ही वे इस आदर्श से गिर जाएंगे जनता फिर चंचल हो जाएगी, और फिर दूसरी तरह इस समस्या को हल करने की चेष्टा करेगी।' ('जागरण, 21अगस्त, 1933 में प्रकाशित लेख 'भारत 1983' से प्रेमचंद : विविध-प्रसंग, खंड-2, पृ. 198)

17. प्रेमचंद ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा था कि उनका कम्युनिज्म गांधी, इंग्लैंड या रशियन कम्युनिज्म की तरह का नहीं है। क्यों भला मेरा कम्युनिज्म इस प्रकार का है? हमारे समाज में जमींदार, साहूकार यह किसान का शोषण करने वाला समाज बिलकुल रहेगा ही नहीं।'(मराठी लेखक श्री. रा. टिकेकर को मुंबई में दिसंबर, 1934 में दिए गए इंटरव्यू से, 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड-एक, पृ. 308)

18. 'स्वराज्य कत्ल, खून से नहीं मिलता; त्याग तप और आत्म-शुद्धि से मिलता है। XXX यह समझ लो, जो स्वराज्य कत्ल या खून से मिलेगा, वह कत्ल व खून पर ही कायम रहेगा। अवाम की कोशिश से जो स्वराज्य मिलेगा, वह मुल्क की चीज होगी, अफराद (जनता) की चीज होगी और थोड़े से आदमियों का एक गिरोह तलवार के जोर से इंतजाम न करेगा। हम अवाम का स्वराज्य चाहते हैं, कत्ल व खून की ताकत रखने वाले गिरोह का नहीं।' (कातिल की मां, मार्च, 1935 से प्रकाशन प्रारंभ होने वाले उर्दू-कहानी-संग्रह 'वारदात' से; 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली', खंड-6, पृ. 485-86)

19. 'अब एक नई सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम में उदय हो रहा है जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या पूंजीवाद की जड़ खोदकर फेंक दी है। XXX धन्य है वह सभ्यता, जो मालदारी और व्यक्तिगत संपत्ति का अंत कर रही है और जल्दी या देर से दुनिया उसका अनुसरण अवश्य करेगी।' ('महाजनी सभ्यता', 'हंस', सिंतबर, 1936; 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड-2, पृ. 595-602)

20. 'आपको ईश्वर ने सेना और त्याग के लिए रचा है। वही आपका क्षेत्र है। XXX मैं कुछ सह लूंगी, पर आपको देवत्य के ऊंचे आसन से नीचे न गिराऊंगी। XXX आप मनुष्य हैं। आप में भी इच्छाएं हैं, वासनाएं हैं, लेकिन इच्छाओं पर विजय पाकर ही आपने यह ऊंचा पद पाया है। उसकी रक्षा कीजिए और अध्यात्म ही आपकी मदद कर सकता है। उसकी साधना से आपका जीवन सात्विक होगा और मन पवित्र होगा।'(प्रेमचंद की अंतिम कहानी 'रहस्य' से 'हंस', सितंबर, 1936)

ये प्रेमचंद के राजनीतिक चिंतन के बिखरे सूत्र हैं, लेकिन उनके विचारों में होने वाले परिवर्तन के साथ स्वराज्य एवं लोक-मंगल के प्रति दृढ़ता की चेतना भी स्पष्ट होती है। उनका राजनीतिक-दर्शन उनके लेखों, पत्रों, संपादकीय आदि के साथ उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में व्यापकता के साथ चित्रित हुआ है। प्रेमचंद ने यद्यपि अपने साहित्य में समाज, धर्म, अर्थ, संस्कृति, इतिहास, गांव और शहर आदि अनेक विषयों का व्यापकता से चित्रण किया है, परंतु

सभी का मूल है- विदेशी एवं देशीय दासता से मुक्ति और स्वराज्य की स्थापना। वे इस राजनीतिक दर्शन को अनेक बार तथा अनेक रूपों में स्पष्ट करते हैं। उनके लेखों, संपादकीयों, पत्रों आदि में देश की वर्तमान और भविष्य की राजनीति का चित्र मिलता है। वे आरंभ में एक पुस्तक समीक्षा में रानी विक्टोरिया के व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हैं, किंतु वे भारत में उनके शासन पर मौन रहते हैं, अर्थात् वे ब्रिटिश शासन के समर्थक नहीं हैं, बल्कि उनका आलोचक रूप तथा देशमुक्ति तथा राष्ट्र-प्रेम का लेखकीय व्यक्तित्व अति शीघ्र सामने आता है। 'सोजेवतन' ('जून, 1908) की देश-प्रेम की कहानियां तथा उस पर सरकारी कलेक्टर की फटकार उनकी उत्कट राष्ट्रीय चेतना को उजागर करती है। प्रेमचंद ने अपने 'जीवन-सार' लेख में लिखा भी है', उस समय बंग-भंग का आंदोलन हो रहा था। कांग्रेस में गर्म दल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पांचों कहानियों में देश-प्रेम की महिमा गाई गई है।'[1] प्रेमचंद के इस राष्ट्र-बोध तथा राष्ट्र-प्रेम के कारण ही वे गांधी के दर्शन तथा आंदोलन से जुड़ते हैं और वे वर्ष 1916 में उनके राष्ट्रीय जीवन में पदार्पण करने तथा व्यावहारिक राजनीति का मार्ग दिखाने के कारण उनकी प्रशंसा करते हैं।[2]

प्रेमचंद के राजनीतिक विचारों की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में प्रकाशित उनके दो लेख 'स्वदेश का संदेश' ('स्वदेश' प्रवेशांक, वसंत पंचमी, 1975 वि.) तथा 'पुराना जमानाः नया जमाना' ('जमाना', फरवरी, 1919) बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनमें वे स्वराज्य, स्वदेशी, स्वाधीनता, स्वशासन, रूसी क्रांति आदि कई विषयों पर अपने विचार प्रगट करते हैं। 'स्वदेश' के प्रथम अंक में प्रेमचंद ने लिखा कि नए युग में प्रजातंत्र का विस्तार एवं जनता के अधिकारों में वृद्धि हुई है और हिंदुस्तान का उद्धार हिंदुस्तान की जनता पर निर्भर है।[3] उन्होंने अपने लेख 'पुराना जमानाः नया जमाना' में लिखा कि नए जमाने ने 'बेजबानों' को वाणी दी है और यह किसानों-मजदूरों का जमाना है और उनके बिना स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। वे लिखते हैं, 'आप स्वराज्य की हांक लगाइए, सेल्फ गर्वनमेंट की बात कीजिए, कौंसिलों को विस्तार देने की मांग कीजिए, जनता को इन चीजों से कोई मतलब नहीं, क्योंकि कोई कारण नहीं कि वह दूसरे देश के हाकिमों के मुकाबले में आपकी हुकूमत को ज्यादा पसंद करे।'[4] लगभग इसी समय गांधी असहयोग आंदोलन शुरू करते हैं तो प्रेमचंद पूर्णतः गांधी के अनुयायी बन जाते हैं। वे स्वयं को गांधी का चेला कहते ही हैं। वे लिखते हैं कि असहयोग पर भारत की राष्ट्रीयता की छाप लग गई है और उसने ही 'रक्तमय अशांति' को काबू किया है।[5] प्रेमचंद इसी समय 'स्वराज्य के फायदे' शीर्षक लेख में लिखते हैं जो पुस्तकाकार रूप में आषाढ़ संवत् 1978 अर्थात् जून, 1921 में छपा था। प्रेमचंद लिखते हैं कि हमारे पूर्वजों में श्रीरामचंद्र जैसे पराक्रमी, महात्मा श्रीकृष्ण जैसे ज्ञानी, महात्मा बुद्ध जैसे त्यागी, महाराणा विक्रम जैसे प्रतापी, महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे रणधीर, बादशाह अकबर जैसे प्रजाभक्त, गुरु वशिष्ठ जैसे आत्मदर्शी हो गए हैं, हम लोग उन्हीं के संतान हैं, अतः हममें बल, बुद्धि, विद्या लुप्त नहीं हो सकती और भीष्म एवं अर्जुन के नाम पर जान देने वाले इतने बलहीन, इतने कर्महीन नहीं हो सकते। हम 'स्वराज्य' से भारत को उसकी उन्नत दशा तक पहुंचा सकते हैं। स्वराज्य पाकर हम अपनी

आत्मा को पा जाएंगे, हमारे धर्म का उत्थान हो जाएगा, अधर्म का अंधकार मिट जाएगा और ज्ञान-भास्कर का उदय होगा।[6] प्रेमचंद आगे भी महात्मा गांधी तथा उनके राजनीतिक-दर्शन एव कार्यक्रमों की चर्चा करते हैं और उसे ही अहिंसा से स्वाधीनता प्राप्त करने के मार्ग की घोषणा करते हैं। 'हंस' के प्रवेशांक (मार्च, 1930) में वे लिखते हैं कि 'कर्णधार महात्मा गांधी' ने ही 'स्वाधीनता' की वृत्ति जाग्रत की है और इस संग्राम में एक दिन विजयी होंगे। भारत ने 'शांतिमय समर' की भेरी बजा दी है और 'हंस' ने मानसरोवर की शांति छोड़कर, अपनी नन्हीं-सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए, समुद्र पाटने-आजादी के जंग में योग देने चला है। वे डोमिनियन स्टेट नहीं स्वराज्य चाहते हैं क्योंकि स्वराज्य गरीबों की आवाज है, डोमेनियन गरीबों की कमाई पर मोटे होने वालों की।[7] इसी कारण वे मानते हैं कि हमारी लड़ाई अंग्रेज सत्ताधारियों के साथ हिंदुस्तानी सत्ताधारियों के साथ भी है, क्योंकि इस लड़ाई को कुचलने में दोनों मिल जाएंगे।[8] यह युग स्वराज्य का है, जनता एकाधिपत्य को सहन नहीं कर सकती, चाहे वह स्वदेशी ही क्यों न हो।[9] यह डिमोक्रेसी का युग है, निरंकुशता की जड़ें खोखली होती जा रही हैं।[10] प्रेमचंद लिखते हैं कि महात्मा गांधी क्रांति नहीं चाहते और आज तक किसी जाति का क्रांति से उद्धार नहीं हुआ है। गांधी के मार्ग से हम 'क्रांति की भीषणता' के बिना ही क्रांति के लाभ प्राप्त कर सकते है और जो लोग क्रांति-क्रांति की दुहाई देते हैं और हिंसा का पुट देकर देश में जो आग लगाना चाहते है, उसका परिणाम अच्छा न होगा।[11] वे कहते हैं कि महात्माजी की राजनीति और धर्मनीति दोनों एक हैं और उन्होंने राजनीति को गंदगियों से पाक कर दिया है।[12] गांधी का आंदोलन एक 'राष्ट्रीय आंदोलन' है, यह भारतीय आत्मा के स्वाधीनता प्रेम की विकल जाग्रति है और महात्मा गांधी उसके जीते-जगाते अवतार हैं।[13] प्रेमचंद अंग्रेजों की भेद-नीति से क्षुब्ध हैं, क्योंकि वे देश की एकता और स्वराज्य आंदोलन को तोड़ देना चाहते है, जबकि कांग्रेस जन-सत्ता चाहती है, विभिन्नता में एकता चाहती है, निर्धनता एवं भेदभाव मिटाना चाहती है तथा पश्चिमी सभ्यता की कृत्रिमताओं को मिटाकर उस पर भारतीयता की छाप लगाना चाहती।[14]

प्रेमचंद हिंसा-अहिंसा, समाजवाद, साम्यवाद आदि पर भी गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं और उनकी तुलनात्मक व्याख्या भी करते हैं। वे सन् 1919 में वोल्शेविक उसूलों के कायल होने का उल्लेख करते हैं, किंतु उन्हें कभी व्यावहारिक रूप नहीं देते हैं, और उनके प्रति अपना विरोध प्रकट करते चलते हैं। उन्होंने 'हंस' जून, 1931 में लिखा, 'हिंसा का भूत हमारे सिर सवार हुआ और हमारा सर्वनाश हुआ। केवल मौखिक अहिंसा से काम नहीं चल सकता। हमें मनसा, वाचा कर्मणा अहिंसा का अनुयायी होना पड़ेगा।[15] वे चाहते हैं कि किसान महात्मा गांधी के इस मार्ग पर चलें और उन्हें ही सच्चा नेता मानें। गरीबों और विचलितों का, महात्माजी से बड़ा शुभचिंतक संसार में दूसरा नहीं है। प्रेमचंद 'हंस' दिसंबर, 1931 में लिखते हैं, 'हिंसा से हिंसा और अहिंसा से अहिंसा उत्पन्न होती है। यह ध्रुव सत्य है।[16] वे समाजवाद का समर्थन करते हैं। बीसवीं सदी को सोशलिज्म की सदी कहते हैं। क्योंकि भारत जैसे गरीबों के देश का कोई दूसरा आदर्श नहीं हो सकता। इसलिए वे स्वराज्य का अर्थ आर्थिक स्वराज्य लेते हैं। वे यहां

तक कहते हैं कि जो समाजवाद का समर्थक नहीं, वह हिंदू नहीं है। समाजवाद चाहता है कि सभी को समान रूप से शिक्षित होने पर काम करने का अवसर मिले, सभी काम बराबर समझे जाएं, सभी प्रेम एवं शांति के साथ जीवित रहें।[17] वे गांधी और नेहरू के सोशलिज्म में अंतर करते हैं। गांधी सोशलिज्म से भी आगे बढ़े हुए हैं, कम्युनिज्म से भी, वह अपरिग्रहवादी हैं, जवाहर लाल नेहरू विचार से हैं, व्यवहार से नहीं, जैसे प्रायः सभी कांग्रेस-मैंन हैं।[18] प्रेमचंद स्वयं को कम्युनिस्ट कहते हैं, पर वे गांधी, रूस आदि की तरह के नहीं हैं। वे 22 मई, 1933 को 'जागरण' में रूस पर लिखते हैं 'साम्राज्य-लिप्सा इस समय हमारी इच्छा का केंद्र है। साम्राज्य-विरोधी रूस भी चाहता है कि जमाना 'सोवियत' हो जाए। उसे 'विचार का साम्राज्य' चाहिए।[19] वे एक समय प्रजाहित के कारण हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन का समर्थन करते हैं, किंतु कुछ समय बाद वे मान लेते हैं कि रूस का पूंजीवाद पर विजय विश्वास हमारा भ्रम था[20] और उसे 'समाजवादी डिक्टेटरशिप' कहते हैं।[21] प्रेमचंद 'जागरण' के 21 अगस्त, 1933 के अंक में यहां तक घोषणा करते हैं कि कम्युनिज्म के प्रजा-विरोधी होने पर जनता उसे बदलकर नई व्यवस्था कायम कर लेगी, लेकिन साम्यवाद के संबंध में इसे मोह-भंग के बावजूद यह प्रश्न बना रहता है कि उन्होंने 'महाजनी सभ्यता' लेख ('हंस', सितंबर, 1936) में रूसी क्रांति का समर्थन क्यों किया? वे बार-बार लिखते हैं, मैं वर्ग-संघर्ष, लाल क्रांति, श्रेणियों में संघर्ष नहीं चाहता, क्योंकि यह संभव है कि क्रांति से हम बुरी डिक्टेटरशिप पर पहुँचे जिससे रंच मात्र व्यक्ति-स्वाधीनता न हो।[22] प्रेमचंद उस समय अस्वस्थ थे, और 'हंस' के 'सरस्वती प्रेस' में न छपाकर दिल्ली के 'सस्ता साहित्य मंडल' से मुद्रित कराकर पचास रुपए बचाने के गांधी के निर्णय से बहुत आहत होते है। वे 27 जुलाई, 1936 को अख्तर हुसैन 'रायपुरी' को पत्र में लिखते हैं, 'मुफ्त में सरमग्जी, बनियों के साथ काम करके शुक्रिए की जगह यह सिला-मिला कि तुमने 'हंस' में ज्यादा रुपया सर्फ कर दिया है। इसके लिए मैंने दिलोजान से काम किया, बिलकुल अकेला, अपने वक्त और मेहनत का इतना खून किया, इसका किसी ने लिहाज न किया। मैंने 'हंस' उन लोगों को इस ख्याल से दिया था कि वह मेरे प्रेस में छपता रहेगा और मुझे प्रेस की जानिब से गूना ब्रेफिक्री रहेगी और इस तबादले में परिषद् को अंदाजा पचास रुपए महीने की बचत हो जाएगी। मैं भी खुश हूं। 'हंस' जिस लिटरेचर का इशाअत कर रहा था, वह हमारा लिटरेचर नहीं है, वह तो वही भक्तिवाला महाजनी लिटरेचर है जो हिंदी जबान में काफी है।'[23] इस पंत्राश में 'महाजनी सभ्यता' लेख की पृष्ठभूमि देखी जा सकती है। प्रेमचंद लेख में महाजनी-सभ्यता के सिद्धांतों, दुर्बलताओं एवं अमानवीयता की चर्चा करते हैं और नई सभ्यता की विशेषताओं का वर्णन करते समय वे जिन मानवीय गुणों तथा दुष्प्रवृत्तियों के नाश करते हैं, वे सब दिवा-स्वप्न बनकर रह जाती हैं। रूस के पतन और चीन के परिवर्तन ने रूसी क्रांति के अंधकार को चीरकर उजाला फैलाने के प्रेमचंदीय स्वप्न को नष्ट कर दिया है। प्रेमचंद यदि होते तो स्वयं ही अपनी आँखों से इस सत्य को देखते।

प्रेमचंद के सर्जनात्मक साहित्य में-उपन्यास और कहानियों में उनके राजनीतिक-दर्शन का विपुलता एवं प्रबलता के साथ उद्घाटन हुआ है, बल्कि यह कहना होगा कि उनके विचारों तथा

कथात्मक कृतियों में एकरूपता मिलती है। प्रेमचंद का उर्दू कहानी-संग्रह 'सोजेवतन' (जून, 1908) उनकी राजनीतिक चेतना की बुनियाद है जिसमें देशभक्ति, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता को उनके साहित्य की मुख्यधारा बना दिया। प्रेमचंद का देश प्रेम अंग्रेजी सत्ता के लिए राजद्रोह था और इसके लिए उन्हें दंडित होना पड़ता है। इसके बाद उन्होंने सामाजिक एवं ऐतिहासिक कहानियां लिखीं। इतिहास के कथा-प्रसंगों से उन्होंने वीरता, त्याग, न्याय, बलिदान, देशभक्ति आदि के मानवीय गुणों के चित्रण से देशवासियों में अतीत के प्रति गौरव का भाव उत्पन्न किया। गांधी की प्रेरणा से उन्होंने जब सन् 1921 में सरकारी नौकरी से इस्तीफा दिया तो 'लाल फीता' (जुलाई, 1921) कहानी लिखी जो अंग्रेजों की भारत-विरोधी नीति एवं हिंदुस्तानी अफसरों पर अंकुश को उद्घाटित करती है। इसके पश्चात् उनका उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (जनवरी, 1922) प्रकाशित हुआ और उसमें प्रेमचंद ने गांधी के ट्रस्टीशिप, हृदय-परिवर्तन, अहिंसात्मक सुधार, राम-राज्य, जमींदारी उन्मूलन आदि का मार्ग प्रशस्त किया। 'प्रेमाश्रम' के उपरांत 'स्वत्व-रक्षा' (जुलाई, 1922), 'चकमा' (नवंबर, 1922) 'परीक्षा' (जनवरी, 1923) 'सत्याग्रह' (दिसंबर, 1923) 'शतरंज के खिलाड़ी' (अक्टूबर, 1924) आदि कहानियां प्रकाशित हुईं, जिनमें अपने अधिकार, आस्मिता और प्रतिशोध की क्षमता को पहचानने की चेष्टा की गई। 'रंगभूमि' उपन्यास के प्रकाशन से गांधीवादी राजनीति साहित्य के केंद्र में आ गई और स्वयं प्रेमचंद ने उसे 'राजनीतिक' उपन्यास माना।[24] नंददुलारे वाजपेयी भी इसमें 'राजनीतिक घटनावली की प्रधानता' तथा सूरदास को 'स्वाधीनताकामी भारतीय जीवन का प्रतिनिधि' मानते हैं।[25] महात्मा गांधी ने 4 अप्रैल, 1926 को दिए एक भाषण में लेखकों से तुलसीदास की 'रामायण' मांगी थी,[26] और प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' लिखकर उनकी इच्छा पूरी की। 'रंगभूमि' में राम सूरदास है, जो राम के समान ही धर्म, सत्य और न्याय की लड़ाई लड़ता है तथा सीता के समान भूमि-हरण होने के कारण रावण जैसी अधर्म, अन्याय, असत्य एवं पशुबल पर आधारित अंग्रेजी सत्ता से संघर्ष करता है। सूरदास गांधी का प्रतीक है, वह सच्चा असहयोगी है, जो गांधी के शस्त्रों-असहयोग, सविनय अवज्ञा, सत्याग्रह, अहिंसा, धर्म न्याय औद्योगीकरण एवं साम्राज्यवादियों के विरुद्ध लड़ता है और गांधी की नीति के अनुरूप प्राण त्याग देता है।[27] सूरदास हिंसा को रोकते हुए पुलिस की गोली से मरता है और गांधी भी एक भारतीय गोड़से की गोली से शहीद होते हैं।

'रंगभूमि' (1925) से 'कर्मभूमि' (नवंबर, 1932) का समय तीव्र राजनीतिक गतिविधियों का काल है। उनके उपन्यासों एवं कहानियों पर इसका गहरा प्रभाव है। कहानियों में 'हिंसा परमोधर्मः (दिसंबर, 1926), 'मंदिर' (1927), 'शुद्धि' (मई, 1928),'इस्तीफा' (दिसंबर, 1928), 'जुलूस' (मार्च, 1930), 'समर-यात्रा' (अप्रैल, 1930), 'शराब की दुकान' (मई, 1930), 'सुहाग की साड़ी' (मई, 1930), 'मैकू' (जून, 1930), 'आहुति' (नवंबर, 1930), 'जेल' (फरवरी, 1931), 'अनुभव' (अक्टूबर, 1932) आदि में महात्मा गांधी के स्वराज्य आंदोलन, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, असहयोग, सविनय, अवज्ञा, हृदय-परिवर्तन, हिंदू-मुस्लिम एकता, और दलितोद्धार का जीवंत चित्रण हुआ है। 'कायाकल्प' उपन्यास में यद्यपि मन और शरीर के कायाकल्प की कथा

है, किंतु हिंसा एवं हिंदू-मुस्लिम दंगों को रोकने की चेष्टा है। प्रेमचंद और गांधी दोनों ही 'हिंदू-मुस्लिम एकता' को स्वराज्य के लिए आवश्यक मानते थे। 'गबन' उपन्यास में भी युग की राजनीतिक परिस्थितियों एवं विदेशी गुलामी एवं संस्कृति के प्रभाव को दर्शाया गया है और 'स्वदेशी' और देश का उद्धार का नारा देने वाले कांग्रेसियों की विलायती जीवन-शैली तथा जनता विरोधी कार्यों का भंड़ाफोड़ किया गया है। देवीदीन कहता है- 'अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग-विलास पर इतना मरते हो जब तुम्हारा राज हो जाएगा, तब तो तुम गरीबों को पीसकर पी जाओगे।'[28] 'कर्मभूमि' तो पूर्णतः राजनीतिक उपन्यास है। 'कर्मभूमि' का राजनीतिक-सामाजिक पराधीनता के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम, आंदोलन और हड़ताल, विजय और समझौता सभी गांधी के तत्कालीन स्वाधीनता आंदोलन की प्रतिच्छाया है। इसमें संघर्ष दलित, किसान, मजदूर का है जो शहर और गांव दोनों स्थानों पर होता है। गोदान कृषि संस्कृति की पतन गाथा है और किसान मजदूर बनकर भरने को विवश है, लेकिन राजनीति पर भी चर्चा होती है। प्रो. मेहता में डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, प्रेमचंद का अंश है, होरी और मेहता मिलकर प्रेमचंद बनते हैं। वही मेहता 'गोदान' में रूसी कम्युनिज्म और हिंदुस्तानी कम्युनिज्म के बारे में कहते हैं, 'आप रूस की मिसाल देंगे। वहां इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज कर्मचारियों का रूप ले लिया है। xxx मैं तो केवल इतना जानता हूं, हम या तो साम्यवादी है या नहीं तो व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिंदगी का विरोधी हूं।'[29] 'मंगलसूत्र' में दरिंदों के खिलाफ शस्त्र उठाने का जो उल्लेख है, वह कथानक की पतनावस्था में कहा गया है और बेटे का भी दबाव है, अंतः उसे प्रेमचंद का विचार नहीं माना जा सकता है।

प्रेमचंद इस प्रकार, देशभक्ति, राष्ट्रीयता, स्वाधीनता और राष्ट्र-रक्षक एवं राष्ट्र-प्रहरी साहित्यकार हैं। वे नवजागरण, स्वाधीनता संग्राम तथा राष्ट्र-मुक्ति के महागाथाकार है। वे आर्यसमाज और कांग्रेस के सदस्य थे, उनकी पत्नी पिकेटिंग में जेल गईं और प्रेमचंद तो गांधी के भक्त ही थे। वे इस दृष्टि से कम्युनिस्ट पार्टी के कभी सदस्य नहीं रहे। उनका साहित्य राजनीतिक अर्थवत्ता रखता है, किंतु वे साहित्य को राजनीति से ऊंचा स्थान देते थे। उन्होंने कहा था कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है। उनका युग राजनीति का युग था और स्वराज्य उसका लक्ष्य, परंतु सभी प्रकार की दासता और पराधीनता से मुक्त का शंखनाद था। प्रेमचंद इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वामी दयानंद स्वामी विवेकानंद, गांधी तथा कुछ मात्रा में रूसी क्रांति से भी प्रेरणा और शक्ति लेते रहे, किंतु सर्वाधिक प्रभाव गांधी का ही रहा। इस प्रकार भी गांधी ने जैसे 'राम-राज्य' का स्वप्न देखा, प्रेमचंद ने भी ऐसे स्वतंत्र भारत की कल्पना की जो भारतीयता से परिपूर्ण हो, धर्म-जाति-क्षेत्र-भाषा के भेद से मुक्त हो, विषमता से मुक्ति और सामंजस्य हो और जो विदेशी-स्वदेशी कुशासन, शोषण, दमन से भी मुक्त हो। वे बार-बार गांधी के समान किसानों और मजदूरों के स्वराज्य की बात कहते हैं, परंतु रूस, की तरह वे इन्हें खूनी क्रांति के लिए इस्तेमाल नहीं करते बल्कि यह ध्यातव्य है कि उन्होंने 'कैदी' जैसी कहानी (जुलाई, 1933) लिखी जिसमें रूसी कम्युनिस्ट नेता लेनिन के कामरेड-आइवन

और उसकी प्रेमिका हेलन तो मिलकर जार के गवर्नर की हत्या का संकल्प लेते हैं, हेलन अपने प्रेमी को धोखा देकर गिरफ्तार करा देती है और खुद गवर्नर से शादी कर लेती है। प्रेमचंद के लिए गांधी से अधिक पवित्र, सत्याग्रही, धर्म और न्याय पर चलने वाला कोई राष्ट्र नायक नहीं था जो राष्ट्रहित, राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता और राष्ट्रीय एवं सामाजिक मुक्ति को सर्वोपरि मानता हो। गांधी राजनीति के अग्रदूत थे और प्रेमचंद साहित्य के। प्रेमचंद का साहित्य उनके राष्ट्र-प्रहरी होने, उनके राष्ट्रीय साहित्यकार होने तथा उसके राष्ट्रीय साहित्यकार होने का जीवंत प्रमाण है। उस काल में और आज तक उन जैसा कोई हिंदी-उर्दू का साहित्यकार पैदा नहीं हुआ। जो अपने समय के स्वाधीनता-संग्राम का साहित्यिक संस्करण एवं साहित्य-महानायक बन सका हो।

□

संदर्भ सूची

1. 'कफन' संकलन, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, ग्यारहवां संस्करण, 1966, पृ. 62, 2. 'प्रेमचंद और गांधीवाद', रामदीन गुप्त, प्र.सं., पृ. 111,3. 'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग', खंड-2, पृ.19-22,4. 'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग', खंड-1, पृ.267,5.'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग', खंड-2, पृ.39-40, 6.'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग', खंड-2, पृ.19-22, 7.'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड-2, पृ. 517-18, 8. 'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग', खंड-2, पृ. 525, 9.वही, पृ. 75 'हंस', मई, 1931 से, 10.वही, पृ. 65 'हंस', नवंबर, 1930 से, 11. वही, पृ. 78-79 'हंस', जून, 1931 से, 12. वही, पृ. 80 'हंस', सितंबर, 1931, 13. 'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग', खंड-2, पृ. 53-54 14. वही, पृ. 87-91 'हंस', अप्रैल, 1932 की टिप्पणी से, 15. वही, पृ. 79, 16. वही, पृ. 85, 17. वही, पृ. 154, 18.वही, पृ. 217, 'जागरण' 9 अक्टूबर, 1933 से, 19. वही, पृ. 326, 20. वही, पृ. 342, 'जागरण' 23 अप्रैल, 1934 से, 21. वही, पृ. 337, 'जागरण' 15 जनवरी, 1934 से, 22. 'प्रेमचंद : पत्रकोश' संपादक : कमल किशोर गोयनका, पृ. 25; इंद्रनाथ मदान को 26 दिसंबर, 1934 को लिखे पत्र से।, 23. वही, पृ. 15 24. 'सरस्वती', जून, 1926, पृ. 752, 25. 'प्रेमचंद-साहित्यिक विवेचना' पृ. 17 व 78, 26. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय', खंड-17 पृ. 334, 27. वही, खंड-19, पृ. 540, 28. 'गबन', पृ. 171-72 29.'गोदान', पृ. 52 व 55।

XXX : संदर्भित पुस्तक के मूल अंश।

प्रेमचंद : डॉ. रामविलास शर्मा और मैं

प्रेमचंद के साथ मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा का संबंध कई दशकों तक रहा है। डॉ. शर्मा की प्रेमचंद पर पहली पुस्तक 'प्रेमचंद' के नाम से सन् 1941 में छपी थी। इससे पूर्व पं. जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' की प्रेमचंद पर लिखी पुस्तक लगभग छह-सात वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी, लेकिन सन् 1952 में शर्माजी की प्रकाशित दूसरी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' ने जो ख्याति उन्हें दी वह पहली पुस्तक से नहीं मिली। इस दूसरी पुस्तक ने उन्हें प्रेमचंद के आलोचक के रूप में स्थापित कर दिया और वे प्रेमचंद के मार्क्सवादी आलोचकों में शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठित हुए। डॉ. नामवर सिंह जैसे मार्क्सवादी आलोचक भी यद्यपि मैदान में थे, लेकिन उन्होंने प्रेमचंद पर कोई पुस्तक नहीं लिखी और वे जो छुट-पुट भाषण देते रहे, उससे वे डॉ. रामविलास शर्मा की कोटि तक पहुंच नहीं सकते थे। डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' के अभी तक चार संस्करण हुए हैं। इसका चौथा संस्करण 8 अगस्त, 1987 को हुआ और इससे सौ से अधिक पृष्ठों की नई सामग्री जोड़ी गई। इस प्रकार इसका संशोधन एवं परिवर्द्धन हुआ और कुछ नए रूप में यह पुस्तक प्रकाशित हुई।

डॉ. रामविलास शर्मा का आलोचनात्मक व्यक्तित्व दूसरे मार्क्सवादियों की तुलना में भिन्न रहा है। 'प्रेमचंद और उनका युग' पुस्तक के चौथे संस्करण को जब वे तैयार करने लगे तो उन्होंने अपने पड़ोसी डॉ. रणजीत साहा को मेरे पास भेजा कि वे मुझसे मेरी प्रेमचंद पर लिखी कुछ प्रमुख पुस्तकें ले सकें और उन पर विचार कर सकें। मेरे लिए यह नया अनुभव था। यद्यपि डॉ. रामविलास शर्मा से मेरा यदा-कदा पत्र-व्यवहार होता रहता था, लेकिन उन जैसा कोई मार्क्सवादी आलोचक मेरी प्रेमचंद संबंधी पुस्तकें पढ़ना चाहता है और वह भी शर्मा जैसा प्रतिष्ठित आलोचक तो मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। डॉ. नामवर सिंह ने 'प्रेमचंद विश्वकोश' पढ़ा और 'आलोचना' (जुलाई-दिसंबर, 1982) की समीक्षा प्रकाशित भी की थी, परंतु उस पर कभी कुछ न कहा, न लिखा। डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे मार्क्सवादी ने अमृतसर की गोष्ठी में यह तो कहा कि जो काम गोयनका ने प्रेमचंद पर किया, वह हम प्रगतिशीलों ने क्यों नहीं किया, लेकिन पुस्तक में वे मेरी आलोचना ही करते रहे। ऐसी स्थिति में डॉ. रामविलास शर्मा का आलोचनात्मक व्यवहार प्रशंसा के योग्य था और मैंने डॉ. रणजीत साहा को अपनी तीन पुस्तकें 'प्रेमचंद

विश्वकोश', 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान' तथा प्रेमचंदः अध्ययन की नई दिशाएं' दीं और कुछ मास के उपरांत उन्हीं के द्वारा वापस आ गईं।

मैं इस प्रसंग को भूल गया था कि सन् 1988 में मेरे एक मित्र ने बताया कि 'प्रेमचंद और उनका युग' में डॉ. रामविलास शर्मा ने लगभग सौ पृष्ठों में मेरे मतों को उद्धृत करते हुए अपना विवेचन किया है और मेरी कुछ मान्यताओं का खंडन किया है। मुझे यह आश्चर्यजनक लगा कि डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद पर मेरी खोजों और स्थापनाओं को इतनी गंभीरता से लिया कि उन पर विस्तार से लिखने की विवशता उन्हें अनुभव हुई। मैंने इस चौथे संस्करण को खरीदा और उनकी आलोचना एवं व्याख्याओं को देखा और मुझे लगा कि मुझे इन पर अपना अभिमत प्रस्तुत करना चाहिए, क्योंकि वे प्रेमचंद को लेकर अपने मार्क्सवादी पूर्वाग्रहों, तर्कहीन आक्षेपों तथा तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने एवं उनकी उपेक्षा की प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो पाए हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद की आलोचना में दो विचार-समूहों की कल्पना की है-एक, मार्क्सवादी जिसके वे स्वयं प्रवक्ता हैं और जिसे वे रूसी क्रांति का प्रेरक समर्थक गांधी-विरोधी तथा साम्राज्य एवं सामंत-विरोधी मानते हैं, दूसरा, भारतीय संस्कृति (भारतीयतावादी) जिसकी स्थापना का श्रेय वे कमल किशोर गोयनका को देते हैं। डॉ. शर्मा अपने विवेचन में डॉ. शैलेश जैदी की भी चर्चा करते हैं परंतु वे जैदी को भारतीय संस्कृति से नहीं जोड़ते और उन्हें वे प्रेमचंद के चरित्र-हनन में उल्लेखनीय योगदान पर विचार करते हैं। डॉ. शर्मा लिखते हैं कि साठोत्तरी पीढ़ी जिस समय हिंदी में नई कविता का विकास कर रही थी, उस समय आलोचना-क्षेत्र में कुछ लेखक विशुद्ध भारतीय संस्कृति के आधार पर प्रेमचंद के उपन्यासों की नई व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे। कमल किशोर गोयनका ने अपना शोध-कार्य 1963 में आरंभ किया था, उनका शोध-प्रबंध 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान' 1973 में प्रकाशित हुआ।[1] डॉ. रामविलास शर्मा नए चौथे संस्करण में प्रेमचंद के जीवन, उनकी विचार-धारा एवं उनकी दो प्रमुख औपन्यासिक कृतियों के आधार पर इस भारतीय संस्कृतिवादी आलोचना की परीक्षा करते हैं और अनेक बिंदुओं से अपनी असहमति प्रकट करते हुए यह मानते हैं कि कमल किशोर गोयनका ने जो विचार-धारात्मक संघर्ष शुरू किया है, वह प्रेमचंद को लेकर इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करते समय भी जारी रहेगा, क्योंकि प्रेमचंद साहित्य का ऐसा ही ऐतिहासिक महत्त्व है।[2]

हमें यहां डॉ. रामविलास शर्मा की नई व्याख्याओं को देखना होगा कि वे कैसे भारतीय संस्कृति अर्थात् भारतीयता वाले आलोचनात्मक सिद्धांत का खंडन करके मार्क्सवादी दृष्टिकोण की स्थापना करते हैं। इससे मार्क्सवादी आलोचना की चरित्र तो उजागर होगा ही, प्रेमचंद के दृष्टिकोण की उपेक्षा एवं उनकी कृतियों को भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने के आलोचना के स्वदेशी-सिद्धांत को अस्वीकार करके मार्क्स की विदेशी विचारधारा को ही आलोचना का मानदंड मानने की दुर्नीति भी स्पष्ट होगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी आलोचना में मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव रहा है और उसे एकमात्र वैज्ञानिक सिद्धांत बताया जाता रहा है बिना इसे स्पष्ट किए कि यह वैज्ञानिक सिद्धांत कैसे रूस-चीन में लाखों लोगों की

हत्या के बाद सत्ता में आया, क्यों वह सारे विश्व में नहीं फैल पाया और क्यों वह अपने जन्म-स्थान में ही समाप्त हो गया? इसके साथ भारत के साहित्यकार एवं उसकी कृतियों को भारतीय-दृष्टि से देखने-समझने की आलोचनात्मक दृष्टि की आलोचना भी तर्कसंगत नहीं है। हम अपने साहित्यकार को अपनी दृष्टि से न देखें, अपनी भारतीयता से उसका मूल्यांकन न करें, यह कौन-सा तर्क है? डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पहली पुस्तक 'प्रेमचंद' (1941) में भारतीयता के विरोधी नहीं थे। उन्होंने लिखा था कि प्रेमचंद ने साहित्य की जो व्याख्या की है, वह उनकी 'भारतीयता' का प्रमाण है।[3] अपनी इसे 'यूरोप-भक्ति' कहते हैं और कहानी को भारत के कथा साहित्य की जातीय परंपरा से जोड़ते हैं।[4] डॉ. शर्मा स्पष्ट शब्दों में अपनी दूसरी पुस्तक में भी मानते हैं कि प्रेमचंद, वाल्मीकि, व्यास, तुलसी, सूर और कबीर की परंपरा के उत्तराधिकारी हैं तथा उन्होंने इनसे साहित्य साधना तथा अपने देश की संस्कृति की उन्नति के लिए कष्ट सहना सीखा है।[5] डॉ. शर्मा लिखते हैं कि 'प्रेमाश्रम' से 'गोदान' तक 'विलायती मशीन' तथा 'विलायती शोषण' से देश को मुक्त करना चाहते थे, इसी कारण 'प्रेमाश्रम' 'कर्मभूमि', वगैरह में दो संस्कृतियों (पश्चिमी एवं भारतीय) का भेद बहुत साफ-साफ जाहिर किया था।[6] डॉ. शर्मा तो यहां तक लिखते हैं कि प्रेमचंद पर 'प्राचीन अध्यात्मवाद' का प्रभाव नहीं है, लेकिन क्रमशः वह क्षीण होता गया है।[7] डॉ. रामविलास शर्मा का यह निष्कर्ष है कि प्रेमचंद अपने देश की संस्कृति के उपासक थे, और वे 'बीसवीं सदी में भारतीय संस्कृति' के एक नए आगे बढ़े हुए चरण थे।[8] वे 'भारतीय संस्कृति' के साथ प्रेमचंद और गांधी दोनों को जोड़ते हैं तथा लिखते हैं कि गांधी और प्रेमचंद ने भारतीय संस्कृति से जो सबसे मूल्यवान वस्तु पाई थी, वह कर्मयोगी की स्थितप्रज्ञता थी।[9]

डॉ. रामविलास शर्मा, स्पष्ट है, प्रेमचंद को भारतीय संस्कृति और भारतीय मूल्यों से देख रहे हैं और मानते हैं कि वे वाल्मीकि, व्यास, तुलसी, कबीर आदि के समान भारतीय संस्कृति के उपासक और संवाहक थे, परंतु जब कमल किशोर गोयनका उनके उपन्यासों की व्याख्या भारतीय संस्कृति के आधार पर करते हैं तो डॉ. शर्मा एकदम हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट की तरह इस भारतीय दृष्टि को पूंजीवाद, सांप्रदायिकता एवं मार्क्सवाद की संघर्षशील विचारधारा पर आक्रमण के रूप में देखते हैं। वे 'प्रेमचंद और उनका युग' में लिखते हैं कि पूंजीवादी वर्ग के लेखक पहले कहते हैं कि प्रेमचंद तात्कालिक समस्याओं पर लिखते हैं और उनके साहित्य का शाश्वत मूल्य नहीं है और अब वे कहते हैं कि प्रेमचंद ने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता दिखाने के लिए उपन्यास लिखे हैं और इस संस्कृति का सार तत्त्व है अध्यात्मवाद और अध्यात्मवाद से अधिक शाश्वत संसार में और क्या होगा?[10] इस वक्तव्य में डॉ. शर्मा हिंदी के लेखक जैनेंद्र, नगेंद्र, नंददुलारे वाजपेयी आदि के साथ कमल किशोर गोयनका पर कम्युनिस्ट नेता की तरह चोट करते हैं और इसके लिए वे कम्युनिस्ट शब्दावली का प्रयोग करते हैं। डॉ. शर्मा ऐसा वक्तव्य देते समय तथ्यों को नहीं देखते, न प्रमाण देते हैं और न मार्क्सवादी दुराग्रहों एवं अपने प्रतिकूल स्थापनाओं पर साधारण तथा चलताऊ टिप्पणियों से स्वयं को रोक पाते हैं। डॉ. शर्मा का यह मार्क्सवादी भ्रम है कि कमल किशोर गोयनका आदि पूंजीवादी वर्ग के हैं तथा यह भी

आधारहीन धारणा है कि गोयनका ने यह स्थापित किया है कि प्रेमचंद ने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उपन्यास लिखे हैं। 'प्रेमाश्रम' में विद्यमान भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता के प्रेमचंदीय विचार को डॉ. गोयनका का विचार बनाकर उसे पूरी उपन्यास-सृष्टि तक फैला दिया है और 'अध्यात्मवाद' को शाश्वत तत्त्व बताकर भारतीय संस्कृति पर गहरा व्यंग्य किया है। डॉ. शर्मा यहां भूल गए कि उन्होंने स्वयं लिखा था कि प्रेमचंद पर 'प्राचीन अध्यात्मवाद' का प्रभाव था, जबकि इसके विपरीत गोयनका ने कहीं यह नहीं लिखा कि प्रेमचंद आध्यात्मिकता के लेखक थे। डॉ. रामविलास शर्मा की एक तकलीफ यह भी है कि वे भारतीय संस्कृति तथा भारतीयता के आधार पर प्रेमचंद की व्याख्या में मार्क्सवादी एंव संघर्ष वाले साहित्य को बाहर करने की साजिश देखते हैं।[11] संघर्षशीलता तो भारतीय जीवन-मूल्य है। यह संघर्ष धर्म का असंघर्ष से, सत्य का असत्य से, न्याय का अन्याय से है। राम, कृष्ण आदि जीवन भर संघर्ष करते हैं, पर मार्क्सवाद का संघर्ष सर्वहारा के नाम पर कुछ व्यक्तियों का सत्ता के लिए खूनी खूनी संघर्ष है, जो भारतीय इतिहास में कहीं कहीं मिलेगा। यह डॉ. शर्मा का वही मार्क्सवादी पूर्वाग्रह है जो अपने प्रतिकूलों में पूंजीवादी साजिश एवं मार्क्सवाद के माध्यम के ध्वंस की प्रतिबद्धता देखता है और सारे तथ्यों-तर्कों को पीछे धकेलकर चरित्र-हनन तक से नहीं चुकता। डॉ. रामविलास शर्मा का मत है कि 'गोदान' का होरी 'मृत्यु-पर्यन्त संघर्ष' करता है। वे कमल किशोर गोयनका के इस मत से आहत है कि होरी में संघर्ष नहीं है, लेकिन 'रंगभूमि' के सूरदास में बड़ी-बड़ी शक्तियों से संघर्ष की अद्‌भुत शक्ति है। डॉ. शर्मा भी मानते है कि सूरदास संघर्षशील पात्र है, परंतु वे होरी को संघर्ष में शीर्ष पर रखना चाहते हैं, और वे जब गोयनका की व्याख्या में इसके विपरीत धारणा पाते हैं तो वे गोयनका पर प्रेमचंद के संघर्षशील साहित्य को ही बाहर निकालने का आरोप लगा देते हैं। वे प्रेमचंद की रचना के विपरीत होरी को मार्क्सवादी पात्र बनाना चाहते हैं जो किसी भी मार्क्सवादी के लिए संभव नहीं है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गोदान', उपन्यासों, रूसी क्रांति के प्रभाव तथा प्रेमचंद के जीवन को लेकर कमल किशोर गोयनका की मान्यताओं का खंड़न करते हुए उन्हें 'साम्राज्यवादी पशुओं' को हथियारों से खत्म करने की नीति का समर्थक स्थापित किया है। इन सभी में डॉ. रामविलास शर्मा ने 'प्रेमाश्रम' के विवेचन पर बहुत स्थान दिया है, क्योंकि गोयनका की स्थापनाओं से उनकी मान्यताएं ही खंड़ित नहीं होती, बल्कि 'प्रेमाश्रम' को खूनी क्रांति के समर्थन का उपन्यास बताने की साजिश की भी पर्दाफाश होता है। डॉ. शर्मा की 'प्रेमाश्रम' उपन्यास पर कई आपत्तियां हैं। वे नहीं मानते है कि 'प्रेमाश्रम' भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों के द्वंद्व का उपन्यास है, जैसा कि गोयनका ने सिद्ध किया है। इसका कारण यह है कि डॉ. शर्मा 'प्रेमाश्रम' की कथा की चार दिशाओं में से लखनपुर गांव की एक दिशा को ही उपन्यास की मुख्य कथा मान लेते हैं और उसी के आधार पर सारे उपन्यास के प्रतिपाद्य का निर्णय कर लेते हैं और लिखते हैं कि ऐसा न मानने वाले आलोचक 'उपन्यास की वास्तविक विषयवस्तु का अवमूल्यन करते हैं।[13] यह डॉ. शर्मा का वामपंथी दुराग्रह है जो तथ्यों की उपेक्षा करके अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए अपने निर्णय को ही वैज्ञानिक मानता है, अन्यथा सात

परिच्छेदों की कथा को वे उपन्यास की वास्तविक कथा नहीं बताते। डॉ. रामविलास शर्मा 'प्रेमाश्रम' में गांधीवाद के प्रभाव को लेकर भी भ्रम में हैं और परस्पर विरोधी वक्तव्य देते हैं। वे कहते हैं कि 'प्रेमाश्रम' में गांधीवाद की विजय अस्थायी है[14] तथा 'प्रेमाश्रम' की स्थापना में गांधीवाद का असर है।[15] लेकिन वे यह भी कहते हैं कि वे उपन्यास 'गांधीवाद की विफलता' का उपन्यास है[16] और ट्रस्टीशिप कोई भारतीय सिद्धांत नहीं है[17] तथा जनता में सत्याग्रह के समय लाठी- गोली खाने की ताकत भी गांधीवाद की देन नहीं है।[18] डॉ. शर्मा एक और विचित्र तर्क देते हैं। वे लिखते हैं कि 'प्रेमाश्रम' में जो ट्रस्टीशिप है, (प्रेमाश्रम) की स्थापना है, हृदय-परिवर्तन और रामराज्य का समर्थन है वह पूंजीपतियों के दबाव के कारण है, क्योंकि वे नहीं चाहते कि जनता का शोषण के प्रति आक्रोश साहित्य में आए, इसीलिए 'ट्रस्टीशिप' आदि का प्रभाव दिखाया गया है।[19] यह तो सीधे प्रेमचंद पर ही आरोप है कि वे 'प्रेमाश्रम' में पूंजीपतियों के दबाव में हैं और इसीलिए वे 'आक्रोश' अर्थात् रक्तिम संघर्ष का साथ न देकर गांधी के अहिंसात्मक साधनों का समर्थन करते हैं। डॉ. शर्मा 'प्रेमाश्रम' की विवचेना में यहां तक कहते हैं कि जो शक्तियां (गांधी और प्रेमचंद भी) वोल्शेविक क्रांति (खूनी क्रांति) का विरोध करती हैं वे अत्याचार-शोषण का प्रतिरोध करने की मजदूरों-किसानों की शक्ति को कम करती हैं तथा वे जमींदारों-सरकारी हाकिमों के अत्याचार और शोषण को कायम रखना चाहते हैं।[20] सारा विश्व जानता है कि गांधी ने वोल्शेविकों की खूनी-क्रांति एवं वर्ग-संघर्ष का बार-बार विरोध किया और रूसी एवं हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट गांधी को 'पूंजीपतियों का दलाल', प्रतिक्रियावादी', 'वर्ग-शत्रु' आदि शब्दों से अपना शत्रु घोषित करते रहे। प्रेमचंद ने भी 'प्रेमाश्रम' में बलराम के वोल्शेविज्म का साथ नहीं दिया और उसे गांधीवादी प्रेमशंकर का अनुयायी बना दिया। इसके बाद वे बार-बार साम्यवाद के खूनी सिद्धांतों तथा उसके 'पूंजीवाद' से भी अधिक बुरे होने की घोषणा करते रहे।[21] इस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा की दृष्टि में गांधी और प्रेमचंद दोनों ही वोल्शेविक-विरोधी, इसलिए वे मजदूरों-किसानों के शत्रु और साम्राज्यवादियों के सहयोगी हैं। डॉ. शर्मा के ये निष्कर्ष राष्ट्र-विरोधी, प्रेमचंद-विरोधी, इतिहास-विरोधी होने के साथ एक हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट के नासमझी भरे पूर्वाग्रहों को उजागर करते हैं। डॉ. शर्मा के पास इसका कोई उत्तर नहीं है कि गांधीवाद का विरोधी और देशद्रोही नहीं है, वैसे ही वोल्शेविक-विद्रोही कैसे शोषण एवं गुलामी का समर्थक हो गया? ऐसे कुतर्क वामपंथी ही दे सकते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचक हैं और प्रेमचंद पर लिखी उनकी यह पुस्तक प्रेमचंद को पक्के तौर पर मार्क्सवादी बनाने के लिए लिखी गई हैं, इसलिए वे वोल्शेविक क्रांति का समर्थन और गांधीवाद के विरोध में इतिहास-विरुद्ध टिप्पणियां करने में भी संकोच नहीं करते। डॉ. शर्मा अपने मार्क्सवादी विवेक से जानते हैं कि प्रेमचंद को यदि मार्क्सवादी बनाना है तो उन पर गांधी के प्रभाव को शून्य में बदलना होगा और गांधी को भी मंच से हटाना होगा। डॉ. शर्मा लिखते हैं कि 'प्रेमाश्रम' के रचना-काल में रूसी-क्रांति की खबरें भारत के किसानों ने भी सुनी और उसके कारण गुलामी का जुआ उतार फेंकने की कोशिश करने लगे,[22] अर्थात् सन् 1920-21 तक देश में स्वाधीनता की लहर उत्पन्न करने में गांधी का कोई योगदान नहीं

था। डॉ. शर्मा यहां गांधी-चेतना से भी प्रबल रूसी-क्रांति की चेतना को बताकर इतिहास को बदल रहे हैं, लेकिन वे इतने पर ही नहीं रूकते हैं। डॉ. शर्मा आगे लिखते हैं कि सन् 1920 30 का समय 'राष्ट्रीय आंदोलन का शून्यकाल' है 23 और इस प्रकार वे इस काल-खंड में किए गए आंदोलनों तथा राष्ट्रीय जागृति की चेतना को इतिहास से ही मिटा देते हैं। संभवतः उनकी वामपंथी प्रतिबद्धता गांधी को इतिहास से हटा देना चाहती है। इसी कारण वे 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' उपन्यासों की विवेचना में गांधी के नाम तक का उल्लेख नहीं करते, जबकि गांधी के स्वाधीनता आंदोलन को सामने रखे बिना इन उपन्यासों के वास्तविक प्रतिपाद्य को समझा नहीं जा सकता। 'रंगभूमि' का सूरदास गांधी का ही प्रतिरूप है जो सत्य, धर्म एवं न्याय की लड़ाई लड़ता है। वह कृषि जीवन का समर्थक है और औद्योगीकरण का विरोधी, जैसा गांधी का विचार था, पर डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि इस समय हिंदुस्तान की जनता बिना किसी पार्टी और राजनीतिक नेता की सलाह के बिना लड़ रही थी और बड़े-बड़े नेता भी राष्ट्रीय आंदोलन से दूर थे।[24] डॉ. शर्मा इतने अज्ञानी नहीं हैं कि उन्हें असहयोग आंदोलन, नेताओं की गिरफ्तारी और गांधी-इर्विन पेक्ट तथा अन्य अनेक राजनीतिक गतिविधियों की जानकारी न हो, परंतु वे यहां आम हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट की तरह ही इतिहास को उलट-पुलटकर अपने अनुसार बदल रहे हैं। डॉ. शर्मा सूरदास को 'सामंत-विरोधी' एवं 'साम्राज्य विरोधी'25 बताकर उसे कम्युनिस्ट नायक बताते हैं, जबकि उसकी लड़ाई सत्य, न्याय और धर्म के लिए है। वह अंग्रेजी शासन-तंत्र से लड़ता है, पर अपने ही गांव के लोगों के अन्याय से भी लड़ता है। उसकी प्रमुख लड़ाई अपनी जमीन के लिए है जिसे एक ईसाई-व्यापारी सिगरेट के कारखाने के लिए हथिया लेता है। डॉ. शर्मा इन तथ्यों से परिचित हैं, इसी कारण वे सूरदास के, सामंत साम्राज्य विरोधी, संघर्ष को स्पष्ट नहीं करते, परंतु वे इस पर बार-बार जोर देते हैं कि प्रेमचंद 'रंगभूमि' में ओद्योगीकरण के विरोधी नहीं हैं।[26] यह निष्कर्ष तो 'रंगभूमि' उपन्यास के संघर्ष एवं प्रतिपाद्य को एकदम उलट देता है, जो न उपन्यास का सत्य है, न प्रेमचंद और गांधी का डॉ. शर्मा पर मार्क्सवादी दुराग्रह इतना हावी है कि वह कृति, कृतिकार और उसके प्रेरणा-स्रोत का सत्य देखना ही नहीं चाहते। वे 'प्रगतिशील लेखक संघ' के संबंध में ऐसी ही भ्रम उत्पन्न करते हैं। वे लिखते हैं, 'प्रगतिशील लेखक संघ की नींव डालने में प्रेमचंद का सक्रिय सहयोग था।'[27] डॉ. शर्मा स्वयं इसके विरोधी वक्तव्य अपनी पहली पुस्तक 'प्रेमचंद' (1941) के सन् 1944 में छपे दूसरे संस्करण की भूमिका में देते हैं। वे लिखते हैं कि मुल्कराज आनंद एवं सज्जाद जहीर ने सन् 1935 में लंदन में 'प्रोग्रेसिव राईटर्स एसोसिएशन' का बीजारोपण किया था जिससे प्रेमचंद का कोई संबंध नहीं था तथा ये दोनों लेखक प्रेमचंद के हिंदी लेखन तथा 'हंस' के योगदान से पूर्णतः अपरिचित थे। यहां तक कि मुल्कराज आनंद ने 'न्यू इंडियन लिटरेचर' (1939) में एक लेख 'ऑन दि प्रोग्रेसिव राइटर्स मूवमेंट शीर्षक से लिखा और इसमें प्रेमचंद एवं उनके लखनऊ वाले अध्यक्षीय भाषण का उल्लेख तक नहीं है।[28] अतः डॉ. शर्मा अपने पहले वक्तव्य पर पर्दा इसलिए डाल रहे हैं क्योंकि वे जानते हैं कि सत्य कुछ और है। यह भी इतिहास के साथ एक प्रकार का मार्क्सवादी खिलवाड़ ही है।

डॉ. रामविलास शर्मा की 'गोदान' एवं 'मंगलसूत्र' की समीक्षा में मार्क्सवादी दृष्टिकोण तथा उसके विजय के उद्घोष से ही की गई है। यद्यपि वे कमल किशोर गोयनका के कुछ विचारों से सहमत हैं तथा उन्हें, वामपंथी लेखन-दृष्टि[29] के अनुरूप बताते हैं और वहां मुक्तिबोध की 'व्यक्तित्व के रूपांतरण वाली बात'[30] को याद भी करते हैं, परंतु वे अपने कुछ दुराग्रहों तथा मतों पर टिके हैं कि 'गोदान' की मूल समस्या 'ऋण की समस्या' है[31] तथा होरी 'मृत्यु -पर्यन्त संघर्ष करता है।[32] ये दोनों ही उनके निष्कर्ष तथ्यों पर आधारित नहीं है, जिसके कारण वे पहले मत का स्वयं ही खंड़न करते हुए लिखते हैं कि लोग यह समझ बैठे हैं कि 'गोदान' में ऋण समस्या के अलावा और कोई समस्या नहीं है[33] लेकिन वे इसका उत्तर नहीं देते कि होरी को यदि ऋण मिल जाता और आवश्यकतानुसार उसे पैसा मिलता रहता तो वह क्या पंचों, जमींदार, पुलिस और अपने भाई-बंधों के अन्याय से बच सकता था? होरी के पारिवारिक संबंधों में धर्मात्मापन, रूढ़िगत संस्कारों के कारण शोषण तथा 'महतो' बनने की आकांक्षा में ऋण की समस्या का कोई योगदान नहीं है। डॉ. शर्मा 'होरी के मृत्यु-पर्यंत संघर्ष' की अपनी धारणा को भी सतर्क सिद्ध नहीं पाते और वे उसकी 'निष्क्रियता', 'गतिहीनता' और भीतर ही भीतर निरंतर मरने में भी संघर्ष का आवेग देखते हैं।[34] असल में वे 'रंगभूमि' के सूरदास के संघर्ष और उसकी 'हीरोइक मौत' की तुलना में होरी के संघर्ष और मृत्यु को मार्क्सवाद के अधिक निकट पाते हैं, इस कारण वे हीरो की त्रासदी में उसकी संघर्ष-शीलता को प्रमुखता देते हैं, जिस वे सिद्ध नहीं कर पाते। कमल किशोर गोयनका ने लिखा था कि होरी अपने कृषक जीवन और कृषि संस्कृति के अस्तित्व की रक्षा के लिए तिल-तिलकर मरता रहता है, लेकिन वह अपनी किसानी जिंदगी का बचा नहीं पाता और मजदूर होकर मर जाता है।[35] डॉ. शर्मा इसे 'अस्तित्ववाद' से जोड़कर अपनी असहमति अंकित करते हैं, लेकिन वे यत्र-तत्र होरी की निष्क्रिय तथा रिस-रिस कर होने वाली मृत्यु को स्वीकार करते हैं। 'मंगलसूत्र' के संबंध में भी वे उसके अधूरे होने पर भी अपना मार्क्सवादी निष्कर्ष थोप देते हैं और उसके नायक देवकुमार (साहित्यकार) को मार्क्सवादी खूनी क्रांति से जोड़ देते हैं। वे लिखते हैं कि 'मंगलसूत्र' का नायक लगभग अकेला है, परंतु प्रेमचंद उसके द्वारा विदेशी हुकूमत के खूनी आतंक को खत्म करने के लिए नए निर्दयी खूनी हथियारों का इस्तेमाल कराना चाहते हैं।[36] डॉ. शर्मा के ये निष्कर्ष 'मंगलसूत्र' उपन्यास पर नहीं, मार्क्सवादी कपोल-कल्पना पर आधारित हैं, क्योंकि देवकुमार में मार्क्सवाद की कोई भी प्रवृत्ति नहीं है। वह ऐसा साहित्यकार है जिसे 'आत्म-संतोष' है, 'सौंदर्य-भावना' का उपासक है और 'आत्म-गौरव' से परिपूर्ण है। वह अपने बड़े पुत्र संतकुमार के अनुचित दबाव से पच्चीस वर्ष पूर्व बेची संपत्ति को मुकदमा करके वापिस लेने को तैयार हो जाता है और एक स्थिति में सोचता है कि मनुष्य में मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिंदों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है।[37] देवकुमार का यह निष्कर्ष उसे खलनायक बना देता है और वह स्वयं को हास्यास्पद भी बनाता है क्योंकि वह पच्चीस वर्ष पहले बेची जायदाद को वापिस लेने के लिए हथियार उठाने की सोचता है। देवकुमार ने अपनी इच्छा से जायदाद बेची थी और इस धन से ऐयाशी की थी-वेश्याओं के मुजरे, पितरों के पिंडदान

और यश के लिए नाटक-मंडलियों में धन बहाता है और पुत्र के 'पागल' घोषित करने की थमकी पर अपने सिद्धांतों के विपरीत मुकदमा करने को तैयार हो जाता है। ऐसा पात्र हथियार उठाने की कहे और मार्क्सवादी उसे अपने प्रचार के लिए खूनी क्रांति का नायक घोषित करें तो उनकी बुद्धि पर तथा उनके मार्क्सवाद पर हँसने के अलावा और क्या किया जा सकता है?

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी कारण लेनिन द्वारा ईर्ष्या, द्वेष तथा अहंकार की दुष्प्रवृत्तियों से लाभ उठाकर 'महात्मा' बनने को 'घोर अमंगल का सूचक' कहा है। इस पर भी डॉ. रामविलास शर्मा यह मानते हैं कि प्रेमचंद का 'समाजवाद की विजय' पर 'अटूट आस्था' थी।[38] अफसोस है कि डॉ. शर्मा प्रेमचंद की टूटती आस्था का इतिहास नहीं देखते। प्रेमचंद सन् 1920 से अंतिम समय तक अनेक बार साम्यवाद, खूनी क्रांति, रूस के विचार-साम्राज्य तथा समाजवाद में आई पूंजीवाद की बुराइयों की खुली आलोचना कर चुके थे। यहां तक कि 'गोदान' में प्रो. मेहता कई बार साम्यवादियों की कटु आलोचना करते हैं। अतः रूसी समाजवाद के बारे में उनके भ्रम टूट गए थे और उसके प्रति आस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी। डॉ. शर्मा भी अप्रत्यक्ष रूप से इस सत्यता को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं, जब वे लिखते हैं कि मेहता और होरी के जुड़ने पर जो व्यक्ति बनेगा वह प्रेमचंद जैसा होगा।[39] इसका अर्थ है कि मेहता में जो कम्युनिज्म और कम्युनिस्टों की आलोचना की प्रवृत्ति है, वह डॉ. शर्मा के अनुसार प्रेमचंद की भी प्रवृत्ति है। अतः साम्यवाद के प्रति प्रेमचंद की अटूट आस्था का उनका दावा भी मार्क्सवादियों की चालाकी का ही नमूना है। यहां यह कहना भी उचित होगा कि प्रेमचंद का रूप-निर्माण होरी, मेहता के साथ सूरदास को जोड़े बिना नहीं बन सकता। डॉ. शर्मा जानबूझकर सूरदास को शामिल नहीं करते, क्योंकि उसे जोड़ते ही गांधी और गांधीवाद को जोड़ना पड़ेगा और कोई भी मार्क्सवादी अपनी खूनी क्रांति की धारणा में उसके विरोधी को कैसे संबद्ध कर सकता है?

डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद के जीवन तथा उनकी प्रामाणिक जीवनी की समस्या के कुछ पक्षों पर कमल किशोर गोयनका तथा शैलेश जैदी द्वारा प्रस्तुत विभिन्न तथ्यों का उल्लेख करके उनकी खोज की सराहना न करके उन पर व्यंग्यात्मक टिप्पणियां की हैं तथा उनका सीधा उत्तर देने से बचने का प्रयत्न किया है। डॉ. शर्मा ने गोयनका के साथ जैदी की पुस्तक को भी देखा है और कई स्थानों पर दोनों में समान तथ्य होने की चर्चा की है, लेकिन डॉ. शर्मा यह जानते हैं कि जैदी ने गोयनका के शोध-प्रबंध को पढ़ा था, क्योंकि जैदी ने शोध-प्रबंध के अंत में इसका उल्लेख किया है, और उसकी प्रशंसा की है, परंतु उन्हें यह नहीं मालूम कि गोयनका ने सारे तथ्य स्वयं खोजे हैं, और जैदी की पुस्तक से कुछ भी नहीं लिया है। यही कारण है कि प्रेमचंद के जीवन के कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो गोयनका की पुस्तक में ही मिलते हैं। डॉ. शर्मा इसे स्वीकार करते हैं और गोयनका द्वारा प्रेमचंद के बैंक बैलेंस के उद्घाटन को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत भी करते हैं, जबकि उनकी टिप्पणी में व्यंग्य छिपा हुआ है। वे गोयनका द्वारा सरस्वती प्रेस की हड़ताल एवं उसके मैनेजर प्रवासी लाल वर्मा को प्रेमचंद द्वारा गबन के आरोप में निकालने के उद्घाटन से तो इतने विचलित हो जाते हैं कि कमल किशोर गोयनका पर सीधा आरोप लगाते हुए 'प्रेमचंद और उनका युग' पुस्तक में लिखते हैं- 'गोयनका की इस

स्थापना से महताबराय, प्रवासी लाल वर्मा, प्रेस के मजदूरों की हड़ताल आदि से संबंधित उनके उल्लेखों को मिलाकर पढ़ें तो प्रेमचंद की प्रामाणिक जीवनी के लिए उनकी तड़प का उद्देश्य स्पष्ट हो जाएगा। उद्देश्य है प्रेमचंद-साहित्य की प्रगतिशीलता का सफाया करना, अर्थात् भारतीय साहित्य की साम्राज्य विरोधी, सामंत विरोधी धारा में प्रेमचंद के योगदान को अस्वीकार करना।'[40]

डॉ. रामविलास शर्मा का यह तर्क बड़ा विचित्र है, परंतु है हिंदुस्तानी कम्युनिस्टों की सोच के ही अनुरूप। यही कम्युनिस्टों की वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ विचारधारा है कि प्रेमचंद के जीवन के जो प्रसंग छिपे रहे तथा जिन्हें उनके वामपंथी जीवनीकार अमृतराय ने गुप्त रखा था जिनसे कम्युनिस्टों की विचारधारा को आघात लग सकता है, उनका उद्घाटन ही न किया जाए। यह मार्क्सवाद की अद्भुत वैज्ञानिकता है जो प्रतिकूल तथ्यों एंव दस्तावेजों को नष्ट कर देना चाहती है। हिंदी के सभी मार्क्सवादियों ने ऐसे ही शब्दों में गोयनका द्वारा प्रस्तुत नवीन तथ्यों एवं दस्तावेजों पर टिप्पणी की हैं, लेकिन उनमें से एक भी यह कहने का साहस नहीं कर पाया कि ये तथ्य और दस्तावेज झूठे हैं। मैंने अपने कई लेखों में यह लिखा कि इनमें से कई मूल दस्तावेज मुझे अमृतराय ने दिए थे, अतः डॉ. रामविलास शर्मा, नामवर सिंह जैसे मार्क्सवादियों को अमृतराय से पूछना चाहिए था कि उन्होंने प्रेमचंद की जीवनी लिखते समय इन तथ्यों एवं दस्तावेजों का इस्तेमाल क्यों नहीं किया? डॉ. रामविलास शर्मा ने इसी प्रसंग में प्रेमचंद की दरिद्रता के प्रश्न को उठाया है और पूछा है कि यह प्रश्न इतना महत्वपूर्ण कैसे हो गया?[41] असल में प्रेमचंद के बैंक के बेलैंस के उद्घाटन से उनकी आर्थिक स्थिति का पूरा विवरण गोयनका ने प्रस्तुत किया तो मार्क्सवादियों द्वारा उनकी गरीबी का बनाया गया महल एकदम ढह गया और ऐसा लगा कि प्रगतिशीलों को सांप सूंघ गया है। मार्क्सवादी पिछले तीन-चार दशकों से समाज को यही समझा रहे थे कि प्रेमचंद गरीबी में पैदा हुए, गरीबी में जिंदा रहे और गरीबी में ही मर गए। उनका यह बहुप्रचारित मत जब खंडित हुआ तो डॉ. शर्मा दरिद्रता के प्रश्न को ही निरर्थक मानने लगे लेकिन वे जो निष्कर्ष देते हैं उनसे वे गोयनका पर मार्क्सवादी शब्दावली में आरोप लगाते हैं। वे लिखते हैं कि प्रेमचंद दरिद्र नहीं थे तो पैसा कमा रहे थे। पैसा कमाऊ लेखक देश के लिए, वह भी देश के निर्धन किसानों के लिए, साहित्य क्या लिखेगा?[42] इसी प्रकार का निष्कर्ष डॉ. शर्मा सरस्वती प्रेस में हुई हड़ताल एवं प्रवासी लाल वर्मा 'मालवीय' को गबन के आरोप में निकालने वाले प्रसंगों के उद्घाटन पर देते हुए लिखते हैं,'... अभी तो गोयनका ने कह दिया है, उससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि प्रेमचंद एक साधारण पूंजीपति व्यवसायी थे और अपने सहयोगियों और मजदूरों से वैसे ही पेश आते थे जैसे इस तरह के व्यवसायी पेश आते हैं।'[43]

ये दोनों ही निष्कर्ष डॉ. रामविलास शर्मा के हैं, गोयनका के नहीं। कमल किशोर गोयनका ने अपने लेखों में इन अज्ञात प्रसंगों का बस उद्घाटन किया है, परंतु निष्कर्ष डॉ. शर्मा निकाल रहे हैं। और अपने निष्कर्षों को गोयनका पर आरोपित कर रहे हैं। गोयनका ने प्रेमचंद की दरिद्रता की कपोल-कल्पना को दस्तावेजों से खंडित किया है, न कि उन्हें 'कमाऊ लेखक' बताया

है तथा प्रेस की हड़ताल आदि प्रसंगों को लिखकर प्रेमचंद के जीवन के कुछ अज्ञात अध्यायों का उद्घाटन किया है तथा कहीं भी उन्हें घटिया एवं मजदूरों के शोषण करने वाले व्यापारी के रूप में चित्रित नहीं किया है। डॉ. रामविलास शर्मा की इस बौखलाहट और व्यंग्यपूर्ण प्रत्यारोप का कारण यह है कि वे इन प्रसंगों से प्रेमचंद की बनाई गई मार्क्सवादी छवि को ध्वस्त होता हुआ पाते हैं। अतः वे गोयनका पर आरोप लगाते हैं कि देखो, यह गोयनका प्रेमचंद को कितना घटिया इनसान बता रहे है। डॉ. शर्मा गोयनका के उस लेख पर भी टिप्पणी करते हैं जिसमें उन्होंने डॉ. रघुवीर सिंह को लिखे प्रेमचंद के उस पत्र की चर्चा की है जिसमें उन्होंने हिंदू विधवा के विवाह के विचार को वापिस ले लिया था। डॉ. शर्मा पहले टिप्पणी करते हैं कि प्रेमचंद ऐसा लिखकर रघुवीर सिंह को 'चकमा' दे रहे थे[44] और बाद में लिखते हैं कि गोयनका को तो' अद्भुत रस से विशेष प्रेम है।[45] स्थिति स्पष्ट है कि डॉ. गोयनका के नए तथ्यों का उल्लेख करते हैं, उन्हें सत्य भी मानते हैं, परंतु वे उन पर प्रेमचंद और उनके साहित्य की 'प्रगतिशीलता' को ध्वस्त करने का आरोप लगाते हैं। डॉ. शर्मा ने यह आरोप पूरी पुस्तक में कई बार लगाया है। इसके लिए वे प्रेमचंद पर भी छींटाकसी करते हैं कि उन्होंने रघुवीर सिंह को चकमा दिया और 'प्रेमाश्रम' में ट्रस्टीशिप के चित्रण में पूंजीपतियों का दबाव था, क्योंकि वे जनता का शोषण के प्रति आक्रोश देखना नहीं चाहते थे। ऐसा आरोप अभी तक किसी मार्क्सवादी ने प्रेमचंद पर नहीं लगाया, परंतु डॉ. शर्मा अपने चरित्र नायक को भी क्षमा नहीं करते।

डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद को लेकर आलोचना के दो विचार-क्षेत्र बना दिए गए हैं। उनके विचार में आलोचना की एक ही कसौटी थी और वह थी मार्क्सवादी दृष्टि और इसे आरंभ करने का श्रेय डॉ. शर्मा ने स्वयं ले लिया है। डॉ. शर्मा इस का श्रेय डॉ. शिवदान सिंह चौहान को नहीं देते जिन्होंने अपने लेख 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' (विशाल भारत', मार्च, 1937) में पहली बार प्रेमचंद की प्रगतिशीलता की चर्चा की थी, क्योंकि डॉ. शर्मा के अनुसार चौहान ने प्रेमचंद के उपन्यासों तक को पढ़ा नहीं था और वे प्रेमचंद के हिंदी-लेखन से अपरिचित मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर जैसे कामरेड़ों के निर्देशन में काम कर रहे थे जो मार्क्सवाद न होकर 'वामपंथी अवसरवाद' एवं 'मार्क्सवाद का मुलम्मा' था।[46] अतः डॉ. शर्मा ने मार्क्सवादी नेताओं को यह प्रस्ताव किया कि 'परंपरागत आलोचना का मार्ग छोड़कर यदि 'मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रेमचंद का विश्लेषण किया जाए तो भारतीय समाज का एक भरा-पूरा चित्र उनके साहित्य में उभरकर सामने आता है।[47] स्पष्ट है कि प्रेमचंद की मार्क्सवादी व्याख्या पार्टी नेताओं से सलाह-परामर्श के बाद शुरू की गई और डॉ. शर्मा ने उसका नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। प्रेमचंद की दूसरी समीक्षा-पद्धति 'भारतीयतावादी' है, जिसका नामकरण भी डॉ. शर्मा ने किया है, परंतु इसे आरंभ करने का श्रेय वे कमल किशोर गोयनका को देते हैं, जबकि गोयनका ने न तो किसी पार्टी नेताओं से बातचीत की थी और न अपनी आलोचना-पद्धति को कोई नाम ही दिया था। डॉ. शर्मा को ही इसका भी श्रेय है कि वे मार्क्सवादी पद्धति को एकमात्र वैज्ञानिक पद्धति मानते हुए 'भारतीयतावादी' पद्धति को उसका

शत्रु घोषित करते हैं और प्रेमचंद के संबंध में उसकी स्थापनाओं से मार्क्सवादी विवेचना एवं स्थापनाओं के ध्वस्त होने का संकट देखते हैं। जिस विचार, दर्शन या धर्म की बुनियाद अपने देश में नहीं होगी, वह हमेशा हिलने-डुलने, गिरने तथा नष्ट होने के संकट से जूझता रहेगा। डॉ. शर्मा में 'प्रेमचंद' वाली पहली पुस्तक में 'भारतीयता' और 'भारतीय संस्कृति' में गहरा विश्वास है और वे उन्हें भारतीयतावादी ही मानते हैं और दूसरी किताब में प्रेमचंद को 'भारतीय संस्कृति' का उपासक मानते हैं, परंतु उन पर कम्युनिस्ट पार्टी के कामरेडों तथा प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने के संकल्प का इतना दबाव है कि उसके लिए हर प्रकार के हथियारों का इस्तेमाल करते हैं। इस पर भी वे इन मार्क्सवादी हथियारों का प्रयोग भारतीयतावादी आलोचना को आहत करने में जितना करते हैं, उतना वे प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने में नहीं कर पाते, क्योंकि वे कभी मार्क्सवादी नहीं रहे। आखिर उन पर बनावटी लेप कितना चढ़ाया जा सकता था?

डॉ. रामविलास शर्मा ने इन दोनों आलोचना पद्धतियों की प्रवृत्तियों को रेखांकित किया है। वे मार्क्सवादी प्रवृत्ति के साथ हैं इस कारण उसमें उन्हें गुण ही दिखाई देते हैं। उनके अनुसार ये गुण हैं- 'यह एक मात्र वैज्ञानिक पद्धति है आलोचना की साम्राज्य-सामंत विरोधी है, वर्ग-संघर्ष की प्रेरक मजदूरों की भूमिका की प्रमुखता यथार्थवाद और प्रगतिशीलता की जनक, अहिंसा एवं राष्ट्रीयता की विरोधी, आदि।' डॉ. शर्मा के अनुसार भारतीयतावादी आलोचना साम्राज्य-सामंतवादियों तथा पूंजीपतियों की सहयोगी है, हिंसक क्रांति, वर्ग-संघर्ष एवं प्रगतिशीलता की शत्रु है और दूसरा मूल उद्देश्य प्रेमचंद की मार्क्सवादी छवि अर्थात् उनकी प्रगतिशीलता को नष्ट करना है। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद पर आलोचनात्मक पुस्तकें लिखकर वास्तव में मार्क्सवादी आलोचना का चरित्र स्पष्ट कर दिया है। इस आलोचना का आधार एवं वैज्ञानिकता कम्युनिस्ट पार्टी के सिद्धांत तथा पार्टी नेताओं के आदेश हैं। आलोचना पद्धति अपने उद्देश्यों के लिए इतिहास को तोड़ती हैं, कुछ अंश को छोड़ती है और अपने निष्कर्ष आरोपित करती है। इसकी वैज्ञानिकता इतनी ही है कि यह नई खोजों में से उन्हें ही स्वीकार करती हैं जो मार्क्सवाद के हित में होती है, शेष को ये पूंजीपतियों की साजिश बताकर उन्हें अपमानित और तिरस्कृत करती हैं तथा उन्हें 'प्रगतिशीलता पर आक्रमण बताकर शत्रु-चिंतन का अंग बना देती हैं। डॉ. शर्मा के विवेचनानुसार 'प्रगतिशीलता', 'संघर्षशीलता' और 'यथार्थवाद' जैसे शब्द मार्क्सवादी आलोचना के शब्द हैं और इनके द्वारा व्यक्त धारणाएं एवं विवेचन मार्क्सवादी हैं। वे इन तीन शब्दों का प्रयोग प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने के लिए खूब करते हैं। वे इसकी चिंता नहीं करते कि प्रेमचंद इनके संबंध में क्या कहते हैं। प्रेमचंद 'प्रगतिशील' शब्द को निरर्थक मानते हैं, 'संघर्ष' को पशुता कहते हैं और स्वयं को कभी यथार्थवादी नहीं कहते, बल्कि वे अपने को 'आदर्शवादी' कहते हैं। डॉ. शर्मा तथा उनके साथी कामरेडों ने यह प्रचारित किया कि ये शब्द मार्क्सवादी आलोचक के शब्द हैं, परंतु यह भी मार्क्सवादी चालाकी का हिस्सा था। भारत में मार्क्सवाद के आगमन से पूर्व क्या साहित्य आलोचक इन शब्दों से अपरिचित थे? 'प्रगतिशीलता', 'संघर्षशीलता', तथा 'यथार्थवाद' मार्क्सवाद के पर्याय नहीं हैं। प्रेमचंद साहित्य की आलोचना में गांधी का निष्कासन भी इसी चालाकी का हिस्सा है। गांधी के बिना प्रेमचंद को समझना

असंभव है, परंतु मार्क्सवादी डॉ. रामविलास शर्मा ने गांधी और प्रेमचंद के मिलन की ऐतिहासिक सत्यता के बहिष्कृत करके इसे संभव बना दिया है, परंतु यह वैज्ञानिक आलोचना का नहीं, इतिहास का अंग-भंग करने वाली कम्युनिस्टी आलोचना का ही नमूना है। देश के स्वाधीनता-संग्राम में गांधी को हाशिये में डालकर रूसी क्रांति के प्रभाव को देशव्यापी बताकर तो डॉ. शर्मा ने इतिहास के साथ मजाक किया है। यह तो इतिहास और गांधी के साथ धोखा है। डॉ. शर्मा ने प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने में इसका बिलकुल ध्यान नहीं रखा है कि वे मार्क्सवाद, रूसी क्रांति, वर्ग-संघर्ष आदि को किस दृष्टि से देखते थे। प्रेमचंद एक तो गांधी की अहिंसा सत्याग्रह-हृदय-परिवर्तन आदि के अनुयायी थे परंतु मार्क्सवादी हिंसक क्रांति, वर्ग-संघर्ष, मशीनी सभ्यता भूमि पर राज्य के अधिकार आदि के विरोधी थे। उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा व्यक्तिशः परिष्कार की नीति प्रिय थी। अतः स्वयं को मार्क्सवादी कहना एवं भारत को मार्क्सवाद का अनुयायी बनाना दोनों ही उनकी कल्पना में भी नहीं था। प्रेमचंद ने एक बार स्वयं को 'कम्युनिस्ट' कहा था, परंतु तभी यह भी कहा था कि उनका कम्युनिज्म रूसी नहीं है। गांधी भी स्वयं को 'कम्युनिस्ट' कहते थे, लेकिन वे रूसी कम्युनिज्म के कटु आलोचक थे। अतः डॉ. रामविलास शर्मा की प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने की चेष्टा स्वयं प्रेमचंद की दृष्टि में अनुचित है और इतिहास के विरुद्ध भी है। प्रेमचंद बार-बार 'भारतीय आत्मा'[48] की रक्षा और 'भारतीयता की छाप'[49] का संकल्प दुहराते हैं और डॉ. रामविलास शर्मा भी स्वच्छ मन से कभी-कभी इस सत्य को स्वीकार करते हैं। इसलिए प्रेमचंद साहित्य की आलोचना-पद्धति भारतीयतावादी ही हो सकती है और इसी स्वदेशी पद्धति से तत्कालीन भारतीय समाज की भारतीयता का स्वरूप, उसकी चेतना एवं संघर्ष, तथा उसके यथार्थ एव स्वप्नों को समझा जा सकता है। प्रेमचंद को समग्रता में समझने-जानने का यही एक मात्र भारतीयतावादी रास्ता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रगतिशील नेताओं को समझाया था कि प्रेमचंद की मार्क्सवादी व्याख्या से भारतीय समाज का 'एक भरा-पूरा चित्र' उभरकर सामने आएगा। उन्होंने स्वयं इस कार्य को किया, परंतु समाज का समग्र रूप सामने नहीं आया, और जो आया तथा बताया गया वह मार्क्सवादी छवि का संसार था जो मात्र दस-पंद्रह रचनाओं के आधार पर निर्मित किया गया था। प्रेमचंद के भारतीय समाज को उसकी समग्रता में केवल भारतीयतावादी मूल्यांकन पद्धति से ही समझा जा सकता है जो उनके संपूर्ण साहित्य को आधार बनाता है तथा जो अमृत और विष, स्वर्ग एवं नरक, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य तथा आदर्श एवं यथार्थ को जीवन का अंग मानता है। डॉ. शर्मा की मार्क्सवादी पद्धति प्रेमचंद को मार्क्सवाद में 'कन्वर्ट' करती है, उनका धर्म-परिवर्तन करके मार्क्सवादी बनाती है, जबकि भारतीयतावादी पद्धति प्रेमचंद जो हैं, जैसे हैं, वैसा ही प्रस्तुत करती है। प्रेमचंद भारतीय लेखक हैं तथा भारतीयता उनकी प्राण-शक्ति है। इस भारतीयता की बुनियाद अटूट देश प्रेम है, जिसकी दिशाएं हैं- स्वतंत्रता, स्वराज्य, समानता, बंधुत्व एकता, स्व-संस्कृति, स्व-भाषा और भारतीय स्वत्व की रक्षा। इसमें अंग्रेजी साम्राज्यवादियों का विरोध है और सामंतों का भी, अन्याय-दमन-शोषण से संघर्ष है, समाज को जड़ता-अंधविश्वास-कुप्रथाओं से मुक्त करना एवं उसे आधुनिक तथा प्रगतिशील

बनाने का संकल्प है। ये सारी प्रवृत्तियां उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी के राष्ट्र- नायकों, समाज-सुधारकों, धार्मिक गुरुओं तथा साहित्यकारों में विद्यमान हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कविवचन सुधा' के सिद्धांत वाक्य में 'स्वत्व निज भारत गहै' जैसे मंतव्य को स्थान दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'स्वरूप की स्वतंत्र सत्ता' और 'देशबद्ध मनुष्य' की अनिवार्यता के साथ स्पष्ट शब्दों में इसे मान्यता दी कि भारतवर्ष की उन्नति का मंदिर जब निर्माण होगा तब उसकी प्राचीन नींव पर ही होगा। यह वह भूमि नहीं है, जहां कोई सर्वथा विदेश का वृक्ष लाकर लगा दे और वह भली-भांति पनपे। इस भारतीयता में यदि नहीं है तो डॉ. रामविलास शर्मा की रूस की खूनी क्रांति, हिंसक वर्ग-संघर्ष, राज्य का चल-अचल संपत्ति पर अधिकार, विचार की तानाशाही और विरोधियों की हत्या की योजनाएं। डॉ. रामविलास शर्मा की भविष्यवाणी है कि प्रेमचंद को लेकर मार्क्सवाद और भारतीयता का यह विचारधारात्मक संघर्ष इक्कीसवीं सदी में भी चलता रहेगा। बीसवीं सदी के अंत में ही मार्क्सवाद की मृत्यु हो गई, इसे डॉ. शर्मा ने अपने-जीवन-काल में देखा था। यदि इक्कीसवीं सदी में वह फिर पैदा हुआ और उसने इन्हीं घातक हथियारों का इस्तेमाल किया तो वह भस्मासुर के समान स्वयं को सदैव के लिए नष्ट कर लेगा। जब तक भारत है और प्रेमचंद हैं, यह भारतीयता ही हमारी जीवन-दृष्टि, आलोचना-दृष्टि तथा विकास-दृष्टि बनी रहेगी। □

सदंर्भ सूची

1. 'प्रेमचदं और उनका युग', चौथा संस्करण, पृ. 190, 2. वही, पृ. 268, 3. 'प्रेमचंद' द्वितीय संस्करण, 1944 पृ. 39 व 44, 4. 'प्रेमचदं और उनका युग', पृ. 111, 5. वहीं, पृ. 53 व 130 6. वही, पृ. 97-98, 7. वही, पृ. 131, 8. वही, पृ. 130, 9. वही, पृ. 160, 10. वही, भूमिका से, पृ.7, 11. वही, पृ. 268, 12. वही, पृ.39, 13. वही, भूमिका से, पृ. 6-7, 14. वही, पृ. 198 15. वही, पृ. 57, 16. वही, पृ. 198, 17. वही, पृ. 200, 19. वही, पृ. 194, 20. वही, पृ. 195, 21. 'साम्यवाद से ऐसी ही लंबी चौड़ी आशाएं बांधी गई थीं, मगर अनुभव यह ही रहा है कि साम्यवाद केवल पूंजीपतियों पर मजदूरों की विजय का आंदोलन है। न्याय के अन्याय पर, सत्य के मिथ्या पर स्वार्थपरता, जो पूंजीवाद के नाम से प्रसिद्ध है, साम्यवाद के रूप में आकर अणुमात्र की कम नहीं होती, बल्कि उससे और भी भयंकर हो जाने की संभावना है।' 'स्वदेश', 18 मार्च, 1928 के अंक में 'राज्यवाद और साम्राज्यवाद' शीर्षक लेख से, यह लेख असंकलित है।, 22. 'प्रेमचंद और उनका युग', पृ. 43, 23. वही, पृ. 81, 24. वही, पृ. 80, 25. वही, पृ. 79, 26. वही, पृ. 159 व 163, 27. वही, पृ. 134 व 141, 28. 'प्रेमचंद', दूसरा संस्करण, 1994, पृ. 17, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 29. 'प्रेमचंद और उनका युग' पृ. 245, 30. वही, पृ. 249, 31. वही, पृ.96, 32. वही, पृ. 39, 33. वही, भूमिका से, पृ. 34. वही, 97, 35. 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान', पृ. 185-86, 36. वही, पृ. 141, 37. 'मंगलसूत्र' उपन्यास से, 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड-एक, पृ.513, 37 (क) गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 27, 38. डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक के पृष्ठ 141 पर लिखते हैं। कि प्रेमचंद को 'मार्क्सवाद की नई

वैज्ञानिक विचारधारा की क्रांतिकारी भूमिका उसका युगांतरकारी महत्व स्पष्ट नहीं था। ऐसी स्थिति में उनका यह मत विश्वासनीय नहीं रहता कि 'समाजवाद की विजय' पर उनकी अटूट आस्था थी। जब उन्हें साम्यवाद का पूर्ण ज्ञान ही नहीं था तथा उसकी भूमिका से भी वे अपरिचित थे तो उसकी विजय के प्रति अटूट आस्था का कोई अर्थ नहीं। वही, पृ. 249, 39. वही, पृ. 106, 40. वही, पृ. 262-63, 41. वही, पृ. 261, 42. वही, पृ. 261, 43. वही, पृ. 262, 44. वही, पृ. 253, 45. वही, पृ. 257, 46. वही, पृ. 169-71, 47. 'प्रेमचंद', दूसरे संस्करण की भूमिका से पृ. 21, 48. 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', भाग-2, पृ.34, 49. 'हंस' अप्रैल, 1932, विविध-प्रसंग'-2 पृ. 91 पर संकलित।,50. 'चिंतामणि', भाग-एक पृ. 69।

'गोदान' की रचना का रहस्य : रूपरेखा अंग्रेजी में

'गोदान' उपन्यास हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में ही नहीं विश्व की भाषाओं में एक कालजयी रचना के रूप में माना जाता है परंतु हमारे आलोचकों में इसकी रचना के रहस्यों को जानने की कोई उत्सुकता उत्पन्न नहीं हुई। आज जो प्रेमचंद के हिमायती हैं, तथा जो उनहें वामपंथी खेमे के धकेलने पर लगे हैं, वे सोचें कि उन्होंने प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व के पीछे ऐसे रहस्यों को खोजने के लिए क्या काम किया है? यह उनका मिथ्या अहंकार है कि उन्होंने प्रेमचंद का सब कुछ जान लिया है। प्रेमचंद की रचना-प्रक्रिया के संबंध में अनेक रहस्य अभी तक दबे पड़े हैं, जो इतने मूल्यवान हैं कि उनके उद्‌घाटन से प्रेमचंद संबंधी हमारे ज्ञान का विस्तार हो सकता है। ऐसा ही एक रहस्य यह है कि प्रेमचंद तथा उपन्यास तथा कहानी या लेख भी लिखने से पहले अंग्रेजी में उसकी रूपरेखा तैयार करते थे, फिर उर्दू या हिंदी में रचना करते थे और बाद में उसका हिंदी या उर्दू में अनुवाद करते थे। हिंदी में ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा जिसमें किसी लेखक की सर्जनात्मकता तीन-तीन भाषाओं से जुड़ी हो। यह खेदजनक है कि आज तक इन तीन भाषाओं में फैली प्रेमचंद की सर्जनात्मकता का मूल्यांकन नहीं हुआ।

'गोदान' की सृजनपूर्व रूपरेखा भी अंग्रेजी में मिलती है। यह रूपरेखा तीन पृष्ठों की थी, परंतु इसका पहला पृष्ठ अब गायब है। इस रूपरेखा के उपलब्ध दो पृष्ठों में क्रम संख्या 3 से 12 तक के आठ सूत्र मिलते हैं इसका अर्थ है कि इसके आरंभिक दो सूत्र उपलब्ध नहीं है जो निश्चय ही महत्वपूर्ण रहे होंगे। इसके शेष आठ सूत्रों में कथा के महत्वपूर्ण बिंदु, पात्रों की चरित्र-रेखाएं, दृश्यों की रूप-रचना आदि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसकी 3 से 12 क्रम संख्या तक उपलब्ध अंग्रेजी रूपरेखा निम्नलिखित है-

3. होरी गाय खरीदता है। सारा गांव देखने आता है। शोभा उदासीन है, लेकिन हीरा ईर्ष्या से भर उठता है। वह गाय को विष देता है। होरी उसे देखता है, लेकिन पुलिस में उसकी रिपोर्ट नहीं करता।

4. दशहरा उत्सव को मानने के लिए सारा गांव जमींदार के पास जाता है। होरी अपना जौ का भंडार बेचता है। वह अपना चेहरा छिपा नहीं पाता (संभवतः जमींदार से-गोयनका), वह (जमींदार-गोयनका) उसका लगान बढ़ाना चाहता है। जमींदार का प्रभावित होना आवश्यक है। पार्टी जमींदार के पास जाती है, वहां एक नाटक होता है, एक प्रदर्शन, एक धरती-यज्ञ।

जमींदार दयालु और दानी है। वह अपनी कहानी कहता है। वह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य भी है। (वह अध्यक्ष पद के लिए खड़ा होता है- यह अंश कटा है, गोयनका)। वहां अफसरों को प्रसन्न करने के लिए दावतें एवं दान देता है। किसान संतुष्ट होकर लौटते हैं। झुनिया भी प्रदर्शन में जाती है। गोबर प्रस्ताव करता है। वह विवाहित नहीं है। विवाह के लिए धन चाहिए। झुनिया आत्म-समर्पण कर देती है।

5. झुनिया के एक (पुत्र होता है- पंचायत। गोबर कलकत्ता भाग जाता है। पंचायत भारी दंड वसूलती है। प्रायश्चित के लिए होरी को तीर्थ-यात्रा पर जाना पड़ता है। उसकी पैतृक संपत्ति गिरवी रख दी जाती है। वह ब्याज देने में असमर्थ है। गोबर वापस नहीं आता। तब सोना का विवाह होता है। धन है न संपत्ति है। वह एक दैनिक श्रमिक हैं लड़कियां भी उसके साथ काम करने जाती हैं। संपूर्ण मानसिकता बदल जाती है।

6. संपत्ति को छुड़ाना है लड़की ('बेच दी गई'- यह अंश कटा है, गोयनका) की शादी हो जाती है। संपत्ति अधिकार में आ जाती है। तब वृद्धि (जायदाद) में बढ़ोतरी। महुआ के लिए होरी का भाइयों के साथ झगड़ा। होरी पिटता है। वह भाइयों से मुकदमा लड़ता है। भाइयों को सजा हो जाती है। होरी ('लाना है- कटा है, गोयनका) दृश्य का आनंद लेता है, परंतु अंत में परिवार की देखभाल करता है।

7. भोला के लड़के अलग हो जाते हें। झुनिया मर जाती है (उसकी एकमात्र पुत्री) भोला उसके बच्चों का पालन-पोषण करने लगा। वह अपना हिस्सा बेटों को दे देता है और ('एक साधु बन जाता है'- यह अंश कटा है, गोयनका)। जमींदार लड़की का पालन-पोषण करता है।

8. जमींदार का बड़ा लड़का वकील, (कौंसिल का सदस्य)। उसका परिवार उसे जाति से बहिष्कृत कर देता है। वह एक सामाजिक कार्यकर्ता है तथा किसान उसका सम्मान करते हैं।

9. होरी की छोरी लड़की बेच दी जाती है। फसल इतनी ही होती है जिससे केवल लगान दिया जा सके। जानवरों को खिलाना था, अपना पेट भी भरना था और परिवार का भी। वह क्या कर सकता था, वह शरीर से कमजोर था। झिंकी आजीविका के लिए कठोर परिश्रम कर रही थी। ऐसी स्थिति में वह वृद्ध आदमी अपनी पत्नी को बिना बताए लड़की को बेच देता है। वह अपनी शर्मिंदगी को छिपाने के लिए एक कहानी गढ़ लेता है।

10. गोबर एक सौम्य व्यक्ति बनकर लौटता है। गोबर रहने के कुछ अनुभव बताता है। वह झुनिया को भूल गया है, परंतु जब संदेहास्पद साधनों से काफी धन कमा लेता है, उसमें आध्यात्मिक जागृति होती है और जल्दी ही घर लौट आता है। उसका पिता मृत्यु-शैय्या पर है, लेकिन वह फिर अपने घर में जगह नहीं देता है। गोबर फिर झुनिया के साथ रहने लगता है।

11. भोला एक छोटी उम्र की विधवा को पत्नी बनाकर लाता है। वह होरी के साथ रहने को आता है। उसके लिए एक झोपड़ी बनाई जाती है। वह चोरी करने लगता है, क्योंकि उसे कोई काम नहीं मिल पाता है। जंगी इस स्त्री की ओर आकर्षित होता है और वे चुपके-चुपके मिलने लगते हैं। एक दिन वह स्त्री उसे छोड़ देती है और जंगी के साथ चली जाती है। भोला

('दुःख से मर जाता है'- अंश काट दिया है, गोयनका) बेशर्म बनकर वर्षों जंगी के साथ रहता है। एक दिन उसकी पत्नी (अस्पष्ट, गोयनका) उसे फटकारती है और झाड़ू से पीटती है। भोला का अंत हो जाता है।

12. थका-हारा होरी लस्टम-पस्टम अपनी जिंदगी घसीटता है। गोबर अप्रत्यक्ष रूप में अपनी माता के माध्यम से उसकी मदद करता है, जो निष्ठा से पति की सेवा करती है। अंत में उसका समय आता है और वह मर जाता है। गोबर उसके लिए गोदान करता है। XXX कृषि प्रदर्शनियां, उन्नति, साहित्यिक आंदोलन, चीनी मिलें, सहकारिता का भी विवरण देना है।

'गोदान' की यह आरंभिक रूपरेखा सृजन-प्रक्रिया के अनेक रहस्यों को उद्घाटित करती है। प्रेमचंद के मानस में उत्पन्न 'गोदान' के बिंब की एक झलक तो इस रूपरेखा से मिल ही जाती है। साथ ही सृजन-प्रक्रिया के दौरान वे किन कथा-प्रसंगों को छोड़ देते हैं, और किस नए प्रसंगों की अवतारणा करते हैं, इसका रहस्य भी इस रूपरेखा और उपन्यास को साथ-साथ रखने से उद्घाटित होता है। प्रेमचंद के संबंध में समीक्षकों की यह आम धारणा रही है कि वे आरंभिक रूपरेखा का आधार ही रचना में प्रवृत्त होते हैं। और तदनुसार की कृति का निर्माण करते हैं। 'गोदान' की यह रूपरेखा न केवल इस सर्वमान्य मान्यता को झुठला देती है, बल्कि प्रेमचंद की सृजन क्षमताओं का चित्र उपस्थित करते हुए यह स्वष्ट करती है कि प्रेमचंद किस रूप में और कितनी मात्रा में पूर्व निर्धारित रूपरेखा से स्वयं को मुक्त करके रचना को उसकी स्वाभाविक प्रक्रिया में विकसित होने देते हैं। कोई भी रचना बंधे-बंधाए फार्मूले के आधार पर निर्मित होकर महान नहीं बन सकती। 'गोदान' की यह रूपरेखा और उससे 'गोदान' उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन इस धारणा की सत्यता को सिद्ध करता है। यहां यह देखना उचित होगा कि प्रेमचंद ने रूपरेखा के अनुरूप कहां और कितनी रचना की तथा कहां और कितने नए कथा-प्रसंगों एवं चरित्र-रेखाओं की सृष्टि की।

3. रूपरेखा की क्रम-संख्या 3 में दिए गए कथा-सूत्र में भी लगभग उसी रूप में चित्रित किए गए हैं। होरी गाय खरीदता है और सारा गांव देखने आता है। होरी के दोनों भाइयों-शोभा एवं हीरा की प्रतिक्रिया दूसरी होती है। वे गाय को देखने नहीं आते। 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद ने इसी संबंध में लिखा है- 'सारा गांव गाय देखने आया। नहीं आए शोभा और हीरा जो अपने सगे भाई थे।' हीरा तो ईर्ष्या से भर गया और गाय को विष खिला दिया। रूपरेखा और उपन्यास दोनों में होरी विष खिलाते हुए हीरा को देखता है, लेकिन पुलिस में रिपोर्ट नहीं करता। इस प्रकार क्रम संख्या-3 में दिए गए कथा-सूत्र ही कथा की रचना के आधार बनते हैं।

4. क्रम-संख्या-4 से प्रेमचंद ने कुछ कथा-सूत्र ग्रहण करके तदनुरूप कथा की सृष्टि की है, लेकिन कुछ कथा-प्रसंग छोड़ भी दिए हैं। रूपरेखा के अनुसार 'गोदान' उपन्यास में जमींदार के यहां दशहरा का उत्सव होता है, होरी शगुन के रुपए देता है, जमींदार के यहां एक धरती-यज्ञ और प्रहसन होता है। रूपरेखा के अनुसार होरी जौ का भंडार बेचकर शगुन के रुपए देता है, परंतु उपन्यास में ये रुपए बांस बेचकर प्राप्त करता है। रूपेरखा में जमींदार किसानों के सम्मुख अपनी राम-कहानी कहता है, जबकि उपन्यास में वह केवल होरी से बातचीत करता है और

अपनी आर्थिक कठिनाइयों की कहानी कहता है। दूसरे, उपन्यास में लगान बढ़ाने और होरी का चेहरा छुपाने वाला प्रसंग भी नहीं है। इसके अतिरिक्त झुनिया और गोबर का प्रसंग भी रूपरेखा के अनुसार नहीं है। उपन्यास में झुनिया और गोबर इस समारोह में नहीं आते और न जमींदार के यहां मिलते हैं। उपन्यास में यह प्रसंग एकदम बदल गया है। गोबर और झुनिया की पहली मुलाकात गाय लाते समय होती है। हां, रूपरेखा के समान उपन्यास में भी वह गोबर के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देती है।

5. क्रम संख्या-5 के अधिकांश कथा-प्रसंग उपन्यास में छोड़ दिए गए हैं। उपन्यास में न तो झुनिया के लड़की होती है (उसे पुत्र होता है जिसका नाम मंगल है-गोयनका), न पंचायत और न गोबर कलकत्ता भागकर जाता है। झुनिया को रखने के दंड-स्वरूप गांव वाले होरी को जाति से निकाल देते हैं, लेकिन रूपरेखा के समान उपन्यास में होरी प्रायश्चित स्वरूप न तो तीर्थ-मात्रा करता है और न पैतृक-संपत्ति गिरवी रखता है। उपन्यास में रूपरेखा के अनुरूप होरी दैनिक श्रमिक तो बनता है, पर उपन्यास के अंत में, न कि इन प्रसंगों के घटित-काल में। उपन्यास में गोबर गांव छोड़कर भागता तो अवश्य है, लेकिन वह कलकत्ता के स्थान पर लखनऊ जाता है। हां, सोमा के विवाह का प्रसंग रूपरेखा और उपन्यास दोनों में है।

6. क्रम-संख्या-6 की कथा प्रेमचंद ने उपन्यास में नहीं दी है। उसके भी महत्वपूर्ण प्रसंग रचनात्मक धरातल पर आने से रह गए हैं। उपन्यास में होरी मजदूरी करके संपत्ति नहीं छुड़ाता और न महुआ के कारण भाइयों में झगड़ा होता है। होरी के पिटने, भाइयों पर मुकदमा चलाने, भाइयों को सजा होने तथा इन पर होरी का आनंद अनुभव करने का प्रसंग उपन्यास में नहीं हैं। लेखक ने सृजन के के क्षणों में इसे अनुपयोगी और निरर्थक समझा, क्योंकि होरी के चरित्र का जो रूप लेखक दे रहा था अथवा देना चाहता था उसमें इतनी यथार्थवादी घटना को देना उन्हें संभवतः उचित प्रतीत नहीं हुआ।

7. क्रम-संख्या-7 में झुनिया के मरने तथा उसकी लड़की का जमींदार द्वारा पालन-पोषण करने के जो प्रसंग दिए गए हैं, वे 'गोदान' उपन्यास में नहीं हैं। 'गोदान' में न तो झुनिया मरती है और न जमींदार उसकी लड़की (लड़के) का पालन-पोषण करता है। उपन्यास में झुनिया अंत तक जीवित रहती है। और उसके बेटे मंगल का पालन-पोषण पिता तथा दादा करते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद ने सभी प्रसंगों में परिवर्तन कर दिया है।

8. क्रम-संख्या-8 के कथा-प्रसंगों को भी उपन्यास में कोई स्थान नहीं मिला है। रायसाहब के उपन्यास में न तो दो पुत्र हैं और न उनका बेटा झुनिया की पुत्री से शादी करता है। उपन्यास में रायसाहब का लड़का रूद्रपाल मालती की छोटी बहन सरोज से विवाह करता है और इंग्लैंड चला जाता है। रूपरेखा के अनुरूप उपन्यास में रूद्रपाल का चरित्र भी विकसित नहीं होता है। वह न तो म्युनिसिपल नौकर है, न राष्ट्रवादी नेता और न किसानों का सम्मान प्राप्त करने वाला सामाजिक कार्यकर्ता। उपन्यास में तो वह पिता पर दस लाख रुपए का दावा करता है। इस प्रकार रायसाहब के पुत्र का चरित्र तो कुछ दूसरे ही रूप में सामने आता है।

9. क्रम-संख्या-9 के अनुरूप उपन्यास में भी होरी अपनी पुत्री को बेचता है, लेकिन रूपरेखा के सामने पत्नी की जानकारी के बिना ऐसा नहीं करता। उपन्यास में होरी तथा उसकी पत्नी धनिया दोनों सहमत होते हैं, तभी रूपा दो सौ रुपए लेकर बेची जाती है। इस कथा-सूत्र से ज्ञात होता है कि प्रेमचंद ने धनिया का नाम झिंकी रखा था जो उपन्यास में धनिया के रूप में बदल गया।

10. क्रम-संख्या-10 में दिए गए गोबर संबंधी कुछ प्रसंग उपन्यास में भी हैं। गोबर बाहर से लौटता है, लेनिक रूपरेखा के सामने सौम्य बनकर नहीं, शहरी चालाक बनकर। उपन्यास में रूपरेखा के अनुरूप गोबर में आध्यात्मिक जागृति की कहीं चर्चा नहीं है और न वह संदेहास्पद साधनों से धन ही एकत्र करता हुआ दिखलाया गया है। होरी की स्थिति भी मृत्यु-शैय्या पर पड़े व्यक्ति जैसी नहीं है।

11. क्रम-संख्या-11 में भोला की कथा दी गई है। यह भी उपन्यास में दूसरे रूप में आई है। उपन्यास में भी भोला दूसरा विवाह करता है और उसके परिणाम भोगता है, लेकिन न तो वह होरी के साथ रहता है, और न चोरी ही करता है। भोला के बेटे जंगी और उसकी (भोला का) युवा पत्नी जौहरी के अनैतिक संबंधों को भी प्रेमचंद ने उपन्यास में कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया है। उपन्यास में जोखेराम और जौहरी के अवैध संबंधों के एक-दो प्रसंग हैं। प्रेमचंद ने पुत्र-विमाता के अवैध संबंधों को संभवतः इसलिए चित्रित नहीं किया, क्योंकि वे इतने नग्न-यथार्थवादी न थे। रूपरेखा और उपन्यास दोनों में ही भोला पत्नी से पिटता है, परंतु उपन्यास में उसके अंत का उल्लेख नहीं है।

12. क्रम-संख्या-12 में होरी की मृत्यु का प्रसंग है। रूपरेखा में होरी लस्टम-पस्टम अपने दिन बिताता है और अंत में उसका समय आता है और वह मर जाता है। रूपरेखा में होरी के मजदूर बनने और लू लगकर मरने का उल्लेख नहीं है। उपन्यास में गोबर द्वारा माता के माध्यम से पिता की मदद किए जाने का प्रसंग भी नहीं है। रूपरेखा में होरी की मौत पर उसका बेटा गोबर गोदान करता है, जबकि उपन्यास में धनिया 20 आने से गोदान करती है। उपन्यास में बेटे के स्थान पर पत्नी के द्वारा गोदान कराकर लेखक ने उसमें घनघोर त्रासदी एवं धार्मिक व्यंग्य उत्पन्न कर दिया है। यदि गोबर गोदान करता तो कथा में नयापन नहीं आता और न इतनी कलात्मक ऊंचाई तक ही उपन्यास पहुंचता। अंत में प्रेमचंद ने कृषि प्रदर्शनियां, उन्नति, साहित्यिक आंदोलनों, चीनी मिल, सहकारिता आदि जिन विषयों का रूपरेखा में उल्लेख किया है, उनमें से अधिकांश उपन्यास में नहीं हैं। केवल चीनी मिल का प्रसंग कुछ अंशों में चित्रित हुआ है। निष्कर्षः 'गोदान' की यह आरंभिक रूपरेखा प्रेमचंद और 'गोदान' उपन्यास दोनों की सृजन-प्रक्रिया के अज्ञात रहस्यों का प्रामाणिकता के साथ उद्घाटन करती है। इसे ऐतिहासिक महत्व का दस्तावेज उपलब्ध होने से प्रेमचंद की सृजन-प्रक्रिया का मूल्यांकन हो सकेगा और 'गोदान' के सृजन-रहस्यों के सूत्र भी निरावृत्त हो सकेंगे। इस दृष्टि से 'गोदान' की यह अंग्रेजी रूपरेखा अत्यंत मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण है।

□

प्रेमचंद : उर्दू से हिंदी में आना-अनसुलझे सवाल

प्रेमचंद का उर्दू कहानी में आगमन उनकी उर्दू कहानी 'इश्के दुनिया और हुब्बे वतन' (हिंदी में 'सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम') से होता है जो उर्दू की मासिक पत्रिका 'जमाना' के अप्रैल, 1908 के अंक में छपी थी। इसके दो महीने के बाद ही उनका पहला उर्दू कहानी-संग्रह 'सोजेवतन' जमाना प्रेस, कानपुर से जून, 1908 में प्रकाशित हुआ जिसमें इस उर्दू कहानी के साथ अन्य चार उर्दू कहानियां संकलित थीं। ये चार अन्य कहानियां थीं- 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' (हिंदी में यही नाम है), 'शेख मखमूर' (हिंदी में यही नाम है), 'यही मेरा वतन है' (हिंदी में 'यही मेरी मातृभूमि है'), 'सिला-ए-मातम' (हिंदी में 'शोक का पुरस्कार')। इस संबंध में प्रेमचंद ने दोनों सूचनाएं ही गलत दी हैं। उन्होंने अपने लेख 'जीवन-सार' में लिखा कि उनकी पहली कहानी 'संसार का अनमोल रतन' थी जो सन् 1907 में 'जमाना' में छपी थी, जबकि कहानी थी 'इश्के दुनिया और हुब्बे वतन', तथा उनके अनुसार पांच कहानियों का संग्रह 'सोजेवतन' सन् 1909 में छपा था, लेकिन यह छपा था जून, 1908 में। प्रेमचंद के वक्तव्यों में इस प्रकार की अनेक भूलें मिलती हैं, जो उनकी अव्यवस्थित जीवन एवं स्मृति-दोष का ही परिणाम हो सकती हैं, परंतु इसके बावजूद हमें उनके जीवन और साहित्य के तथ्यों की सही खोज करके उनके वास्तविक कालानुसार तथा कालक्रम में रखकर देखना-परखना ही उनके मूल्यांकन का सही आधार हो सकता है।

प्रेमचंद के हिंदी तथा उर्दू कहानीकार के साथ हिंदी एवं उर्दू कहानी के इतिहास में 'सोजेवतन' कहानी-संग्रह ऐसा मील का पत्थर है जो कहानीकार के रूप में उनका पहला कदम होने पर भी उन्हें कहानीकार के रूप में तो स्थापित करता ही है, उसके साथ ही वे हिंदी तथा उर्दू में आधुनिक कहानी के जनक के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि प्रेमचंद ने उर्दू उपन्यास की रचना से अपने कथाकार का जीवन शुरू किया था और 'सोजेवतन'(जून, 1908) के प्रकाशन से पूर्व तक उर्दू के चार उपन्यास- 'असरारे मआबिद' (उर्दू साप्ताहिक 'आवाज-खल्क', 8 अक्टूबर, 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक), 'हमखुर्मा-व-हमसवाब' (सन् 1906, हिंदी में यह 'प्रेमा' के नाम से सन् 1907 में प्रकाशित हुआ), 'किशना' (दिसंबर, 1906, परंतु अनुपलब्ध है) तथा 'रूठी रानी' ('जमाना' में अप्रैल, 1907 से अगस्त, 1907 तक प्रकाशित; यह हिंदी उपन्यास का उर्दू अनुवाद है), प्रकाशित हो चुके थे, परंतु ये उर्दू उपन्यास

वह युगांतर नहीं कर पाए जो हिंदी-उर्दू कहानी में 'सोजेवतन' ने किया। 'सोजेवतन' उर्दू कहानी-संग्रह ने हिंदी-उर्दू की कहानी-धारा को ही नहीं बदला, बल्कि उसे युग की धड़कनों से जोड़ते हुए उसे आधुनिक बनाकर नए युग का सूत्रपात किया।

'सोजेवतन' के उर्दू कहानी-संग्रह होने पर भी उसे उर्दू तथा हिंदी दोनों में ही कहानी के क्षेत्र में युगांतरकारी कृति मानी गई और दोनों ही भाषाओं के लेखकों तथा आलोचकों ने उसके महान् योगदान को स्वीकार किया। 'सोजेवतन' ने तत्काल तो ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया वह इसके लेखक 'नवाबराय' को 'प्रेमचंद' के रूप में नया जीवन देना था। 'सोजेवतन' की देश-भक्तिपूर्ण कहानियों को अंग्रेज कलेक्टर ने 'राजद्रोहात्मक' मानकर उन्हें बुलाकर 'राजद्रोहात्मक' कहानियां लिखने पर फटकारा और बची सात सौ प्रतियों को मंगवाकर जलवा दिया तो उन्हें रोज-रोज की सेंसरशिप एवं धमकियों से बचने के लिए नया छद्म नाम रखने की आवश्यकता अनुभव हुई और उन्होंने अपने मित्र तथा 'जमाना' के संपादक मुशी दयानारायण निगम के प्रस्ताव पर 'प्रेमचंद' नाम ग्रहण किया। प्रेमचंद ने इस नाम को स्वीकार करते हुए निगम को अक्टूबर, 1910 में लिखे पत्र में लिखा- 'प्रेमचंद अच्छा नाम है। मुझे भी पसंद है। अफसोस सिर्फ यह है कि पांच-छह साल में 'नवाबराय' को फरोग देने की जो मेहनत की गई, वह सब अकारथ हो गई। यह हजरत किस्मत के हमेशा लंडूरे रहे और शायद रहेंगे।'[1] प्रेमचंद का युवा-मन हताशा में अदृश्य-भविष्य में छिपे शिखर-रहस्यों को नहीं देख पा रहा था, परंतु 'सोजेवतन' कहानी-संग्रह कहानी के क्षेत्र में एक नए युग की सृष्टि कर रहा था। फिराक गोरखपुरी ने इस कहानी-संग्रह पर अपनी प्रतिक्रिया में कहा था, 'भारत के गल्प-लेखन के इतिहास में एक शांत और मौन क्रांति हो गई।'[2] आचार्य नलिन विलोचन शर्मा जैसे हिंदी के विद्वान भी प्रेमचंद द्वारा हिंदी कहानी एवं उपन्यास में की गई इस 'अहिंसक क्रांति' तथा 'नवीन युग' के प्रवर्तन को स्वीकार कर रहे थे।[3] इस प्रकार हिंदी तथा उर्दू कहानी के इतिहास में, दोनों ही भाषाओं के आलोचक और प्रेमचंद विद्वान 'सोजेवतन' उर्दू कहानी-संग्रह में अपनी-अपनी भाषा की कहानी को आधुनिक रूप देने की मौलिक उद्भावना देख रहे थे। अमृतराय इसी कारण यह निर्भय और निशंक होकर घोषणा करते हैं कि प्रेमचंद हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में आधुनिक कहानी के पिता हैं।[4] मेरे विचार में इस मत को अभी तक किसी ने भी चुनौती नहीं दी है।

'सोजेवतन' उर्दू कहानी-संग्रह के संबंध में कई प्रकार की ऐसी जिज्ञासाएं हैं, जिन पर या तो विचार ही नहीं किया गया है या उनके समुचित उत्तर खोजने की चेष्टा ही नहीं की गई है। एक तो यही महत्वपूर्ण प्रश्न है कि 'सोजेवतन' के प्रकाशन से पूर्व उर्दू तथा हिंदी कहानियों की जो परंपराएं थीं, उनसे 'सोजेवतन' का क्या कोई संबंध है या नहीं, क्या उनका कोई प्रभाव उसमें है या नहीं तथा उर्दू में रची एवं प्रकाशित इन कहानियों में हिंदी के भारतेंदु एवं द्विवेदी युग की चेतना तथा परंपरा का कोई प्रभाव देखना उचित होगा? इन प्रश्नों का सामना करना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि 'सोजेवतन' उर्दू में प्रकाशित हुआ था और हिंदी कहानी के

इतिहास में भी उसकी चर्चा बराबर होती रही है कि 'सोजेवतन' हिंदी कहानी में तथा हिंदी कहानीकार प्रेमचंद के उद्‌भव और विकास में क्या और कितना योगदान करता है।

यह तो स्पष्ट ही है कि 'सोजेवतन' उर्दू कहानी-संग्रह है और उसकी पांचों कहानियां उर्दू कहानियां हैं। इनमें अभी तक उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार 'यही मेरा वतन है' (हिंदी में 'यही मेरी मातृभूमि है') उर्दू कहानी हिंदी में पहली बार 'प्रेम-प्रसून', 1924 में छपी थी, अर्थात् 16 वर्ष के बाद हिंदी में आई थी, और शेष चार उर्दू कहानियों का तो प्रेमचंद ने हिंदीकरण नहीं किया और अमृतराय ने सन् 1961 में 'सोजेवतन' का हिंदी लिप्यंतरण किया तो उसमें छपीं और सन् 1962 में छपे 'गुप्तधन'-1 में भी संकलित की गईं। इसका अर्थ है कि प्रेमचंद की जीवितावस्था में 'सोजेवतन' की केवल एक कहानी हिंदी में आई तथा शेष चार कहानियां उनके देहांत के 25-26 वर्षों के बाद हिंदी में आईं, परंतु इसके बावजूद 'सोजेवतन' उर्दू कहानी-संग्रह की चर्चा हिंदी में इस प्रकार होती रही जैसे वह हिंदी का भी कहानी-संग्रह है। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सबसे पहले 'सरस्वती' के दिसंबर, 1908 के अंक में 'सोजेवतन' की समीक्षा करके जैसे उसे हिंदी परिवार में शामिल कर लिया।[5] द्विवेदीजी ने यह लिखकर कि आज से स्वदेश-प्रेम के किस्सों की बड़ी आवश्यकता है, 'सोजेवतन' को हिंदी के पुनर्जागरण आंदोलन, देश-प्रेम तथा स्वराज्य की नई चेतना का अंग बना दिया। प्रेमचंद उर्दू में रचना करने के बावजूद भारतेंदु तथा द्विवेदी काल के पुनर्जागरण तथा देशभक्तिपूर्ण आंदोलन की राष्ट्रीय चेतना को ही अपनी सर्जनात्मकता के केंद्र में रखकर ही एक कथाकार के रूप में साहित्य में आए थे। वे अपने 16 नवंबर, 1905 के उर्दू लेख 'स्वदेश आंदोलन' में इसे 'देशभक्तिपूर्ण आंदोलन' मानकर इसका समर्थन कर रहे थे[6] और 'सोजेवतन' की भूमिका में हिंदुस्तानी कौम के दिल में देश-प्रेम की भावनाओं के उत्पन्न होने तथा उसका साहित्य पर प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ने की वास्तविकता की चर्चा के साथ यह लिख रहे थे कि आज ऐसी ही पुस्तकों की आवश्यकता है जो नई नस्ल के जिगर पर देश-प्रेम की अजमत (महिमा) का नक्शा जमाएं।[7] आचार्य रामचंद्र शुक्ल का भी यही मत है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र में देशभक्ति की वाणी का स्वर सबसे ऊंचा था और उसमें प्राचीन आर्य गौरव का गर्व, लोकहित, समाज-सुधार, वर्तमान अधोगति पर क्षोभ-भरी वेदना, मातृभाषा का उद्धार आदि समाहित थे।[8] इसी आधार पर डॉ. रामविलास शर्मा ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि प्रेमचंद भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी की शानदार परंपरा में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने इस परंपरा को उन्नत किया था।[9]

इस प्रकार प्रेमचंद उर्दू कहानीकार तथा उर्दू उपन्यासकार के रूप में, अपने आरंभिक काल से ही, भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग की राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना के ही अंग थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का यही युगीन सत्य था और प्रेमचंद अपने युग के सत्य को भारतीय आत्मा का सत्य स्वीकार करके ही साहित्य में आए थे, और यही वह मूल कारण है जिसके कारण उन्होंने उर्दू तथा हिंदी कहानी की परंपरा को अस्वीकार करके नए युग की नई कहानी की उद्‌भावना की। उर्दू में

कहानी की शुरुआत अठारहवीं सदी से हो गई थी और दास्तानें एवं ख्याली कहानियां सामने आने लगी थीं। उर्दू यद्यपि शायरी की भाषा थी और गालिब जैसे शायर उर्दू में गद्य लिखना पसंद नहीं करते थे, परंतु उन्नीसवीं सदी में संस्कृत, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं से कहानियों का उर्दू में अनुवाद आरंभ हो गया था। उर्दू में 'सबरस', 'रानी केतकी', 'बागोबहार', तोता कहानी', 'फसाना-ए-आज़ाद', 'तिलिस्म होशरुबा' जैसी कथा भी आ चुकी थीं। बीसवीं सदी के आरंभिक दो दशकों तक सज्जाद हैदर 'यलदरम', हजरत रियाज, सुलतान हैदर 'जोश',शरर, सरशार, मौलवी मुहम्मद अली आदि अनेक उर्दू लेखकों की कथात्मक रचनाएं भी छप चुकी थीं और प्रेमचंद 13-14 वर्ष से ही मौलानशरर, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रूसवा, मौलवी मुहम्मद अली आदि अनेक उर्दू लेखकों की कथात्मक रचनाएं छप चुकी थीं और प्रेमचंद 13-14 वर्ष से ही मौलाना शरर, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा, मौलवी मुहम्मद अली आदि के उर्दू उपन्यास, रेनाल्ड के उपन्यासों के उर्दू अनुवाद, पुराणों के उर्दू अनुवाद 'तिलस्मी होशरूबा' के सत्रह भाग तथा सैकड़ों अन्य उर्दू उपन्यास-कहानियों को पढ़ने में प्रवृत्त हो गए थे।[10] प्रेमचंद के उर्दू कहानी में आगमन तक उर्दू कहानी की यही परंपरा थी जिसमें अली अहमद फातमी के अनुसार[11], प्रेमीः प्रेमिका के मिलन-जुदाई, होंठ-गाल की चर्चा होती थी और उनमें रोमांटिक, काल्पनिक, तिलिस्मी एवं अनहोनी घटनाओं और कथाओं की प्रधानता होती थी, लेकिन प्रेमचंद की आरंभिक उर्दू कहानियों ने पाठक के इस आस्वाद को बदला और उसे एक नई दुनिया से परिचित कराया। उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार सुदर्शन ने प्रेमचंद की सन् 1910 तक की उर्दू कहानियों को पढ़ने पर अपनी प्रतिक्रिया में लिखा है कि 'अलिफ लैला', 'बागोबहार' और 'तिलिस्म होशरुबा' की अनदेखी और अनहोनी कहानियों से उकताया हुआ मन प्रेमचंद की यह मानव-भावों से रंगी हुई कहानी पढ़कर मुग्ध हो गया।[12] सुदर्शन का यह आस्वादन और मुग्धता उर्दू कहानी में एक नयी संवेदना, एक नए रचना-कौशल तथा एक नई रचना-दृष्टि एवं एक नए साहित्यिक-संसार के कारण थी। प्रेमचंद ने 'सोजेवतन' की भूमिका में यह घोषणा कर ही दी थी कि युग की परिस्थितियों से साहित्य का अटूट संबंध है और युग की नयी राष्ट्रीय चेतना ने उर्दू कहानी के चरित्र को बदलकर उसे युग की वास्तविकता एवं राष्ट्रीय तथा कौमी आकांक्षाओं से जोड़ दिया है। अतः डॉ. कमर रईस यह सही कहते हैं कि प्रेमचंद की उर्दू कहानियां और उपन्यास सच्चाई की एक नई तसवीर थी जिसे राष्ट्रीय स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के बेल-बूटे से बनाया गया था।[13] इस प्रकार प्रेमचंद उर्दू की आधुनिक कहानी के जनक बने। उन्होंने उर्दू कहानी की अवास्तविक और युग-चेतना से विमुख परम्परा को अस्वीकार करके उसे नई दिशा दी और उसकी अर्थ व व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी से जोड़ दी। उर्दू कहानी अब राष्ट्रीय तथा सामाजिक जाग्रति एवं परिवर्तन का आधार बनी जिससे राष्ट्र को नया रूप-रंग देकर उसका कायाकल्प किया जा सके।

प्रेमचंद के उर्दू कहानी में आगमन से पहले ही हिंदी में कहानी की रचना और प्रकाशन आरंभ हो गया था। हिंदी पत्रिका 'सरस्वती' में आरंभ से ही हिंदी कहानियां छपने लगी थीं।

'सरस्वती' में सन् 1900 में 'इंदुमती' और 'मन की चंचलता' सन् 1902 में 'गुलबहार' एवं 'प्लेग की चुड़ैल', सन् 1903 में 'ग्यारह वर्ष का समय' एवं 'पंडित और पंडितानी तथा सन् 1907 में 'दुलाईवाली' कहानियां प्रकाशित हो चुकी थीं। इनमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'इंदुमती' को हिंदी की पहली कहानी इस शर्त पर स्वीकारा है यदि उसमें किसी बांग्ला कहानी की छाया नहीं है।[14] हिंदी के कुछ आलोचकों ने 'रानी केतकी की कहानी' (1880) का उल्लेख किया है, परंतु उसमें अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंग भरे पड़े हैं तथा वह उर्दू-फारसी की परंपरा की ही कहानी है। इसी प्रकार राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिंद' की कहानी 'राजा भोज का सपना' तथा भारतेंदु की 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' कहानियों की भी चर्चा हुई है, परंतु आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इन्हें आधुनिक कहानी नहीं मानते क्योंकि इनमें लेखक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण तथा उसमें अंतर्निहित उद्देश्य जैसे आधुनिक तत्त्व नहीं हैं।[15] इधर कुछ वर्षों से माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' के हिंदी की पहली कहानी होने की चर्चा चली है। यह कहानी 'छत्तीसगढ़-मित्र' पत्रिका के सन् 1901 के अंक में छपी थी, लेकिन 'सारिका' हिंदी मासिक पत्रिका के सन् 1969 के एक अंक में यह पुनः प्रकाशित हुई और अनेक हिंदी आलोचकों ने इसे हिंदी की पहली मौलिक कहानी मान लिया, लेकिन अभी तक इस संबंध में एकमत नहीं हो पाया है। इसके साथ ही हिंदी की पहली कहानी होना तथा हिंदी की पहली आधुनिक कहानी होने का प्रश्न भी एक नहीं है। हिंदी की पहली कहानी को यदि पहली आधुनिक कहानी भी माना जाएगा तो हिंदी में आधुनिक कहानी की खोज की कसौटी ही गड़बड़ा जाएगी। इसी कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी की पहली कहानी को हिंदी की पहली आधुनिक नहीं कहते और वे 'ग्राम' (1911), 'रक्षाबंधन' (1913), 'कानों में कंगना' (1913), 'उसने कहा था' (1915) आदि कहानियों के उल्लेख के उपरांत यह लिखते हैं कि सन् 1916 से प्रेमचंद की छोटी कहानियों के निकलने से द्वितीय उत्थान (1883-1918) के अंतिम भाग में ही आधुनिक कहानियों का आरंभ होता है।[16]

हिंदी कहानी के इतिहास में हिंदी की पहली कहानी के समान ही पहली आधुनिक हिंदी कहानी का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है, परंतु यह अभी तक उलझा हुआ तथा अनिर्णीत है। हिंदी के कई प्रतिष्ठित आलोचकों ने हिंदी की पहली आधुनिक कहानी पर विचार करते हुए चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' (1915)[17], प्रेमचंद की हिंदी कहानी 'सौत'[18] तथा 'पंच परमेश्वर'[19] को यह श्रेय दिया है और जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' (1911) एवं 'रसिया बालम' (1912), चंद्रधर शर्मा गुलेरी की पहली कहानी 'सुखमय जीवन' (1911), कौशिक की कहानी 'रक्षाबंधन' (1913) तथा राधिकारमण सिंह की कहानी, 'कानों में कंगना' (1913) इस कसौटी पर खरी नहीं उतरी हैं। असल में सन् 1915 तथा 1916 में प्रकाशित गुलेरी तथा प्रेमचंद की कहानियों को आधुनिक कहानी के श्रेय से मंडित करने में इन आलोचकों की अज्ञानता का भी योगदान है, क्योंकि 'सौत' तथा 'बड़े घर की बेटी' उनकी हिंदी की पहली कहानी नहीं थी। प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'परीक्षा' थी जो 'प्रताप' साप्ताहिक, कानपुर के विजयादशमी अंक, 1914 (अक्टूबर, 1914) में प्रकाशित हुई थी। ये आलोचक प्रेमचंद की

पहली हिंदी कहानी को यदि हिंदी की पहली आधुनिक कहानी की पदवी देना चाहते हैं तो उन्हें यह श्रेय 'परीक्षा' कहानी को देना होगा, परंतु इस संबंध में अमृतराय ने एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा किया है, जिसका उत्तर किसी आलोचक ने अभी तक नहीं दिया है और न किसी ने उस पर गौर ही करने का कष्ट किया है। अमृतराय ने लिखा है कि हिंदी की आधुनिक कहानी का इतिहास गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' से शुरू मानना गलत है, क्योंकि प्रेमचंद की कहानियां-'बड़े घर की बेटी' (दिसंबर, 1910), 'नमक का दारोगा' (1913), 'रानी सारंधा' (अगस्त-सितंबर, 1910), राजा हरदौल (अप्रैल, 1911),'आल्हा' (जनवरी, 1912), 'अमावस्या की रात' (अप्रैल, 1913) आदि अनेक कहानियां उससे पहले प्रकाशित हो चुकी थीं।[20] प्रेमचंद की ये सभी कहानियां उर्दू की कहानियां हैं तो क्या उर्दू कहानियों को हिंदी की आधुनिक कहानी के जन्म का श्रेय दिया जा सकता है? इस पर केवल एक शोधकर्ता डॉ. गौतम सचदेव का ही मत मिलता है जो उन्होंने अपने शोध-प्रबंध 'प्रेमचंदः कहानी-शिल्प' में व्यक्त किया है। डॉ. गौतम सचदेव का मत है कि प्रेमचंद की सन् 1910-11 में प्रकाशित चार उर्दू कहानियां- 'रानी सारंधा', 'बड़े घर की बेटी', 'विक्रमादित्य का तेंगा' और 'राजा हरदौल' विषय-वस्तु, उद्देश्य, कथा-वर्णन तथा प्रस्तुतीकरण में जयशंकर प्रसाद की पहली हिंदी कहानी 'ग्राम' तथा गुलेरी की पहली कहानी 'सुखमय-जीवन' से बहुत आगे हैं, परंतु इन चार कहानियों का यदि पहले हिंदी में प्रकाशन होता तो हिंदी कहानी की धारा ही कुछ और होती।[21] यहां इस वक्तव्य से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या प्रेमचंद के संदर्भ में हिंदी-उर्दू कहानियों का कोई भेद है या नहीं और यदि है तो क्या हिंदी के आलोचकों तथा शोधकर्ताओं ने अपने प्रेमचंद संबंधी आलोचनात्मक एवं शोधात्मक कार्यों में उनकी केवल हिंदी में प्रकाशित कहानियों तथा उपन्यासों का ही अध्ययन-विवेचन किया है, अथवा अपनी नीति के विरुद्ध प्रेमचंद द्वारा केवल उर्दू में प्रकाशित रचनाओं को भी अपने अध्ययन में सम्मिलित कर लिया है? असल में इस प्रश्न के समाधान से ही प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियों के भेद-अभेद का निर्णय हो सकेगा और तभी हम हिंदी की पहली आधुनिक कहानी का भी निर्णय कर सकेंगे।

हिंदी और उर्दू के भेद-अभेद के लिए हमें इतिहास में जाना होगा क्योंकि तभी हिंदी-उर्दू के एकत्व और इस एकत्व को भंग करके इन्हें दो भाषाओं में बदलने की वास्तविकता को समझा जा सकता है। यह इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू है, क्योंकि प्रेमचंद की हिंदी और उर्दू कहानियों को अलग-अलग भाषाओं की कहानियां बताकर उनमें भेद तो खूब पैदा किया गया है, जबकि इन दोनों भाषाओं में प्रकाशित कहानियों को हिंदी की एक धारा में रखने के वैज्ञानिक प्रयास नहीं है। यह सर्वविदित तथा सर्वस्वीकृत है कि हिंदी भाषा से ही उर्दू भाषा का जन्म हुआ। प्रेमचंद ने लिखा है कि हिंदी और उर्दू एक जबान है। क्रिया और कर्ता, फेल और फाइल जब एक है तो उनके एक होने में कोई संदेह नहीं हो सकता। उसे हिंदी कहिए, हिंदुस्तानी कहिए या उर्दू कहिए, चीज एक है, परंतु वे 'हिंदी' शब्द को अधिक स्वाभाविक मानते हैं। इस संबंध में प्रेमचंद लिखते हैं कि 'हिंदी एक स्वाभाविक नाम है। हिंदी वाले क्यों न हिंदी बोलें? उर्दू तो न काफिए में आती है, न रदीफ में, न बहर में, न वचन में। हां हिंदुस्तान का

नाम उर्दूस्तान रखा जाए, तो बेशक यहां की कौमी भाषा उर्दू होगी।[22] प्रेमचंद यह भी मानते हैं कि हिंदी दो लिपियों में लिखी जाती है, देवनागरी लिपि में संस्कृत शब्दों की बहुलता में लिखी जाने वाली भाषा हिंदी है तथा फारसी लिपि में अरबी-फारसी शब्दों की प्रचुरता के साथ लिखी जाने वाली उर्दू जबान है, परंतु दोनों ही भाषा-रूप हिंदी के हैं। जैनेंद्र कुमार का भी यही मत है कि हिंदी में ही उर्दू शामिल है और केवल लिपि का भेद है।[23] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी यही मत है कि हिंदी और उर्दू दो भाषाएं नहीं हैं तथा भाषाशास्त्री निस्संकोच कहेगा कि इन दोनों का भाषाशास्त्रीय ढांचा एक है। ये खड़ी बोली के दो रूप हैं-(1) फारसी साहित्य-संस्कृति से प्रभावित फारसी लिपि में भाषा-रूप जो 'उर्दू' कहलाता है, एवं (2) भारतीय संस्कृति से प्रभावित देवनागरी लिपि में लिखा भाषा-रूप जो 'हिंदी' कहा जाता है। आचार्य द्विवेदी ने लिखा है कि एक ही भाषा है, एक ही व्याकरण है, परंतु लिपि-भेद ने खड़ी बोली को दो भाषाओं में बदल दिया है।[24]

हिंदी से उर्दू भाषा के जन्म तथा उसे एक अलग मुसलमानों की भाषा बनाने के इतिहास की विस्तृत चर्चा पिछले दिनों प्रकाशित दो अंग्रेजी पुस्तकों में की गई है। क्रिस्टोफर आर. किंग की अंग्रेजी पुस्तक का तो शीर्षक ही है-'एक भाषाः दो लिपियां।[25] इसी प्रकार अमृतराय की अंग्रेजी पुस्तक 'डिवाइडेड हाउस' में तो हिंदी से उर्दू के उद्भव, उर्दू का फारसीकरण एवं उसे मुसलिमों तक सीमित करना, उर्दू को धर्म से जोड़ना तथा हिंदी-हिंदुओं से अलगाव, पाकिस्तान का निर्माण तथा धर्म निरपेक्षता के अभाव के लगभग एक हजार वर्षों के इतिहास का वैज्ञानिकता के साथ विवेचन किया है। अमृतराय का निष्कर्ष है कि मुगल सुल्तनत के सत्रहवीं-अठारहवीं के पतन काल में उर्दू से संस्कृत तथा ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं और बोलियों के देशीय शब्दों के बहिष्कार तथा उर्दू भाषा के सुधार के नाम पर उसका जो फारसीकरण किया गया उससे उर्दू भाषा और साहित्य भारतीय परंपरा से अलग होकर ईरानीपन की नकल तक सीमित हो गया। इससे उर्दू शायरी अपनी वस्तु, रूप, छंद, बिंब आदि में ईरानी साहित्य तथा संस्कृति की प्रतिच्छाया बन गई और भारत के भाषा-प्रवाह एवं साहित्यिक परंपराओं से अलग हो गई। डॉ. रामविलास शर्मा छः सौ वर्षों तक फारसी के इस आरोपण को 'सांस्कृतिक उत्पीड़न' कहते हैं।[26] स्वाभाविक था, इस उर्दू शायरी का कोई संबंध भारत से नहीं था और इसे मोहम्मद सादिक जैसे मुसलमान भी मानते हैं कि गदर-पूर्व मध्यकालीन उर्दू काव्य इस देश का विकास नहीं है।[27] अमृतराय इसी कारण स्पष्ट मानते हैं कि उर्दू का कोई भौगोलिक क्षेत्र नहीं है, उसमें धार्मिक कट्टरता है और उसकी विभेद प्रक्रिया ने ही देश के टुकड़े किए। उर्दू के मुस्लिम विद्वानों ने उर्दू की धार्मिक कट्टरता तथा विजेता होने के अहंकार को कभी छिपाया नहीं। सैयद इंशा अल्ला खां ने कहा था कि उर्दू मुस्लिमों की भाषा है।[28] सैयद अहमद खां कहते थे कि उर्दू हिंदुस्तान के मुसलमानों की भाषा है।[29] हाली ने कहा था कि दिल्ली में उर्दू मुस्लिमों की भाषा है तथा हिंदुओं की सामाजिक स्थितियां उर्दू-ए-मुअल्ला को मादरी जबान होने की अनुमति नहीं देतीं।[30] मौलाना सफीर का मत था कि मुस्लिम ही उर्दू

के असली पिता हैं।[31] मौलवी नदीमुल हसन ने तो अहंकारपूर्ण शब्दों में लिखा कि विजेता की भाषा उर्दू पराजितों की भाषा बनी और दूसरे पराजितों की भाषा, राष्ट्रीयता और संस्कृति मर गई। भाषा का हथियार सेना के हथियार से शक्तिशाली होता है।[32] इसी प्रकार अब्दुल हक जो 'बाबा-उर्दू' कहलाते थे, कराची में 15 फरवरी, 1961 को आयोजित सभा में कहा था कि पाकिस्तान का जन्म जिन्ना या इकबाल ने नहीं किया, बल्कि उर्दू ने पाकिस्तान का निर्माण किया।[33]

उर्दू भाषा के इस सांप्रदायिक इतिहास तथा उर्दू के मुस्लिम लेखकों की ईरानी एवं इस्लामिक मनोवृत्ति के रहस्यों को प्रेमचंद तथा उनके बाद के अनेक हिंदी लेखकों ने समझ लिया था। प्रेमचंद ने अपने आंरभिक उर्दू-लेखन काल में ही यह लिखा था कि उर्दू के शायरों में फारसी कविता के अनुकरण की प्रवृत्ति प्रमुख है। इसी लेख में उन्होंने यह भी लिखा है कि उर्दू के हिंदू लेखकों के उर्दू कार्यों में 'हिंदूपन' देखने से लोकप्रियता को आघात लगता है। प्रेमचंद मानते हैं कि हिंदू लेखकों ने फारसी में भी अपनी शायरी की यादें छोड़ी हैं जबकि उर्दू के तमाम आलिम-फाजिल मशहूर उस्तादों ने कल्पनाओं की रचना और अर्थ सौंदर्य में फारसी कवियों की नकल की है।[35] प्रेमचंद हिंदू कायस्थ थे और कायस्थ होने के नाते बचपन से ही उर्दू-फारसी उनकी हिंदी से अधिक स्वाभाविक भाषा थी। उन्होंने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'उर्दू की सेवकाई' करते हुए उनका सारा जीवन गुजरा है,[36] परंतु उर्दू के एक हिंदू लेखक के रूप में उनके अनुभव काफी कटु रहे हैं। असल में मुगल सल्तनत के दौर में हिंदुओं में कायस्थों तथा कश्मीरी ब्राह्मणों ने फारसीनिष्ठ उर्दू में सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली थी और ये लोग हिंदू-मुसलमानों में सेतु का काम करते थे, लेकिन शाही दरबारों में मुस्लिम फारसी विद्वानों का वर्चस्व था और इन हिंदू-कायस्थों को हीनता से देखा जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में मुसलमान अदीबों के इस अहंकार तथा श्रेष्ठता के दंभ से हिंदू समाज में उद्वेलन हुआ[37] और हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाने तथा हिंदू संस्कृति की रक्षा का आंदोलन शुरू हुआ जो 'हिंदी हिंदू हिंदुस्तान' के नारे के रूप में अभिव्यक्त हुआ। इन्हीं बीज-तत्वों ने राष्ट्रीय जागरण की रचना की और स्वामी दयानंद, विवेकानंद, रवींद्रनाथ टैगोर, बंकिम, गांधी, प्रेमचंद जैसे राष्ट्रनायक उत्पन्न हुए जिन्होंने इस राष्ट्रीय जागरण को स्वराज्य, स्व-संस्कृति, स्व-बोध तथा स्व-भाषा के महान् आंदोलन में बदल दिया।

प्रेमचंद ने जब उर्दू-लेखन में प्रवेश किया तो उनकी स्थिति एक हिंदू कायस्थ लेखक की थी जो अपने अन्य सजातीय लेखकों के समान अपनी फारसी निष्ठ परंपरा और संस्कार के कारण उर्दू में अपने लेखकीय भविष्य को बनाने आया था। यही कारण था कि उनकी आंरभिक रचना 'आवाज-खल्क', 'जमाना', 'अदीब', 'आजाद' आदि ऐसी उर्दू पत्रिकाओं में छपीं जिनके संपादक हिंदू कायस्थ थे। इनमें मुंशी दयानारायण निगम ('जमाना', कानपुर के संपादक), प्यारे लाल 'शाकिर' ('अदीब' के संपादक) तथा नौबतराय 'नजर' एवं युवा शायर फिराक 'गोरखपुरी' (ये भी कायस्थ थे) से संबंध तो जीवन के अंत तक बने रहे। अपने इनके कायस्थ मित्रों में

मुंशी दयानारायण निगम ने अपनी उर्दू पत्रिका 'जमाना' में उनकी उर्दू कहानियां और लेख सबसे अधिक प्रकाशित किए। इस प्रकार प्रेमचंद का आरंभिक उर्दू रचना-काल प्रायः अपने सजातीय कायस्थ लेखकों एवं संपादकों तक ही सीमित रहा और इसी दौर में उन्हें यह अनुभव हो गया कि एक हिंदू लेखक के रूप में उर्दू में उनकी गुजर नहीं है, क्योंकि उनके ही शब्दों में, 'उर्दूनवीसी में किस हिंदू को लाभ हुआ है जो उन्हें होगा।'[38] प्रेमचंद की यह पीड़ा बारह-तेरह साल उर्दू में लिखने के अनुभवों पर आधारित थी और इसके कारण इतने अज्ञात न थे जितने अमृतराय मानकर चले हैं[39], यद्यपि अमृतराय ने एक अन्य स्थान पर माना है कि प्रेमचंद ने उर्दू में ठीक मान्यता न मिलने के कारण हिंदी की ओर कदम बढ़ाया।[40] और इसका कारण स्पष्ट था कि वे एक हिंदू लेखक थे और उनके साहित्य में हिंदू जीवन और संस्कृति की प्रधानता थी और यह उर्दू के अधिकांश मुस्लिम पाठकों के बीच मान-सम्मान और स्वीकृति-प्रतिष्ठा में बाधक थी। डॉ. शैलेश जैदी ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि उर्दू में एक हिंदू लेखक को कोई उच्च स्थान प्राप्त करना अत्यंत दुष्कर कार्य था, क्योंकि उर्दू के बहुसंख्यक पाठक पत्र-पत्रिकाओं में अपने इस्लामी संस्कारों की तुष्टि देखना चाहते थे।[41]

प्रेमचंद अपने जीवन पर्यंत उर्दू के हिंदू लेखकों के प्रति हीन-दृष्टि, उर्दू की धार्मिक कट्टरता और सांप्रदायिकता तथा हिंदी से अलगाव की प्रवृत्ति का बराबर अनुभव करते रहे, यद्यपि उन्होंने 'साकी' के संपादक को लिखा था कि वे उर्दू के लिए न सिर्फ जिंदा हैं, बल्कि ज्यादा जोरों से जी रहे हैं। यह उर्दू के प्रति उनके आत्मिक लगाव और अटूट प्रेम की स्वीकृति थी, जबकि वे उर्दू के हिंदू लेखकों के अस्तित्व, मान-सम्मान, योगदान तथा उर्दू में लिखने के अधिकार के लिए अपनी आवाज बराबर उठाते रहे। प्रेमचंद ने 'जमाना', दिसंबर, 1930 में उर्दू पर हिंदुओं के अधिकार के बारे में लिखा- 'उर्दू न मुसलमानों की बपौती है न हिंदुओं की। उसके लिखने और पढ़ने का हक दोनों को हासिल है। हिंदुओं का उस पर हक पहला है, क्योंकि वह हिंदी की एक शाखा है, हिंदी पानी और मिट्टी से उसकी रचना हुई और सिर्फ कुछ थोड़े से अरबी और फारसी शब्दों के दाखिल कर देने से उसकी असलियत नहीं बदल सकती।'[42] प्रेमचंद इसी लेख में कहते हैं कि अगर मुसलमान उर्दू में अरबी-फारसी लफ्जों को ठूंस-ठूंस कर उसे इस्लामी रंग' देना चाहते हैं तो हिंदू भी इसी प्रकार उसे हिंदू रंग दे सकते हैं और हजरत नियाज (उर्दू लेखक) जैसे उर्दू के मुस्लिम लेखकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि आज करोड़ों हिंदू उर्दू पढ़ते हैं, लाखों लिखते हैं तथा हजारों इसी जबान में साहित्य-रचना करते हैं, चाहे कविता में, चाहे गद्य में और उर्दू की हस्ती हिंदुओं के सहयोग पर कायम है।[43] प्रेमचंद इस तर्क का भी उत्तर देते हैं कि कुछ उर्दू के मुस्लिम लेखक हिंदुओं की उर्दू को उर्दू ही न मानें, लेकिन इसी तरह हिंदू भी मुसलमानों की उर्दू को उर्दू न समझें तो उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। प्रेमचंद की इस संबंध में व्यथा उनके इस स्पष्ट कथन से समझी जा सकती है जिसमें वे लिखते हैं कि उर्दू के हिंदू लेखक उर्दू में लिखने-पढ़ने से बिलकुल किनारा नहीं कर सकते और न मुसलमानों की लिखी हुई उर्दू किताबों को पढ़कर संतोष कर सकते हैं, चाहे ऐसा बंटवारा हो जाए कि मुसलमान लिखें मुस्लिम पाठकों के लिए और हिंदू लिखें हिंदू पढ़ने वालों के लिए।[44] प्रेमचंद का उर्दू के

मुस्लिम लेखकों की सांप्रदायिकता और अलगाववाद को यह कठोर उत्तर था जो उन जैसा उर्दू दां लेखक ही उर्दू के हिंदू लेखकों की ओर से दे सकता था, परंतु वे किसी भी हालत में उर्दू भाषा के विकास एवं उसके हर आंदोलन में शरीक होने के हिंदुओं के हक के लिए किसी भी स्थिति तक जाने को तैयार थे। प्रेमचंद का स्पष्ट मत था कि भाषा के आधार पर हिंदी और उर्दू बराबर हैं, लेकिन उर्दू के मुस्लिम लेखकों ने धर्म के आधार पर यदि अधिकारों की मांग की तो वे नुकसान में रहेंगे[45] और इसी कारण इस्लाम धर्म के आधार पर इकबाल द्वारा पाकिस्तान के निर्माण के प्रस्ताव का उन्होंने डटकर विरोध किया।[46] प्रेमचंद इसी संदर्भ में मुस्लिम अदीबों और कवियों का हिंदुओं से तुलनात्मक विवेचन भी करते हैं और लिखते हैं कि हिंदू तो उर्दू पढ़ते हैं, परंतु मुसलमान हिंदी नहीं पढ़ते और यदि पढ़ते तो क्या तुलसी और सूर की मधुर वाणी तथा हिंदू आदर्शों का कोई भी असर न होता? वे लिखते हैं कि हिंदुओं को हिंदी के मुसलमान कवियों-रहीम, जायसी आदि से सच्चा प्रेम है और हिंदू समाज इन मुस्लिम कवियों को सूर-तुलसी की तरह ही पढ़ता है और पाठ्यक्रम में पढ़ाया जाता है, पर उर्दू के किसी हिंदू शायर के कलाम का संग्रह भी किसी मुस्लिम अदीब ने नहीं किया।[47] प्रेमचंद को इसका दुःख है कि मुसलमानों ने हिंदी से कोई सरोकार नहीं रखा और इस क्षेत्र में हिंदू लेखकों से मुसलमान लेखक ज्यादा खतावार हैं।[48] इससे स्पष्ट है कि प्रेमचंद के आरंभिक काल में ही हिंदी तथा उर्दू का धर्मगत विभाजन हो चुका था और कुछ उर्दू के मुस्लिम लेखक उन्हें हिंदुओं की सभ्यता और संस्कृति का लेखक कहने लगे थे।[49] हिंदी में अमृतलाल नागर ने अपने एक लेख में उर्दू की सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, हिंदी-विरोध, हिंदू लेखकों के प्रति हीनभावना तथा फारसी लिपि के प्रति दुराग्रह की कटु आलोचना की है।[50] यहां तक कि मार्क्सवादी आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने अपने लेख 'बासी भात में खुदा का साझा' में 'उर्दू जेहाद' का विवेचन करते हुए उसे मुस्लिम अस्मिता, राजनीति और इतिहास से जोड़ा है और उसकी फारसीनिष्ठता, मुगल सल्तनत एवं अंग्रेजी शासन में प्राप्त अधिकारों की रक्षा, इस्लाम और पाकिस्तान के साथ संबद्धता, सांप्रदायिकता और अलगाववाद, धर्म के कारण लिपि का दुराग्रह और भारतीय लिपि का तिरस्कार आदि को इस उर्दू जेहाद के अंग बताया है।[51] इस प्रकार प्रेमचंद के जो निष्कर्ष थे, वे स्वतंत्र भारत के हिंदी लेखकों के सम्मुख भी उसी रूप में थे। डॉ. नामवर सिंह के लेख से यह सिद्ध होता है कि इक्कीसवीं सदी के शुरुआत में भी मुसलमानों का 'उर्दू जेहाद' पूरी ताकत के साथ जिंदा है।

प्रेमचंद के उर्दू से हिंदी में आने के कारणों की भी खोज-खबर लेना जरूरी है, क्योंकि इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार ही नहीं हुआ है। इस समस्या पर प्रेमचंद का अपना एक पक्ष है, दूसरा उनके समकालीन लेखकों का है, तीसरा उनके जीवनीकार पुत्र अमृतराय का है तथा चौथा पक्ष उन तथ्यों एवं साक्ष्यों का है जो उनकी जीवन-परिधि में इधर-उधर बिखरे पड़े हैं और जिन्हें एकत्र करके कभी देखा नहीं गया। प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद घर में' हिंदी में लिखने का वर्ष सन् 1913 बताया है जब गणेश शंकर विद्यार्थी ने कानपुर से 'प्रताप' निकालना आरंभ किया, लेकिन वे हिंदी लेख भेजने की बात कहती हैं कहानी

नहीं[52], जबकि प्रेमचंद ने 4 सितंबर, 1914 के पत्र में दयानारायण निगम को लिखा कि 'प्रताप' के इसरार से मजबूर होकर एक मुख्तसर-सा किस्सा हिंदी में उसके विजयदशमी नंबर के लिए लिखा है। हिंदी लिखनी तो आती नहीं मगर कुछ कलम तोड़-मोड़ दिया है।[53] प्रेमचंद का यह कथन ही सही है, क्योंकि इधर 'प्रताप' का यह अंक मिल गया है और उसके विजयदशमी के अंक में उनकी कहानी 'परीक्षा' (दीवान सरदार सुजानसिंह की कहानी, उर्दू में 'हुस्ने इन्तिखाब' नाम से छपी) प्रकाशित हुई है। इस प्रकार प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'परीक्षा' है न कि 'सौत' या 'पंच परमेश्वर' जैसा कि हिंदी के कुछ आलोचकों ने लिखा है। प्रेमचंद के जीवनीकार अमृतराय ने 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' में इस कहानी की न तो चर्चा की है और न 'कहानियों का काल-निर्देश' में ही इसे कहानी-सूची में रखा है, जबकि यह कहानी 'मानसरोवर'-8 में संकलित है। एक जीवनीकार के रूप में यह उनकी बड़ी अज्ञानता तथा लापरवाही है।

इस प्रकार प्रेमचंद हिंदी कहानी में 'परीक्षा' कहानी से प्रवेश करते हैं और उनके 4 सितंबर, 1914 के पत्र से ऐसी ध्वनि निकलती है कि वे पहली बार टूटी-फूटी भाषा में हिंदी लिख रहे हों तथा पहली बार हिंदी के संपर्क में आ रहे हों। वे पत्र में जब लिखते हैं कि उन्हें हिंदी लिखनी तो आती नहीं, तब हिंदी के आलोचक तथा उनके जीवनीकार अमृतराय भी यही निष्कर्ष निकालते हैं कि सन् 1914 के आसपास ही उनका हिंदी से संपर्क हुआ और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे हिंदी प्रेमियों के संपर्क और आग्रह के कारण उन्होंने हिंदी से संपर्क जोड़ा। यह सत्य है कि उनकी आरंभिक शिक्षा उर्दू और फारसी में हुई थी और उन्होंने युवावस्था तक उर्दू में सैकड़ों ग्रंथ पढ़ लिए थे, परंतु इसके प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वे उर्दू में लिखना आरंभ करने के साथ ही खड़ी बोली के हिंदी रूप में भी रूचि ले रहे थे और सन् 1906-07 तक हिंदी भाषा पर उनका इतना अधिकार हो चुका था कि वे अपने उर्दू उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' (1906) का हिंदी अनुवाद तथा मुंशी देवीप्रसाद जोधपुरी के हिंदी उपन्यास 'रूठी रानी' का उर्दू में अनुवाद करने की सामर्थ्य प्राप्त कर चुके थे। प्रेमचंद के सन् 1906-07 से हिंदी की ओर आकर्षित होने, हिंदी की गतिविधियों से संपर्क में रहने तथा हिंदी में सर्जनात्मक कार्य करने की प्रवृत्ति के जो तथ्य एवं प्रमाण उपलब्ध हैं, उन्हें यहां प्रस्तुत करना उचित होगा-

1. प्रेमचंद ने अपने 'जीवन-सार' लेख ('हंस', जनवरी-फरवरी, 1932) में एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख किया है जिसकी ओर, आश्चर्य है, अमृतराय तथा अन्य आलोचकों का ध्यान नहीं गया। प्रेमचंद ने सन् 1900 के वर्णन में लिखा है, 'उसी जमाने में शहर का एक बेलदार मुझसे कुछ हिंदी पढ़ने आया करता था।'[54] इससे एकदम स्पष्ट है कि सन् 1900 तक, जब तक वे कहीं अध्यापक नहीं हुए थे, हिंदी पढ़ाने-सिखाने की सामर्थ्य रखते थे और उर्दू में लेखन-कार्य शुरू करने से पहले तक उन्हें हिंदी-शिक्षण तक का ज्ञान हो गया था।

2. प्रेमचंद ने अपने उर्दू उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' का हिंदी अनुवाद किया और सन् 1907 में 'प्रेमा' नाम से प्रकाशित कराया।

3. प्रेमचंद ने सन् 1907 में ही हिंदी से उर्दू में अनुवाद भी किया। उन्होंने हिंदी उपन्यास 'रूठी रानी' का उर्दू अनुवाद किया और 'रूठी रानी' नाम से ही 'जमाना' उर्दू पत्रिका में अप्रैल,1907 से अगस्त, 1907 तक धारावाहिक रूप में छपा। इसकी अंतिम किस्त में लिखा है कि हिंदी का अनुवाद है। यह हिंदी उपन्यास मुंशी देवीप्रसाद जोधपुरी ने लिखा था।

4. प्रेमचंद का पहला उर्दू कहानी-संग्रह, 'सोजेवतन' जून, 1908 में प्रकाशित हुआ तो उन्होंने 'सरस्वती' हिंदी मासिक पत्रिका के संपादक पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी को पुस्तक भेजी और समीक्षा के लिए पत्र लिखा और द्विवेदीजी ने उसकी समीक्षा 'सरस्वती' के दिसंबर, 1908 के अंक में प्रकाशित की। स्पष्ट है, प्रेमचंद को हिंदी पत्रिका 'सरस्वती' की जानकारी थी और वे अपनी उर्दू पुस्तक के द्वारा भी हिंदी पाठकों तक पहुंचना चाहते थे।

5. प्रेमचंद ने अपने 13 मई, 1910 के पत्र में मुंशी दयानारायण निगम के पत्र में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित तस्वीरों तथा सूरदास पर छपे लेख की प्रशंसा की और हिंदी पर्चे के हश्र के बारे में पूछा। उनका कहना था कि यदि हिंदी पर्चा निकल रहा हो तो वे हिंदी लिखने की आदत डालें।[55] स्पष्ट है, वे हिंदी लिखने-पढ़ने से जुड़ रहे थे।

6. प्रेमचंद इसी वर्ष अर्थात् 1910 में ही फिर निगम को हिंदी में लेख लिखकर भेजने की बात लिखते हैं जिससे वे उन्हें 'एज्यूकेशनल गजट' में प्रकाशनार्थ भेज सकें।[56]

7. प्रेमचंद के मुंशी दयानारायण निगम को 6 फरवरी, 1913 को लिखे पत्र से स्पष्ट है कि वे 'मर्यादा', 'सरस्वती' आदि हिंदी पत्रिकाएं नियमित देखते थे और नियम से चाहते थे कि वे उन्हें अपने 'हिंदी डिपार्टमेंट' का एडीटर समझें क्योंकि वे हिंदी के रोचक लेखों का उर्दू अनुवाद तथा हिंदी लेखकों की जीवनियां लिखने की जिम्मेदारी ले रहे थे। स्पष्ट है, वे अब तक हिंदी की साहित्यिक गतिविधियों, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं तथा हिंदी लेखकों से गंभीरतापूर्वक जुड़ चुके थे।[57]

8. सन् 1914 में वे 3 मई को भारत पर एक हिंदी लेख का उर्दू अनुवाद करने का उल्लेख करते हैं और 4 सितंबर को 'प्रताप' के आग्रह पर हिंदी में एक कहानी भेजने की सूचना देते हैं।[58]

9. प्रेमचंद सन् 1915 के मध्य तक इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि एक हिंदू लेखक के रूप में उर्दू में उन्हें कोई लाभ नहीं होगा और उन्हें भी बालमुकुंद गुप्त मरहूम की तरह हिंदी लिखने में ही जीवन व्यतीत करना होगा। उन्होंने 1 सितंबर, 1915 को यही बात मुंशी दयानारायण निगम को लिखी थी, 'अब हिंदी लिखने की मश्क भी कर रहा हूं। उर्दू में अब गुजर नहीं है। यह मालूम होता है कि बालमुकुंद गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिंदी लिखने में जिंदगी सर्फ कर दूंगा। उर्दूनवीसी में किस हिंदू को फैज हुआ है जो मुझे हो जाएगा।'[59]

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि प्रेमचंद सन् 1914 में हिंदी कहानी में अचानक नहीं आए थे, बल्कि हिंदी के प्रति उनका आकर्षण सन् 1906-07 से ही था। वे जब सन् 1903 से 1914 तक लगभग उर्दू के लिए पूर्णतः समर्पित थे, वे तब भी हिंदी संसार की ओर कदम बढ़ा चुके थे, लेकिन वे सन् 1915 में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उर्दू के एक हिंदू लेखक के रूप में

उनकी स्थिति एक मुस्लिम उर्दू लेखक से इतनी भिन्न है कि उन्हें एक लेखक के रूप में जो कुछ मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाएगा और उन्हें हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर उसमें ही जिंदगी गुजारनी पड़ेगी, परंतु यहां इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है कि इस निष्कर्ष और निर्णय के मूल में वे कौन सी विवशताएं एवं शक्तियां थीं, जो उर्दू में एक हिंदू लेखक को ऊंचे स्थान तक पहुंचने में अवरोध उत्पन्न करती थीं। प्रेमचंद के कथन से स्पष्ट है कि उर्दू भाषा मुस्लिमों एवं इस्लाम धर्म से जुड़ चुकी थी और उर्दू मुस्लिमों की भाषा के रूप में मान ली गई थी।[60] ऐसी स्थिति में उर्दू की इस धार्मिक कट्टरता और सांप्रदायिकता में एक हिंदू लेखक का अपने लेखन के अनुरूप यश, धन और लोकप्रियता का मिलना कठिन ही था। उर्दू की इस सांप्रदायिकता और हिंदू-द्वेष का देष प्रेमचंद ने जीवन के अंत तक भोगा। 'कर्बला' नाटक लिखने पर मुस्लिम अदीबों ने उसके उर्दू में छपने का विरोध किया, क्योंकि वह एक हिंदू लेखक के द्वारा लिखा गया था। प्रेमचंद ने इन मुस्लिम अदीबों को उत्तर तो दिया तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न भी उठाया, लेकिन उन्होंने इस सांप्रदायिक प्रवृत्ति से लड़ने की अपेक्षा स्वयं को विवाद से हटा लिया। उन्होंने दयानारायण निगम को 22 जुलाई, 1924 के पत्र में लिखा, 'अगर मुसलमानों को यह भी मंजूर नहीं है कि किसी हिंदू की जबान-ओ-कलम से उनके किसी मजहबी पेशवा या इमाम की मद्हसराई (स्तुति) भी हो तो मैं इसके लिए मुसिर (आग्रही) नहीं हूं। ख्वाजा हसन निजामी ने 'कृष्ण बीती' लिखी। एक हिंदू नक्काद ने उसकी तारीफ की, सिर्फ इसलिए कि मौलाना ने कृष्ण से अपनी अकीदत का इजहार किया था। मेरी भी यही मंशा थी। अगर हसन निजामी को वह आजादी हासिल है और मुझे नहीं है तो मुझे इसका अफसोस नहीं।'[61] अमृतलाल नागर इसे प्रेमचंद का 'हिंदूपन' कहते हैं जो अपने धर्म की कटु आलोचना तो करता है, परंतु अन्य धर्मों के ऐसे दुराग्रहों पर मौन हो जाता है।[62] प्रेमचंद ने इसी कारण कोई सामाजिक प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इसी प्रकार 'हिंदुस्तानी एकेडेमी' की स्थापना पर कुछ मुस्लिम अदीबों ने सांप्रदायिक दृष्टि से कुछ प्रश्न उठाए तो उन्होंने शांत-चित्त से उत्तर दिया, लेकिन वे लगभग इसी समय उर्दू में 'जिहाद' जैसी कहानी लिखने से स्वयं को नहीं रोक पाए जिसमें एक मुल्ला-मौलवी के आदेश पर अफगानिस्तानी इलाके के पठान अपने पड़ोसी हिंदुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर कत्ल कर देते हैं। प्रेमचंद का आखिर उर्दू लेखकों एवं पत्रकारों की हिंदू विरोधी तथा धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध आक्रोश उनके एक उर्दू लेख 'उर्दू में फिर 'औनियत' (उर्दू में मिस्र के बादशाह 'फिरौन' जैसा घमंड और तानाशाही) में फट पड़ा जो, 'जमाना' के दिसंबर, 1930 में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रेमचंद ने उर्दू के हिंदू लेखकों के प्रति मुस्लिम लेखकों की सांप्रदायिक संकीर्णता और द्वेष की खूब भर्त्सना की और यहां तक लिखा कि मुसलमान चाहें तो बंटवारा कर लें, मुसलमान मुसलमानों के लिए लिखे और हिंदू हिंदूओं के लिए, लेकिन यह नहीं हो सकता कि हिंदू उर्दू लिखने-पढने से किनारा कर लें और मुसलमानों की लिखी किताबों से संतोष कर लें।[63] इसके बावजूद प्रेमचंद जीवन के अंत तक उर्दू से जुड़े रहे और अपनी विश्व-विख्यात कहानी 'कफन' की रचना उर्दू में की और पहले उर्दू में ही 'जामिया' के दिसंबर, 1935 के अंक में छपी। इसी समय 'साकी' (दिल्ली) ने लिखा कि प्रेमचंद

उर्दू के लिए मरहूम हो गए हैं तो उन्होंने इसके एडीटर को लिखा कि मैं उर्दू के लिए न सिर्फ जिंदा हूं बल्कि ज्यादा जोरों से जी रहा हूं।[64]

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने जब उर्दू से हिंदी की ओर आगमन किया तो उन्होंने उसका परित्याग नहीं किया इसके बावजूद कि उर्दू की सांप्रदायिक संकीर्णता, धार्मिक कट्टरता तथा हिंदी एवं उसके लेखकों के प्रति विद्वेष की भावना ने उन्हें काफी आहत किया था। उर्दू भाषा के साहित्य और पत्रकारिता से उनके अंदर सर्जनात्मकता के अंकुर फूटे थे और इस कारण उन्हें उर्दू से गहरा आंतरिक लगाव था, परंतु उर्दू की सर्दबाजारी और पाठकों की उदासीनता एवं प्रकाशनों के निरुत्साह ने उन्हें कम हताश नहीं किया। उन्होंने अपने आरंभिक उर्दू कहानी-संग्रह, 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम बत्तीसी' आदि अपने खर्चे से छपवाए थे, लेकिन 'प्रेम पचीसी' के प्रकाशन में देरी होते देखकर उन्होंने दयानारायण निगम को कुछ गुस्से में 20 फरवरी, 1914 को पत्र में लिखा,'अगर किताब उस वक्त निकली जब लोगों को ख्याल भी न रहेगा कि प्रेमचंद कौन है तो उसके निकलने से क्या फायदा।'[65] इसी प्रकार 'जमाना' उर्दू पत्रिका में सहयोगी बनने के प्रस्ताव पर तो प्रेमचंद ने जैसे उर्दू की दुर्दशा का जैसे कच्चा चिट्ठा ही खोलकर रख दिया। उन्होंने 22 मई, 1914 को निगम को ही लिखा, अब रही 'जमाना' का कलमदान संभालने की बात। उर्दू की हवा आजकल बिगड़ी हुई है। अखबारनवीसी बहुत मुश्किल हो गई है। जितने मौजूदा रिसाले हैं उनमें किसी को फरोग (उन्नति) नहीं है। सब कुत्ते की जिंदगी जीते हैं। इस हालत में क्या हौसला हो।'[66] इसके विपरीत इसी वर्ष में गणेश शंकर विद्यार्थी अपने अखबार 'प्रताप' के लिए हिंदी कहानी का बार-बार आग्रह कर रहे थे, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी उनकी हिंदी कहानी का भाषा-संस्कार करके 'सरस्वती' में प्रकाशित कर रहे थे और महावीर प्रसाद पोद्दार ने जब लगभग इसी समय अपना प्रकाशन संस्थान 'हिंदी पुस्तक एजेंसी' खोला तो उनकी पहली पुस्तक हिंदी कहानियों का संग्रह 'सप्तसरोज' प्रकाशित किया जो जून, 1917 में छपा। इसकी सात कहानियों में चार कहानियां उर्दू से तथा तीन कहानियां हिंदी से ली गई थीं, परंतु इस पहले की कहानी-संग्रह ने उन्हें रवींद्रनाथ टैगोर के बराबर बैठा दिया। इसकी भूमिका लिखी हिंदी-लेखक मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' ने और उन्होंने इस 'उर्दू संसार के हिंदू महारथी' का मातृभाषा हिंदी एवं नागरी मंदिर में प्रवेश पर जो भूमिका लिखी तथा उन्हें टैगोर के समकक्ष रखकर जो स्वागत-सत्कार किया वह उर्दू तथा हिंदी जगत के अंतर को तो स्पष्ट करता ही है, वह हिंदी के हर्षोल्लास के साथ हिंदी वालों की इस प्रतीति को भी उद्घाटित करता है कि बांग्ला के विख्यात कथाकार रवींद्रनाथ टैगोर, शरत् आदि से टक्कर लेने वाला कथाकार अब हिंदी में अवतरित हो गया है। मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' की यह भूमिका इस निष्कर्ष की सत्यता को स्वयं ही उजागर करती है, 'उर्दू संसार के हिंदू महारथियों में प्रेमचंदजी का स्थान बहुत ऊंचा है। अनेक नामों से आपकी पुस्तकें उर्दू संसार की शोभा बढ़ा रही हैं। उर्दू पत्रों ने आपकी रचनाओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। हर्ष की बात है कि मातृभाषा हिंदी ने कुछ दिनों से आपके चित्त को आकर्षित किया है। प्रेमचंदजी ने पूजनार्थ नागरी-मंदिर में प्रवेश किया है और माता ने हृदय से लगाकर अपने इस यशशाली प्रेम-पुत्र को अपनाया है। इस

प्रतिभाशाली लेखक महानुभाव ने इतनी जल्दी हिंदी संसार में इतना नाम कर लिया है कि आश्चर्य होता है। आपकी कहानियां हिंदी संसार में अनूठी चीज हैं। हिंदी पत्र-पत्रिकाएं आपके लेखों के लिए लालायित रहती हैं। कुछ लोगों का विचार है कि आपकी गल्पें साहित्य-मार्तण्ड रवींद्र बाबू की रचना से टक्कर लेती हैं। ऐसे विद्वान और प्रसिद्ध लेखक के विषय में लिखना अनावश्यक और अनुचित है।'[67] इस पक्ष की एक सच्चाई यह भी है कि प्रेमचंद सन् 1907-10 के बीच रवींद्रनाथ टैगोर की ही कहानियों के अंग्रेजी अनुवाद पढ़कर उन्हें उर्दू में अनूदित करके प्रकाशित करा रहे थे[68] और लगभग सात-आठ वर्षों के बाद हिंदी जैसी नई भाषा में अपनी मौलिक कहानियों के बल पर उन्हीं रवींद्रनाथ टैगोर के समकक्ष प्रतिष्ठित किए जा रहे थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में भी 'सेवासदन' जब उर्दू से पहले दिसंबर, 1918 में प्रकाशित हुआ तो हिंदी ने उसे भी गले लगाया और प्रेमचंद के शब्दों में उसे 'नक्कादों ने हिंदी जबान का बेहतरीन नाविल' घोषित किया।[69] हिंदी की यह प्रतिष्ठा, आत्मीयता तथा कहानी-उपन्यास में उनके नेतृत्व की स्वीकृति ऐसी ही थी जैसे दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद सन् 1915-17 में महात्मा गांधी को अपने देश से मिली थी। प्रेमचंद के लिए यह उर्दू की उपेक्षा, उदासीनता, अनिश्चितता, धन-यश की संकटता तथा हिंदू विरोधी व्यवहार के अंधकार से निकलकर हिंदी के यश-धन से परिपूर्णता, स्वागत-सत्कार भरी आत्मीयता, कथा-साहित्य में नेतृत्व की संभावना तथा बहुसंख्यक समाज तक फैले आकाश के प्रकाश-पथ की ओर आना था। प्रेमचंद के कथा-जीवन के लिए यह एक अकल्पनीय सत्य था, जिसने सदा के लिए उनकी सर्जनात्मकता को उर्दू से हिंदी की ओर मोड़ दिया। प्रेमचंद के अनन्य मित्र दयानारायण निगम को भी इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए लिखना पड़ा कि वे उर्दू से बिलकुल निराश होकर पूरी तरह हिंदी की तरफ झुक गए।[70] वे उर्दू में 'कुत्ते की जिंदगी' जी रहे थे और हिंदी में आते ही हिंदी-संसार ने उन्हें सिंहासन पर बैठाकर कहानी और उपन्यास के सम्राट के रूप में स्वीकार करके हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार के पद पर सुशोभित कर दिया। यह उनके जीवन की एक ऐसी उपलब्धि थी, जिसने उन्हें जीवन-भर के लिए नागरी-मंदिर का भक्त बना दिया। हिंदी में वह रामचंद्र शुक्ल (आलोचना-सम्राट), पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी (पत्रकारिता-सम्राट), जयशंकर प्रसाद (नाटक एवं काव्यसम्राट) तथा निराला, पंत आदि सम्राटों एवं महारथियों का युग था, परंतु दिग्विजय का श्रेय केवल कथा-सम्राट प्रेमचंद को ही प्राप्त है।[71]

प्रेमचंद के कहानी-उपन्यास सम्राट बनने की प्रक्रिया हिंदी में पदार्पण से ही शुरू हो गई। प्रेमचंद के हिंदी में प्रवेश से तथा 'सप्त-सरोज' कहानी-संग्रह (सन् 1917) तथा 'सेवासदन' उपन्यास (सन् 1918) के प्रकाशन के समय से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं तथा पाठकों का इतना ध्यान आकर्षित किया कि वे हिंदी-संसार के केंद्र में आ गए। इससे उर्दू की डोरी उनके हाथ से छूटती गई और हिंदी की लोकप्रियता और स्वागत-सत्कार की परिधि में वे समाते चले गए इसके अनेक प्रमाण उनके पत्रों तथा लेखों में मिलते हैं कि सन् 1915 से 1936 तक उन्हें किस प्रकार हिंदी के तीव्र आग्रहों और आत्मीय दबावों ने उन्हें उर्दू से दूर करते हुए हिंदी का बना दिया। यहां ऐसे कुछ प्रमाणों का उल्लेख आवश्यक है, जिससे यह जाना जा सके कि हिंदी ने

जब उन्हें अपनाया तो उनके देहांत तक अपनी छाती से लगाकर रखा और उन्हें उर्दू की ओर उसी मनोभाव से लौटने का अवसर प्रदान नहीं किया। यहां प्रस्तुत कुछ विवरणों-तथ्यों से यह निष्कर्ष निकल सकता है कि उर्दू उनके आरंभिक उर्दू-फारसी संस्कारों की विवशता थी, परंतु हिंदी उनकी आत्मिक एवं आध्यात्मिक अनिवार्यता तथा तृप्ति-संतोष की भाषा थी। अपने लेखकीय जीवन के आधे मार्ग से उर्दू का मार्ग छोड़कर हिंदी के लोक-पथ पर आना जैसे उनका मानसिक और साहित्यिक विकास था। इस निष्कर्ष के लिए हमें इन प्रमाणों को देखना आवश्यक है-

1. 'ज़माना' के लिए एक और किस्सा लिखा है। हिंदी में भी लिख रहा हूं। 'सरस्वती' को एक मजमून दिया। 'प्रताप' के लिए लिखा। इसलिए ज्यादा काम करने से माजूर (असमर्थ) हूं। (दयानारायण निगम को 2 अक्टूबर, 1915 को लिखे पत्र से)[72]

2. 'किस्से लिख रहा हूं। ज्यों ही तैयार हो गए, भेजूंगा। अभी तक हिंदी मजमूआ तैयार नहीं हुआ है। ये किस्से पहले-पहल हिंदी में निकलेंगे। इसके बाद उर्दू में भी। अभी इन्हें छाप देने से इनका नयापन जाता रहेगा।' (दयानारायण निगम को 24 नवंबर, 1915 को लिखे पत्र से)[73]

3. 'हिंदी में पब्लिशर खूब हैं। किताब की इशाअत में कोई रुकावट नहीं होती।' (दयानारायण निगम को 25 अक्टूबर, 1919 को लिखे पत्र से)[74]

4. 'हिंदी रसायल के तकाजों के मारे नाक में दम हो रहा है, लेकिन मजमून तैयार है। सिर्फ साफ करने की देर है। इसकी भी मुहलत नहीं मिलती।'(दयानारायण निगम को 4 अप्रैल, 1920 को लिखे पत्र से)[75]

5. 'हिंदी में आजकल नए रिसालों की धूम है। लखनऊ से एक निकल रहा है, दूसरा कलकत्ते से। दोनों बड़ी-बड़ी तैयारियां कर रहे हैं। मजामीन की फरमाइशें रोजाना मौसूल (प्राप्त) होती हैं, इसलिए उर्दू लिखने की तरफ खयाल ही नहीं गया।'(दयानारायण निगम को 26 अप्रैल, 1922 को लिखे पत्र से)[76]

6. 'मजामीन लिखने की बार-बार कोशिश करता हूं मगर यकीन मानिए हिंदी रसायल इस कदर दिक करते हैं कि कुछ किए नहीं बन पड़ता। अब मैं कहानियां उर्दू में नहीं हिंदी ही में लिखकर भेज दिया करता हूं।' (दयानारायण निगम को 17 फरवरी, 1924 को लिखे पत्र से)[77]

7. 'मैंने तो इधर तीन माह से एक अफसाना भी नहीं लिखा। बस 'जामिया' में 'कफन' लिखा। इसके बाद लिखने की नौबत ही न आई।' (दयानारायण निगम को 1 अप्रैल, 1936 को लिखे पत्र से)[78]

8. उर्दू पत्रिका 'शाहकार' के दिसंबर, 1935 से अप्रैल, 1936 के अंकों में प्रेमचंद के हिंदी-उर्दू लेखन को लेकर विवाद चला तो प्रेमचंद ने उसका उत्तर दिया और 'साहूकार' के मई, 1936 के अंक में इस प्रकार प्रकाशित हुआ, 'मैं हिंदी में इसलिए नहीं कहने (लिखने) लगा कि हिंदी वालों ने मुझ पर सोने की थैलियां निसार कर दीं, बल्कि सिर्फ इसलिए कि हर-एक अदीब

की यह तमन्ना होती है कि उसकी तसानीफ ज्यादा से ज्यादा हाथों में पहुंचे। मैंने जो कुछ कहा (लिखा) हस्बे जरूरत पहले हिंदी में लिखा, मगर दोनों जबानों में लिखा और आज ऐसी एक लाइन भी नहीं है जो उर्दू और हिंदी दोनों में न हो। मैंने जिस फजा में तरबियत पाई, वह हिंदी न थी खालिस उर्दू थी, मगर फिर भी मैं यह महसूस करता हूं कि हिंदुस्तान में उर्दू के मुकाबले में नागरी रस्मुलखत (लिपि) के आम होने से ज्यादा आसानियां हैं। XXX हिंदुस्तानी के मानी ही वह जबान है, जो हिंदुस्तान में आम तौर पर बोली और लिखी जाती है। वह सहल किस्म की उर्दू और सहल किस्म की हिंदी है-इफराते-तफरीत (अधिकता एवं न्यूनता) से पाक, मौलवियत और पंडिताई के असर से बाहर।'[79]

प्रेमचंद के उर्दू से हिंदी में आने की जो परिस्थितियां तथा अनिवार्यताएं थीं, उसकी एक झलक इन पत्रांशों से मिल जाती है, परंतु भाषा-परिवर्तन की इस ऐतिहासिक घटना पर उर्दू लेखकों की कुछ प्रतिक्रियाएं मिलती हैं जो इस ऐतिहासिक घटना को समझने में तथा इसकी कुछ नयी दिशाओं को जानने में हमारी सहायता करती हैं। उर्दू के प्रसिद्ध लेखक काजी अब्दुल सत्तार ने लिखा है कि प्रेमचंद से सन् 1915 में उर्दू छोड़ने का फैसला इसलिए किया क्योंकि उन्हें उर्दू में वह स्वीकृति और सम्मान नहीं मिला जो उन्हें हिंदी में मिला। दरअसल प्रेमचंद ने उर्दू से गलत उम्मीद लगाई थी। वे भूल गए थे कि उर्दू अंततः शेरो-शायरी की जबान है। उर्दू में तब तक गद्य को आर्ट की हैसियत देने की परंपरा नहीं थी। उर्दू हमेशा तहजीब की जबान रही थी, लाल किले की जबान रही थी। इस भाषा में होरी, धनिया और गोबर का दैनंदिन जीवन कैसे चित्रित किया जा सकता है। हिंदी शायरी की जबान नहीं है। वह यथार्थ की जबान है। प्रेमचंद ने इस प्रकार अपनी रचना की विषय-वस्तु के दबाव में भाषा-परिवर्तन किया।[80] काजी अब्दुल सत्तार के इन विचारों में साहित्य का यह सिद्धांत काम कर रहा है कि विषय-वस्तु का भाषा से अटूट संबंध है और निश्चय ही इसके अपवादों को ध्यान में रखकर भी इसे एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लंदन के अब्दुल्ला हुसैन ने एक गोष्ठी में कहा कि उर्दू से हिंदी में आने का उनका फैसला अरचनात्मक कारणों से था। इस निर्णय में महज व्यावसायिकता का हाथ था, कोई सृजनात्मक प्रेरणा नहीं थी तथा उन्होंने हिंदी-उर्दू विवाद को सुलझाने के बजाय क्रमशः उर्दू का परित्याग कर दिया।[81] इस मत से सहमत होना कठिन है, क्योंकि धन एकमात्र कारण नहीं था और हिंदी में लिखने से भी इतना धन नहीं मिलता था कि धन की लालच में वे उर्दू भाषा को ही त्याग देते। अब्दुल्ला हुसैन को यह भी मालूम नहीं कि उन्होंने उर्दू में लिखना कभी बंद नहीं किया, हां, वह कम होता गया। हिंदी ने उन्हें व्यापकता दी, पाठकों का एक बड़ा आकाश दिया जिसे आज का उर्दू लेखक भी चाहता है।[82] डॉ. शैलेश जैदी ने इस समस्या पर कुछ नए विचार दिए हैं। डॉ. जैदी का मत है कि प्रेमचंद वास्तव में हिंदी के लिए ही जन्मे थे। वे उर्दू के भी लेखक थे, किंतु इसलिए कि वे उर्दू को हिंदी से अभिन्न समझते थे। उर्दू की भारतीयता में उन्हें संदेह न था, लेकिन हिंदी उनके लिए अधिक भारतीय थी। उन्हें इस्लाम और मुसलमानों से शत्रुता न थी, बल्कि वे उसके गुणों के प्रशंसक थे और दोनों के समन्वय की चेष्टा भी की, परंतु उनका हिंदी तथा हिंदू संस्कारों के प्रति उन्हें अनुराग और निष्ठा

थी। वे आर्य समाज के सदस्य थे और उनके लिए जाति के उद्धार की भावना की सार्थक अभिव्यक्ति हिंदी में ही संभव थी। उर्दू हिंदुओं में पुरुषों तक सीमित थी और वह भी शहरों तक ही थी, अतः साहित्य को हिंदू समाज तक पहुंचाने में उर्दू एक कमजोर बैसाखी थी। डॉ. जैदी का मत है कि प्रेमचंद को आर्य समाजी संस्कारों से हिंदुत्व के जो बीज मिले थे वे उन्हें हिंदी की ओर आकृष्ट कर रहे थे और हिंदी में जाति-सेवा के नाम पर यश और धन दोनों प्राप्य थे और गणेश शंकर विद्यार्थी, मन्नन द्विवेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के संपर्क और मित्रता ने भी उन्हें हिंदी की ओर पूरी तरह मोड़ दिया।[83]

डॉ. शैलेश जैदी के इन विचारों में से कुछ से असहमत होना संभव नहीं है। वे हिंदी के लिए ही जन्मे थे, क्योंकि वे उर्दू में लिखना आरंभ करने पर भी भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्य-चेतना को आत्मसात् करके ही कहानी-उपन्यास लिख रहे थे। यह साहित्यिक चेतना उस समय के उर्दू के कथा-साहित्य में नहीं थी। भारतीयता भी उर्दू की अपेक्षा हिंदी में अधिक थी और हिंदी स्वदेशी, स्वराज्य आंदोलन, राष्ट्रीयता और जागरण एवं स्वत्व-बोध की भाषा बन चुकी थी। इस कारण भी वे हिंदी उर्दू तथा हिंदू-मुसलमान का समन्वय करके उन्हें इस राष्ट्रीय चेतना से जोड़ना चाहते थे। प्रेमचंद का हिंदू होना और हिंदू संस्कार, हिंदू जीवन-मूल्य और संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा ने भी उन्हें हिंदी की ओर उन्मुख किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। अमृतराय ने लिखा है कि प्रेमचंद हिंदू थे, उनका जन्म हिंदू परिवार में हुआ था और हिंदू सांस्कृतिक परिवेश में पले-बढ़े थे तो यह स्वाभाविक ही था कि उनके लेखन में हिंदू तत्व हों, लेकिन यह तो कोई गुनाह नहीं है। प्रेमचंद में उसी प्रकार हिंदू सरोकार हैं, जैसे किसी मुस्लिम लेखक में होते हैं लेकिन उनमें निश्चय ही हिंदू सांप्रदायिकता नहीं थी, जैसी कि अमृतराय के अनुसार उन मुसलमानों में है जो प्रेमचंद पर ऐसा आरोप लगाते हैं।[84] प्रेमचंद ने आर्य समाज के सदस्य होने पर भी उनके 'शुद्धि' आंदोलन का विरोध किया और उधर 'कर्बला' नाटक लिखने पर मुस्लिम सांप्रदायिकता का शिकार होना पड़ा। अतः प्रेमचंद के हिंदू होने तथा हिंदी को अपनाने में हिंदू सांप्रदायिकता को देखना पूर्णतः मिथ्या एवं मूर्खतापूर्ण आरोप है। यह उनके जीवन की विडंबना ही थी कि कुछ ब्राह्मण आलोचक उन पर 'ब्राह्मण-द्रोही' एवं 'हिंदू-द्रोही' का आरोप लगा रहे थे और कुछ मुस्लिम लेखक उनमें हिंदू सांप्रदायिकता देख रहे थे, जबकि वे कुछ हिंदू लेखकों की मुस्लिम विद्वेषता का विरोध कर रहे थे और अनेक ब्राह्मण लेखक उनके साथ खड़े थे।

प्रेमचंद के उर्दू से हिंदी में आने पर उसकी लाभ और हानि पर भी यहां विचार करना उपयुक्त होगा। उर्दू के विख्यात शायर फिराक गोरखपुरी संभवतः प्रेमचंद के ऐसे अकेले मित्र हैं जिनके विचार में प्रेमचंद का उर्दू से हिंदी में आना दुर्भाग्यपूर्ण था। फिराक ने लिखा है कि उर्दू से हिंदी में उनका पदार्पण दुर्भाग्यपूर्ण था, क्योंकि उर्दू से हिंदी में आने पर उनकी भाषा में तथा अभिव्यक्ति में कमजोरी आयी और तुलनात्मक दृष्टि से उनकी जबान बनावटी हो गई।[85] फिराक के इन विचारों में कोई सत्यता नहीं है और इनके मूल में उनका हिंदी-विरोधी होना ही है। प्रेमचंद के उर्दू से हिंदी में आने पर उर्दू भाषा का नया संस्कार हुआ। प्रेमचंद ने उसकी

फारसीनिष्ठता तथा ईरानीपन को खत्म करके उसे हिंदी से जोड़ा और आमफहम भाषा को जन्म दिया। हिंदी भाषा के ज्ञान और हिंदी मुहावरे की पहचान के बिना उनकी उर्दू तथा हिंदी भाषा में इतनी बड़ी मात्रा में एकरूपता नहीं आ सकती थी और दोनों भाषाओं का भेद लगभग अभेद में नहीं बदल सकता था। प्रेमचंद के हिंदी संस्कारों ने उर्दू कहानी और उपन्यास के कथ्य, जीवन-दर्शन तथा अभिव्यक्ति के स्वरूप को भी परिवर्तित किया और उन्हें राष्ट्रीय संघर्ष एवं आकांक्षाओं के साथ दृढ़ता से संबद्ध किया। प्रेमचंद के हिंदी में जाने से उर्दू को हिंदू जीवन का व्यापक चित्र तो मिला ही, साथ ही हिंदू-मुस्लिम पात्रों को एक ही कथा-मंच पर कर्म करते तथा एक ही सी भाषा में बोलते देख सांप्रदायिक सद्भाव और एकता का भाव भी उत्पन्न हुआ। अतः उर्दू से हिंदी में जाने पर उर्दू को भी लाभ हुआ।

प्रेमचंद के उर्दू से हिंदी में आने का लाभ हिंदी को कम नहीं हुआ, बल्कि यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि उनके आगमन से हिंदी कहानी और हिंदी उपन्यास में एक नए युग का उदय हुआ। बीसवीं सदी के हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद का हिंदी में आना एक बहुत बड़ी घटना थी। इस घटना ने हिंदी कथा साहित्य की अवास्तविकता और मध्ययुगीनता को अवरुद्ध करके उसमें आधुनिक चेतना का शुभारंभ किया। वे जब तक केवल उर्दू में लिखते रहे तब भी वे हिंदी की युगीन और आधुनिक चेतना को ही रचनात्मक धरातल पर जी रहे थे और जब वे हिंदी में आए तो उन्होंने किसी नई साहित्य-चेतना का आविष्कार नहीं किया, बल्कि उसी उर्दू-चेतना का विस्तार किया जिसमें देश-प्रेम, स्वराज्य की आकांक्षा, सामाजिक सुधार, संस्कृति-बोध, सांप्रदायिक सद्भाव जैसे राष्ट्रीय मनोभाव संग्रहीत थे। प्रेमचंद के लिए यह एक सहज यात्रा थी, क्योंकि इसमें केवल लिपि के परिवर्तन के साथ भाषा का कुछ हिंदी के अनुकूल संस्कार करना था। इसके बावजूद उनके हिंदी में आने से उन्हें तथा हिंदी दोनों को ही लाभ हुआ। यह ऐसा लाभ था जिसने इतिहास की रचना की। हिंदी में आते ही प्रेमचंद हिंदी की मुख्य राष्ट्रीय धारा से जुड़े और उन्हें हिंदी पाठकों एवं हिंदी लेखकों-संपादकों तथा राष्ट्रीय नेताओं का अपनत्व प्राप्त हुआ। प्रेमचंद अपनी हिंदी कहानियों और उपन्यासों से इतने लोकप्रिय हुए कि उनके जीवन-काल में और उसके बाद भी उन जैसा लोकप्रिय कोई दूसरा हिंदी लेखक बीसवीं सदी में पैदा नहीं हुआ। हिंदी लेखकों तथा हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों से जितनी बड़ी संख्या में तथा जिस घनिष्ठता के साथ मित्रता हुई, उसकी तो कल्पना भी उर्दू में रहते हुए नहीं की जा सकती थी। बीसवीं सदी के आरंभिक चार दशकों के जो शीर्षस्थ हिंदी लेखक-संपादक थे उनमें अज्ञेय, अवध उपाध्याय, इकबाल बहादुर देवसरे, इलाचंद्र जोशी, कृष्ण बिहारी मिश्र, केसरी किशोर शरण, गणेश शंकर विद्यार्थी, गंगाप्रसाद मिश्र, चतुरसेन शास्त्री, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', जनार्दनराय नागर, जयशंकर प्रसाद, जैनेंद्र कुमार, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, पं. दशरथ द्विवेदी, दुलारेलाल भार्गव, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, बैजनाथ केडिया, नरोत्तम नागर, नंद दुलारे वाजपेयी, आचार्य नरेंद्र देव, नाथूराम प्रेमी, भंवरमल सिंघी, भदंत आनंद कौसल्यायन, मन्नन द्विवेदी, मन्मथनाथ गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, महावीर प्रसाद पोद्दार,

महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. रघुवीर सिंह, रामकुमार वर्मा, राधाकृष्ण रायकृष्ण दास, रामदास गौड़, विनोद शंकर व्यास, शांतिप्रिय द्विवेदी, शिवपूजन सहाय, सद्गुरूशरण अवस्थी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिनके साथ प्रेमचंद के साहित्यिक संबंध निजी घनिष्ठता में बदले और इस प्रकार लगभग पूरा हिंदी-संसार उनकी आत्मीयता में आबद्ध हो गया। हिंदी के अवध उपाध्याय, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', नंददुलारे वाजपेयी आदि लेखकों ने उन पर नकलची, ब्राह्मणद्रोही तथा सांप्रदायिकता के आरोप लगाए, परंतु इससे उनकी प्रतिष्ठा को कोई आघात नहीं लगा। प्रेमचंद के हिंदी में आने के कारण ही महात्मा गांधी, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, आचार्य नरेंद्र देव, शिवप्रसाद गुप्त जैसे राष्ट्रीय नेताओं से भी संपर्क हुआ और प्रेमचंद ने पं. जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' का हिंदी में अनुवाद किया। उनकी हिंदी कहानी 'एक्ट्रेस' का बनारसीदास चतुर्वेदी के सहयोग से अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। यहां तक कि जापान में रहने वाली क्रांतिकारी के केशोराम सब्बरवाल तथा जर्मनी में रहने वाले प्रो. ताराचंद राय ने उनसे संपर्क किया और उनकी हिंदी कहानियों का जापानी एवं जर्मनी में अनुवाद किया और इस प्रकार हिंदी कहानीकार प्रेमचंद विश्व साहित्य के मंच पर स्थापित हुए। इस प्रकार हिंदी कथाकार प्रेमचंद की रचनाओं के द्वारा ही देश की प्रांतीय भाषाओं तथा विदेश की भाषाओं के साहित्य तक हिंदी साहित्य पहुंचा और उसे प्रतिष्ठा मिली।

प्रेमचंद के हिंदी में आने से, देश का स्वतंत्रता आंदोलन, महात्मा गांधी का नेतृत्व और गांधीवाद के सिद्धांत, पूर्व और पश्चिम के द्वंद्व में 'भारतीय आत्मा' की रक्षा का संकल्प, समाज को अतीत की कुप्रथाओं, जड़ताओं एवं अंधविश्वासों से मुक्ति और आधुनिक समाज की संरचना का स्वप्न, समाज के शोषितों-दलितों-पीड़ितों की स्वत्वाधिकार एवं समता का संघर्ष, कृषि और कृषक-चेतना, सांप्रदायिक सद्भाव एवं समन्वय तथा सांस्कृतिक जाग्रति एवं उत्थान का महानाद, हिंदी की कहानी और उपन्यास में उतनी ही शक्ति से प्रतिध्वनित हुआ और उसने देश के हिंदी लोक-मानस को आंदोलित करके उसे दासता से मुक्ति की नई भूमिका के लिए तैयार किया। प्रेमचंद के हिंदी कथा-साहित्य ने महात्मा गांधी के स्वाधीनता आंदोलन और उनके राष्ट्र-दर्शन को जनता तक पहुंचाया और उसमें कथा-रस की सृष्टि करके उसे लोकप्रिय बनाया। प्रेमचंद अपने युग के हिंदी के एकमात्र ऐसे कथाकार थे जिन्होंने इतने व्यापक रूप में गांधी के कार्यों और जीवन-मूल्यों को साहित्य में स्थान दिया और उनका साहित्यिक संस्करण प्रस्तुत करके उसे जीवंत और विश्वसनीय बनाया। यदि वे हिंदी में न आते तो गांधीवाद का इतना व्यापक चित्रण भी हिंदी साहित्य में नहीं होता। प्रेमचंद के हिंदी में आने से हिंदी कहानी और उपन्यास में कृषि संस्कृति की रक्षा और कृषकों के अधिकारों का प्रश्न उठा, हिंदू और मुसलमानों की एकता और उसके लिए हिंदी-उर्दू को 'हिंदुस्तानी' में समन्वित करने का समाधान सामने आया और समाज को सुधार कर उसे नए युग के अनुरूप ढालने का संकल्प भी प्रमुखता के साथ चित्रित हुआ। प्रेमचंद हिंदी में आकर राष्ट्रीय जागरण के कथाकार बने। उन्होंने राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, ग्राम-नगर, भाषा-संस्कृति तथा खेलकूद तक में जागरण

उत्पन्न किया। हिंदी भाषा के क्षेत्र में तो उन जैसा योगदान कोई नहीं कर पाया। वे उर्दू भाषा के संस्कारों के साथ हिंदी में आए थे और हिंदी का भाषा-ज्ञान एवं हिंदी मुहावरे पर सिद्धहस्तता भी उर्दू जैसी नहीं थी, लेकिन उन्होंने हिंदी भाषा को ऐसा स्वरूप दिया जो लोकप्रिय ही नहीं हुआ बल्कि उसे मानक रूप में भी स्वीकार किया गया। डॉ. जगन्नाथ शर्मा ने प्रेमचंद की हिंदी भाषा के बारे में लिखा है कि जैसे एक मौलवी पंडित बनने के प्रयास में है।[86] प्रेमचंद उर्दू दां तो थे परंतु मौलवी न थे, क्योंकि उन्होंने अरबी-फारसी से मुक्ति पा ली थी, और वे पंडित भी न थे, क्योंकि संस्कृतनिष्ठता भी उन्हें प्रिय नहीं थी, लेकिन वे हिंदी तथा उर्दू को निकट लाने और उनमें अधिक से अधिक एकरूपता लाने की चेष्टा अवश्य कर रहे थे। इसीलिए वे ऐसी हिंदी भाषा रच पाए जो फारसी एवं संस्कृतनिष्ठता से मुक्त होकर लोक जीवन के एकदम निकट हो। प्रेमचंद यदि उर्दू से हिंदी में नहीं आते तो हिंदी भाषा का ऐसा लोकप्रिय संस्कार भी नहीं होता।

प्रेमचंद के उर्दू से हिंदी में आने से हिंदी कथा-साहित्य की विषय-वस्तु, दृष्टिकोण, पात्र-सृष्टि, उद्देश्य के साथ साहित्य-दर्शन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। प्रेमचंद ने अपने युगीन जीवन को अपनाया और प्रायः प्रत्येक भाग से अपनी वस्तु एवं पात्रों का चयन किया। प्रेमचंद का कथा साहित्य तो अपने युग का साहित्यिक इतिहास है। हिंदी के उस युग में इतिहास को साहित्य तथा साहित्य को इतिहास बनाने की क्षमता केवल प्रेमचंद में ही थी। प्रेमचंद ने अपने युग के देशकाल को तो चित्रण किया ही, बल्कि उन्होंने इटली ('सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम' कहानी), ईरान, ('दुनिया का सबसे अनमोल रतन' कहानी), मक्का-मदीना ('नबी का नीति निर्वाह' कहानी), अफगानिस्तान ('जिहाद कहानी'), रूस ('कैदी' कहानी), तथा मॉरीशस ('शूद्रा' कहानी) आदि देशों पर भी कहानियां, लिखीं और पशु-पक्षियों तक को अपनी कहानियों ('आत्माराम', 'दो बैलों की कथा', 'स्वत्व-रक्षा' आदि) का विषय बनाया। हिंदी कहानी में विषय की इतनी व्यापकता और लगभग तीन सौ कहानियों में एक हजार के लगभग पात्रों की सृष्टि का श्रेय भी उन्हें ही है। इसके कारण भी हिंदी कहानी इतनी ऊंचाइयों तक पहुंच पाई कि कोई हिंदी का अन्य कहानीकार आज तक भी वहां तक नहीं पहुंच पाया। प्रेमचंद ने पहली बार हिंदी साहित्य और उसके अंगों-कहानी और उपन्यास को साहित्य-दर्शन दिया। इतना सर्वांगीण तथा युगानुरूप साहित्य-दर्शन उस युग में केवल प्रेमचंद ही दे पाए। प्रेमचंद ने साहित्य और साहित्यकार को दरबारी चाटुकारिता, कपोल-कल्पनाओं तथा अवास्तविकताओं से निकालकर उसे अपने युग के जीवन से जोड़ा और उसे देश के महत् प्रश्नों से जोड़कर राष्ट्रीय जागरण का कार्य सौंपा। प्रेमचंद ने साहित्य और साहित्यकार के परंपरागत स्वरूप और दायित्वों को खंडित करके उसे नए युग की नई चेतना का संवाहक बनाया। अब वह अपने देश-समाज के साथ पूरी मानवता का प्रवक्ता बना और इस प्रकार उन्होंने उनके पद, गरिमा तथा दायित्व को नयी प्रतिष्ठा दी। अब वह राष्ट्र-प्रहरी, जाग्रति का अग्रदूत, राष्ट्र-निर्माता सब कुछ था। वह राजनेताओं से भी बढ़ा था, क्योंकि वह निःस्वार्थ भाव से मनुष्य को श्रेष्ठ मनुष्य और समाज को श्रेष्ठ समाज बनाना चाहता था। प्रेमचंद ने अपनी इन्हीं प्रतिबद्धताओं के लिए गांधीवाद,

साम्यवाद, राष्ट्रवाद आदि विचारधाराओं का आवश्यकतानुसार उपयोग किया और इसीलिए वे इन विचारधाराओं के अंधे अनुयायी नहीं बने। प्रेमचंद ने साहित्य में प्रगतिशीलता को अपनाया परंतु मार्क्सवादी प्रगतिशीलता को उन्होंने गुणावगुणों की दृष्टि से देखा और साहित्यकार की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता को बनाए रखा। प्रेमचंद के हिंदी में आने से हिंदी साहित्य में यह इतनी बढ़ी क्रांति थी कि उन्होंने अपने कहानी, उपन्यास साहित्य और अपने साहित्य-दर्शन से अपने युग के हिंदी साहित्य का कायाकल्प ही नहीं किया, बल्कि आज के साहित्य-चिंतन पर भी उनका प्रभाव देखा जा सकता है। प्रेमचंद आज के हिंदी कथा-साहित्य के मूल्यांकन और उसकी उपलब्धियों के विवेचन में भी महत्वपूर्ण और आवश्यक कसौटी बने हुए हैं। प्रेमचंद के देहांत को आज लगभग सत्तर वर्ष हो गए हैं, परंतु हिंदी कहानी और उपन्यास के पास उनका कोई विकल्प नहीं है। प्रेमचंद को हिंदी से हटा दें तो आज भी हिंदी में एक भी ऐसा कहानीकार तथा उपन्यासकार नहीं है जिसकी रचनाएं देश-विदेश की अधिकांश भाषाओं में अनूदित हुई हों और जिसे विश्व के श्रेष्ठतम कहानीकारों-बाल्जाक, तुर्गनेव, ओ हेनरी, चेखव और गोर्की आदि के साथ जिसका उल्लेख होता हो।

प्रेमचंद के उर्दू से हिंदी में आने पर हिंदी-उर्दू के विवाद को साहित्य के धरातल पर हल करने का भी प्रयत्न किया। वे उर्दू से हिंदी में आए थे, इस कारण वे उर्दू भाषा की उत्पत्ति और उसके इतिहास से पूर्णतः परिचित थे। हिंदी से उर्दू की उत्पत्ति की कथा उन्हें मालूम थी और हिंदी के प्रति आरंभ से ही रूचि होने, हिंदी पत्रिकाओं-लेखकों के संपर्क में रहने और हिंदी-संस्कृत की नगरी काशी में जन्म लेने के कारण हिंदी भाषा की राष्ट्रव्यापी स्थिति से भी वे परिचित थे। जब उन्होंने हिंदी में लिखना शुरू किया और महात्मा गांधी के विचारों के प्रभाव में आए तो उन्होंने हिंदी-उर्दू का अधिक से अधिक निकट लाने और उनके भेद को समाप्त कर उनके एकत्व के लिए प्रयत्न किया। प्रेमचंद ने जब उर्दू कथा-संसार में प्रवेश किया तब तक पूरे उत्तर भारत में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का तीव्र आंदोलन शुरू हो चुका था। सन् 1910 की 10-12 अक्टूबर को काशी में 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने 'प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन' किया और इसकी अध्यक्षता की मदन मोहन मालवीय ने और प्रस्तावकों में पुरुषोत्तमदास टंडन भी थे। यह हिंदी के प्रचार-विकास को लेकर देश के हिंदी-प्रेमियों का पहला सम्मेलन था जिसमें लगभग साठ शहरों से पांच सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया और एक हजार से अधिक दर्शक उपस्थित रहे। इस हिंदी साहित्य सम्मेलन में मदनमोहन मालवीय ने अपने भाषण में हिंदी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार में लगी चौदह संस्थाओं की चर्चा की[87] और हिंदी-उर्दू के संबंध में अपनी नीति की घोषणा करते हुए कहा कि उर्दू भाषा हिंदी की एक शाखा है और इस पर भी हिंदी का प्रवाह ज्यों का त्यों है। हिंदी बोलने वालों की संख्या उर्दू से चार गुनी है, परंतु हम चाहते हैं कि दोनों भाषाएं रहें। हमारे मुसलमान भाई उर्दू की और हिंदी जानने वाले हिंदी की उन्नति करें। मालवीयजी ने जोर देकर कहा कि हिंदी का फारसी-अरबीकरण तथा संस्कृतिकरण दोनों बुरे हैं तथा दोनों भाषाओं का रूप 'गंठ-बन' गया है और हिन्दुओं एवं मुसलमानों को यत्न करना चाहिए कि इन भाषाओं का क्रम एक हो

सके।[88] इस प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन में 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तानी' की विचार-दृष्टि भी सामने आई परंतु उर्दू को हटाने या नष्ट करने का कोई विस्तार सामने नहीं आया। मदनमोहन मालवीय ने तो स्पष्ट कहा कि हिंदी और उर्दू दोनों भाषा रहें और रहेंगी, लेकिन वे हिंदी को जगाकर उसे उसका अधिकार दिलाने के लिए तथा स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार वे चाहते थे कि अदालतों में नागरी का प्रचार हो, विश्वविद्यालयों में हिंदी में शिक्षा दी जाए, हिंदी पाठ्यपुस्तकों के चुनाव का प्रबंध हो, राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि का विकास हो, स्टांपों और सिक्कों पर नागरी अक्षरों का उपयोग हो, प्रांतीय कांफ्रेंसों में नागरी का आदर हो तथा देशी राज्यों में नागरी प्रचार हो।[89] मालवीयजी तो यहां तक तैयार थे कि यदि उर्दू प्रेमी हिंदी भाषा को उर्दू भाषा कहते हैं तो कहने दें। यदि उन्हें इससे संतोष होता है तो हिंदी वालों को एतराज नहीं करना चाहिए।

प्रेमचंद पर इन विचारों का प्रभाव दिखाई देता है और बाद में महात्मा गांधी के भाषा संबंधी विचारों ने भी उन्हें प्रभावित किया और दोनों के विचारों में काफी समानता बनी। गांधी कहते हैं कि हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू एक ही भाषा के विभिन्न नाम है।[90] फिर से हिंदी की दो शाखाएं बताते हुए कहते हैं कि हिंदी की दो शाखाएं हो गयीं, देवनागरी में लिखी जाने वाली उत्तर के हिंदुओं की भाषा को 'हिंदी' और फारसी या अरबी लिपि में लिखी जाने वाली मुसलमानों की भाषा को 'उर्दू' कहा जाने लगा।[91] गांधी 'हिंदी' और 'हिंदुस्तानी' में भेद नहीं करते और वे इंदौर के हिंदी सम्मेलन में 'हिंदी-हिंदुस्तानी' नाम देते हैं, लेकिन राष्ट्र-भाषा के लिए 'हिंदुस्तानी' शब्द का प्रयोग करते हैं और इसमें फारसी मुहावरे के शब्दों के प्रयोग को जरूरी मानते हैं।[92] गांधी के इस चिंतन में हिंदू-मुस्लिम एकता का भाव था, क्योंकि वे स्वराज्य के लिए दोनों की एकता आवश्यक समझते थे। प्रेमचंद भी गांधी के इसी लक्ष्य को लेकर चले और वे हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए हिंदी-उर्दू के स्थान पर 'हिंदुस्तानी' के समर्थक हो गए और इस एकता के लिए बहैसियत हिंदू वे 'बुजदिली' और 'पस्तहिम्मती' तक के इल्जाम बरदाश्त करने को तैयार थे।[93] प्रेमचंद ने मौलवी अब्दुल हक को 4 जून, 1936 को पत्र में लिखा था कि वे हिंदू-मुस्लिम के भेदभाव को मिटाने के लिए हिंदी और उर्दू को 'हिंदुस्तानी' के घर में जाकर मिलाना चाहते हैं, परंतु उर्दूदां तबका साथ देता है तो वह सही मानों में 'हिंदुस्तानी' बनेगी अन्यथा वह 'हिंदी-हिंदुस्तानी' होकर रह जाएगी।'[94] प्रेमचंद और गांधी दोनों ने ही हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए 'हिंदुस्तानी' को अपनाया और नागरी एवं फारसी दोनों लिपियों के प्रयोग का समर्थन किया, परंतु इतिहास साक्षी है कि प्रेमचंद ने उर्दूदां तबके से जो चाहा था, वह नहीं मिला और उर्दू तबके ने देश के विभाजन में बड़ी भूमिका अदा की।

प्रेमचंद की हिंदी उर्दू कहानियों को उनके इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में देखना ही उपयुक्त होगा। वे जीवनपर्यंत हिंदी के दो भाषा रूपों के लेखक बने रहे। उन्होंने उर्दू की उपेक्षा तथा मुस्लिम समाज के हिंदी विरोधी विचारों के बावजूद उर्दू में लिखना नहीं छोड़ा। असल में प्रेमचंद के लिए हिंदी और उर्दू के संस्कारों एवं संवेदनाओं में कोई बुनियादी अंतर नहीं था जिसे सर्जनात्मक धरातल पर मिटाया या सुलझाया न जा सकता हो। अतः उनकी कहानियों को हिंदी और उर्दू कहानी के दो भाषागत भेदों में बांटकर उनकी अलग-अलग सत्ता के रूप में देखना

उचित नहीं होगा। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों के संबंध में आज यह कहना असंभव ही है कि कौन-सी कहानी पहले हिंदी में लिखी या छपी या उर्दू में लिखी या छपी थी। यह ठीक है कि उनकी कुछ कहानियों के से भाषागत प्रमाण उपलब्ध हैं, परंतु सभी कहानियों के संबंध में ऐसे निष्कर्ष देना संभव नहीं है। उर्दू के प्रोफेसर डॉ. जाफर रजा तो यह मानते हैं कि प्रेमचंद मूलतः उर्दू के लेखक थे और उन्होंने अपनी अधिकांश कहानियां उर्दू ही लिखी थीं और इनका हिंदी अनुवाद भी उन्होंने दूसरों से कराया था। अतः प्रेमचंद की हिंदी कहानियों को मौलिक न मानकर अनूदित मानना चाहिए।[95] डॉ. जाफर रजा का यह विचार उनकी अज्ञानता और उर्दू वालों की संकीर्णता का प्रमाण है। वे हिंदी-उर्दू को एक ही मूल भाषा से उत्पन्न मानते हैं, परंतु प्रेमचंद की उर्दू कहानियों को मौलिक तथा हिंदी कहानियों को अनूदित मानकर भेद-भरी दीवार खड़ी कर देते हैं। वैसे भी, इस संबंध में जो भी प्रमाण उपलब्ध हैं, उनमें हिंदी कहानी या उपन्यास के उर्दूकरण के ज्यादा हैं और उर्दू से हिंदीकरण के बहुत ही कम हैं। प्रेमचंद ने जब हिंदी में कहानी और उपन्यास लिखना शुरू कर दिया था तो वे मूल पांडुलिपि हिंदी में तैयार करते थे और बाद में उर्दू में, लेकिन जब उन्हें समयाभाव होता था तो वे अपनी हिंदी रचना का उर्दूकरण या अपनी हिंदी रचना के उर्दू रूप की पांडुलिपि अपने किसी उर्दूदां दोस्त से करा लेते थे। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' उपन्यास पहले उर्दू में लिखा था ओर उसका हिंदी रूप खुद तैयार किया, परंतु वह जब बाद में उर्दू में 'चौगाने हस्ती' के नाम से छपा तो वह हिंदी-रूप का अनुवाद था और वह उन्होंने अपने एक दोस्त से कराया था। इस समस्या के संबंध में प्रेमचंद के कुछ महत्वपूर्ण वक्तव्य मिलते हैं। मुहम्मद अस्करी ने अपने संस्मरण में प्रेमचंद के इस कथन को उद्धृत किया है कि कभी मैं उर्दू में पहले लिखता हूं और उसका हिंदी में अनुवाद करता हूं और कभी हिंदी में लिखता हूं और बाद में उसका उर्दू तर्जुमा करके शाया कराता हूं।[96] लेकिन इसके विपरीत वे 18 मई, 1928 को जापान के केशोराम सब्बरवाल को अपने पत्र में लिखते हैं, 'उर्दू कृतियां मेरी हिंदी कृतियों का मात्र उर्दू रूपांतर हैं।[97] उनके इस वक्तव्य में पूरी सत्यता नहीं है, क्योंकि उनकी आरंभिक काफी कहानियां पहले उर्दू में छपी थीं और बाद में हिंदी में रूपांतरित होकर प्रकाशित हुई। इसी प्रकार प्रेमचंद ने उर्दू पत्रिका 'शाहकार' में लिखा कि मैंने जो कुछ लिखा हस्बे जरूरत पहले हिंदी में लिखा, मगर दोनों जबानों में लिखा और आज ऐसी एक लाइन भी नहीं है, जो उर्दू और हिंदी दोनों में न हो[98] परंतु इसमें भी सच्चाई नहीं है। उनकी 63 उर्दू कहानियां तो हिंदी में थी ही नहीं। इनमें से 43 उर्दू कहानियों का हिंदीकरण अमृतराय ने किया और 'गुप्तधन'-1 में ऐसी 26 तथा 'गुप्तधन'-2 में 17 कहानियां प्रकाशित कीं। इसी निबंध-लेखक ने इस कार्य के बावजूद उर्दू की अन्य अप्राप्य एवं अज्ञात 20 कहानियों को खोजा और उनका हिंदी लिप्यंतरण करके सन् 1988 में 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', भाग एक में प्रकाशित कराया। इसी प्रकार सन् 1917 से 1938 के बीच प्रेमचंद की 67 ऐसी हिंदी कहानियां मिलती हैं जो केवल हिंदी में ही प्रकाशित हुई। इन 67 हिंदी कहानियों के उर्दू-संसार तक नहीं पहुंच पाई हैं और इस तरह में छपने के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, यद्यपि यह संभव है कि सन् 1910 से 1936 तक की सभी उर्दू पत्र-पत्रिकाओं को देखा जाए तो कुछ हिंदी कहानियों

के उर्दू में भी छपने के प्रमाण मिल सकते हैं। इस प्रकार उर्दू की 63 कहानियां तो अमृतराय और कमल किशोर गोयनका के प्रयास से हिंदी में आ गईं, परंतु हिंदी की 67 कहानियां अभी तक उर्दू-संसार तक नहीं पहुंच पाई हैं और इस तरह प्रेमचंद के उर्दू पाठक उनकी 74 कहानियों (67 हिंदी कहानियां +7 अप्राप्य उर्दू कहानियां = 74) से अभी तक वंचित हैं।

प्रेमचंद की कहानियों को लेकर हिंदी और उर्दू वालों की सोच, सरोकार एवं व्यवहार के अंतर को समझना आवश्यक है। प्रेमचंद को हिंदी वालों ने उनके संपूर्ण रचना-संसार के साथ अपनाया और अमृतसर ने सन् 1962 में तथा कमल किशोर गोयनका ने सन् 1988 में प्रेमचंद के हजारों पृष्ठों के हिंदी-उर्दू के अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य को प्रकाशित कराया। यहां तक कि उनकी 307 कहानियों में 300 कहानियां आज हिंदी में उपलब्ध हैं, परंतु उर्दू के प्रोफेसर तथा लेखकों में कभी ऐसा उत्साह नहीं रहा कि प्रेमचंद के उर्दू नाविलों एवं अफसानों को संपूर्ण रूप से प्राप्त किया जाए। डॉ. कमर रईस तो उर्दू में 'माहिर-ए-प्रेमचंद' कहलाए। इसका उन्हें खूब फायदा भी मिला परंतु उन्होंने कभी इसकी कोशिश नहीं की कि प्रेमचंद के गुमशुदा उर्दू साहित्य को खोजकर उसे उर्दू पाठकों तक पहुंचाया जाए। डॉ. जाफर रजा ने भी प्रेमचंद पर उर्दू में दो-तीन किताबें तो लिखीं, लेकिन खोजी के रूप में लाइब्रेरियों की धूल फांकने की हिम्मत उनकी भी नहीं हुई। इस प्रकार उर्दू के अदीब और पाठक अधूरे प्रेमचंद को पूरा प्रेमचंद मानकर लिखते-पढ़ते रहे और वे इस दृष्टि से इतने सीमित एवं संकुचित हो गए हिंदी में उपलब्ध उनकी अन्य कहानियों, उपन्यासों, लेखों आदि की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया, जबकि हिंदी के लोग उर्दू की हिंदी में अनुपलब्ध कहानियों, उपन्यासों, लेखों, पत्रों आदि को खोज-खोजकर हिंदी में लाते रहे। डॉ. गोपीचंद नारंग का उर्दू वालों के संबंध में यह कथन पूर्णतः सत्य है कि अधिकांश उर्दू वाले हिंदी प्रेमचंद में कोई दिलचस्पी नहीं रखते, परंतु उनके इस मत में सत्यता नहीं है कि इसी प्रकार अधिकांश हिंदी वाले भी उर्दू प्रेमचंद से अपरिचित थे।[99] डॉ. गोपीचंद नारंग ने यदि अमृतराय और कमल किशोर गोयनका के कार्यों को देखा होता तो वे ऐसा तथ्यहीन वक्तव्य नहीं देते। प्रेमचंद के उर्दू के हिंदी में अनुपलब्ध हजारों पृष्ठों के साहित्य को हिंदी में लाने का कार्य ही उनके मत को खंडित कर देता है। हिंदी में प्रेमचंद के उर्दू कथाकार को सदैव सम्मान मिला और प्रायः हिंदी आलोचकों ने उनके आरंभिक उर्दू लेखन से लेकर उर्दू में पहले छपी 'कफन' कहानी तक की चर्चा की और उसके महत्व को स्वीकार किया। मन्मथनाथ गुप्त, हंसराज रहबर, मदन गोपाल, अमृतराय आदि ने अपने ग्रंथों में उनके उर्दू लेखन का विवेचन किया और कमल किशोर गोयनका ने अपने शोध-प्रबंध 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प- विधान' (सन् 1972), 'प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी' (सन् 1980) तथा 'प्रेमचंद की हिंदी उर्दू कहानियां' (सन् 1990) पुस्तकों में उनके हिंदी उर्दू कथाकार की विस्तृत चर्चा की। इस प्रकार हिंदी संसार ने प्रेमचंद को संपूर्ण रूप से अपनाया, परंतु उर्दू वालों ने तो उनकी उर्दू की कहानियों, उपन्यासों और लेखों की भी सुध नहीं ली। हिंदी और उर्दू की सोच, सरोकार और व्यवहार के इसी अंतर के कारण देश-विदेश में प्रेमचंद की लोकप्रियता और ख्याति हिंदी कथाकार के रूप में हुई और वह इसी रूप में भविष्य में भी बनी रहेगी।

प्रेमचंद की रचनाओं को लेकर हिंदी वालों का मन कभी उर्दू जैसी संकीर्णताओं से पीड़ित नहीं रहा। उर्दू के डॉ. जाफर रजा ने जैसे को केवल उर्दू का कथाकार माना और उनकी हिंदी कहानियों और उपन्यासों को उर्दू से हिंदी में दिया गया परंतु वैसे किसी हिंदी आलोचक ने यह नहीं कहा कि प्रेमचंद केवल हिंदी के लेखक थे और उनकी उर्दू में रूपांतरित या अनूदित रचनाएं उर्दू की मौलिक रचनाएं नहीं थी। हिंदी आलोचकों शोधकर्ताओं और पाठकों ने कभी उनकी हिंदी उर्दू रचनाओं में भेद नहीं किया, चाहे वे उर्दू से हिंदी में रूपांतरित हुई हों, लिप्यंतरण की गई हों या उनका अनुवाद किया गया हो। प्रेमचंद ने जब अपनी उर्दू कहानी 'कफन' ('जामिया' उर्दू पत्रिका, दिसंबर, 1935) का हिंदी रूपांतर किया और 'कफन' के नाम से ही 'चाँद' के अप्रैल, 1936 के अंक में प्रकाशित या तो हिंदी में कभी उसकी मौलिकता या अनुवाद का प्रश्न नहीं उठाया गया और इस हिंदी में रूपांतरित रूप को ही हिंदी की मौलिक कहानी का दर्जा दे दिया गया। इसी प्रकार अमृतराय ने सन् 1962 में प्रेमचंद के आरंभिक उर्दू उपन्यासों को 'मंगलाचरण' में तथा उनकी 43 उर्दू कहानियों को उनकी उर्दू भाषा में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन करके हिंदी में प्रस्तुत किया तो हिंदी संसार ने उन्हें हिंदी की ही रचनाएं मानकर स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद की 20 उर्दू कहानियों का हिंदी लिप्यंतरण करके प्रस्तुत किया तो वे भी इसी प्रकार प्रेमचंद के हिंदी कहानी-संसार की अंग बन गईं।

प्रेमचंद के पहले उर्दू कहानी-संग्रह 'सोजेवतन' के उदाहरण से इस तथ्य को समझा जा सकता है कि आरंभ से ही हिंदी वालों ने उनके उर्दू कहानीकार को गले लगाकर रखा और कभी हिंदी उर्दू कहानीकार में भेद नहीं किया। यह पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि 'सोजेवतन' (जून, 1908) के प्रकाशित होने के छः महीने बाद ही पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में इसकी समीक्षा करते हुए देश प्रेम की इन कहानियों का स्वागत किया। इस प्रशंसात्मक टिप्पणी के बावजूद इसकी पांच उर्दू कहानियों में से केवल एक कहानी 'यही मेरी मातृभूमि है' (उर्दू में 'यही मेरा वतन है') को प्रेमचंद ने अपने जीवन-काल में प्रकाशित कराया और इसे सन् 1924 में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'प्रेम-प्रमोद' में स्थान दिया। 'सोजेवतन' उर्दू कहानी संग्रह पूर्ण रूप से पहली बार हिंदी में सन् 1961 में आया जब अमृतराय ने इसका हिंदीकरण करके प्रकाशित किया। इसके एक वर्ष के बाद अमृतराय ने ही 'गुप्तधन'-1 में इसकी शेष चार कहानियों को हिंदी में प्रस्तुत किया। इस प्रकार 'सोजेवतन' के हिंदी में आने से पहले हिंदी-संसार ने इसे अपनाया और प्रेमचंद के कहानीकार के विवेचन में उसकी चर्चा बराबर होती रही। 'हिंदी साहित्य कोश' के भाग दो में, जो सन् 1963 में प्रकाशित हुआ था, 'प्रेमचंद' शीर्षक टिप्पणी में 'सोजेवतन' तथा उनकी आरंभिक उर्दू कहानियों की चर्चा है।[100] इसी प्रकार डॉ. विजेंद्र स्नातक[102,] डॉ. भीष्म साहनी[102], डेविड रूबिन[104], डॉ. नामवर सिंह[105], डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी[106] डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर[107] डॉ. बच्चन सिंह[108], डॉ. शंभुनाथ[109] आदि हिंदी के प्रतिष्ठित आलोचकों ने भी हिंदी कहानीकार प्रेमचंद की चर्चा में 'सोजेवतन' उर्दू कहानी-संग्रह, उनकी पहली उर्दू कहानी तथा अन्य आरंभिक उर्दू कहानियों की संवेदनाओं तथा लेखकीय दृष्टिकोण का विवेचन किया है। इस तरह प्रेमचंद के हिंदी कहानीकार के अध्ययन और विवेचन

में उनकी आरंभिक उर्दू कहानियों की ही चर्चा हुई और उसके निष्कर्ष भी हिंदी कहानीकार के भी आरंभिक निष्कर्ष बने। हिंदी आलोचकों ने प्रेमचंद हिंदी उर्दू कहानीकार के भेद को तो समाप्त किया, परंतु वे हिंदी कहानी के उद्‌भव और विकास के इतिहास में इन आरंभिक उर्दू कहानियों के योगदान को रेखांकित नहीं कर पाए और डॉ. गौतम सचदेव को यह लिखना पड़ा कि यदि ये आरंभिक उर्दू कहानियां हिंदी में आई होती तो हिंदी कहानी का आरंभिक इतिहास दूसरा ही होता। यह हिंदी आलोचकों की दोगली नीति है कि प्रेमचंद की आरंभिक उर्दू कहानियां उनके हिंदी कहानीकार के उद्‌भव में तो बुनियाद बनती हैं, परंतु हिंदी कहानी के उदय में उनका कोई योगदान नहीं है! हिंदी की पहली आधुनिक कहानी के निर्धारण में सन् 1915-16 में प्रकाशित 'सौत', 'पंच-परमेश्वर' तथा 'उसने कहा था' कहानियों में से किसी एक को चुनने से यह अधिक उचित होगा कि इसका श्रेय 'सोजेवतन' की कहानियों को दिया जाए। 'सोजेवतन' से आधुनिक कहानी का श्रीगणेश होता है और यदि इसका श्रेय हिंदी और उर्दू की कहानियों को मिलता है तो हिंदी के आलोचकों को सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है और हिंदी-उर्दू कहानियों के सवाल को हमेशा के लिए खत्म करना चाहिए। □

संदर्भ सूची

1. 'प्रेमचंद विश्वकोश', खंड एक डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृ. 39, 2. 'प्रेमचंद स्मृति', संपादकः अमृतसराय, पृ. 179। फिराक गोरखपुरी ने ही 'सोजेवतन' के संबंध में कहा था, 'जैसे एक टैंक को उड़ाने के लिए एक छोटा परंतु उचित स्थान पर रखा हुआ बम हो।' देखिए 'प्रेमचंदः चित्रात्मक जीवनी', कमल किशोर गोयनका, पृ. 17, 3. 'उपन्यास सम्राट प्रेमचंद', प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-1980, पृ. 53, 4. 'सह-चिंतन' पृ. 116, सर्जना प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम सं. 1987, 5. पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी समीक्षा में लिखा, 'पुस्तक उर्दू में हैं। इसमें स्वदेश प्रेम संबंधी आख्यायिकां हैं। आख्यायिकां मनोरंजक और उपदेशपूर्ण हैं। इन्हें पढ़कर स्वदेश भक्ति का पवित्र भाव हृदय में अंकुरित हो जाता है। आजकल ऐसे किस्सों की बड़ी आवश्यकता है। इन्हें पढ़कर लोग बहुत लाभ उठा सकते हैं।', 6.'प्रेमचंद : विविध प्रसंग'-1, पृ. 21, 7. 'सोजेवतन' की यह भूमिका (दीवाचा) यहां प्रस्तुत हैः 'हरेक कोम का इल्म-ओ-अदब अपने जमाने की सच्ची तस्वीर होता है। जो ख्यालात कौम के दिमागों को मुतहर्रिक (सक्रिय) करते हैं और जो जज्बात कौम के दिलो में गूंजते हैं, वे नज्म-ओ-नस्त (पद्य-गद्य) के सफों में ऐसी सफाई से नजर आते है, जैसे आईने में सूरत। हमारे लिट्‌रेचर का इब्तिदाई दौर वो था कि गफलत के नशे में मतवाले हो रहे थे। इस जमाने की अदबी यादगार बजुज(अलावा) आशिकाना गजलों और चंद फहहाश किस्सों (अश्लील कहानियों) के और कुछ नहीं। दूसरा दौर उसे समझना चाहिए जब कौम के नए और पुराने ख्यालात में जिंदगी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और इस्लाहे तमद्दुन (सांस्कृतिक सुधार) की तजवीजें सोची जाने लगी। इस जमाने के व हिकायत (किस्से तथा कहानी) ज्यादातर इस्लाह (सुधार) और तज्तीद

(नवीनता) ही का पहलू किए हैं। अब हिंदुस्तान के कौमी ख्याल ने बलोगीयत (बालिगपन, बुद्धिमत्ता) के जीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे वतन के जज्बात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं! क्यूंकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता? ये चंद कहानियां इसी असर का आगाज (प्रारंभ) है और यकीन है कि जूं-जूं हमारे ख्याल वसीह (विस्तृत) होते जाएंगे, इसी रंग के लिटरेचर को रोज अफ्जों (प्रतिदिन बढ़ना) फरोग (उन्नति) होता जाएगा। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद (सख्त) जरूरत है, जो नई नस्ल के जिगर पर हुब्बे वतन (देश-प्रेम) की अजमत (महिमा) का नक्शा जमाएं।' (संकलित 'प्रेमचंद का अप्राप्य सहित्य' खंड-2,पृ. 329), 8.'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 541-42, 9. 'उद्भावना', अक्टूबर, 2003 पृ. 13 पर प्रकाशित उनके लेख से। अमृतराय ने अपनी पुस्तक 'नई समीक्षा', में भी इसी मत के समर्थन में लिखा है कि भारतेंदु के बाद प्रेमचंद ने भारतेंदु के बाद के सारे विकास को अधिकृत किया, उनकी बातों को विकसित किया और उसके साथ कुछ नए बीज भी बोए जैसा कि प्रत्येक युगांतरकारी साहित्यकार करता है।,10.'मेरी पहली रचना' लेख से 'कफन', में संकलित, पृ. 46-49, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, ग्यारहवां संस्करण, अक्टूबर, 1966, 11. 'प्रेमचंद और भारतीय साहित्य' में प्रकाशित लेख से, पृ. 75-76, 12. 'प्रेमचंद स्मृति', संपादक : अमृतराय, पृ.231,13. प्रेमचंद और भारतीय साहित्य', संपादक निर्मला जैन, में संकलित 'प्रेमचंद और उर्दू का अफसानवी अदब' लेख से, पृ. 85-86। इसी पुस्तक में अली अहमद फातमी का लेख भी दृष्टव्य है जिसमें प्रेमचंद की कहानी चेतना की नवीनता को सिद्ध किया गया है।,14. 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 462, 15. 'हिंदी साहित्यः उसका उद्भव और विकास', संस्करण संवत् 2009, पृ. 259, 16. डॉ. देवेश ठाकुर, 'हिंदी की पहली कहानी', पृ. 18 मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, प्रथम प्रकाशन, 1977, 17. 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 463, 18. राजेंद्र यादव मानते हैं कि हिंदी की पहली मौलिक, कलापूर्ण तथा आधुनिक कहानी 'उसने कहा था' ही थी और इससे ही आधुनिक कहानी का प्रारंभ मानना चाहिए। 19. डॉ. पुष्पपाल सिंह, 'भाषा त्रैमासिक पत्रिका, प्रेमचंद विशेषांक, मार्च 1981, पृ. 61,20. रामरतन भटनागर, 'कलाकार प्रेमचंद', पृ. 31-32, यूनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1951; तथा विजय मोहन सिंह, 'हिमप्रस्थ' जुलाई 1980, पृ. 20 21.'सह-चिंतन' पृ. 116, सर्जना प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम सं. 1987। 22. 'प्रेमचंद : कहानी शिल्प' (दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली का शोध प्रबंध), पृ. 63, यूनाइटेड बुक हाउस दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण, 1982, 23. साहित्य का उद्देश्य', पृ. 156-176, प्रथम संस्करण, 24.'प्रेमचंदः भारतीय साहित्य संदर्भ' की भूमिका से, संपादक-निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1981, तथा 'गगनांचल', वर्ष-3, अंक-3, 1980, पृ. 41-42 भी देखें। 25.'उपन्यास सम्राट प्रेमचंद', पृ. 2-5, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण-1980, 26. One language : Two Scripts'a By Chistopher R. Kinga oxford University Pressa New Delhia First Edition1994, इसमें लेखक ने रामकृष्णदास के 'सरस्वती', नवंबर, 1902 में प्रकाशित एक लेख से उर्दू हिंदी का यह संवाद उद्धृत किया है जो दोनों की स्थिति को स्पष्ट करता है-'उर्दू हे तू

बुड्ढी चुडैल! तू मर जाने के बाद भी जीवित है? हिंदी पुत्री। तुमने मुझे इतने मुझे इतने लंबे समय तक क्यों मारे रखा? मैंने तुम्हारी क्या हानि की है? 27. डॉ. वंदना केंगरानी के लेख 'हिंदी-उर्दू' प्रश्न अस्मिता का' में उद्धृत, 'कला प्रयोजन' त्रैमासिक पत्रिका, उदयपुर, अंक 38, पृ. 29, 28. अमृतसर की अंग्रेजी पुस्तक 'ए डिवाइडिड हाउस', पृ. 243 पर उद्धृत, 29. वही, पृ. 259 पर उद्धृत, 30. वही, पृ. 260 पर उद्धृत, 31.वही, पृ. 260 पर उद्धृत, 32. वही, पृ. 260 पर उद्धृत, 33.वही, पृ. 260-61 पर उद्धृत, 34. वही, पृ. 264 पर उद्धृत, 35. 'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका, फरवरी, 1908 में प्रकाशित समीक्षाएं से, 'विविध प्रसंग'-1, पृ. 106, प्रथम संस्करण-1962, 36.'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका, 1908 में प्रकाशित उर्दू लेख 'अकबर की शायरी पर एक नजर से 'विविध-प्रसंग'-1, पृ. 141, 37. 'साहित्य का उद्देश्य', पृ. 158-57, प्रथम संस्करण, 38. भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सन् 1884 में बलिया में दिए भाषण में यही बात कही थी, 'मुसलमान भाइयों को भी उचित है कि इस हिंदुस्तान में बसकर वे लोग हिंदुओं को नीचा समझना छोड़ दें। ठीक भाइयों की भांति हिंदुओं से बरताव करें। ऐसी बात जो हिंदुओं का जी दुखाने वाली हो न करें। XXX अभी तक बहुतों (मुसलमानों को) यही ज्ञान है कि दिल्ली लखनऊ की बादशाहत कायम है। यारों। वे दिन गए। अब आलस हठधर्मी यह सब छोड़ों। चलो, हिंदुओं के साथ तुम भी दौड़ो एकाएक दो होंगे।' संकलित 'भारतेंदु हरिश्चंद्रः प्रतिनिधि संकलन', संपादक-कमला प्रसाद, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996 39. प्रेमचंद में 1 सितंबर, 1915 को मुंशी दयानारायण निगम को पत्र में लिखा था, 'अब हिंदी लिखने की मश्क भी कर रहा हूं। उर्दू में अब गुजर नहीं है। यह मालूम होता है कि बालमुकुंद गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिंदी लिखने में जिंदगी सर्फ कर दूंगा। उर्दूनवीसी में किसी हिंदू को फैज हुआ जो मुझे हो जाएगा। 'चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 46, 40. अमृतराय ने एक इंटरव्यू में कहा था, 'हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं है कि जुमला उनकी कलम से निकला तो क्यों निकला और कहां से आया। एक बात जो सरीहन नजर आती है तो यह है कि उर्दू में सर्दबाजारी थी और हिंदी में गर्मबाजारी थी। उर्दू में 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम-बत्तीसी' और 'प्रेम चालीसी' के प्रकाशन के लिए प्रेमचंद ने खुद अपनी जेब से पैरों खर्च किए और हिंदी में प्रकाशक उन्हें घेरे रहते थे और घर पर आकर पैसे दे जाते थे। जाहिर है कि आदमी उसी तरफ जाएगा जहां उसके चाहने वाले ज्यादा हों।' देखें-'प्रेमचंद की प्रासंगिकता', पृ. 179, हंस प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण-1985, 41.वही, पृ. 85, 42. 'प्रेमचंद की उपन्यास-यात्रः नवमूल्यांकन', पृ. 468-70, यूनिवर्सिटी पब्लिशिंग हाउस, अलीगढ़, प्रथम संस्करण-1978, 43. 'प्रेमचंदः विविध-प्रसंग'-2, पृ. 361, 44. वही, पृ. 360-61, 45. वही, पृ. 361, 46. वही, पृ. 362, 47. वही, पृ. 409-10, 48. वही, पृ. 362, 49. 'आर्य समाज', लाहौर के अधिवेशन में 11 अप्रैल, 1936 को दिये भाषण से, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ. 194, प्रथम संस्करण, (i) पं. डॉ. जाफर रजा ने लिखा है कि उर्दू मुसलमानों की और हिंदी हिंदुओं की भाषा कहलाने लगी। देखिए- 'आलोचना', अप्रैल-जून, 1980 के अंक में डॉ. जाफर रजा का लेख 'प्रेमचंद का भाषा-शिल्पः एक आलोचनात्मक अध्ययन', पृ. 77, (ii) डॉ. इहतिशम अहमद नदबी के अनुसार, 'प्रेमचंद मूलतः

हिंदू सभ्यता और हिदू संस्कृत के लेखक थे। उन्होंने हिंदू समाज की अभिव्यक्ति को अपने जीवन का उद्देश्य बनाया था इसलिए हिंदू जनता और हिंदी में अपूर्व लोकप्रियता और गरिमा प्राप्त हुई।' डॉ. शैलेश जैदी की पुस्तक 'प्रेमचंद की उपन्यास कला : नवमूल्यांकन' में पृ. 39-40 पर उद्धृत (iii) 'प्रेमचंद हिंदू जहनियत के मालिक थे। 'पाकिस्तान उर्दू लेखक इंतिजार हुसैन, 'दस्तावेज'-7-8, अप्रैल-जुलाई, 1980 पृ. 37 पर उद्धृत। (iv) अली अहमद फातमी ने अमृतराय से 'सुहैल' (गया) पत्रिका के लिए एक इंटरव्यू लिया था जिसमें फातमी ने प्रेमचंद की हिंदू सांप्रदायिकता पर सवाल करते हुए अमृतराय से पूछा था, 'अपने आरंभिक दिनों में वे एक खास किस्म की धार्मिक व्यवस्था से जुड़े रहे। अपने लिखने की शुरुआत उर्दू में करने के बावजूद जब उन्हें उससे ठीक 'रिटर्न' नहीं मिला तो वे उर्दू के बारे में एक कड़वी बात कहकर हिंदी की ओर मुड़ गए। उनकी दोस्ती भी ऐसे ही लोगों से ज्यादा थी जो हिंदू थे। XXX वे हजार तरक्की पसंद यानी प्रगतिशील रहें हो, लेकिन बुनियादी तौर पर वे हिंदू थे और उनके अंदर हिंदू सांप्रदायिकता भी थी।' इस पर अमृतराय ने उत्तर देते हुए कहा था, 'मैं नहीं समझता कि प्रेमचंद ने अपनी जिंदगी में सांप्रदायिक विद्वेष के साथ कभी किसी तरह का समझौता किया, लेकिन अगर उनके जेहन में या उनके लिखने में हिंदू तत्त्व पाए जाते हैं तो इसमें ताज्जुब की क्या बात है। जो आदमी एक हिंदू परिवार में पैदा हुआ, हिंदू सांस्कृतिक परिवेश में पला-बढ़ा उसके लिए दूसरा कुछ क्या मुमकिन है? फिर, मैं आपसे पूछता हूं, क्या ये गुनाह है?' इसके बाद अमृतराय में मुसलमानों पर हिंदुओं के खिलाफ सांप्रदायिक विद्वेष रखने का आरोप लगाया। जो लोग मुंशीजी पर इल्जाम लगाते हैं वे खुद मज़हबी सांप्रदायिकता के दोषी हैं। देखें- 'प्रेमचंद की प्रासंगिकता' पृ. 181-82, (v) मौलाना शिवली ने कहा था, 'भारत में आठ करोड़ मुसलमान बसते हैं, लेकिन इनमें दम नहीं कि इस काफिर से उर्दू जबान छीन लें।' डॉ. जाफर रजा के लेख 'प्रेमचंद का भाषा-शिल्पःएक आलोचनात्मक अध्ययन' में उद्धृत, 'आलोचना', अप्रैल-जून, 1980, पृ. 78, 50. 'अमृतलाल नागर रचनावली', खंड-97-108, 51.'हैडलाइन प्लस' अक्टूबर, 2003, पृ. 51-53। इससे पूर्व यह लेख 'हंस' में भी छप चुका था।, 52.'प्रेमचंद : घर में, पृ. 23-24, प्रथम संस्करण, 1956, 53.'प्रेमचंद : चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 36, 54.'कफन', पृ. 60, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, ग्यारहवां संस्करण, अक्टूबर, 1966, 55. प्रेमचंद : चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 09, 56. 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड-2, पृ. 32, 57. प्रेमचंद : चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 17, 58. वही, पृ. 30 व 36, 59. वही, पृ. 46, 60. डॉ. जाफर रजा ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद : उर्दू-हिंदी कथाकार' में स्वीकार किया है कि प्रेमचंद के आविर्भाव तक उर्दू मुसलमानों की मजहबी भाषा बन चुकी थी और उर्दू एवं पाकिस्तान की मांग एक साथ होने लगी थी, पृ. 288, 61.'प्रेमचंद : चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 146, 62.'अमृतलाल नागर रचनावली', खंड-9-30, राजपाल एंडसंस, दिल्ली, संस्करण-1992, 63.'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग'-2, पृ. 359-362, 64. 'प्रेमचंद विश्वकोश', खंड-1, पृ. 213, प्रथम संस्करण, 1981, 65.'प्रेमचंदः चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 28, 66.वही, पृ. 31,67. 'प्रेमचंद विश्वकोश', खंड-1, पृ. 49, 68.'जीवन-सार'लेख से संकलित 'कफन' में पृ. 61 हंस प्रकाशन इलाहाबाद ग्यारहवां संस्करण, अक्टूबर 1966, 69. 'प्रेमचंद : चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 84,

70. 'प्रेमचंद स्मृति, संपादक अमृतराय, पृ. 13, 71. डॉ. गोपीचंद नारंग ने लिखा है, 'हिंदी उर्दू अफसानों, नावियों में इतना बड़ा कदम था जिसके तीन पग में वामन ने सारी सृष्टि नाप ली थी' देखिए 'प्रेमचंद : भारतीय साहित्य', पृ. 34, 72. 'प्रेमचंदः चिट्ठी-पत्री'-1, पृ. 49, 73. वही, पृ. 50, 74. वही, पृ. 89, 75. वही, पृ. 99, 76. वही, पृ. 119, 77. वही, पृ. 141, 78. वही, पृ. 217, 79. 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां, संपादक-कमल किशोर गोयनका, (भूमिका) पर उद्धृत, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1990, 80. 'आलोचना' अप्रैल-जून, 1980, पृ. 115, 81.वही, पृ. 115, 82. उर्दू-हिंदी के लेखक मुशर्रफ आलम जौकी ने लिखा है कि 'उर्दू का आकाश सिमट गया है और मैं उर्दू के केवल पांच सौ पाठकों को अपनी विचार-प्रधान रचनाएं पढ़ने के लिए नहीं सौप सकता। मुझे एक बड़ा फलक चाहिए। 'देखिए' 'हैडलाइन प्लस' हिंदी पत्रिका(दिल्ली), अक्टूबर, 2003, पृ. 29, 83. 'प्रेमचंद की उपन्यास-कलाः नवमूल्यांकन', पृ. 470-77, 84. 'प्रेमचंद की प्रासंगिकता', पृ. 180-83, 85.'सारिका', 18 जुलाई, 1980, पृ. 35, 86. 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां, संपादक-कमल किशोर गोयनका, पृ. दत्त (भूमिका) पर उद्धृत, 87. मदन मोहन मालवीय ने निम्नलिखित चौदह संस्थाओं का उल्लेख किया जो सन् 1910 से कई वर्ष पूर्व हिंदी तथा नागरी लिपि के विकास के लिए काम कर रही थीः 1. हिंदू समाज प्रयाग, 2. भाषा सवंर्धिनी सभा अलीगढ़, 3. देवनागरी प्रचारिणी सभा, मेरठ, 4. नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 5. नागरी प्रचारिणी सभा, आरा 6. एक लिपि विस्तार परिषद् कलकत्ता 7. नागरी प्रवर्धिनी सभा, प्रयाग, 8. हिंदी साहित्य परिषद् 9. काव्यलता सभा छतरपुर, 10. हिंदी भाषा प्रचारिणी सभा, इस्लामपुर 11. नागरी दक्षिणी सभा, जौनपुर, 12. मातृभाषा प्रचारिणी सभा लखनऊ, 13. नागरी प्रचारिणी सभा जालंधर तथा नागरी प्रचारिणी सभा, मैनपुरी; देखिए 'प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण पहला भाग संपादक श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्रथम संस्करण 18 जून, 1911,पृ. 18-19 88. वही, पृ. 19, 89. वही, श्यामसुंदर दास की भूमिका से पृ.7, 90. 'गांधी वाङ्मय' खंड-02, पृ. 441, 91. वही, पृ. 413, 92. वही, पृ. 510 व 373, 93. 'प्रेमचंद ने उर्दू पत्रिका 'क्लीम' के जनवरी, 1936 में लिखा था, 'मैं एक हिंदू की हैसियत से कह सकता हूं कि हिंदू किसी किस्म की सहायता, बचाव, अलेहदगी भी नहीं चाहता। वह हर एक मैदान में आजादी से मुसलमानों के कंधे-से-कंधे मिलाकर चलने को तैयार है। वह कौम के मेल-मिलाप और मजबूत कराने के लिए बसा औकात इस हद तक दब जाता है कि उस पर बुजदिली और पसहिम्मती का इल्जाम आयद किया जा सकता है और वह किसी के हकूक छीनना नहीं चाहता। मुलाजमत में नियाबत (प्रतिनिधित्व में) वह अपने हक से एक जौ भी ज्यादा नहीं मांगता।' देखिए 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', भाग-2, पृ. 460, 94. दस्तावेज' अप्रैल-जुलाई, 1980, पृ. 252, 95.'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां, जाफर रजा, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1983,पृ. 9 (भूमिका से), 96.'प्रेमचंद स्मृति, संपादक अमृतराय, पृ. 171, 97.'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खंड-2, पृ. 18, 98. 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां, पृ. देखिए (भूमिका से), 99. गोपीचंद नारंग के लेख 'अफसाना निगार प्रेमचंद' से, 'प्रेमचंद : भारतीय साहित्य संदर्भ

में संकलित, पृ. 15, संपादक-निर्माला जैन, प्रथम संस्करण, 1981, 100. 'हिंदी साहित्य कोश', भाग-2, पृ. 334, प्रथम संस्करण- 1963, 101.'भाषा' प्रेमचंद विशेषांक, मार्च 1981, पृ. 19-22, 102. 'उद्‌भावना' अक्टूबर, 2003, पृ. 39, 103. वही, पृ. 74, 104. वही, पृ. 31, 105. 'दस्तावेज' प्रेमचंद विशेषांक, अप्रैल-जुलाई, 1980, पृ. 88, 106.'प्रेमचंद : सृष्टि और दृष्टि', पृ. 09; संपादक : चंद्रकांत बांदिवडेकर, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे प्रथम संस्करण-1981,107. 'प्राधिकृत' शोध-पत्रिका, अगस्त-जनवरी, 1984-85, पृ. 154, हिंदी विभाग की पत्रिका, गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर। 108.'धर्मयुग' प्रेमचंद जन्म-शताब्दी अंक, 3 अगस्त, 1980, पृ. 11।

प्रेमचंद का 'संस्कृति' चिंतन

संस्कृति और सभ्यता शब्दों को साधारणतः पर्यायवाची रूप में व्यवहृत किया जाता है। इनका व्यवहार अंग्रेजी के 'कल्चर' या 'सिविलिजेशन' शब्दों के समतुल्य होने लगा है। प्रेमचंद ने कल्चर के पर्याय-रूप में सभ्यता के साथ-साथ 'परिष्कृति' का प्रयोग भी किया है।[1] उनके विचार में हमारी संस्कृति का आधार 'बड़े लोगों के कारनामे' हैं और 'हमारे विचार, हमारा सांस्कृतिक रूप, हमारे तौर-तरीके उसी सांचे में ढलते है, जो यह आदमी हमारी नजरों के सामने पेश करता है।[2] भाव यह कि संस्कृति शिष्ट-जनों के (या महापुरुषों के) जन-हितकारी प्रयासों का समुच्चय है। प्रायः उन्होंने संस्कृति या सभ्यता के व्यापक अर्थ को ही स्वीकार किया है। व्यापक अर्थ में उनके अनुसार 'संस्कृति के दो रूप हैं, एक वाह्य जगत् से संबंध रखने वाली, दूसरी अंतर्जगत् से। बाह्य संस्कृति का संबंध भाषा, पहनावा, शिष्टाचार, शादी-व्यवहार आदि से है, आंतरिक संबंध धार्मिक और आध्यात्मिक विचारों से।'[3]

उनके अनुसार विभिन्न संस्कृतियों के भेद का कारण प्राकृतिक परिस्थितियां रही हैं। 'जलवायु और प्राकृतिक प्रभावों के कारण भिन्न-भिन्न प्रांतों के निवासियों की भाषा, आकृति, परिधान, यहां तक कि स्वभाव में भी परिवर्तन होते गए। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ।'[4] फलतः 'संस्कृति का जो कुछ रूप है, वह इन्हीं परिस्थितियों का बनाया हुआ है।'[5] उनके अनुसार 'संस्कृति का धर्म से कोई संबंध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है, लेकिन ईसाई संस्कृति और मुस्लिम या हिंदू संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है।'[6] फिर भी प्रसंगानुसार उनके लेखों, भाषणों या टिप्पणियों में हिंदू संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, ईसाई संस्कृति भारतीय संस्कृति, पाश्चात्य (पश्चिमी) संस्कृति, एशियन संस्कृति, यूरोपीयन संस्कृति, रूस की नई सभ्यता, विश्व सभ्यता, मानव संस्कृति, व्यावसायिक (आर्थिक) संस्कृति आदि के संबंध में स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलते हैं।

भारत के हिंदू-मुसलमानों में सांस्कृतिक भेद उन्हें मान्य नहीं था। पं. जवाहर लाल नेहरू के एक बयान का हवाला देकर उन्होंने यह स्वीकार किया है कि भारतीय हिंदुओं और मुसलमानों में सांस्कृतिक एकता है। वे मानते हैं कि 'प्रत्येक प्रांत में हिंदू और मुस्लिम जनता की भाषा एक है, पहनावा कोई एक है, शादी-ब्याह की परिपाटी भी एक है।'[7] व्यापक रूप में मुस्लिम

संस्कृति का विचार करते हुए वे उसका वैशिष्ट्य अवश्य स्वीकार करते हैं और उसी वैशिष्ट्य के आधार पर उसके गुण-दोषों का विवेचन करते हैं।

मुस्लिम संस्कृति

उनके अनुसार 'मुसलमानों की संस्कृति ईरान और अरब की है।'[8] इस संस्कृति की प्रमुख विशेषता भ्रातृभाव है, जिसकी उन्होंने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। उनके अनुसार मुस्लिम 'जाति में व्यापक भ्रातृ-भाव का आदर्श है, जहां कोई छोटा है न बड़ा है, सब बराबर है।'[9] मौलाना आजाद के साक्ष्य पर उन्होंने कुरान की धार्मिक सहिष्णुता का उल्लेख भी आदर के साथ किया है।'[10] इस्लामी अंत्येष्टि-क्रिया को उन्होंने 'शांत, गंभीर-कोमल और सौजन्यपूर्ण' माना है।[11] मूर्तिपूजा के खंडन को उन्होंने इस्लाम का आवश्यक लक्षण नहीं माना है क्योंकि मुसलमान भी कब्र, ताजिए और मस्जिद की पूजा करते हैं।[12] इसी प्रकार भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल में मौलवियों के चित्रकला-विरोध का उल्लेख भी व्यंग्य के साथ किया है।[13] 'मजनूं' शीर्षक एक लेख के माध्यम से उन्होंने फारसी प्रेम-शैली की आलोचना की है।'[14] 'विक्रमोर्वशी' के उर्दू तर्जुमे की समीक्षा करते हुए उन्होंने अनुवादक से सहमत होकर मुसलमानों के कौमी इल्म और अदब पर नाज को भी हानिकर स्वीकार किया है।[15] 'कालिदास की कविता' शीर्षक लेख में उन्होंने संस्कृत साहित्य की भाषा, कलात्मकता आदि के मुकाबले में उर्दू-फारसी के साहित्य को दरिद्र घोषित किया गया है।[16]

ईसाई (पश्चिमी) संस्कृति :

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है प्रेमचंद संस्कृति को धर्म से निरपेक्ष मानते थे। फिर भी ईसाई धर्म के पश्चिमी देशों में फैलने के कारण पश्चिमी सभ्यता और ईसाई सभ्यता को प्रायः उन्होंने पर्याय-रूप में व्यवहृत किया है।[17] उनका विश्वास था कि ईसाई या पश्चिमी कौम के पंचानबे प्रतिशत लोगों की खुराक गोश्त है और भौतिकता उनकी 'सभ्यता की आत्मा है।' ईसाइयों के मद्यपान पर टिप्पणी करते हुए वे व्यंग्य में कहते है, 'अगर कोई हम से पूछे कि ईसाई धर्म की सबसे प्रमुख विशेषता क्या है, तो हमे कहेंगे शराब का इस्तेमाल।'[18]

पश्चिम की इस संस्कृति का उद्गम-स्थान वे यूनान और रोम के संघर्ष-प्रधान राष्ट्र को मानते हैं।[19] उनके अनुसार ईसाई धर्म जो मूल में बौद्ध धर्म और बहुत अंशों में हिंदू धर्म का रूपांतर है, पश्चिम में उसे पौधे के समान था, जो कहीं विदेश से लाकर आरोपित किया गया हो। कुछ दिनों तक तो उसने अपने भीतर की शक्ति से बाहर की प्रतिकूल शक्तियों का सामना किया, फिर वह नष्ट हो गई। विदेशी पौधा उस प्रतिकूल जलवायु में फल-फूल न सका। आज पश्चिमी ईसाई कहलाते हुए भी ईसाइयत से कोसों दूर हैं।' (वहीं) इसी यूनानी उद्गम के कारण प्रतिकूल स्वार्थों के संघर्ष की छाप पश्चिमी संस्कृति के हरेक अंग पर लगी हुई है।' (वही) स्वार्थ और संघर्ष के इस सनातन पश्चिमी स्वभाव को कला के आविष्कार ने हवा दे दी और फलतः 'व्यावसायिकता पश्चिमी सभ्यता का कलंक बन गई है।[20] वे उन विचारकों से सहमत दिखाई देते हैं जो इस संघर्षमूलक और ईश्वरहीन सभ्यता को विश्व के लिए घातक मानते थे।[21]

संघर्ष पर टिकी इस सभ्यता में मानवीय सहयोग के लिए कोई अवकाश नहीं है। 'जैसे सारी संस्कृति उन्मत होकर मरु में जल खोज रही है।'[22] स्वार्थपरता ने उन्हें अंधा कर दिया है। जो ईसा के जितने पक्के हिमायती हैं, वे उतने ही लोलुप, उतने ही अनाचारी और पराए वैभव के शत्रु हैं। अब दूसरे का सत्यानाश उनके लिए कौतुक है और एक के बाद दूसरा वर्ष इसी सत्यानाशी कौतुक का चलचित्र है।[23] इन गोरे लोगों में चरित्र बल का नितांत अभाव है। वे 'पराजितों के साथ कितना अमानुषीय व्यवहार करते हैं, यह जानी हुई बात है। जिस इलाके में इनका पड़ाव पड़ जाता है, वहां स्त्रियों का राह चलना बंद हो जाता है।'[24] इंग्लैंड और अमरीका आदि के गोरों का जाति-भेद भी निंदनीय है।'[25] उनकी संघर्षमय मनोवृत्ति के कारण प्रजातंत्र जैसी आदर्श संस्था भी दलीय स्वार्थों के संघर्ष का अखाड़ा बन गई है।'[26] संसार का सारा धन खींचकर यूरोपीय युवक-युवतियां अब स्वाद लिप्सा से भौरे-तितलियां बनने लगे हैं और उनके इस कामुकतापूर्ण व्यवहार को प्रगति का लक्षण नहीं माना जा सकता।'[27]

यह सब होते हुए भी 'हमें पश्चिम की सभी चीजें अपनी सभी चीजों से बढ़िया लगती थीं। उनका रहन-सहन, उनके रीति-रिवाज उनके खान-पान सब हमारे लिए एक न रुकने वाला आकर्षण था। यूरोप वाले देर में सोकर उठते हैं इसलिए हमें भी देर में सोकर उठना चाहिए। यूरोप वाले हरदम कपड़े पहने रहते हैं, इसलिए हमें भी कभी नंगे बदन न रहना चाहिए। यूरोप वाले खूब शराब पीते हैं, इसलिए, शराब पीना भी संसार पर विजय पाने का एक मंत्र है। वही एकांत प्रेम, वही अपने से नीचे दर्जे के आदमियों से पृथक रहने की आदत, वही मुंह में सिगार दबाकर चलना, गरज हमने बंदरों की तरह पश्चिम वालों की नकल शुरू की और अभी तक करते जा रहे हैं। हमारे नेता और अगुआ जब उस प्रवाह में न संभल सके, तो छोटे-छोटे साधारण आदमी क्या संभलते? धीरे-धीरे समय ने हमको बताया कि यूरोप में सब कुछ सोना ही सोना नहीं है, उसमें कांसा-पीतल भी है। हम अपने खोए हुए आत्म सम्मान को फिर अपनाने लगे, हमारी नजरों से वह सम्मोहन हटा और हमें कुछ विचार करने की शक्ति आई। महात्मा गांधी ने आकर मानो उन बिखरी हुई आकार-हीन भावनाओं को मूर्तिमान कर दिया और यूरोप की बुराइयां भी हमें नजर आने लगीं।'[28]

स्पष्टतः गांधी के समान प्रेमचंद भी पश्चिमी सभ्यता के आलोचक थे। उनका विश्वास था कि 'हमें हरेक पश्चिमी चीज के पीछे आँखें बंद करके चलने की जो प्रवृत्ति हो रही है, वह केवल हमारे मानसिक पराजय के कारण। हमारी सभ्यता में रोग थे, मगर उसकी दवा यूरोपीय सभ्यता की अंधभक्ति नहीं है। उसकी दवा हमें अपनी ही संस्कृति में खोजनी थी। यूरोपीय सभ्यता की नकल करके हमें अपने यहां भी उन्हीं दवाओं का व्यवहार करना पड़ेगा, जो यूरोप कर रहा है। यूरोप पथभ्रष्ट है, उसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं और यूरोप के विचारवान लोग कह रहे हैं कि यह संस्कृति अब विध्वंस के गर्त में जाने वाली है। क्या हम भी उन्हीं बुराइयों की नकल करके अपनी संस्कृति को भी गर्त में ढकेलने की तैयारी करें?'[29]

प्रेमचंद को यह दुःख था कि पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध ने हमें अंधा बना दिया है।'[30] पूर्वीय सभ्यता अतिथियों के आ जाने से फूल उठती थी... पश्चिम की सभ्यता ने हमें रोटी-चोर

बनना सिखा दिया है।'[31] उसका सबसे जहरीला पाठ खुदगर्जी है। 'प्राचीन संस्कृति में चिकित्सक के लिए किसी मरीज से फीस लेना हराम था। पहले बुद्धि या सिद्धि की सफलता सेवा और उपकार में थी, अब स्वार्थ-सिद्धि में। मरीज के होठों पर प्राण लगे हों, डॉक्टर साहब बिना फीस लिए नहीं जा सकते।'[32] इसी संस्कृति की लीला से शिक्षा संस्थाएं ग्रेजुएट बनने के कारखाने हो गई हैं। किसी यूनिवर्सिटी में चले जाइए वहां आपको भारतीयता की गंध भी न मिलेगी। वहां अंग्रेजी भाषा का अंग्रेजी वेश का, अंग्रेजी आचार का ही आधिपत्य है। इन विद्यालयों ने भारत में फैशनेबल समुदाय की सृष्टि करने में जो काम कर दिखाया है, वह और किसी न नहीं किया।'[33] आश्चर्य इस बात का है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में 'हमने नई शिक्षा पाकर गोरी जातियों की नकल में उन चीजों का व्यवहार करना छोड़ दिया, जो हमारी भोजन-सामग्री को पुष्टिकर बनाती थीं और नई-नई सामग्रियों के फेर में पड़ गए थे, जिन्हें यूरोप के व्यापारी लंबे चौड़े विज्ञापन दे-देकर हमारे सामने लाते थे, यह ओवल्टीन है, यह क्वेकर ओट है, यह माल्टेड मिल्क है। किसी युवक को देखिए इन्हीं इश्तिहारी चीजों के फेर में पड़ा हुआ है।'[34]

व्यायाम और उसकी विदेशी पद्धतियों का प्रचलन भी उन्हें मान्य नहीं है। मेजर नायडू के एक बयान को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं- 'पश्चिमी व्यायाम का खब्त दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। भारतीय व्यायाम से लोग उदासीन होते जाते हैं, जो तात्विक दृष्टि से अगर ज्यादा नहीं तो उतने कल्याणकारी अवश्य हैं, जितने पश्चिमी व्यायाम। मुझे विश्वास है कि किसी युवक को प्राचीन व्यायाम का अभ्यास, प्राचीन नियमों और आदेशों के अनुसार कराया जाए तो उससे कम लाभ न होगा, जितना पश्चिमी व्यायाम से होता है। भारतीय प्रणाली यहां के प्राणियों के लिए अधिक अनुकूल है, इसके साथ ही कितना कम खर्च। देशीय खेल कहीं भी खेले जा सकते हैं, बिना किसी अड़चन के और बहुत कम खर्च में। जिमनास्टिक के औजार यदि यहीं के बने हों तो भी सौ रुपए और दो सौ रुपए के बीच खर्च हो जाएंगे। क्रिकेट का एक बैट बीस रुपए में आता है और टेनिस का एक रैकेट तीस रुपए में। फिर क्रिकेट, हॉकी, फुटबाल और अन्य खेल हैं, जिनके लिए अच्छे मैदान, अच्छे सामान और खास तरह के जूतों की जरूरत है। इसका मुकाबला हिंदुस्तानी खेलों से कीजिए, जो आजकल के बालकों के लिए कहानी-मात्र रह गए हैं। हमारे स्कूल में कबड्डी, गुल्ली-डंडा, लखनी आदि खेलों का बड़ी आसानी से प्रचार किया जा सकता है, लेकिन किसी का उधर ध्यान नहीं है।[35]

सार्वजनिक ही नहीं, पारिवारिक जीवन में भी प्रेमचंद के पाश्चात्य आदर्शों की तुलना में भारतीय आदर्श अधिक प्रभावित करते रहे हैं। सम्मिलित परिवार के विषय में वे लिखते हैं- 'हमारी सभ्यता में सम्मिलित कुटुंब एक प्रधान अंग था। पश्चिमी सभ्यता में परिवार का अर्थ है- केवल स्त्री और पुरुष। दोनों में बुराइया और भलाइयां दोनों ही हैं, पर जहां एक में सेवा और त्याग प्रधान है, वहां दूसरे में स्वार्थ और संकीर्णता।'[36] विवाह के संबंध में भी उनका दृष्टिकोण भारतीय परंपरा के निकट है। सर हरीसिंह गौड़ के तलाक बिल पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं- 'हिंदू विवाह का आदर्श बहुत ऊंचा है। हिंदू-विवाह और तलाक दो परस्पर

विरुद्ध बातें हैं, लेकिन इस आदर्श का मूल्य बहुत कम हो जाता है, जब इसके पालन का भार केवल स्त्रियों पर रख दिया जाता है। यह सत्य है कि तलाक प्रथा का दुरुपयोग किया जा सकता है। पश्चिमी देशों में उसकी जो छीछालेदर हो रही है, वह हम नित्य अखबारों में देखते हैं।'[37] पश्चिमी दंपत्तियों में प्रचलित संतति-निग्रह की प्रथा को भी उन्होंने अनेक उपाधियों के साथ स्वीकार किया है। वे ब्रह्मचर्य द्वारा संतति-निग्रह को उत्तम मानते हुए भी कृत्रिम साधनों को बुरा नहीं समझते। उनकी दृष्टि में 'संतान-निग्रह के विरुद्ध जो सबसे विचारने योग्य बात है, वह यह है कि इससे स्त्री-पुरुष की भोग-लालसा बढ़ जाती है, और विलास प्रवृत्ति पर अंकुश रखने के लिए जिस त्याग और बलिदान की जरूरत है, उसके शिथिल हो जाने के कारण स्त्री-पुरुष में प्रेम-बंधन ढीला हो जाता है और वह गृह-कलह और असंतोष के रूप में प्रकट होता है।'[38] शिक्षित दंपत्तियों के संतति-निग्रह को वे सर्वथा अनुचित मानते हैं। उनका तर्क है कि 'पढ़ी-लिखी विचारशील देवियां और उन्नत विचार वाले पुरुष संतान-निग्रह नहीं कर सकते और न राष्ट्र इन्हें इस जिम्मेदारी से आजाद कर सकता है। उन्हें तो संतान उत्पन्न करके उसका पालन करना ही पड़ेगा, अन्यथा देश में अयोग्य संतान मर जाएगी। देश ने गरीबों का रुपया लेकर आपको पढ़ाया लिखाया और आपको इस पद पर पहुंचाया। आपकी जात से देश को क्या फायदा पहुंचा?'[39]

विविध प्रसंगों पर प्रेमचंद की जो ढेरों सामग्री उपलब्ध है, उसमें पश्चिमी संस्कृति के लिए केवल अपवादस्वरूप ही एकाध स्थलों पर प्रशंसात्मक टिप्पणियां मिलती हैं। हिंदुओं के अंत्येष्टि संस्कार की आलोचना के समय मुसलमानों और ईसाइयों की पद्धति ने उनका ध्यान खींचा था। उन्हें 'राम नाम सत्य है' की अपेक्षा यह अच्छा लगता है कि 'ताबूत उठाने वाले सिर झुकाए, बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता कब्रिस्तान की ओर जाते हैं।'[40] यूरोप में कभी-कभी शवदाह की क्रिया होती है, लेकिन यंत्रों की मदद से यह लीला इतनी जल्दी और इतने परिष्कृत रूप से समाप्त हो जाती है कि आत्मा की तरह देह भी क्षण मात्र में अदृश्य हो जाती है।'[41] एक अन्य स्थल पर यूरोप की रजोगुणीवृत्ति का भी उन्होंने आदरपूर्वक उल्लेख किया है- 'यूरोप का विलास तो अपनी सारी बुराइयों के साथ आ डटा, पर यूरोप का अध्यवसाय और साहस और उत्सर्ग और अन्य हजारों खूबियां जो उस विलासिता पर पर्दा ढांकती हैं, यहां कहीं नजर नहीं आती।'[42]

इन अपवादों को छोड़कर विशिष्ट भारतीय संदर्भों के कारण उन्होंने पश्चिमी संस्कृति की कुत्सा कर ही सर्वत्र चित्रण किया है। यहां तक कि गरीबों के इस वकील को पश्चिमी ढंग की संघर्षमय क्रांति भी स्वीकार्य नहीं है। सन् 34 में इंद्रनाथ मदान को लिखे पत्र में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि 'बुद्धिमतापूर्ण उपायों की असफलता का नाम क्रांति है। मैं आमूल परिवर्तन तो चाहता हूं परंतु विध्वंस नहीं।'[43] जागरण की जमानत के प्रसंग में स्पष्टीकरण देते हुए वे लिखते हैं -'रक्तमय विधानों के हम विरोधी हैं। मनुष्य के आंतरिक देवत्व पर हमारा पूर्ण विश्वास है। हम अपने को परिष्कृत करके ही अपने विरोधियों का दिन बदल सकते हैं।'[44] इस अहिंसक समाजवाद या विकासवाद की ओर उनके झुकाव का कारण यह बद्धमल विश्वास था कि 'हमारी संस्कृति का मूल तत्व अहिंसा है, पश्चिम की संस्कृति का मूल तत्व संघर्ष है।'[45]

हिंदू (हिंदुस्तानी या पूर्वी) संस्कृति :

संस्कृति को असांप्रदायिक मानते हुए भी प्रारंभ में प्रेमचंद हिंदू संस्कृति पर गर्व करते थे। 'हिंदू सभ्यता और लोकहित'[46] तथा 'श्रीकृष्ण और भावी जगत'[47] जैसे विषयों पर उनका टिप्पणियां इस तथ्य का प्रमाण है। आगे चलकर इस रागात्मक दृष्टि में बौद्धिकता का पुट आ जाने पर भी उन्होंने संस्कृति संबंधी विविध प्रसंगों पर जितना लिखा है, उसमें हिंदू संस्कृति के सत्पक्ष का स्तवन परिणाम में संभवतः सर्वाधिक है। ईसाई या पश्चिमी संस्कृति की तुलना में उन्होंने अपनी संस्कृति को सदैव अधिक महत्व दिया है। अपनी संस्कृति में उनका यह रागात्मक संबंध इतना प्रबल है कि पश्चिमी सभ्यता के तथाकथित सत्पक्षों की भी वे पर्याप्त आलोचना-परीक्षा करते हैं और उनके समकक्ष अपनी परंपराओं को रखकर तौलते हैं। उदाहरणार्थ 'नवीन और प्राचीन' शीर्षक टिप्पणी'48 में उन्होंने वक्त की पाबंदी वाली पश्चिमी परंपरा के मुकाबले अतिथि की दिलजोई करने वाली भारतीय परंपरा को तरजीह दी है।

प्रेमचंद हिंदू और हिंदुस्तानी सभ्यता में कोई अंतर नहीं करते। 'हिंदू सभ्यता और लोकहित' शीर्षक निबंध में हिंदू सभ्यता की बात करते-करते वे हिंदुस्तानी सभ्यता पर उतर जाते हैं। भारतीय हिंदू-मुसलमानों की संस्कृति में भेद उन्हें मान्य नहीं है।[49] उनकी दृष्टि में भारतीय सांस्कृतिक संघर्ष का आधार हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियां नहीं, पश्चिमी और पूर्वी संस्कृतियां हैं। 'इकबाल की शायरी पर एक नजर डालते हुए वे कहते हैं- 'संयोग कहिए या भगवान की इच्छा कहिए आपका जन्म देश के बौद्धिक उत्थान की दृष्टि से भारतीय इतिहास के एक नाजुक जमाने में हुआ है, जिसमें दो शानदार तहजीबों में कशमकश हो रही है। एक तरफ पश्चिमी सभ्यता का सिक्का फिर रहा है दूसरी तरफ पूर्वी सभ्यता दिलों पर आधिपत्य जमाए हुए हैं।'[50]

पहले भी यह कहा जा चुका है कि प्रेमचंद इस सांस्कृतिक संघर्ष में आजीवन हिंदू, हिंदुस्तानी के समर्थक रहे हैं। इस समर्थन का कारण मात्र पूर्वाग्रह नहीं था। आलोचन-परीक्षण से उन्हें यह विश्वास हो गया था कि भारतीय संस्कृति का मूलाधार आध्यात्मिकता और त्याग भावना है तथा मानवता का भविष्य उसके आदर्शों का अनुसरण करने में सुरक्षित है। संघर्ष और भोग को वे पश्चिमी सभ्यता की रीढ़ मानते थे और उन्हें मानवता के लिए अहितकर समझते थे। उनका विश्वास था कि 'महासमर का निदान है-विश्व प्रेम'[51] और उसकी स्थापना भारतीय आत्मवाद के आधार पर ही हो सकती है।[52] इसीलिए उन्होंने यरवदा के कनफ्यूशियस से प्रेरित होकर घोषणा की थी कि 'हम प्रेमी हैं, प्रेम करते हैं- समूचे विश्व से, हमने विश्व शांति का डंका पीट दिया है।'[53] नई या समाजवादी सभ्यता में भी उन्हें भावी मानव का कल्याण दिखाई देता है परंतु समाजवाद का पश्चिमी अर्थ उन्हें स्वीकार नहीं है। वे विवेकानंद या रामतीर्थ के निकट आकर सोचते हैं कि भारत में इस समाजवाद का अर्थ 'एकात्मवाद को केवल व्यवहार में लाना है।'[54]

उदार मानववादी प्रेमचंद को मानव की सात्विक उपलब्धियां स्वीकार करने में कभी झिझक नहीं हुई। धर्म या अध्यात्म की श्रेयस्करी प्रेरणाओं को उन्होंने सदैव मुक्त कंठ से सराहा

है। आर्य समाज या रामकृष्ण मिशन के सत्यप्रयासों पर लिखी गई टिप्पणियां इसका प्रमाण हैं। उनका विरोध केवल प्रगति में बाधक धार्मिक रूढ़ियों से था। मानव और मानव के बीच दीवार खड़ी करने वाले धर्म से उन्हें घृणा थी इसीलिए सनातनी पाखंड़ पर उन्होंने अनेक व्रज-प्रहार किए हैं। श्रेय की इसी भावना से उन्होंने 'हिंदू समाज के वीभत्स दृश्य' खुली आँखों देखकर अंकित किए हैं।[55] हिंदू धर्म की अनेक रूढ़ियों में जाति भेद का विशेष स्थान है।'[56] प्रेमचंद इस अमानवीय रूढ़ि को राष्ट्रीयता में बाधक होने के कारण यथाशीघ्र समाप्त करना चाहते थे। इसी प्रकार शोषक पंडे-पुजारी भी उन्हें फूटी आँख नहीं भाते थे। साधारण बोलचाल में गाली देने के भारतीय स्वभाव को उन्होंने कोसा है क्योंकि बदजबानी नैतिक अंधकार और जाति के पतन का पक्का प्रमाण है।'[57] छुआछूत की भर्त्सना उन्होंने इसलिए की है कि जब तक हिंदू अपने धर्म से 'यह कलंक दूर न करके उसी से चिपटे रहेंगे, तब तक वे कभी स्वतंत्र नहीं हो सकते।'[58]

इसी प्रकार प्रेमचंद के सांस्कृतिक चिंतन का विकास पुनर्जागरण के वातावरण में हुआ है। भारतीय पुनर्जागरण के सारभूत तत्वों को आत्मसात करने वाले महात्मा गांधी का उज्ज्वल व्यक्तित्व उनके लिए प्रकाशस्तंभ रहा है। प्रायः उन्हीं से प्रेरित या सहमत होकर उन्होंने कुछ विकास विरोधी सांस्कृतिक रूढ़ियों का खंडन किया है। अन्यथा, गांधी के समान वे भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं और मूल्यों के प्रबल समर्थक रहे हैं। भाषा साहित्य, कला, शिक्षा, रहन-सहन, पारिवारिक संबंध, खान-पान, खेलकूद, वेशभूषा आदि की श्रेयस्कर भारतीय परंपराएं सदैव उनके लिए आदर्श से अनुप्राणित है। शिक्षित समुदाय में अंग्रेजी के प्रचलन पर शोक प्रकट करते हुए वे लिखते हैं- 'अंग्रेज स्वप्न में भी किसी अंग्रेज से गैर-अंग्रेजी भाषा में न बोलेगा, मगर यहां हम आपस में ही अंग्रेजी बोलकर अपनी मानसिक दासता का ढिंढोरा पीटते हैं। आदमी के मुख में कलंक लग जाए तो वह शर्माता है, वह कलंक को छिपाता है, कम से कम उस पर गर्व नहीं करता, पर हम अपनी दासता के कलंक को दिखाते फिरते हैं, उसकी नुमाइश करते हैं, उस पर अभिमान करते हैं, मानो वह नेकनामी का तमगा हो, या हमारी कीर्ति की ध्वजा। वाह री भारतीय दासता, मेरी बलिहारी है।'[59]

इस कलंक को दूर करने के लिए उन्होंने गांधी के समान सारे देश को एक करने वाली राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी की पैरवी की है। हिंदी और उर्दू के अलग-अलग कैंपों की आलोचना करते हुए वे हिंदुस्तानी का समर्थन करते हैं- 'हिंदुस्तानी इस चहारदीवारी को तोड़कर दोनों में मेल-जोल पैदा कर देना चाहती है... जो लोग भारतीय राष्ट्रीयता का स्वप्न देखते हैं, जो इस सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करना चाहते हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे लोग हिंदुस्तानी का निमंत्रण ग्रहण करें, जो कोई नई भाषा नहीं है बल्कि उर्दू और हिंदी का राष्ट्रीय स्वरूप है।'[60]

भाषा के समान ही साहित्य के क्षेत्र में भी उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय रहा है। वे प्राचीन भारतीय साहित्य की उपलब्धियों के प्रशंसक और आधुनिक भारतीय साहित्य के उत्थान में प्रयत्नशील थे। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास केशव और बिहारी जैसे प्राचीन और मध्यकालीन कवियों का प्रशंसात्मक परिचय वे अपने उर्दू पाठकों को प्रायः देते रहते थे। संस्कृत

साहित्य के गौरव पर तो वे एक तरफ से फिदा थे और इसीलिए उर्दू वालों को उसे पढ़ने की ताकीद करते थे। उदाहरण के लिए 'कालिदास की कविता' आदि लेख देखे जा सकते हैं।[61] एक अन्य स्थान पर वे संस्कृत के काव्यशास्त्र की अंग्रेजी से तुलना करते हुए लिखते हैं- 'संस्कृत में हँसी के प्रकारों, उनकी व्याख्या और उनके उद्दीपकों आदि को बड़े विशद और विस्तृत ढंग से बयान किया गया है। अंग्रेजी में ऐसी विशद सैद्धांतिक चर्चा इस विषय पर नहीं है।[62] आधुनिक भारतीय साहित्य को उन्होंने अपनी लेखनी से समृद्ध करने के साथ-साथ अंतर्प्रान्तीय साहित्यिक आदान-प्रदान के लिए अपने खून-पसीने से सींचा हुआ मासिक पत्र 'हंस' भी समर्पित कर दिया।[63] विविध प्रसंग, भाग-3 का 'नीरक्षीर' खंड सामयिक साहित्य के प्रति उनकी जागरूक आलोचना दृष्टि का परिचायक है।

प्रेमचंद के भारतीय कला और विशेषतः चित्रकला संबंधी विचार विविध प्रसंग, भाग-1 के दो लेखों में व्यक्त हुए हैं। उनका विचार था कि 'हिंदुस्तान में अन्य कलाओं की तरह चित्रकला भी अपने शिखर पर पहुंची हुई थी। यद्यपि आजकल उस जमाने की तस्वीरें नहीं मिलती मगर जिस हाथों ने एलोरा और अजंता के मंदिरों में जादूगरी की, उनकी उन्नत चित्रकला में कोई संदेह नहीं हो सकता।'[64] उनका विश्वास है कि शादी-ब्याह या त्यौहार पर औरतें घरों की दीवारों पर जो चित्र बनाती हैं, उनसे यह बात यकीनी तौर पर साबित हो जाती है कि पुराने जमाने में इस कला की सभी विधाएं हमारी स्त्रियों के शिक्षा क्रम में सम्मिलित थीं।'[65] स्वर्गीय चित्रकार राजा रवि वर्मा के प्रसंग में उन्होंने यह भी स्वीकार किया है विभिन्न भाषाओं के देश में राष्ट्रीय एकता के लिए तस्वीरों की भाषा ही सर्वमान्य माध्यम हो सकती है।[66] दूसरे निबंध में (भारतीय चित्रकला) में बौद्धकाल की मजहबी और मुगलकाल की गैर-मजहबी कला का ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। उनकी दृष्टि में कला का का आदर्श 'प्रकृति की नकल नहीं', 'सुंदर को सुंदरतम' बनाना, प्रकृति को संवारना और सुधारना है।[67]

भारतीय सांस्कृतिक विषयों पर उन्होंने जो लिखा है, उसमें संभवतः सर्वाधिक महत्व शिक्षा संबंधी लेखों और टिप्पणियों का है। उन्होंने प्रचलित शिक्षा पद्धति की आलोचना करते हुए राष्ट्र और समाज के लिए उपयोगी शिक्षा के आदर्श प्रस्तुत किए हैं। अंग्रेजी पद्धति की निम्नलिखित आलोचनाएं उन्होंने मुख्य रूप से की है-

1. यूनिवर्सिटी तो भारत में कोई है नहीं, हां, ग्रेजुएट बनाने के कई कारखाने हैं। इस लिहाज से संयुक्त प्रांत भारत का लंकाशायर या बंबई है। यहां ऐसे-ऐसे पांच बड़े-बड़े कारखाने हैं, जहां युवकों को दुर्व्यसन और फिजूलखर्ची और विलासिता और झूठे अभिमान की शिक्षा दी जाती है।[68]

2. हमारी शिक्षा हमारी सामाजिक चेतना को नहीं जगाती, उसका उद्देश्य अपने फायदे के लिए समाज से काम निकालना है।[69]

3. हमारे विचार में इसमें बड़ा दोष जो है, वह इसकी स्वास्थ्य की ओर से उदासीनता है। ... हमारे अधिकतर शिक्षित लोग चलते-फिरते रोग हैं।[70]

4. एक तो अंग्रेजी भाषा और उस पर परीक्षाओं का यह आतंक। इन दोनों चक्की के पाटों के बीच में छात्रों का सर्वनाश हुआ जा रहा है।[71]

5. वाद-विवाद, ड्रामा, स्काउटिंग, तत्काल चिकित्सा आदि विषयों को स्कूल के कर्मचारी उतना महत्व नहीं देते, जितना दिया जाना चाहिए।[72]

6. स्त्री-शिक्षा के संबंध में वे मेकंजी की इस आलोचना से सहमत हैं- 'वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन्हें माता और गृहिणी बनने के योग्य नहीं बनाती।'[73] इसीलिए उन्होंने प्रयाग महिला विद्यापीठ के विषय में खुशी से यह लिखा है कि 'यहां की विदुषियां तितलियां बनकर नहीं, गृह देवियां बनकर निकलती हैं।[74]

7. हमारे यहां की शिक्षा अभी तक अव्यावहारिक है और उसके सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक जोर दिया जाता है।[75]

8. अनिवार्य शिक्षा का क्या जिक्र, हर चार गांव में मुश्किल से एक गांव में कोई मदरसा है।[76]

9. हमारे यहां अभी तक प्राइमरी शिक्षा भी मुफ्त नहीं है।[77]

10. यह तालीम भी मोतियों के मोल बिक रही है।[78]

प्रेमचंद अंग्रेजी ढंग की संस्थाओं के मुकाबले में राष्ट्रीय संस्थाओं को आदर्श मानते थे। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी[79] प्रयाग महिला विद्यापीठ,[80] आर्य कन्या व्यायाम मंदिर, बडौदा और उस्मानिया विश्वविद्यालय[81] जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। गुरुकुल कांगड़ी के प्रसंग में वे लिखते हैं-'यों तो स्वामीजी प्राचीन आर्य आदर्शों के पूर्ण रूप से प्रवर्तक थे, पर मेरे विचार में राष्ट्रीय शिक्षा के पुनरुत्थान में उन्होंने जो काम किया है उसकी कोई नजीर नहीं मिलती। ऐसे युग में जब अन्य बाजारी चीजों की तरह विद्या बिकती है, यह स्वामीजी का ही दिमाग था जिसने प्राचीन गुरुकुल प्रथा में भारत के उद्धार का तत्व समझा।' इसी प्रकार उस्मानिया विश्वविद्यालय के विषय में वे लिखते हैं कि वह काम की चीज है, 'अगर उूर्द और हिंदी के बीच की खाई को और चौड़ी न बना दे। फिर भी मैं उसे और विश्वविद्यालयों पर तरजीह देता हूं। कम से कम अंग्रेजी की गुलामी से तो उसने अपने को मुक्त कर लिया।'

अंग्रेजी ढंग की शिक्षा-संस्थाओं को राष्ट्रीय निर्माण के योग्य बनाने के लिए उन्होंने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं-

1. बालक के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा को एक सिरे से बदलना पड़ेगा, जिससे समाज में संघर्ष की जगह सहयोग की प्रवृत्ति जागे...। इस लिहाज से हमारे गुरुकुल आजकल के ईटन या हैरी या राजकुमार कॉलेजों से कहीं उत्तम थे, जहां सभी छात्र समान थे। इससे उनमें सार्वजनिकता का भाव पैदा होता था।[82]

2. राष्ट्र इस सिद्धांत को स्वीकार कर ले कि डिप्लोमा संपत्ति और अधिकार के खजाने की कुंजी नहीं है, तभी शिक्षा का वास्तविकता महत्व प्रकट होगा।[83]

3. ट्रेनिंग कॉलेजों में जहां और बहुत से विषय पढ़ाए जाते हैं, वहां शरीर विज्ञान भी एक प्रधान विषय होना चाहिए।[84]

4. किशोरावस्था में यौवन का विकास होने लगता है, हमारे कितने ही बालक अज्ञान के कारण अपनी इंद्रियों का दुरुपयोग करके अपनी सेहत और देह का सर्वनाश कर बैठते हैं। अगर हमारे हाई स्कूलों और यूनिवर्सिटियों में योग्य विशेषज्ञों से इस विषय पर भाषण कराए जाएं तो निश्चय हमारे विद्यालयों में जो गुप्त रूप से दुराचरण होता है वह बहुत कुछ कम हो जाए। इसके साथ ही विद्यालयों का यह भी कर्तव्य होना चाहिए कि वे अपने बालकों के मस्तिष्क को पाटना ही कर्तव्य की इतिश्री न समझें, उनकी आत्मा, उनके स्वास्थ्य और उनके जीवन का कल्याण भी अपना कर्तव्य समझें।[85]

5. शिक्षापयोगी चित्रों से अलबत्ता युवकों का बहुत कुछ उपकार होने की आशा की जाती है।[86]

6. तेरह वर्ष की उम्र तक जरूरी है कि बच्चे को स्कूल की साधारण शिक्षा दी जाए। उसके बाद जिस तरफ उसका रुझान देखें उसी ढर्रे पर लगा दें।[87]

7. जरूरी है कि बच्चों के सामने अच्छी-अच्छी तस्वीरें पेश करके उनमें सुरुचि की बुनियाद डाली जाए।[88]

8. मदरसों की तादाद और तनख्वाह बढ़ाएं।[89]

9. हमारी आरंभिक शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा स्थिर किया जाए कि चार वर्ष तक पढ़ने के बाद लड़का अपनी जरूरतों के लिए काफी तौर पर शिक्षा पा जाए।[90]

निष्कर्षतः वे शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन के पक्षपाती थे। उनकी दृष्टि में शिक्षा का उपयोग स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं, सामाजिक हित के लिए होना चाहिए। वह चरित्र-निर्माण और सामाजिकता के विकास में सहायक होनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षकों को मात्र सूचनाएं देने के अतिरिक्त कुछ और कर्तव्यों का निर्वाह भी करना चाहिए। शिक्षकों की आर्थिक कठिनाई को दूर करना भी वे आवश्यक समझते थे परंतु विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों की ऊंची तनख्वाहों को देश के लिए बोझ समझते थे।

प्रेमचंद के रहन-सहन संबंधी विचार गांधी से प्रभावित थे और रूस की नई सभ्यता का आलोक देख चुकने के बाद भी यह प्रभाव कम नहीं हुआ था। औद्योगिक और व्यापारिक संस्कृति के मूल्य उन्हें स्वीकार नहीं थे और ग्रामीण एवं वन्य जीवन के नैसर्गिक वातावरण का मोह उन्हें आजीवन बना रहा। आरंभ में तो वे अपने आपको ग्रामीण असहयोगी मानकर उसे गुजरे हुए जमाने को लौटाने का दावेदार घोषित करते हैं, जब वेद की सृष्टि हुई थी, जब दर्शनशास्त्र लिए गए थे, जब बुद्ध और हजरत ईसा जैसे महात्मा पैदा हो सकते थे, जब तैरत संगृहीत हुई थी।[91] बाद में भी 'व्यापार और कल कारखानों की उन्नति, तरह-तरह के यंत्रों का आविष्कार' करने वाले नए जमाने के रहन-सहन पर वे पूरे आवेश के साथ प्रश्न-चिन्ह लगाते रहे हैं।[92] सन् 33 में यूरोपीय रहन-सहन की नकल पर टिप्पणी करते हुए वे भारतीयों की इस वानरी प्रवृत्ति पर कठोर आघात करते हैं।[93]

ईसाई संस्कृति के प्रसंग में यह संकेत दिया जा चुका है कि पारिवारिक पद्धति की दृष्टि से प्रेमचंद यूरोपीय छोटे परिवार के मुकाबले भारतीय सम्मिलित परिवार प्रथा को अधिक

मानवीय और ग्राह्य मानते थे। स्त्री-पुरुष के संबंधों को दृष्टि से तो वे यूरोपीय तलाक प्रथा से पर्याप्त सशंक थे। भारतीय परंपरा के अनुकूल वैवाहिक संबंध पवित्रता में उनकी पूरी आस्था थी। 'कारवां' की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं- 'वैवाहिक जीवन में पांव रखते ही स्त्री-पुरुष दोनों वफादारी का व्रत लेते हैं, और इस व्रत का जितना ही दृढ़ता से पालन होता है उतना ही जीवन सुखी होता है।'[94] यह भी उल्लेख किया जा चुका है कि संतति-निरोध के कृत्रिम उपायों की यूरोपीय प्रथा को उन्होंने केवल इस आधार पर अस्वीकार किया है कि उसमें स्त्री-पुरुषों में विलासिता की प्रवृत्ति बढ़ने का भय रहता है उन्हें दम-संयम वाली भारतीय जीवन पद्धति अधिक श्रेयस्कर लगती है।

खेलकूद और मनोरंजन की भारतीय पद्धतियों के प्रति उनके पक्षपात का उल्लेख भी पहले हो चुका है। यूरोपीय नंगे नाचों के प्रति घृणा प्रकट करते हुए वे एक टिप्पणी में लिखते हैं- 'यूरोप में नग्न विलासिता जोरों से बढ़ रही है और वही लोग जो स्त्रियों के आदर का गुल मचाते हैं, बालिकाओं को नग्न वेश में देखकर अपनी आँखों को तृप्त करते हैं।[95] इतना ही नहीं भारत में शिक्षितों द्वारा यूरोपीय वसन-विन्यास की नकल को भी वे अनुचित मानते हैं और किसी जातीय पहनावे की कमी के बावजूद ऐसी वेशभूषा का व्यवहार न करने की सलाह देते हैं जिसमें विदेशीपन की झलक आती हो।[96] जातीय पहनावे के प्रति वे इतने संवेदनशील हैं कि उन्हें साड़ी ऐसी लोचदार चीज को छोड़कर पाजामा पहनने में कुरुचि की गंध आने लगती है।[97]

खान-पान के संबंध में भी वे बहुत दूर तो परंपरागत भारतीय रुचियों के कायल हैं और उन्हें यह देखकर खुशी होती है कि 'विज्ञान भी हमें उसी तरफ ले जा रहा है, जिधर हम पहले से चल रहे हैं।'[98] यूरोपीय पद्धति के डिब्बा-बंद भोज्यों की अपेक्षा वे मूली-गाजर, पालक-बथुआ, गुड़, चावल, गेहूं आदि को भारतीय पद्धति से खाना अधिक उपयोगी समझते हैं। टूथपेस्ट और ब्रश की अपेक्षा उन्हें दातून निःसंदेह अधिक लाभदायक दिखाई देती है।[99] इसी उपयोगितावादी दृष्टि से वे मादक-वस्तुओं का निषेज्ञ आवश्यक समझते हैं- 'मादक वस्तुएं सभी हानिकार हैं और हमारा कर्तव्य है कि उन्हें स्वयं छोड़ें और यथाशक्ति दूसरों से छुड़वाएं।'[100]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद के आचार और विचार में भारतीयता का रंग बहुत गहरा है। उनके परंपरागत संस्कारों को दयानंद और गांधी जैसे राष्ट्रीय नेताओं के दृष्टिकोण से बल मिला है। पुनर्जागरणकालीन भावनाओं के अनुरूप वे बौद्धिक परीक्षा में खरी उतरने वाली भारतीय परंपराओं को सोत्साह स्वीकार करते हैं और विदेशी परंपराओं की अंधी नकल के कटु आलोचक रहे हैं। अंतिम दिनों में कुछ सांप्रदायिक संस्थाओं के सांस्कृतिक नारों से संशक होकर वे संस्कृति की आर्थिक व्याख्या करने को विवश हो गए थे, परंतु सामान्यतः आदर्श और श्रेयस्कर भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं में उनके प्रिय नेता गांधी के समान उनकी आस्था भी निष्कंप रही है। □

संदर्भ-सूची

1. विविध-प्रसंग- 3, पृ. 189, 2. विविध-प्रसंग- 1, पृ. 1,3. विविध-प्रसंग- 2, पृ. 427, 4. वही, पृ. 100, 5. विविध-प्रसंग- 3, पृ. 205, 6. वही, पृ. 232, 7. विविध-प्रसंग- 2, पृ. 427, 8. साहित्य का उद्देश्य, पृ. 138, 9. विविध-प्रसंग- 2, पृ. 73,10. वही, पृ. 419,11. विविध-प्रसंग-3, पृ. 155 12. वही, पृ. 232, 13. विविध-प्रसंग- 1, पृ. 169, 14. वही, पृ.193,15. वही, पृ. 10816. वही, पृ.216-17, 17. वही, पृ.174,18. विविध-प्रसंग-3, पृ. 206,19. वही, पृ. 206-07,20. वही, पृ. 142, 21. साहित्य का उद्देश्य, पृ. 33, 22. विविध-प्रसंग-2 पृ. 125, 23. वही, पृ. 77, 24. वही, पृ.261, 25. विविध-प्रसंग-3, पृ.208, 26. विविध-प्रसंग-3, पृ. 54-55, 27. विविध-प्रसंग-2, पृ. 303, 28. विविध-प्रसंग-3, पृ. 193, 29. वही, पृ.196, 30. वही. पृ. 197, 31. वही, पृ. 197-98, 32. वही, पृ.199, 33. वही, पृ. 242, 34. वही, पृ.458, 35. वही, पृ.193, 36. वही, पृ. 258, 37. वही, पृ. 269-70, 38. वही, पृ. 265, 39. वही, पृ.159, 40. वही, पृ.156, 41. वही, पृ.218, 42. विविध-प्रसंग-2, परिशिष्ट, 43. वही, पृ. 540, 44. विविध-प्रसंग-3, पृ. 206, 45.विविध- प्रसंग-1, 46. विविध-प्रसंग-3, 47. वही, 48. वहीं, पृ. 234, 49. विविध-प्रसंग-1, पृ. 151, 50. विविध-प्रसंग-2, पृ. 316, 51. वही, पृ. 100, 52. वही, पृ. 300, 53. वही, पृ. 224, 54. विविध-प्रसंग-3, 55. विविध-प्रसंग-2, पृ. 153, 56. विविध-प्रसंग-1, पृ. 159, 57. विविध-प्रसंग-3, पृ. 442, 58. वही, पृ. 189-91, 59. साहित्य का उद्देश्य, पृ. 157, 60. विविध-प्रसंग -1 61. वही, पृ. 231, 62. विविध-प्रसंग-3, पृ. 499, 63. विविध-प्रसंग-1, पृ. 85, 64. वही, पृ. 87, 65. वही, पृ. 89, 66. वही, पृ. 90, 67. विविध-प्रसंग-3, पृ.198, 68. वही, पृ. 221, 69. वही, पृ. 241, 70. वही, पृ. 212-13, 71. वही, पृ. 220, 72. वहीं, पृ. 266, 73. वही, पृ. 242, 74. वही, पृ. 245, 75. विविध-प्रसंग-1, पृ. 82, 76. वही, पृ. 82, 78. वही, पृ. 83, 79. साहित्य का उद्देश्य, पृ. 111, 80. विविध-प्रसंग, पृ. 201-03, 81. वही, पृ. 244-45, 82. विविध-प्रसंग-3, पृ. 221-22 83. वही, पृ. 231, 84. वही. पृ. 212, 85. वही, पृ. 243, 86. वही, पृ. 228, 87. विविध-प्रसंग-1, पृ. 82, 88. वही, पृ. 81, 89. वही, पृ. 115, 90. वही, पृ. 117, 91. विविध-प्रसंग-2, पृ. 28 92. विविध-प्रसंग-1, पृ. 262, 93. विविध-प्रसंग-2, पृ. 303, 94. विविध-प्रसंग-3, पृ. 37695. वही, पृ. 236, 96. वही, पृ. 193, 97. वही, पृ. 269, 98. वही, पृ. 242, 99. विविध-प्रसंग-3, पृ. 282, 100. विविध-प्रसंग-3, पृ. 235।

प्रेमचंद-आलोचना के मिथक तथा उपेक्षा-अवमूल्यन की दिशाएं

आधुनिक हिंदी साहित्य के आलोचना-इतिहास में प्रेमचंद की आलोचना का इहितहास काफी बड़ा और विस्तृत है। प्रेमचंद-साहित्य पर जितने शोध-कार्य हुए हैं तथा आलोचनात्मक पुस्तकें छपी हैं, उतना कार्य आधुनिक साहित्य के किसी साहित्यकार पर नहीं हुआ, लेकिन इस व्यापक आलोचना-संसार की त्रासदी यह है कि सैकड़ों शोध-प्रबंधों में अधिकांशतः एक-दूसरे की आवृत्ति है तथा जिनमें कुछ मौलिकता एवं नवीन स्थापनाएं हैं, उनकी चर्चा कभी हिंदी के आलोचना-संसार में नहीं हुई और न उनकी स्थापनाओं को ही प्रेमचंद के पाठकों-छात्रों-अध्यापकों तक ही पहुंचाया गया। हिंदी में शोध-कर्म तथा शोध-निष्कर्षों की उपेक्षा ज्ञान के विकास में बहुत बड़ी बाधा है। प्रेमचंद की आलोचना का एक पक्ष उनकी समकालीन आलोचना का है, जिसे अब तक किसी आलोचक या शोधकर्मी द्वारा नहीं देखा गया और आज भी पुरानी पत्र-पत्रिकाओं में बंद पड़ा है और वह कभी भी दीमकों के हवाले हो सकता है। उनकी आलोचना का एक पक्ष और भी है। देश की स्वतंत्रता के साथ और उससे पूर्व कुछ प्रेमचंद की आलोचना में कई नए आलोचकों का आविर्भाव हुआ और प्रेमचंद-आलोचना की परंपरा निरंतर पुष्ट होती गई। इन आलोचकों में मदन गोपाल, रामविलास शर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, रामरतन भटनागर, श्रीपति शर्मा, जितेंद्रनाथ पाठक, मन्मथनाथ गुप्त, नलिन विलोचन शर्मा, राजेश्वर गुरु, इंद्रनाथ मदान, गोपाल राय, नगेंद्र, शचीरानी गुर्टू, गौतम सचदेव आदि ने प्रेमचंद की आलोचना का विस्तार किया और साहित्य के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला, किंतु प्रेमचंद-आलोचना में प्रगतिशील आलोचकों का एक ऐसा समूह रहा और जो अब तक है, जिसने प्रेमचंद-साहित्य की आलोचना एवं मूल्यांकन को मार्क्सवाद और उसके जीवन-दर्शन तक सीमित कर दिया और प्रेमचंद को मार्क्सवादी, रक्तिम क्रांति एवं वर्ग-संघर्ष के समर्थ, गांधीवाद के विरोधी तथा घोर यथार्थवादी के रूप स्थापित किया और कई दशकों से प्रगतिशील आलोचक इसी की बार-बार आवृत्ति, बार-बार घोषणा तथा बार-बार स्थापनाएं कर रहे हैं। इस प्रगतिशील आलोचना के विरुद्ध और विपरीत तब कुछ मौलिक एवं नई अवधारणाएं आती हैं, तो यह प्रगतिशील-समूह अपने अविवेकी-असंग-अतार्किक आलोचना-महल को ढहते देखता है तो सच्चाई को तथा नए शोध-निष्कर्षों को स्वीकार करने की अपेक्षा उन्हें शत्रु समझकर

उन पर आक्रमण करते हैं और गालियां बकते हैं तथा बदनाम करते हैं। मेरा लगभग आधी शताब्दी का ऐसा ही अनुभव है। मैंने जब से प्रेमचंद के जीवन, साहित्य तथा चिंतन के नए सूत्र उनके दस्तावेजों के आधार पर खोले हैं प्रगतिशील आलोचकों का यह आक्रमण अब तक चल रहा है। नामवर सिंह, ने 'जनसत्ता' (5 अप्रैल, 2012) तथा 'पुस्तक वार्ता' (मई-जून, 1912) में मधुरेश ने प्रगतिशीलों की इसी युद्ध नीति से मुझ पर आक्रमण किया और मेरा समुचित उत्तर इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में छपा है। हिंदी की प्रगतिशील आलोचना सिद्धांत और व्यवहार में एकाधिकारवादी है, क्योंकि उसके मूल-स्रोत मार्क्सवाद की यही प्रकृति और दर्शन है। प्रेमचंद के प्रगतिशील आलोचक प्रेमचंद पर अपना एकाधिकार समझते हैं और प्रेमचंद की प्रगतिशील मूर्ति को, जो बहुत अंश को काट-छांटकर बनी है, साहित्य-संसार को स्वीकार करने के लिए दबाव डालते रहते हैं।

प्रेमचंद की प्रगतिशील आलोचना ने प्रेमचंद का बहुत बड़ा अहित किया है। उन्होंने प्रेमचंद की 301 कहानियों,14 उपन्यासों, तीन नाटकों तथा हजारों पृष्ठों के अन्य साहित्य में केवल 10-15 रचनाओं को ही प्रगतिशील प्रेमचंद की रचनाएं मानते हुए उन्हें ही वास्तविक प्रेमचंद की रचनाएं माना है। प्रेमचंद का शेष विपुल साहित्य कपोल-कल्पना, भावुकतापूर्ण, आदर्शवादी तथा अवास्तविक जीवन की रचनाएं हैं। इस प्रकार प्रगतिशीलों ने प्रेमचंद को प्रेमचंद के विरुद्ध खड़ा कर दिया है तथा कुछ ऐसे मिथक बनाए हैं जो अवास्तविक तथा तर्कहीन होने पर भी अभी तक चल रहे हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन पर विश्वास बना हुआ है। प्रेमचंद की गरीबी का मिथक ऐसा ही है जो अब तक चल रहा है जो पूर्णतः गलत और भ्रामक है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा था कि प्रेमचंद का जन्म गरीबी में हुआ, गरीबी में जिंदा रहे और गरीबी में ही मर गए। अमृतराय ने 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' में भी उनकी गरीबी दशा का ही चित्रण किया है, किंतु प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय ने कभी नहीं माना कि उनके पिता गरीब थे। सन् 1980 में जब मैंने उनके बैंक खातों, वेतन तथा रायल्टी आदि का तथ्यात्मक विवरण 'कादंबिनी' में प्रकाशित कराया तो हिंदी संसार में जैसे भूचाल आ गया और मार्क्सवादी डॉ. नामवर सिंह ने कई स्थानों पर कहा कि एक हिंदू लेखक प्रेमचंद की पासबुक दिखाते फिरते हैं। एक बार तो इलाहाबाद में दूधनाथ सिंह तथा मार्कण्डेय से झड़प ही हो गई। प्रेमचंद के देहांत के समय उनके दो बैंक खातों में पांच हजार रुपये के लगभग बेलेंस था। मैंने उनके लगभग 35 वर्षों की आर्थिक स्थिति का जो विवरण प्रस्तुत किया उससे उनके गरीब होने का मिथक टूटा, परंतु आज तक भी हमारे प्रगतिशील अपनी पुरानी असत्य धारणा से ही जुड़े हैं, क्योंकि उनके गरीबी के मिथक के टूटने से उनको मानसिक आघात लगा है उससे वे अपना मानसिक संतुलन खो चुके हैं। वे आज भी प्रेमचंद की गरीबी को रोना-रोते हैं और प्रेमचंद के पाठकों-प्रेमियों को अंधकार में रखते हैं।

हिंदी-उर्दू के प्रगतिशीलों ने इसी प्रकार के कई मिथ्या मिथक बनाए हैं और वे आज भी उन्हें लादे चल रहे हैं। ये लोग बराबर कहते रहे हैं कि प्रेमचंद साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद के विरोधी लेखक थे, पर ये भूल जाते हैं कि यह प्रेमचंद-साहित्य की एक प्रवृत्ति है, इससे संपूर्णता

में उनकी पहचान नहीं होती है। प्रेमचंद को समग्रता में देखने-पढ़ने-समझने से ही उनके भारतीयता के कथाकार होने का ज्ञान होता है, उन्हें टुकड़ों में बांटने अथवा एक प्रवृत्ति में ही प्रेमचंद मूर्ति की प्रतीति अज्ञान का प्रमाण है। इन्हीं आलोचकों ने प्रेमचंद के मार्क्सवादी और यथार्थवादी होने का मिथक गढ़ा और प्रगतिशील आलोचक आज भी इसका डंका पीटते हैं, बिना यह देखे-समझे कि प्रेमचंद इस विषय में क्या कहते हैं। प्रेमचंद ने सन् 1919 में एक पत्र में यह अवश्य लिखा था कि मैं वोल्शेविक उसूलों का करीब-करीब कायल हो गया हूं, किंतु इसके बाद वे अपनी रचनाओं और लेखों में साम्यवाद और उनके अनुयायियों की बराबर आलोचना करते रहे हैं। 'स्वदेश' में सन् 1928 में छपे एक लेख में उन्होंने लिखा कि साम्यवाद तो पूंजीवाद से अधिक भयानक है। सन् 1933-34 के लेखों में उन्होंने लिखा कि सोवियत रूस अपने विचारों का साम्राज्य चाहता है। इसी समय उन्होंने सोवियत व्यवस्था के पतन तथा नई व्यवस्था के आने की भविष्यवाणी भी की। उन्होंने 'गोदान' तक में प्रो. मेहता से साम्यवादी व्यवस्था की आलोचना करवाई है। यदि प्रगतिशील आलोचक उनकी 'कैदी', 'कातिल' तथा 'कातिल की माँ' कहानियां पढ़ लें और समझ लें तो उन्हें मालूम होगा कि प्रेमचंद मार्क्स के दर्शन तथा लेनिन के कामरोडों के कितने विरुद्ध थे। इसी प्रकार प्रेमचंद बार-बार अपने को आदर्शवादी कहते हैं और यह भी कहते हैं कि हममें से कोई यथार्थवादी नहीं है, किंतु प्रगतिशील आलोचक उन्हें कभी यथार्थवादी, कभी क्रांतिकारी यथार्थवादी आदि की रट लगाए रहते हैं। अब प्रगतिशीलों का यह मिथक भी चूर-चूर हो गया है। कोई भी समझदार आलोचक सैकड़ों-हजारों रचनाओं के होते हुए तीन-तेरह रचनाओं के आधार पर यथार्थवादी बनाने की मूर्खता नहीं कर सकता। मुझे अब तक आम जनता में जो प्रेमचंद के पाठक मिले हैं, वे सभी उन्हें आदर्शवादी मानते हैं और कहते हैं कि प्रेमचंद ने मनुष्य को ऊँचा उठाकर मनुष्यता की रक्षा की है।

हिंदी के प्रगतिशील आलोचकों ने उन्हें मार्क्सवादी बनाने के लिए और भी तरह-तरह के प्रयास किए हैं और वे मिथक जैसे बन गए हैं। प्रेमचंद ने सन् 1908 में लिखा था कि साहित्य अपने युग का दर्पण है, लेकिन प्रगतिशील युग की व्यापक अवधारणा में देश-प्रेम, धर्म, संस्कृति, समाज- सुधार, देवत्व की अनुभूति को स्वीकार नहीं करते। उनके युग-दर्पण में जीवन का दुःख-दर्द, शोषण-दमन ही आता है, जीवन का उल्लास, परिष्कार, संस्कार, जिजीविषा, अस्तित्व-बोध, भारतीयपन आदि सब कपोल-कल्पना, भावुकतापूर्ण एवं यथार्थ विरोधी हैं। प्रेमचंद ने कहा था कि जीवन के यथार्थ में जीवन का आदर्श क्यों नहीं आ सकता, लेकिन प्रगतिशील इस पर मौन हैं। प्रेमचंद ने जब यह कहा कि साहित्य जीवन की आलोचना है, तो क्या जीवन की आलोचना में जीवन का सौंदर्य एवं शिव-पक्ष शामिल नहीं है? प्रेमचंद ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' का साहित्य-दर्शन दिया, परंतु प्रगतिशीलों ने आदर्श को काटकर फेंक दिया और उन्हें उनके साहित्य-सिद्धांत के विपरीत यथार्थवाद तक सीमित कर दिया। प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' के भाषण में मन के संस्कार तथा आध्यात्मिक आनंद की बात कही थी, लेकिन प्रगतिशीलों ने इनकी कभी चर्चा नहीं की और इन विचारों के विपरीत मिथकों की रचना करते

रहे। इन प्रगतिशील आलोचकों ने प्रेमचंद के स्वराज्य प्राप्ति तथा भारतीय आत्मा के संकल्प को कभी महत्व नहीं दिया और वर्ग-संघर्ष एवं हिंसक क्रांति से राजसत्ता की प्राप्ति का दिवा-स्वप्न देखते रहे।

प्रेमचंद पर प्रगतिशील आलोचना के इस आधिपत्य ने उनके साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का नगण्य बना दिया और यदि उन पर विचार हुआ तो उन्हें अवास्तविक, महत्वहीन तथा कमजोर बताकर प्रेमचंद को अपमानित किया गया। हमारे प्रगतिशीलों के लिए प्रेमचंद का लेनिन-स्टालिन का समर्थक होना बहुत बड़ी बात हो सकती है, किंतु उनके साहित्यिक कृतित्व के अनेक ऐसे पक्ष हैं जिनमें उनके भारतीय आत्मा के कथाकार होने के कालजयी सूत्र विद्यमान हैं। उनके इस व्यापक साहित्यिक वाङ्मय के बिना उनकी मूर्ति पूर्ण नहीं हो सकती। किसी भी लेखक को उसकी समग्रता में ही पहचाना और समझा जा सकता है, उसके सीमित करके अथवा किसी राजनीतिक कटघरे में बंद करके अपने विचारों के अनुरूप उनकी मूर्ति तो बना सकते हैं, किंतु इस अल्पांश मूर्ति को समग्र मूर्ति होने का दावा नहीं कर सकते। अतः यह आवश्यक है कि हम धूमिल हुए तथा लोक-स्मृति से गायब कर दिए गए प्रेमचंद के साहित्य की उन प्रवृत्तियों को भी जाने जिनसे उनके साहित्य की मुख्यधारा बनती है तथा जिनके कारण वे भारतीय कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित और मान्य हुए।

प्रेमचंद-साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की है। इसकी चर्चा कुछ किताबों में तो मिलती है, किंतु पहले इनमें भावुकता तथा अंध राष्ट्रवाद कहकर खिल्ली उड़ाई और फिर आलोचक इनकी चर्चा से बचने लगे। भारत की पराधीनता और स्वतंत्रता के दोनों कालों में राष्ट्रीयता का भाव प्रत्येक नागरिक के मन में होना आवश्यक है। देश के प्रति निष्ठा और समर्पण न हो तो देश सुरक्षित नहीं रह सकता है। विदेश के कम्युनिस्ट और मुस्लिम देशों में प्रबल राष्ट्रीय भाव देखा जा सकता है। आज तो भारत चारों ओर से शत्रु-भाव से घिरा हुआ है, अतः राष्ट्र-प्रेम का होना और भी आवश्यक है। प्रेमचंद ने 27-28 वर्ष के आयु में 'दुनिया का अनमोल रतन' तथा 'यही मेरी मातृभूमि है' दो ऐसी कहानियां लिखीं जिनमें देश-प्रेम और भारत-भूमि का आख्यान है। प्रेमचंद को देश-भक्तिपूर्ण कहानियों के संग्रह 'सोजेवतन' के कारण अंग्रेजी सरकार का कोपभाजक बनना पड़ा, परंतु उन्होंने गांधी के राजनीति में आने पर तथा उनके आंदोलनों को लेकर अनेक महत्वपूर्ण कहानियां और उपन्यास लिखे और वे स्वाधीनता संग्राम के महागाथाकार बने। उन्होंने देहांत से दो वर्ष पूर्व कहा था कि उनका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति है और वे चाहते हैं कि इसके लिए दो-चार महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखें। प्रेमचंद ने इसी उद्देश्य के लिए कुछ ऐतिहासिक कहानियां लिखीं, जैसे 'रानी सारंधा', 'आल्हा', 'राजा हरदौल', 'विक्रमादित्य का तेंगा', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि। इससे वे पाठक के मन में अतीत के प्रति गौरव, आस्मिता एवं स्वतंत्रता-बोध तथा देश के लिए उत्सर्ग की भावना उत्पन्न करना चाहते थे। प्रेमचंद ने लिखा था कि जो देश अपने अतीत पर गर्व नहीं करता वह नष्ट हो जाता है, परंतु आलोचक लेखक की इसी मर्म-दृष्टि को समझता नहीं चाहते। प्रेमचंद की सांस्कृतिक चेतना को भी गंभीरता से नहीं देखा-परखा गया और अधिकांशतः उनकी हिंदू-धर्म की

आलोचना तथा उनकी सेक्यूलर-दृष्टि की ही विवचेना करते रहे। प्रेमचंद ने हिंदू, ईसाई और मुस्लिम धर्म-संस्कृति का अध्ययन किया था और इन पर लेख भी लिखे थे, किंतु आलोचक उन्हें देखना ही नहीं चाहते। प्रेमचंद ईसाई धर्म, संस्कृति, जीवन-शैली तथा खेलकूद तक के विरोधी थे। 'रंगभूमि' उपन्यास में जॉनसेवक के परिवार के माध्यम से उन्होंने ईसाइयों के जीवन तथा विचारों का चित्रण किया है, किंतु मूस्लिम धर्म-संस्कृति के प्रति उनके मन में आदर का भाव था। हजरत मुहम्मद साहब पर 'नबी का नीति निर्वाह' कहानी तथा कर्बला के शहीदों पर 'कर्बला' नाटक लिखा था, यद्यपि इस नाटक के लिखने पर उन्हें मुस्लिम अदीबों की आलोचना सहनी पड़ी थी। वे हिंदू संस्कृति के प्रशंसक थे, और उसके त्याग, उत्सर्ग, सेवा, परोपकार, अपरिग्रह, अहिंसा, आदि जीवन-मूल्यों को श्रेष्ठतम मानवीय मूल्य मानते थे। उन्होंने एक लेख में लिखा था कि 'अहिंसा परमो धर्मः', 'वसुधैव कुटुंबकम्' आदि हिंदू धर्म-संस्कृति की बड़ी उपलब्धियां हैं, लेकिन उन्होंने हिंदू धर्म-संस्कृति में जो विकृतियां, अंधविश्वास, पाखंडपूर्ण कर्मकांड तथा ब्राह्मणों के शोषण आदि आ गई हैं, उनकी तीव्र आलोचना की और इसी प्रकार पश्चिमी सभ्यता के समाज पर पड़ने वाले कुप्रभावों तथा विसंस्कृतीकरण पर भी गहरी चोट की और लिखा है कि हमें इस पश्चिमीकरण से भारतीयता की रक्षा करनी होगी। वे अंग्रेजों की सभ्यता की नकल को मानसिक पराधीनता कहते थे और समाज को उससे मुक्त करके भारतीय जीवन-मूल्यों की छाप लगाना चाहते थे। उनका एक दार्शनिक चिंतन था। वे आत्मा का विकास, आत्मोन्नति तथा आत्मिक तृप्ति और आनंद को सर्वोपरि मानते थे। उन्होंने 'प्रगतिशील लेखक संघ' (10 अप्रैल, 1936) के व्याख्यान तक में मन के संस्कार तथा आध्यात्मिक आनंद, आध्यात्मिक सामंजस्य और आध्यात्मिक तृप्ति की बार-बार चर्चा की है। प्रेमचंद की इस सांस्कृतिक चेतना के गंभीर अध्ययन से ही हम प्रेमचंद-साहित्य की आत्मा को समझ सकते हैं। इसकी उपेक्षा से न तो प्रेमचंद को, न उस युग को तथा न उस युग के सांस्कृतिक नवजागरण के मर्म को ही समझ सकते हैं। इस युग के सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय नवजागरण, आस्त्वि एवं आस्मिता-बोध के साथ भारत-राष्ट्र का कायाकल्प करके उसे एक आधुनिक राष्ट्र बनाने का प्रयास था जिसमें पुरातन-भारत के जीवन-मूल्यों के साथ देश के अनुकूल आधुनिक चेतना के तत्वों का सहज सामंजस्य हो सके। इस संश्लिष्ट नवजागरण के साथ प्रेमचंद के साहित्य को रखकर हम प्रेमचंद की कलात्मक श्रेष्ठता की अनुभूति कर सकते हैं। जो प्रगतिशील आलोचक प्रेमचंद को 'साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद के विरोधी लेखक तक सीमित कर देते हैं, वे कितने व्यापक जीवन-परिदृश्य तथा राष्ट्रीय-संकट को आँखों से ओझल कर देते हैं इसलिए उन्हें समग्रता में पढ़ना-समझना आवश्यक है।

प्रेमचंद-साहित्य की सामाजिकता तथा समाजोन्मुखता की इतनी चर्चा हुई है कि उससे व्यक्ति की सत्ता, उसकी शक्ति और अस्तित्व प्रायः खो गया है। इसी कारण उन्हें समाज-सुधार, समाजोत्थान, समस्यामूलक कथाकार आदि सिद्ध किया जाता रहा है। यह सच है कि वे समाज-सुधार के लिए कटिबद्ध हैं और वे कथा का ताना-बाना इसी दृष्टि से बुनते हैं, परंतु समाज के परिवर्तन का मार्ग उनके पात्र ही प्रशस्त करते हैं। प्रेमचंद के पात्र परिस्थितियों में

जीते हुए बदलते हैं और स्वयं भी बदलते हैं और वे अपने मूल्यों के लिए जूझते और संघर्षशील रहते हैं। 'गोदान' में होरीराम पहले एक व्यक्ति है, बाद में एक छोटा भारतीय किसान, और वह अपनी जिजीविषा से भयंकर कष्टों के बीच अपने आस्तित्व की रक्षा में लगा रहता है। प्रेमचंद की कहानी 'रूहे हयात' (जीवन की प्राण-शक्ति) की ग्रामीण अनाथ बालिका गुजराती की जिजीविषा, सेवा, परोपकार की अनुपम उदाहरण है जो अपनी कर्मशीलता और लगन से ऊंचे स्थान तक पहुंचती है। उनकी कहानी 'रंगीले बाबू' का नायक रसिकलाल तो पुत्री तथा दुल्हा बने पुत्र की मृत्यु पर ईश्वर को चुनौती देता है और बेटे की अर्थी को दुल्हा बनाकर उसकी बारात निकालता है। 'मंत्र' कहानी का बूढ़ा भगत अपने आखिरी बेटे को खोने पर डॉ. चड्ढ़ा के पुत्र की सर्पदंश से रक्षा करता है और रंगमंच से गायब हो जाता है। प्रेमचंद अपने पात्रों से मनुष्यता की रक्षा कराते हैं। प्रेमचंद की प्रेम कहानियों की भी कोई चर्चा नहीं होती, लेकिन कहानी-उपन्यास दोनों में प्रेम-कथाएं हैं, बस अंतर यह है कि राजेंद्र यादव और 'हंस' में प्रकाशित कहानियां जैसी भोगवादी कहानियां नहीं हैं। वे प्रेमचंद के प्रेम-दर्शन को स्त्री और पुरुष दोनों दृष्टियों से समझना आवश्यक है। प्रेमचंद ने 'लिव-इन-रिलेशनशिप' पर 'मिस पद्मा' कहानी लिखी थी, जिसकी इधर खूब चर्चा है। प्रेमचंद ने दिखाया कि ऐसे रिश्ते में स्त्री की ही दुर्दशा होती है। प्रेमचंद ने यौन-पवित्रता की रक्षा करते हैं और जहां पुरुष इस पवित्रता को भंग करता है, लेखक उसे दंडित करता है। वे 'बालक' कहानी में स्त्री की यौनिकता को एक नई नैतिकता देते हैं। कहानी में अशिक्षित नायक विवाह के छः महीने के बाद उत्पन्न बच्चे को इस तर्क से स्वीकार करता है कि मैंने एक खेत खरीदा था, उस पर किसी ने फसल बोई हुई थी तो क्या वह फसल मेरी नहीं होगी। प्रेमचंद की यह नैतिकता और आधुनिकता विचारणीय है तथा इसे पाठकों तक पहुंचाना जरूरी है। उनकी कहानी 'कैदी' तथा 'जिहाद' भी आलोचकों ने परिदृश्य से हटा दीं, क्योंकि 'कैदी' में लेनिन के रूसी कामरेड़ों की धोखाधड़ी, स्वार्थपरता तथा क्रांतिद्रोहिता साहित्य में मार्क्सवाद के प्रचार में बाधक थी तथा 'जिहाद' तो वर्तमान जिहाद का पूर्व-रूप है। एक मुल्ला के आह्वान पर अफगानिस्तान के पठान-हिंदुओं का धर्मांतरण और उनका कत्ल करते हैं। प्रेमचंद ने परिवार-नियोजन पर 'गमी' कहानी लिखी जो दो बच्चों तक परिवार को सीमित करती है और उन्हें भविष्यदृष्टा लेखक बनाती है। उन्होंने विदेशी पात्रों, विदेशी लुटेरों, पशु-पक्षियों तथा वाल जीवन पर भी मार्मिक कहानियां लिखी हैं, किंतु इन पर कभी गंभीरतापूर्वक विचार नहीं हुआ।

अंत में, प्रेमचंद-आलोचना को एक स्वस्थ तथा वैज्ञानिक रूप दिए जाए और ऐसे मिथकों को हटा दिया जाए जिनका कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। प्रेमचंद के प्रामाणिक ज्ञान में ये झूठे मिथक बहुत बड़ी बाधा हैं। प्रेमचंद को प्रगतिशील कथाकार बनाने के चक्कर में आलोचक यह भूल जाते हैं कि उन्होंने 'प्रगतिशील लेखक संघ' के व्याख्यान में 'प्रगति' शब्द का ही विरोध किया था। प्रेमचंद प्रगतिशील थे भारतीय अर्थ में, न कि मार्क्सवाद के अर्थ में। इसके साथ प्रेमचंद को समग्रता में पढ़ना और समझना होगा। 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' उनका साहित्य का समग्र दर्शन है, अतः छोटे-छोटे कटघरों, विचार-समूहों में बांटकर प्रस्तुत करना

उनका अंग-भंग करना और अवमूल्यन है। प्रेमचंद का साहित्य भारतीयता को वाणी देने वाला साहित्य है। इस भारतीयता में उनके इसी भारतीयता के मूल में राष्ट्र-प्रेम एवं स्वतंत्रता तथा भारतीय आत्मा की खोज है। देश-प्रेम, स्वतंत्रता, अस्मिता तथा आत्मा की अनुभूति परस्पर संश्लिष्ट हैं और ये ही भारतीयता को रूपाकार देती हैं। अतः प्रेमचंद को भारतीयता के व्यापक वाङ्मय में अवस्थित करके उनके सरोकारों, चिंताओं तथा स्वप्नों को समझना चाहिए, न कि कुछ को चुनकर तथा कुछ की उपेक्षा और अवमूल्यन करके। प्रेमचंद की भारतीयता हमें भारत के पुरातन और आधुनिक दोनों रूपों से जोड़ती है और विश्वास है कि आने वाली पीढ़ियां भी इसी भारतीयता से प्रेमचंद को पढ़कर जान सकेंगे।

□

पूंजीवाद से भयंकर है 'साम्यवाद'

प्रेमचंद के अप्राप्य साहित्य की खोज में अनेक ऐसी रचनाएं मिली थीं जो प्रेमचंद के ऐसे विचारों को उद्घाटित करती हैं, जिनकी हमें जानकारी नहीं थी। 'साम्यवाद' एक ऐसा ही विषय है जिसके संबंध में उनका पूर्ण चिंतन हिंदी संसार के सम्मुख कभी नहीं आ सका। इसके कई कारण रहे हैं- हिंदी के वामपंथी आलोचकों ने 'साम्यवाद' के अपने विवेचन में केवल उन्हीं विचारों को उद्धृत किया जो 'साम्यवाद' के समर्थन में थे। यहां तक कि 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में बलराम के तीन-चार पंक्तियों के एक संवाद को जिसमें वह यूरोप के एक-दो देशों में किसानों-मजदूरों के राज्य होने का उल्लेख करता है, उपन्यास का प्रतिपाद्य बनकर पाठकों के साथ छल किया जाता है। इन वामपंथी आलोचकों ने प्रेमचंद के उन लेखों, कहानियों तथा उपन्यासों के उन अंशों को नहीं देखा जिनमें रूसी क्रांति, तथा साम्यवाद की कटु आलोचना की गई थी। इस संबंध में दूसरा कारण यह था कि प्रेमचंद के वे लेख अदृश्य हो गए या कर दिए गए जिनमें साम्यवाद को पूंजीवाद से भी अधिक भयंकर बताया गया था।

यहां ऐसा ही एक अप्राप्य लेख प्रस्तुत है जो गोरखपुर की पत्रिका 'स्वदेश' के 18 मार्च, 1928 के अंक में छपा था। इस लेख में प्रेमचंद कुछ ऐसे विचार प्रकट करते हैं, जिन्हें आज समझना आवश्यक है। आज हम जिसे भूमंडलीकरण कहते हैं, प्रेमचंद उसे व्यापारियों और मजदूरों का साम्राज्यवाद कहते हैं। इस तरह प्रेमचंद भूमंडलीकरण के संबंध में उस समय के चिंतन को हमारे सामने रखते हैं। प्रेमचंद इस लेख में 'साम्यवाद' को परिभाषित करते हैं। वे 'साम्यवाद' में व्यापारियों और मजदूरों की विजय देखते हैं, सामान्य जनता की नहीं, इस कारण रूसी क्रांति की विजय से साधारण जनता को अन्याय पर न्याय की तथा मिथ्या जीवन पर सत्य की विजय नहीं मिलेगी। साधारण जनता 'साम्यवाद' में भी न्याय के लिए तरसती रहेगी और पूंजीवाद की बुराइयों-विषमता, अन्याय तथा स्वार्थपरता को उन्हें पूर्ववत् रूप में झेलना होगा, बल्कि प्रेमचंद का विचार तो यह है कि साम्यवाद में ये बुराइयां और भी भयंकर होने की संभावना है। ध्यान रहे, यह लेख प्रेमचंद ने सन् 1928 में लिखा था जब उनका चिंतन प्रौढ़ता तक पहुंच चुका था।

प्रस्तुति : कमल किशोर गोयनका

राज्यवाद और साम्राज्यवाद

प्रेमचंद

पुराना जमाना राज्यवाद का था, यह जमाना साम्राज्यवाद का है। उन दिनों कोई योद्धा अपने बाहुबल का परिचय देने के लिए अथवा विजय लालसा से, अथवा अपने धर्म का प्रचार करने के लिए किसी देश पर हमला करता था। विजय पाते ही उसकी इच्छा पूरी हो जाती थी, या तो विजित देश के राजा के केवल हार मान लेने पर राजा बना देता था या कुछ कर लेकर छोड़ देता था। अगर धर्म-प्रचार ही उसका उद्देश्य होता था तो विजयी देश विजित का धर्म स्वीकार कर लेने के बाद फिर स्वाधीन हो जाता था। उसके माथे पर इस हार से, अनंत काल के लिए, कलंक न लगता था। जब आदमी में पराक्रम का उदय होता है तो उसे स्वभावतः किसी के सामने ताल ठोंकने की उमंग होती है। यह सर्वथा क्षम्य है। नहीं, हम तो इसे सराहनीय कहेंगे। जो बलवान है उसे निर्बल पर राज्य करने का खुदा के यहां से अधिकार मिला हुआ है। पराधीनता ही निर्बलता का दंड है। यही सोचकर वर्ष-दिनों, प्रत्येक जाति बल का संचय करती थी, किले बनाती थी, खाइयां खोदती थी; मगर मैदान में हारकर किसी का जो अपमान होता है, वही विजित जातियों के लिए काफी समझा जाता था। दस-पांच साल के बाद विजेता और विजित में कोई अंतर, कोई भेद, न रहता था। मगर यह साम्राज्यवाद का जमाना था। आजकल अपनी वीरता का परिचय देने के लिए कोई किसी पर आक्रमण नहीं करता। वीरता तो इस जमाने से लोप हो गई। अब केवल निर्बल जातियों का खून-चूसने के लिए बलवान जातियों का संघटन होता है। यह उमंग अब राजा के दिल में नहीं होती, व्यापारियों के दिल में होती है। व्यापारियों का दल अपनी चीजों की निकासी के लिए ऐसा बाजार तलाश करता है जहां उसे मनमाना दाम मिल सके। फिर धीरे-धीरे यह उस बाजार को इस तरह अपने हाथ में करना चाहता है कि अनंत तक उस पर उसका अधिकार बना रहे। व्यापारियों द्वारा जो धन देश में आता है, जिसमें देश के मजदूरों का भी हिस्सा होता है। कोई चीज मजदूरों के बिना तो बन ही नहीं सकती और आजकल मजदूरों का संघटन इतना सुंदर हो गया कि उनकी सम्मति के बिना कोई राष्ट्र कुछ कर ही नहीं सकता। ये मजूर लोग अपने देश में तो किसी तरह अन्याय नहीं सह सकते, लेकिन जब अपने व्यापारियों के हित की रक्षा का प्रश्न आता है तो यह उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय का विचार नहीं करते, व्यापारियों की सहायता करने को आमादा हो जाते हैं। उन्हें भी तो रहने को सुंदर घर चाहिए, खाने को पौष्टिक भोजन चाहिए, सिनेमा-थियेटर सभी उनके लिए जरूरी है और यह

सुख तभी प्राप्त हो सकते हैं जब देश के व्यापारियों का माल बराबर खपता रहे। इसलिए अब किसी निर्बल राष्ट्र पर प्रभुत्व जमाए रहना व्यापारियों के लिए उतना ही जरूरी है जितना मजूरों के लिए। और देश में दो ही वर्णों के मनुष्य होते हैं- व्यापारी या मजूर। जमींदार व्यापारियों के अंतर्गत हैं और किसान मजूरों के। इस भांति अब किसी पराधीन जाति पर अपना प्रभुत्व जमाए रहने में केवल राजा का नहीं, केवल व्यापारियों का भी नहीं, बल्कि समस्त जाति का हित सम्मिलित होता है और समस्त जाति सामुदायिक रूप से राज्य करती है। पुराने जमाने में एक व्यक्ति का राज्य होता था। यही बरात का दुल्हा होता था। आज बरात के सभी नाई-ठाकुर दुल्हे हैं। तातारियों और मुगलों के जमाने में किसी बेहने, भिश्ती या भंगी को कभी स्वप्न में यह बात न सूझती थी कि वह किसी दूसरी जाति पर राज्य करता है। आज फ्रांस, बेलजियम या इंग्लैंड का एक साधारण कोयला खोदने वाला मजूर भी समझता और जानता है कि वह भी अमुक निर्बल जाति पर राज्य करता है। पुराने जमाने का राजा खुश भी हो सकता था, बिगड़ भी सकता था; व्यक्तिगत भावों और विचारों के अध्ययन ही उसके सब काम होते थे; मगर एक जाति को खुश करना उससे कहीं मुश्किल है जितना उसको नाराज करना। सामुदायिक मनोवृत्ति ही ऐसी है। व्यक्तिगत रूप से हम जो काम करने का ख्याल भी दिल में नहीं ला सकते, सामूहिक रूप से हम उस करने में संकोच नहीं करते। एक व्यक्ति आदर्शवादी हो सकता है, स्वार्थ को छोड़ सकता है, लेकिन एक पूरा राष्ट्र आदर्शवादी नहीं हो सकता है। यह संभव है कि एक राजा को भारत की दुर्दशा देखकर दया आ जाए, लेकिन यह असंभव है कि सारी ब्रिटिश जाति, दया और न्याय की देवी पर, अपने स्वार्थ का बलिदान कर सके। एक समय था जब साम्यवाद निर्बल राष्ट्रों को आशा से आंदोलित कर देता था। सारे संसार में जब प्रजावाद की प्रधानता हो जाएगी, फिर दुःख या पराधीनता या सामाजिक विषमता का कहीं नाम भी रहेगा। साम्यवाद से ऐसी ही लंबी चौड़ी आशाएं बांधी गईं थीं; मगर अनुभव यह हो रहा कि साम्यवाद केवल पूंजीपतियों पर मजूरों की विजय का आंदोलन है, न्याय के अन्याय पर, सत्य के मिथ्या पर, विजय पाने का नाम नहीं। यह सारी विषमता, सारा अन्याय, सारी स्वार्थपरता तो पूंजीवाद के नाम से प्रसिद्ध है, साम्यवाद के रूप में आकर अणु मात्र भी कम नहीं होगी, बल्कि उससे और भी भयंकर हो जाने की संभावना है। लार्ड ओलिवियर, मि. रामजे मैकडोनेल्ड आदि सब समष्टि हैं। जब इंग्लैंड में मजूर दल ने विजय पाई थी, हमारे दिल में हर्ष और गर्व की कैसी गुदगुदियां उठी थीं, लेकिन अफसोस लार्ड ओलिवियर महोदय ही ने निरपराध भारतीय युवकों को नजरबंद किए जाने का कानून स्वीकार किया और आज मि. मैकडोनेल्ड को हम उनके असली रूप में देख रहे हैं। पुराने राज्यवाद में प्रभुत्व का नशा केवल एक व्यक्ति को होता था; साम्राज्यवाद में यह नशा समस्त जाति को हो जाता है, फिर वह जो कुछ न करे,वह थोड़ा है। पच्छिम की सारी विभूति,सारा ज्ञान-विज्ञान, सारा धर्म और दर्शन, केवल एक शब्द 'स्वार्थ' में आ जाता है और यह 'स्वार्थ' पर न्याय, सत्य, दया, शील, विवेक सब कुछ भेंट कर सकता है।

(इस लेख के आरंभ में लेखक का नाम दिया गया है-श्रीयुत बाबू धनपतराय बी.ए. और लेख के अंत में नाम छपा है- 'प्रेमचंद')

□

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री : गंगा की निर्मलता, पावनता एवं संस्कृति के प्रतीक-मनीषी

भारत के कुछ प्रांतों के पूर्व राज्यपाल, कोलकाता विश्वविद्यालय के पूर्व आचार्य तथा हिंदी के विख्यात साहित्यकार श्रद्धेय विष्णुकांत शास्त्री को मैं जब भी स्मरण करता हूं अथवा वे जब भी अपने साहित्यिक या राजनीतिक कृतित्व के कारण मेरे सम्मुख होते हैं तो मुझे गंगा की निर्मलता, पावन और निरंतर प्रवाहित होने वाली उसकी सांस्कृति धारा का बिंब मेरी आत्मा में उतरने लगता है और गहरी प्रतीति से भर जाता है। भारतीय ऋषियों और मनीषियों ने मनुष्य के श्रेष्ठ मनुष्यत्व तथा विद्यमान देवत्व को प्राकृतिक उपादानों से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। आचार्य विष्णुकांतजी शास्त्री ऐसे ही श्रेष्ठ मनुष्य हैं जिनके साहचर्य से देवत्व की अनुभूति होती है और वह गंगा के निर्मल, पावन और संस्कृतिमय व्यक्तित्व से ही स्पष्ट हो सकती है। गंगा की यह भी विशेषता है कि वह विश्व के सर्वोच्च पर्वत-माला से जन्मी है और लंबी यात्रा के बाद सागर की अतल गहराइयों में विलीन हो जाती है। आचार्य विष्णुकांतजी शास्त्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में भी हिमालय जैसी ऊंचाई और गरिमा है तथा सागर जैसी अथाह गंभीरता है। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व हिमालय, गंगा और सागर का समुच्चय है जो मेरे युग में एक असाधारण घटना है। वे एक साधारण व्यक्तित्व के धनी हैं, परंतु उनका असाधारणत्व साधारणता से उत्पन्न होता है। महात्मा गांधी जैसे साधारण होने के कारण ही असाधारण थे, वैसे ही शास्त्रीजी भी अपने साधारणत्व में ही विशिष्ट और असाधारण हैं। शास्त्रीजी के संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यही अनुभव है कि वे अत्यंत सहज, सरल और सामान्य मनुष्य हैं और उनमें अहं, अपने को श्रेष्ठ समझने का भाव उनमें दूर-दूर तक भी नहीं है। इसीलिए वे अजातशत्रु हैं, वे सबके मित्र हैं, हित-चिंतक हैं, सबका कल्याण चाहते हैं, सबको अपना स्नेह और आशीर्वाद देते हैं और सच तो यह है कि वे उन सभी के हैं जो मनुष्य हैं, देश-प्रेमी हैं, भारत माता के सेवक हैं, देश की अस्मिता और संस्कृति के रक्षक हैं। उनके लिए धर्म, जाति, भाषा क्षेत्र आदि की संकीर्णता और बंधन निरर्थक हैं, बस महत्वपूर्ण है मनुष्यता, समाज का कल्याण, राष्ट्र-चेतना और संस्कृति की रक्षा। इसीलिए मुझे शास्त्रीजी का जीवन, विचार और कर्म गंगा के समान लगता है। उनका साहचर्य और भावनाओं-विचारों का

संस्पर्श सभी को निर्मल और पावन बना देता है और भारत राष्ट्र एवं उसकी संस्कृति के प्रति समर्पित बना देता है।

आयार्च विष्णुकांत शास्त्रीजी से मेरा संपर्क लगभग तीस वर्ष पुराना है। मैंने सन् 1970-71 में प्रेमचंद पर अपना पी-एच.डी. का शोध प्रबंध विश्वविद्यालय में जमा कर दिया था और अपनी नई योजना पर सोच-विचार-विमर्श कर रहा था। तभी मैंने शास्त्रीजी को पत्र लिखा था और उनका अनुमोदन मिला था। उस समय तक मैं शास्त्रीजी के एक-दो व्याख्यान सुन चुका था और उनकी ख्याति देहली विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा हिंदी-संसार तक हो चुकी थी। प्रो. कल्याणमल लोढ़ाजी से जब-तक भेंट होती रहती थी तथा वे 'भारतीय साहित्य परिषद्' के अधिवेशनों मे भी प्रायः आते थे और तब अवश्य ही शास्त्रीजी की चर्चा होती और वे उनकी खूब प्रशंसा करते। इस प्रकार शास्त्रीजी मेरे मन के उस स्थान पर बैठ चुके थे जहां बैठे व्यक्ति से श्रद्धा ही हो सकती है तथा उसे पथ-प्रदर्शक ही बनाया जा सकता है। मुझे आज भी अपनी उस आकांक्षा का स्मरण है जब मेरे मन में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का शिष्य बनने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। मैं डॉ. नगेंद्र का शिष्य था लेकिन वे शिष्यों को दूर रखते थे और शिष्य भी उनके व्यक्तित्व से भयभीत रहते थे। डॉ. नगेंद्र के साथ शिष्यों का सहज सीधा संवाद असंभव ही था, जबकि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य विष्णुकांत शास्त्री भारत की उस गुरुकुल परंपरा के आचार्य थे जिनके लिए सभी शिष्य उनके परिवार के ही अंग थे और वे अपने शिष्यों के व्यक्तित्व के समग्र विकास को शिक्षण का अनिवार्य हिस्सा मानते थे। मैं आज जो कुछ हूं, जैसा कुछ भी हूं तथा जो कुछ भी थोड़ा-सा कर पाया हूं, निश्चय वह उससे बेहतर होता यदि मैं आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जैसे गुरुओं का शिष्य होता। मेरा विश्वास है, इस जन्म में नहीं तो आगामी जीवन में मुझे ऐसा सौभाग्य मिलेगा।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्रीजी से मेरा संपर्क सातवें दशक में हो चुका था। प्रेमचंद पर मुझे पी-एच.डी. की उपाधि देहली विश्वविद्यालय से मिल चुकी थी और मैं अपनी नई योजना का प्रारूप तैयार कर रहा था कि मैकमिलन कंपनी ने अपना हिंदी प्रकाशन खोला और मेरे मित्र विश्व प्रकाश गुप्त उसके इंचार्ज बने। उन्होंने मुझे हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन की एक बड़ी योजना बनाने के लिए कहा तो मैंने उन्हें 24 पुस्तकों की एक प्रकाशन-माला का प्रारूप बनाकर दिया। इस योजना के प्रो. विजयेंद्र स्नातक और मैं दो संपादक बने। इसके साथ ही 'प्रेमचंद विश्वकोश' की योजना भी चल रही थी। मैं चाहता था कि शास्त्रीजी इन दोनों ही योजनाओं को अपना आशीर्वाद दें। इस संबंध में मैंने उन्हें पत्र लिखा और उनका 20 जुलाई, 1975 को लिखे पत्र में लिखा, 'भविष्य में अवकाश रहा तो मैकमिलन की योजना के लिए लिखूंगा। 'प्रेमचंद विश्वकोश' के लिए 'प्रेमचंद और बांग्ला साहित्य' पर एक टिप्पणी लिखकर यथासमय भेजूंगा।' यह शास्त्रीजी का गुण ही है कि वे एक साधारण अध्यापक की प्रार्थना को भी सम्मान देते हैं, यद्यपि मैकमिलन की योजना बीच में ही खत्म कर दी गई। मैकमिलन में हिंदी विभाग के इंचार्ज डॉ. माहेश्वर बने और वे कम्युनिस्ट थे और कम्युनिस्ट लेखक ही उनके विशेषज्ञ तथा

परामर्शदाता थे। वे मेरे जैसे राष्ट्रवादी लेखक को बरदाश्त नहीं कर पाए और दो पुस्तकों के प्रकाशन के बाद उन्होंने योजना ही समाप्त कर दी। यह कम्युनिस्ट माफिया का मुझ पर पहला आक्रमण था जिससे महीनों की मेहनत और एक महत्वपूर्ण पुस्तक-माला जन्म लेते ही नष्ट हो गई। कम्युनिस्ट फांसीवाद का यही चेहरा आज की भारत सरकार के सहयोगी कम्युनिस्टों का भी है जो सुरजीत सिंह के शब्दों में किसी दूसरे विचार के लोगों को पद एवं सत्ता में सहन नहीं कर सकते। डॉ. माहेश्वर के इस फैसले से एक लाभ अवश्य हुआ कि मैं पूरी तौर पर 'प्रेमचंद विश्वकोश' की योजना पर लग गया। इसके बाद मैं 27 जुलाई, 1975 को इंदिरा गांधी की इमर्जेंसी में गिरफ्तार हुआ और लगभग दो महीनों के बाद जमानत पर रिहा हुआ और फिर मैं प्रेमचंद के कार्य में ही मग्न हो गया।

प्रेमचंद की जन्म-शताब्दी सन् 1980 में होगी, इसे ध्यान में रखकर मैंने देहली में 'प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति' का गठन किया और जैनेंद्र कुमार को अध्यक्ष बनाया एवं उनके आग्रह पर तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी इसकी संरक्षक बनीं। इसका एक बड़ा कार्यक्रम नई दिल्ली के फिक्की हॉल में हुआ और अमृतराय ने मेरे 'प्रेमचंद विश्वकोश' के आरंभिक दो खंडों का विमोचन किया और इसी ग्रंथ पर भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता ने 11 जनवरी, 1984 को 'नथमल भुवालका पुरस्कार देने की घोषणा की तो शास्त्रीजी ने मुझे इस तिथि को अपने पत्र में बधाई देते हुए लिखा, 'प्रेमचंद विश्वकोश' को पुरस्कृत कर भारतीय भाषा परिषद् ने गंभीर शोधवृत्ति को सम्मानित किया है। मुझे इस निर्णय से हार्दिक प्रसन्नता हुई है। फरवरी के प्रथम सप्ताह में आप कलकत्ते आएंगे ही, तब मिलकर और बातें होंगी ही। 'प्रेमचंद विश्वकोश' की विवेचनात्मक संस्तुति उस उत्सव में करने का दायित्व मुझे ही सौंपा गया है, इसकी भी मुझे प्रसन्नता है।' मेरे लिए यह अकल्पनीय था, परंतु इसमें शास्त्रीजी का स्नेह और आशीर्वाद था जो ईश्वर की कृपा से मुझे सहज रूप में प्राप्त हो रहा था। इस पुरस्कार समारोह में देश के राष्ट्रपति जैल सिंह पहुंचे और उन्होंने पुरस्कृत एवं सम्मानित किया। इस अवसर पर शास्त्रीजी से भेंट हुई और उन्होंने आशीर्वाद प्रदान किया और कुछ समय बाद 'प्रेमचंद विश्वकोश' पर उनका विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ और उसका शीर्षक था 'प्रेमचंद विश्वकोश': दृढ़ निष्ठा का साहसिक प्रयोग'। इस लेख के अंत में शास्त्रीजी ने लिखा, 'प्रेमचंद शतवार्षिकी के अंतर्गत सारे देश में छोटे-बड़े समारोह हुए, कई प्रकाशन हुए। सबका अपना-अपना महत्व है, किंतु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा परिकल्पित, लिखित एवं संपादित 'प्रेमचंद विश्वकोश' इस शतवार्षिकी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। हिंदी में यह अपने प्रकार का पहला कार्य होने पर भी डॉ. गोयनका ने जिस पूर्णता के साथ उसे प्रस्तुत किया है, वह उनकी मौलिक सूझ-बूझ एवं प्रेमचंद के प्रति उनकी समर्पित निष्ठा का द्योतक है। वास्तव में, यह डॉ. गोयनका की दृढ़ निष्ठा का साहसिक प्रयोग है, क्योंकि इस महान् कार्य में आने वाले बड़े-बड़े संकटों को झेलते हुए वे दृढ़ निष्ठा से अनेक वर्षों तक इस कार्य को पूरा करने में लगे रहे। प्रेमचंद शत-वार्षिकी के अवसर पर उनके जीवन एवं साहित्य के अनुरूप ही समर्पित यह श्रद्धांजलि-'प्रेमचंद विश्वकोश', प्रेमचंद के साथ ही सदैव याद ही

जाती रहेगी।' शास्त्रीजी के इस लेख तक 'प्रेमचंद विश्वकोश' पर कुछ समीक्षाएं छप चुकी थीं, परंतु शास्त्रीजी के इन शब्दों से मुझे जो बल एवं संतोष मिला और अपने कार्य पर जो विश्वास उत्पन्न हुआ, उसे शब्दों में वर्णित करना संभव नहीं है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के प्रोत्साहन, समर्थन और आशीर्वाद के कारण मुझे प्रेमचंद पर अपनी स्थापनाओं को लिखने और विरोधियों का सामना करने का साहस उत्पन्न हुआ। प्रेमचंद जन्म-शताब्दी तक यह स्पष्ट हो चुका था कि देश के कम्युनिस्ट लेखक मेरे शोध एवं नई स्थापनाओं पर राजनीतिक स्वार्थों के कारण एकजुट होकर उन पर आक्रमण करने लगे थे और वे मेरी स्थापनाओं का उत्तर न देकर मेरा चरित्र हनन करने में लग गए थे। मैंने अपने दस्तावेजों से उनके जीवन के अनेक झूठे मिथकों को तोड़ा था तथा उन्हें कम्युनिस्ट लेखक बनाने के कम्युनिस्टी षड़यंत्र का पर्दाफाश करते हुए प्रेमचंद की भारतीयता की वास्तविक मूर्ति को स्थापित किया था। प्रेमचंद को लेकर हिंदी के तथाकथित प्रगतिशील लेखकों, समीक्षकों तथा कम्युनिस्ट नेताओं के छल-कपटपूर्ण स्थापनाओं को सरेआम चुनौती देने का यह पहला अवसर था और वे इस दुस्साहस को सहन करने को तैयार न थे। डॉ. सुधीश पचौरी ने सन् 1978 में 'आलोचना' में मुझे 'गाय छाप' लेखक लिखा और कुछ वर्षों के बाद मुझ पर प्रेमचंद को 'हिंदू' बनाने का आरोप लगाया। मलयज ने अपनी डायरी के सन् 1979 के एक पृष्ठ में मेरी नई स्थापनाओं की चर्चा के साथ लिखा कि गोयनका जनसंघी हैं, इस कारण वे ऐसा लिखेंगे। हैदराबाद में आयोजित एक प्रेमचंद-शताब्दी कार्यक्रम में तो वामपंथी लेखक वेणु गोपाल ने तो मुझे देख लेने तक की धमकी दे दी। उस कार्यक्रम में डॉ. नामवर सिंह भी थे और उन्होंने अपने भाषण में यह कहा कि 'गोदान' का होरी एक हिंदू किसान है और यह होरी ही प्रेमचंद है। मैंने तत्काल खड़े होकर कहा कि मैं डॉ. नामवर सिंह के इस नए चिंतन का समर्थन करता हूं तो तो वेणु गोपाल ने मंच पर आकर बौखलाते हुए कहा कि डॉ. नामवर सिंह बताएं कि वे गोयनका के करीब आए हैं या गोयनका उनके करीब आए हैं? इसके बाद गोष्ठी के अंत में उन्होंने मुझे देख लेने तक की धमकी दे डाली। ऐसी अनेक घटनाएं विगत तीस-पैंतीस वर्षों में मेरे साथ घटित हुई हैं, परंतु यहां एक घटना का और उल्लेख करना आवश्यक है। अमृतसर में डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने प्रेमचंद-शताब्दी पर कार्यक्रम किया तो मुझे भी आमंत्रित किया। इस कार्यक्रम में भी प्रेमचंद पर मेरा कार्य और मेरी स्थापनाएं ही केंद्र में रही। अनेक वामपंथी लेखकों एवं प्रोफेसरों ने मुझ पर चोटें की, परंतु वामपंथी प्रोफेसर एवं समीक्षक डॉ. शिवकुमार मिश्र ने कहा कि हमारी तकलीफ यह है कि गोयनका ने प्रेमचंद पर जो कार्य किया वह हमने क्यों नहीं किया? इस प्रश्न का उत्तर आज तक भी हिंदी के वामपंथी लेखक नहीं दे पाए, यद्यपि शास्त्रीजी ने इसका उत्तर दे दिया था कि दृढ़ निष्ठा, साहस और कठोर परिश्रम से ही ऐसा कार्य हो सकता है।

'प्रेमचंद विश्वकोश' के दो खंड प्रकाशित होने के बाद मैंने कुछ और योजनाओं पर भी काम शुरू कर दिया था। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी का 19 मई, 1979 को देहांत हो गया तो मैंने उनके संस्मरणों को एकत्र करना शुरू किया तो आचार्य विष्णुकांत शास्त्री से संपर्क

करना अनिवार्य था। मैं जैसा पहले लिख चुका हूं कि मेरे लिए दोनों आचार्य गुरु-तुल्य थे तथा मुझे ज्ञात था कि शास्त्रीजी के द्विवेदीजी से बड़े आत्मीय संबंध रहे हैं। इन दोनों विद्वानों में ऐसे संबंध होना स्वाभाविक था, क्योंकि आयु-भेद एवं पद-भेद होने पर भी दोनों में समान गुण थे। शास्त्रीजी जब एम.ए. के छात्र थे, तब से उनके द्विवेदीजी से संबंध बने और जीवन-पर्यंत बने रहे। अतः मैंने शास्त्रीजी को पत्र लिखा कि वे द्विवेदीजी पर लिखे अपने संस्मरणों को 'हजारीप्रसाद द्विवेदी : कुछ संस्मरण' पुस्तक में संकलित करने की अनुमति प्रदान करें। शास्त्रीजी ने मुझे अपने 18 अगस्त, 1982 के उत्तर में लिखा, 'आपके उद्यम पर मुग्ध हूं। 'सारिका' के दफ्तर से समीक्षा के मूल रूप का उद्धार करने के लिए धन्यवाद। हस्ताक्षर कर भेज रहा हूं। XXX आचार्य द्विवेदीजी पर मेरे दो संस्मरण हैं। एक मेरी पुस्तक 'स्मरण को पाथेय बनने दो' में छपा है। दूसरा XXX संस्मरण आचार्य द्विवेदी के महाप्रयाण के बाद मैंने 'रविवार' के लिए सुरेंद्र प्रताप के अनुरोध पर लिखा था, उसमें छपा भी था। XXX आप चाहें तो मेरे दोनों संस्मरण अपनी पुस्तक में छाप लें, चाहे तो जो प्रिय लगे, उसे छापें।' यह संस्मरण की पुस्तक सन् 1982 में प्रकाशित हुई और समीक्षकों ने शास्त्रीजी के संस्मरणों की बड़ी सराहना की, लेकिन मेरे लिए यह गर्व की बात थी कि शास्त्रीजी मेरे प्रत्येक कार्य में प्रोत्साहन और सहयोग दे रहे थे और हर कदम पर मेरी पीठ ठोक रहे थे।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्रीजी से मैं अब इतनी आत्मीयता अनुभव करने लगा कि मुझे उनमें अपने संरक्षक होने प्रतीति होने लगी थी। शास्त्रीजी अब जब भी दिल्ली आते तो मुझे पोस्टकार्ड लिखकर सूचना देते और प्रायः उनसे भेंट होती तो मेरे कार्यों के बारे में पूछते और मेरी पदोन्नति के संबंध में भी वे बराबर जानना चाहते। एक बार कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मेरे आग्रह पर वे मेरे घर आने को तैयार हो गए। असल में उस एक उनके पास कुछ समय था और मेरी कॉलोनी अशोक विहार के निकट की एक अन्य कॉलोनी शक्ति नगर में संभवतः उन्हें अपनी पुत्री से भी मिलना था। यह मेरा सौभाग्य ही था कि ईश्वर ने ऐसा संयोग बनाया। हम दोनों पहले आटो में शक्ति नगर आए और फिर वे मेरे साथ मेरे घर अशोक विहार गए। मेरा पूरा परिवार उनकी प्रतीक्षा में था ही। वे काफी समय तक रहे, पत्नी और बच्चों से बातें कीं और वे इतने सहज हो गए कि पत्नी ने अपनी कुछ जिज्ञासाएं उनके सम्मुख रखी। पत्नी ने एक प्रश्न पूछा कि जब मैं पूजा के समय ध्यान करती हूं तो मन तरह-तरह की बातें सोचने लगता है और ध्यन भंग हो जाता है। अतः इस मन को कैसे एकाग्र किया जाए? शास्त्रीजी कुछ मुस्कुराए और बोले, 'यह तो बड़े-बड़े ऋषियों के साथ भी होता है। मेरे साथ भी होता है। मन चंचल है, वह एक बिंदु पर टिका नहीं रह सकता, लेकिन बार-बार अभ्यास से उसे अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। मन की चंचलता से डरना नहीं चाहिए न ही भागना चाहिए, बस बराबर प्रयत्नशील रहना चाहिए।' पत्नी आज भी शास्त्रीजी के इस समाधान को याद करती हैं और उनके ज्ञान, स्नेह तथा आशीर्वाद की अनुभूति का वर्णन करती हैं। ऐसे ही अपनत्व, आत्मीयता तथा परिवारिकता का मैंने उस समय अनुभव किया जब भाजपा के शासन-काल में संस्कृति मंत्रालय में उनसे भेंट हुई और वे मुझे डॉ. मुरली मनोहर जोशी से

मिलाने ले गए। शास्त्रीजी ने डॉ.जोशी से मेरा परिचय देते हुए कहा, 'ये कमल किशोर गोयनका हैं जिन्होंने हिंदी के विश्व-विख्यात साहित्यकार प्रेमचंद को कम्युनिस्ट खेमे से निकालकर भारतीयता की धारा में स्थापित किया है।' डॉ. जोशी का उत्तर मेरे लिए अप्रत्याशित था। वे बोले, शास्त्रीजी, मैं गोयनका के नाम और काम दोनों को जानता हूं। उन्होंने जो कार्य किया है, वह ऐतिहासिक है और उससे प्रेमचंद की वास्तविक मूर्ति सामने आई है।' इसके उपरांत कुछ समय तक बातचीत होती रही, चाय आई और मैं अपनी खोज के संकटों तथा कम्युनिस्टों के आक्रमणों का इतिहास बताता रहा। शास्त्रीजी चाहते थे कि मेरे शोध कार्य को देखते हुए मुझे शीघ्र ही प्रोफेसर हो जाना चाहिए था। उन्होंने अपना यह मंतव्य भी डॉ. मुरली मनोहर जोशी के सम्मुख रखा और उसके बाद भी वे निरंतर इसकी पूछताछ करते रहे। शास्त्रीजी का आशीर्वाद मेरे साथ था, परंतु ईश्वर की इच्छा कुछ और थी। शास्त्रीजी ने मुझे 21 अगस्त, 1987 को अपने पत्र में लिखा भी था, 'प्रभु कृपा से आप सानंद रहें और शीघ्र ही अपना न्यायोचित स्थान प्राप्त करें।' हिंदी का कम्युनिस्ट माफिया शैतान की शक्ति और स्टालिन के फासीवाद का अनुयायी है। उन्होंने हर बार मेरा विरोध किया और इंटरव्यू में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने पर भी एक कम्युनिस्ट प्रोफेसर ने चयन-समिति में कहा कि हम गोयनका को प्रोफेसर नहीं होने देंगे। इस एक कम्युनिस्ट प्रोफेसर की धमकी और हथकंडेबाजी ने चयन-समिति के अन्य सदस्यों को नपुंसक बना दिया और कुलपति ने फिर किसी की नियुक्ति नहीं की। कम्युनिस्ट अपनी योजना में सफल हुए और न्याय का चेहरा अन्याय एवं फासीवाद ने काला कर दिया। कम्युनिस्ट माफिया आज भी ऐसा ही व्यवहार कर रहा है और अभी ऐसे कम्युनिस्ट अध्यापकों को हिंदी विभाग में नियुक्त किया गया है जो सत्ता के मुखबिर रहे हैं, जो अपने दुर्व्यवहारों के कारण बदनाम हैं तथा जिन पर आर्थिक साधनों के दुरूपयोग के आरोप हैं। यह कम्युनिस्टी न्याय है कि जो कम्युनिस्ट राजनीति के खिलाड़ी और भारतीयता के शत्रु हैं, वे ही प्रोफेसर-रीडर बनने के योग्य हैं।

इन सब घटनाओं के बीच प्रेमचंद पर मेरा कार्य निरंतर चलता रहा और आचार्य विष्णुकांत शास्त्री द्वारा उसका किया गया मूल्यांकन भी मुझे तथा हिंदी-संसार को मिलता रहा। यह मेरा सौभाग्य था कि उन्होंने मेरी अन्य दो पुस्तकों पर भी समीक्षात्मक लेख लिखे, बल्कि यह कहना उचित होगा कि उन्हें अपना-आशीर्वाद प्रदान किया। मेरी एक पुस्तक 'प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी' सन् 1986 में छपी थी और उस पर अपना अभिमत देते हुए शास्त्रीजी ने लिखा था, 'फिर डॉ. कमल किशोर गोयनका जैसे शोधक तथ्य-संग्रही और प्रेमचंद के प्रति श्रद्धालु विद्वान की लेखनी से प्रस्तुत प्रेमचंद की जीवनी और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि उसकी विश्वसनीयता में रंचमात्र संदेह नहीं किया जा सकता है। डॉ. गोयनका 'प्रेमचंद विश्वकोश' के प्रथम भाग के रूप में प्रेमचंद की तारीखवार जीवनी प्रस्तुत करने का भगीरथ प्रयास सफलतापूर्वक संपन्न कर चुके थे। हिंदी साहित्य में इस प्रकार की जीवनी के लेखन का सूत्रपात करने का ऐतिहासिक श्रेय डॉ. कमल किशोर गोयनका को ही प्राप्त है। डॉ. गोयनका ने अब प्रेमचंद की संक्षिप्त जीवनी को चित्रात्मक बनाकर प्रस्तुत करने का उपयोगी और स्तुत्य कार्य

किया है।' इसी प्रकार सन् 1988 में मेरी पुस्तक 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (दो भाग) जब भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई तो शास्त्रीजी ने इस पर अपनी विस्तृत टिप्पणी 'शोध-साधना की अद्‌भुत उपलब्धिः प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' शीर्षक से प्रकाशित हुई। शास्त्रीजी ने अपनी टिप्पणी में लिखा, 'ऊंचे लक्ष्य को दृष्टि के सम्मुख रखकर निष्ठापूर्वक की गई शोध-साधना की उपलब्धि कितनी असाधारण एवं अद्‌भुत हो सकती है, इसका उज्ज्वल दृष्टांत है डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा दो खंडों में संपादित 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' xxx इस ऐतिहासिक महत्व की भेंट के लिए निश्चय ही संपूर्ण साहित्य-जगत डॉ. गोयनका का चिर ऋणी रहेगा।' शास्त्रीजी ने अपने इस लेख में एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी किया कि उन्होंने मेरे कम्युनिस्ट आलोचकों के आरोपों का सबल तर्कों से उत्तर दिया। शास्त्रीजी ने लिखा कि गोयनका ने प्रेमचंद की मूर्ति का भंजन नहीं किया, बल्कि उनकी वास्तविक मूर्ति को उजागर किया है तथ गोयनका प्रेमचंद में हिंदू-जीवन-दर्शन का प्रभाव देखते हैं तो क्या गलत करते हैं। प्रेमचंद पर हिंदू-जीवन-दर्शन का प्रभाव था, यह एकदम सत्य है। शास्त्रीजी ने मार्क्सवादियों के उस आरोप का भी उत्तर दिया कि गोयनका प्रेमचदं की मार्क्सवादी छवि से टकराते हैं तो वे ठीक करते हैं, क्योंकि उनके प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने के झूठ का पर्दाफाश करना जरूरी था। 'शास्त्रीजी के इस लेख ने मेरी शक्ति और साहस को बढ़ाया और मुझे लगा कि मार्क्सवादियों के छल-कपट और राजनीतिक स्वार्थों की इस लड़ाई में मैं अकेला नहीं हूं। मेरे साथ जब शास्त्रीजी जैसे सेनापति हैं तो मुझ सिपाही को निर्भय होकर तथ्यों एवं तर्कों की तलवार से इस मार्क्सवादी साजिश और अज्ञान के रावण को नष्ट करके ही दम लेना होगा।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री हिमाचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के राज्यपाल बने तो मन गर्व से भर गया। शास्त्रीजी जैसे सरस्वती-पुरुष, हिंदू संस्कृति के प्रतीक, सौम्य-शांत शालीन एवं निष्कलुष व्यक्तित्व, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कही व्यावहारिक मूर्ति, सत्ता एवं प्रभुता से निर्लिप्ति तथा सबके बनकर चलने वाले व्यक्ति का राज्यपाल बनना भारतीय लोकतंत्र की उच्चता का प्रमाण है। हम सब यह मानते हैं कि राज्यपाल या राष्ट्रपति बनना उनके जीवन का लक्ष्य कभी नहीं रहा, बल्कि आचार्य एवं साहित्यकार के रूप में सरस्वती की साधना में ही वे परमानंद का अनुभव करते हैं, लेकिन वे दायित्व तथा चुनौतियों से पलायन करने वाले व्यक्ति भी नहीं हैं। उन्होंने राज्यपाल का दायित्व स्वीकार किया और अपने कार्यों तथा व्यक्तित्व से यह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने लोकतांत्रिक नियमों का पालन किया और राज्यपाल के पद को गरिमा प्रदान की। वे जब लखनऊ में थे तो शास्त्रीजी ने मेरे कार्यक्रम की अध्यक्षता की और मैंने अपनी कुछ नई पुस्तकें भेंट कीं। मैं तब शास्त्री से अलग मिलना चाहता था, परंतु उनके कार्यालय ने समय नहीं दिया। मैं भी संकोच में था और अग्रिम सूचना नहीं दे पाया था। इसकी जानकारी मैंने उन्हें तब दी जब वे राज्यपाल के पद से मुक्त होकर कोलकाता पहुंचे। शास्त्रीजी का 24 अगस्त, 2004 को उत्तर मिला और उन्होंने लिखा, 'लखनऊ में आपसे भेंट नहीं हो सकी, यह मेरे लिए पीड़ा की बात है। आपने यदि फोन या पत्र लिखकर मिलने का समय निश्चित किया होता तो अवश्य भेंट होती। मैं तो प्रतिदिन मित्रों से मिलता ही रहता था और अब आप जब

कोलकाता पधारें, आपका स्वागत है।' शास्त्रीजी की इस शालीनता, विनम्रता और बड़प्पन के सम्मुख केवल नतमस्तक ही हुआ जा सकता है।

मैं जनवरी, 2004 के आरंभ में अपने अमेरिका-प्रवास के बाद लौटा तो 'दैनिक जागरण' में प्रत्येक रविवार को साहित्य पर लेख लिखता रहा। इन लेखों के विषय साहित्य से संबंधित होते थे और इनमें हिंदी के मार्क्सवादियों के तरह-तरह के चेहरों से भी नकाब को उठाया जाता था। इन्हीं में से कुछ लेख मैंने उन्हें सम्मति के लिए भेजे थे। शास्त्रीजी को ये लेख मिले तो उन्होंने अपने 28 अगस्त, 2004 के पत्र में मुझे लिखा, 'देहली 'जागरण' में प्रकाशित आपके द्वारा प्रेषित आलेख पढ़कर हर्ष से पुलकित हो उठा। आपने इतने अच्छे ढंग से से गलत बातों का खंडन और सही बातों का समर्थन किया है कि देखते ही बनता है। आपने साहित्यिक साम्राज्यवादियों और कलियुगी अवतारों को उनकी वास्तविकता का बोध करा दिया है। यह बात अलग है कि कुछ लोग नासमझी को ही समझदारी माने बैठे हैं, उनका आप कुछ नहीं कर सकते। प्रेमचंद के प्रति आपकी असीम श्रद्धा भी कई आलेखों में प्रकट हुई है। सचमुच 'रंगभूमि' को जलाना कदाचार है और उसे 'बीजेपी की साजिश' बताना नैतिक भ्रष्टाचार है।' इसी प्रकार छोटी खाटू हिंदी पुस्तकालय, छोटी खाटू (नागौर, राजस्थान) ने अभी 30 अक्टूबर, 2004 को मुझे 'दीनदयाल उपाध्याय साहित्य पुरस्कार' दिया तो शास्त्रीजी ने अपने 19 अक्टूबर एवं 9 नवंबर, 2004 के पत्रों में लिखा, 'आदरणीय जगुलजी से यह जानकर आंतरिक प्रसन्नता हुई कि 'छोटी खाटू पुस्तकालय दीनदयाल उपाध्याय साहित्य सम्मान' से विभूषित कर रहा हूं। आपके कार्य सचमुच सरस्वती के भंडार को समृद्ध करने वाले हैं। प्रेमचंद पर जितना विशद एवं मौलिक कार्य आपने किया है, उतना किसी और ने नहीं किया। XXX सच तो यह है कि सम्मानकर्ता पिछड़ गए। आपको काफी पहले यह सम्मान प्राप्त होना चाहिए था।

मैंने आरंभ में कहा था कि आचार्य विष्णुकांत शास्त्रीजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व गंगा की तरह निर्मल, पावन और संस्कृतिमय है और है हिमालय की धवलता, शीतलता, भव्यता और परहितता तथा सागर की अनंत विचार-तरंगें, अथाहत और गंभीरता। हिंदू-संस्कृति की एक अजस्रधारा उनके मानस में प्रवाहित रहती है। वे भारत के ऐसे सरस्वती-पुत्र और संस्कृति-पुरुष हैं जो इधर दुर्लभ हैं। मुझे वे यदि गुरु रूप में मिले होते और मुझे उनका शिष्य होने का सौभाग्य मिलता तो निश्चय ही मैं इतना खोटा सोना नहीं होता, लेकिन ईश्वर की कृपा से मुझे उन जैसे संत का जो भी संसर्ग मिला, उससे मुझे अपने मार्ग पर चलने का बल और विश्वास मिला। मेरे प्रायः प्रत्येक कार्य पर उनकी दृष्टि रही और उचित कार्यों पर वे पीठ थपथपाते रहे। मेरे जीवन में शास्त्रीजी का स्थान है, उसका वर्णन असंभव ही है। बस अंत में मैं यही कह सकता हूं कि यदि मुझे उनका वरदहस्त न मिला होता तो संभवतः मैं मार्क्सवादियों के आरोपों और आक्रमणों के सम्मुख भाग खड़ा होता। आचार्य विष्णुकांत शास्त्रीजी मेरे प्रकाश-स्तंभ ही नहीं शक्ति-स्तंभ भी हैं और मैं इसी प्रकाश तथा शक्ति स्रोत के साथ शेष जीवन जीना चाहता हूं। प्रभु करें, ऐसा ही हो। □

बुलंदशहर : मेरी मातृ-भूमि व संस्कार-भूमि

मेरा जन्म 11 अक्टूबर, 1938 को बुलंदशहर (उत्तर-प्रदेश) के प्रतिष्ठित जमींदार परिवार सेठ बद्रीनाथ गोयनका के परिवार में हुआ था। दादाजी मूलतः मंडावा, शेखावटी, राजस्थान में जन्में थे और वहां से प्रवास करके बुलंदशहर आ गए थे। मंडावा के गोयनकाओं का प्रसिद्ध परिवार है। इसी वंश से रामनाथ गोयनका निकले और दक्षिण भारत में स्थापित हुए और 'इंडियन एक्सप्रेस', 'जन-सत्ता' आदि अखबारों को आरंभ किया औ आपातृकाल में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से टक्कर ली। गोयनका-परिवार के कुछ लोग कोलकाता, मुंबई, के साथ देश के अनेक शहरों में फैल गए और अब उनके पास देश के अनेक औद्योगिक घराने हैं। मेरे दादाजी सेठ बद्रीनाथ गोयनका बुलंदशहर म्युनिसपैलिटी के चेयरमैन थे और अपनी दानी प्रकृति के कारण शहर में बड़े प्रतिष्ठा थी, किंतु उनका छोटी आयु में ही देहांत हो गया और मेरी दादी श्री कुंजकुंवारि गोयनका ने सन् 1916 में बुलंदशहर के शीतलगंज मोहल्ले मे एक लाख रुपये से श्री लक्ष्मी नारायण भगवान का विशाल पत्थर से निर्मित मंदिर बनवाया जो नगर का सबसे सुंदर एवं धार्मिक कार्यों का केंद्र है। मेरे पिताश्री सेठ चंद्रभान गोयनका गांधी के अनुयायी थे और धार्मिक प्रकृति के सीधे सरल मनुष्य थे। उन्होंने गांधी की प्रेरणा से 'शुद्ध खादी भंडार' की स्थापना की जिसके अंतर्गत 500 जुलाहे काम करते थे। मैंने अपनी बाल्यावस्था में खादी के व्यवसाय को देखा था, कैसे बाजार हाट से सूट खरीदा जाता था, कैसे वह रंगा जाता था, कैसे वह जुलाहों को दिया जाता था, कैसे जुलाहे खादी के थान बुनकर लाते थे तथा कैसे उन पर फिनिश होती थी और किस प्रकार वह विभिन्न शहरों के व्यापारियों को भेजा जाता था। यह वह समय था जब बोरियों में भरकर नकद रकम एकत्र होती थी और उसे गिनना भी कठिन होता था। बाद में यह खादी का व्यापार मिल के बने कपड़ों की थोक कोठी में बदल गया और वर्षों चलता रहा, लेकिन मैं तब तक बुलंदशहर के डी.ए. वी. डिग्री कॉलेज से बी.ए. पास कर चुका था। मेरी आंरभिक शिक्षा- कक्षा दो तक ऊपर कोट, बुलंदशहर के म्युनिसपैलिटी के स्कूल में हुई थी। जमीन पर टाट बिछा रहता, तख्ती-कलम दवात से पढ़ाई होती और मास्टरजी के हाथ में बेंत रहती। इसे स्कूल की घंटी कुछ चर्च जैसी बनी थी और मैं सबसे पहले स्कूल पहुंचकर इस बजाने का गौरव हासिल करने के लिए बेचैन रहता। उस समय अपनी कक्षा के सहपाठियों के बीच यह कम सम्मान की बात नहीं थी। तीसरी कक्षा में मुझे

डी.ए.वी. इंटर कॉलेज में दाखिला दिया गया और मुझे याद है कि गिल्ली डंडा, गेंदतड़ी आदि कई तरह के खेल-खेलते और और घर लौटते तो खेतों से मटर, गन्ने आदि तोड़कर उनका स्वाद लेने से न चूकते। पेड़ों पर चढ़ना खेतों के बीच से निकलना, मिट्टी में से आलू-गाजर निकालना ये उस समय मनोरंजन के साधन, थे। मेरे मौहल्ले में दो पीपल के पेड़ थे और अब भी हैं। उस बचपन में बच्चों के बीच चर्चा होती कि इन पर भूत रहते हैं। एक पेड़ तो बीच मौहल्ले में था और दूसरा हमारे मंदिर (श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर) के पीछे की गली में था जिसे भूतों वाली गली के नाम से सारे लोग जानते थे। मैं समझता हूं, मेरी आयु 11-12 वर्ष की रही होगी। कई बार अकेले इन पेड़ों के साये से गुजरना होता था। मौहल्ले के बीच वाले पीपल के पेड़ के नीचे से तो रोज ही निकलना पड़ता था। रात का वख्त हो तो भूत से मुलाकात होने का डर बना ही रहता था और मेरी निगाह डरते हुए उसे ढूंढने, देखने के लिए उत्सुक रहती। हनुमान चालीसा का पाठ करता, लेकिन कभी भूत के दर्शन नहीं हुए, परंतु एक अन्य घटना के बारे में क्या कहूं कि वह भूत नहीं था। बुलंदशहर की तहसील अनूपशहर गंगा के किनारे बसा है और मेरे दादाश्री ने वहां के मानक चौक के पास एक धर्मशाला बनवाई थी। गर्मियों की छुट्टियों में हम अपनी माताश्री के साथ सभी-बहन वहां जाकर रहते थे, गंगा स्नान करते थे, गन्ना चूसते थे और भोर में ही निकलकर गंगा किनारे दौड़ लगाते थे। वहां यह प्रचलित था कि धर्मशाला में भूतों का वास है और जो धर्मशाला का रखवाला था वह इसकी पुष्टि करता था। एक दिन मैं पहली मंजिल के कमरे में लेटा हुआ था कि तभी मैंने देखा कि उसकी खिड़की के बाहर एक स्त्री खड़ी है, सफेद साड़ी पहने है जिस पर लाल रंग की किनारी है। उस स्त्री में अंदर झांकते हुए देखा और वह वहां से हट गई कि मुझे तुरंत यह लगा कि यह भूत तो नहीं है। मैं तत्परता से उठा, दरवाजा खोला और दौड़ते हुए लंबी छत पार करते हुए सीढ़ी से नीचे तक आया, किंतु वह स्त्री मुझे दिखाई नहीं दी। आज अस्सी वर्ष बाद वह दृश्य मेरी आँखों में साकार है और उसका उत्तर नहीं मिला कि वह स्त्री कौन थी और गायब कैसे हो गई? धर्मशाला के रखवाले नत्था के अनुसार वह तो धर्मशाला में रहने वाली भूत ही थी, परंतु साक्षात् देखने के बाद मेरी बुद्धि इसे स्वीकार नहीं करती, वैसे इस धर्मशाला में ठहरने वाले अनेक यात्रियों का ऐसा ही अनुभव था जैसा नत्था ने बताया था।

मेरे बाल-जीवन की कुछ घटनाएं और भी हैं जो मेरी स्मृति में बनी हुई हैं। यह भारत-विभाजन का समय था, पाकिस्तान बनाने का उन्माद चारों ओर छा रहा था। मैं शायद तीसरी कक्षा में रहा होऊंगा। हमारी हवेली से लगभग 3-4 सौ गज की दूरी पर मुसलमानों की सराय थी और उसके पास ही ऊपरकोट का मुसलमानों का मौहल्ला था। शाम होते ही 'अल्ला हो अकबर' के नारे गूंजने लगे तो हमारी हवेली के आसपास के काफी रहने वाले हमारी हवेली में एकत्र होने लगे, क्योंकि उस समय वह सबसे ऊंची, मजबूत और काफी स्थान वाली हवेली थी। इसकी 24 मोटी दीवारें हैं और उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में कभी मेरे दादाजी द्वारा बनवाई गई थी। सारे लोग छत पर इकट्ठे हो गए थे, ईंटें-पत्थर-मिर्च-लाठी-रस्सी आदि को एकत्र किया जा रहा था और सब तनावग्रस्त थे कि यदि मुसलमान गली में आ गए और हमला किया

तो उनसे कैसे बचा जाएगा। मुझे याद है, मैंने एक खंबे में रस्सी बांधी थी और ईंटें रखी थी। खबर फैली थी कि अलीगढ़ से बहुत से मुसलमान आए हैं, किंतु दूसरे दिन तत्कालीन कलेक्टर कैप्टन भगवान सिंह (जो बाद में दिहली नगर निगम के कमिश्नर और फिजी में भारत के राजदूत बने) ने केवल दो सिपाहियों से मुसलमानों के नेता को गिरफ्तार किया और शहर में शांति हुई। मुझे याद नहीं, फिर कभी बुलंदशहर में हिंदू-मुसलमानों में तनाव हुआ हो। एक बार बुलंदशहर में बड़ा भूकंप आया था। मैं मेरा बड़ा भाई नवल बैठक में सोने ही जा रहे थे कि भूकंप आया, हम दोनों भागकर आंगन में आए, देखा छत की बुरजी गिर गई थी और फिर हम तुरंत बाहर निकले और अपने मंदिर की ओर भागे कि उसका गुंबज तो नहीं गिर गया। देखा, कुछ टुकड़ा टूट गया था और दीवार में दरार आ चुकी थी। फिर मौहल्ले में हम कुछ दोस्त मिलकर दूसरों की मदद करने लगे। एक बार काली नदी में बाढ़ आई और भूतेश्वर के इलाके में पानी भर गया। हम कुछ दोस्त कई लोगों को निकालकर आए। दस वर्ष की आयु में शाखा में जाना शुरू हुआ, फिर जनसंघ की ओर से चुनाव में प्रचार भी किया। कॉलेज में बी.ए. करते समय छात्र-यूनियन में सचिव भी बना, हॉकी भी खेली और एक मैच में ढोढ़ी पर हॉकी लगने के बाद खेलना बंद कर दिया। क्रिकेट भी खेली, परंतु ध्यान पढ़ाई में रहा। बी.ए. करते समय छात्रों और अध्यापकों के बीच एक अच्छा स्थान बना, व्यवहार में भी और पढ़ाई में भी। मेरे सहपाठियों में डॉ. महावीर सरन जैन और डॉ. पुष्पपाल सिंह भी रहे जो प्रोफेसर होकर रिटायर हुए।

मैंने इंटरमीडिएट परीक्षा और बी.ए. परीक्षा में अपने कॉलेज में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए जो मेरे लिए प्रेरणा की बात थी। बी.ए. के बाद मैं दिल्ली आ गया, पारिवारिक व्यापार में मेरी कोई रूचि नहीं थी और अब मुझे परिवार के सहयोग के बिना अपना जीवन बनाना था। मैंने दिल्ली में सरकारी नौकरी की, रात्रिकालीन कक्षाओं में एम.ए. (हिंदी) की पढ़ाई की और दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी प्राप्त की और वहीं प्रोफेसर हो गया।

मेरा परिवार जमींदार और व्यापारी परिवार था और बुलंदशहर में केवल चार-पांच परिवार ही मारवाड़ी परिवार थे। मौहल्ले में कुछ बुजुर्ग चौपड़ खेलते थे और ये सभी प्रायः वे थे जो मेरे पिताश्री के मित्र थे और प्रातः मिलकर घूमने जाते थे और परिवार के बाग में निवृत्त आदि होकर लौटते थे। मैंने भी बहुत दिनों तक अपने दोस्तों के साथ सवेरे उठकर नहर तक दौड़ लगाई थी, अखाड़े में पहलवानी की थी और तंदुरूस्ती बनाने की धुन में कई काम किए थे और मौहल्ले के इन बुजुर्गों के साथ चौपड़ भी खेली थी और कौड़ियों को अपने अनुकूल बनाने में सिद्धता प्राप्त कर ली थी। जीवन के ये क्षण बड़े आनंद में बीते, जीवन में आगे संघर्ष करना है, इसका कोई भान नहीं था। कॉलेज में हमारा एक ग्रुप बन गया था। रघुराज सिंह, शिवकुमार कृष्णकुमार आदि इसमें थे और मैं भी इसका सदस्य था। शहर में इनका बड़ा रौब था, किंतु मेरा परिवार इनके साथ मेरा रहना पसंद नहीं करता था। मैं इनके साथ था किंतु अपनी पढ़ाई में पीछे नहीं था। बी.ए. में मुझे अपने कॉलेज में सर्वाधिक अंक मिले, लेकिन लगता है कि यदि अच्छे छात्रों का संग होता था कॉलेज में शिक्षा का वातावरण होता तथा उस

समय शिक्षा के महत्व को समझा गया होता तो निश्चय ही बौद्धिक क्षमता का अधिक विकास होता। संभवतः उस समय छोटे शहरों की यह त्रासदी थी और दिल्ली से 70 किलोमीटर दूर होने पर भी दिल्ली का कोई प्रभाव नहीं था। उस समय घर में मरफी रेडियो था लेकिन फिल्मी गाने सुनने पर प्रतिबंध था। फिल्म देखना तो अपराध ही था। परिवार के साथ 'हर हर महादेव' फिल्म देखी थी और एक फिल्म चोरी-छिपे देखी थी। फिर भी, मैं अपने भाइयों में अकेला ऐसा था जिसने घर के नियम तोड़े, दंड भी पाया, विद्रोह किया, जन्माष्टमी पर मंदिर सजाया तथा रामलीला में व्यवस्था में रहा तथा कुछ शैतानियां भी कीं, पतंगबाजी खूब की, कबूतर तक पाले, अर्थात् माता-पिता तथा बड़े भाई-भाभी को मनाने की कला आ गई थी और मेरा कुछ ऐसा व्यवहार था कि मोहल्ले के बुजुर्ग मुख्तियार साहब, भूदेव शर्मा, बिहारी लाल आदि सभी मुझे बहुत प्रेम करते थे, और 'सेठजी' से संबोधित करते थे। मेरे पिताश्री श्री चंद्रभान गोयनका 'सेठजी' के रूप में जाने जाते थे और उनका पुत्र भी इसी रूप में पहचाने जाते थे। मैं बीस वर्ष का होने से पूर्व जुलाई, 1958 में दिल्ली आ गया था। दिल्ली की चांदनी चौक में मेरी बहन सावित्री देवी रहती थी और उनके पति सत्यनारायण पोद्दार की कटरा हीरालाल, चांदनी चौक में कपड़े की थोक की दुकान थी। मुझे कुछ महीने अपनी बहन के पास रहना पड़ा, उनका सहारा मिला और जिंदगी की कहानी नए सिरे से शुरू हुई।

मेरी उच्च-शिक्षा एम.ए. (हिंदी) दिल्ली विश्वविद्यालय से हुई। मैं डॉ. नगेंद्र, डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. तारकनाथ बाली, डॉ. देवी शंकर अवस्थी, मोहन राकेश, डॉ. ओमप्रकाश, डॉ. सावित्री सिन्हा, डॉ.सत्यदेव चौधरी, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. गोविंदराम शर्मा, डॉ. मनमोहन गौतम आदि प्रोफेसरों का छात्र बना और अनेकों ने प्रभावित किया। इनमें डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. ओमप्रकाश, डॉ. तारकनाथ बाली, डॉ. देवीशंकर अवस्थी आदि के साथ निजी संबंध बने और इन्होंने साहित्य का संस्कार दिया। डॉ. देवीशंकर अवस्थी तो मेरे शोध-निर्देशक थे, किंतु उनकी असमय स्कूटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई। एक योग्य शिक्षक मेरे जीवन में आते-आते इस संसार से चला गया। डॉ. नगेंद्र का बड़ा प्रताप था, छात्र-अध्यापक सभी उनसे डरते थे, किंतु मेरे प्रति वे नम्र थे और उन्होंने ही मुझे प्रेमचंद पर पी-एच.डी. करने के लिए विषय स्वीकृत किया। डॉ. नगेंद्र विद्वान थे, रिसर्च को महत्व देते थे और अपने छात्रों को प्राथमिकता देते थे। कश्मीर विश्वविद्यालय के इंटरव्यू में उन्होंने जब कुलपति से कहा कि गोयनका मेरा छात्र है और मुझे उससे कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है तो मुझे याद है, मेरा सीना फूल गया था और उनका शिष्य होने का गर्व अनुभव हुआ था। प्रेमचंद पर पी-एच.डी करने के साथ डी.लिट् भी मैंने प्रेमचंद पर ही की थी और तब तक देश-विदेश में 'प्रेमचंद-विशेषज्ञ' के रूप में मेरी ख्याति हो चुकी थी। संभवतः यही कारण था कि डी.लिट्. की मौखिक परीक्षा में आए प्रोफेसरों ने प्रेमचंद पर कोई प्रश्न नहीं पूछा और डिग्री देने की अनुशंसा कर दी इस प्रकार मैं भारत का एकमात्र ऐसा शोधार्थी बना जिसने पी-एच.डी. और डी.लिट् की डिग्री प्रेमचंद पर शोध-प्रबंध लिखकर प्राप्त की।

साहित्यकार, संगीतकार, कलाकार आदि कोई भी हो, उसके जन्म और बचपन से ही कुछ संकेत मिलने लगते हैं। मेरे पिताश्री का एक पुस्तकालय था जो हमारे मंदिर की पहली मंजिल में स्थित था। उस अधिकांश जमींदारों तथा धनी व्यक्तियों ने पुस्तकालय खोले थे और वे पूरे शहर के पाठकों तथा ज्ञान-जिज्ञासुओं के केंद्र थे। मेरा पहला परिचय पुस्तक से मेरी माताश्री ने कराया जब उन्होंने मेरे हाथ में 'गीता' सौंपी और उसका नियमित पाठ करने का आदेश दिया। मैं 'गीता' का नियमित पाठ करता और उसके आरंभिक अध्याय मुझे कंठस्थ हो गए। इसके बाद मैंने पारिवारिक पुस्तकालय जाना शुरू किया जो सार्वजनिक बन गया था। 'कल्याण' के अंक पढ़े, हिंदी की पत्रिकाएं- 'चांद', 'माधुरी,' 'सुधा', विश्वमित्र', 'हंस', 'मर्यादा' आदि पढ़ीं, उपन्यास-नाटक भी पढ़े और वेद, पुराणों के भी दर्शन किए। पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों के प्रति इस आकर्षण और लगाव ने निश्चय ही मेरे मन में साहित्य के प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न किया और घर-मोहल्ला-मित्रों-स्कूल के अलावा भी एक बड़ी दुनिया है, इसका मुझे ज्ञान हुआ। प्रेमचंद की कहानियां भी मैंने इसी समय में पढ़ी, किंतु बी.ए. में साहित्य विषय लेने पर मन पर जयशंकर प्रसाद की काव्य-कृतियों का गहरा प्रभाव पड़ा। 'आँसू' काव्य के अनेक पद मुझे कंठस्थ थे और वे मर्म को छूते थे। इसका कारण यही था कि 'आँसू' यौवन काल की कविता है और प्रेमिका से वियोग में लिखी गई मार्मिक अभिव्यक्ति है। इसी कारण मैं कॉलेज में आयोजित 'कवि गोष्ठी' में जयशंकर प्रसाद बना था और 'आँसू' के कुछ पदों का पाठ किया था। प्रसाद के प्रति मेरा यह प्रेम एम.ए. तक तो रहा जब मैंने प्रसाद को विशेष अध्ययन के लिए चुना, परंतु डॉ. नगेंद्र के आदेश ने मुझे प्रेमचंद के प्रति मोड़ दिया और आज सोचता हूं, यही सही हुआ, क्योंकि डॉ. नगेंद्र ने वही किया जो नियति कराना चाहती थी। दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के दौरान 'रामधारी सिंह दिनकर', मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामसिंह तोमर, जैनेंद्र, इंद्रनाथ मदान, अश्क और न जाने कितने प्रतिष्ठित साहित्यकारों से मिलने का अवसर मिला, उनका प्रेम और आशीर्वाद मिला और साहित्य की समझ का भी विकास हुआ। मैं तो एक छोटे शहर से दिल्ली आया था और वाराणसी, इलाहाबाद उस समय साहित्य के केंद्र थे, किंतु डॉ. नगेंद्र ने कुछ साधक-समर्पित छात्रों का निर्माण किया और उन्होंने अपने-अपने छात्रों में यश प्राप्त किया, लेकिन जिन व्यक्तियों की उन्होंने दिल्ली में नियुक्तियां कीं, वे न तो उन जैसी प्रतिभा के धनी थे और न वे उनके प्रति कृतज्ञता का भाव ही रखते थे। जो लोग चापलूसी से वहां तक पहुंचे थे, उन्हें साहित्य के इतिहास में कोई नहीं जानता।

□

प्रेमचंद पर काम करते हुए जीना चाहता हूं...

मैं 11 अक्टूबर, 2018 को अस्सी वर्ष का हो गया। कितनी जल्दी, देखते-देखते अस्सी वर्ष का हो गया। विश्वास नहीं होता पर मेरा शरीर, मेरे मित्र, परिवार तथा समाज सभी याद दिलाते रहे हैं कि अस्सी हो गए हो, ध्यान से रहो और ध्यान से चलो और सब काम-धाम छोड़कर भगवान का भजन करो। मैं प्रातः हर दो-चार दिन में इसे सुनता रहता हूं और फिर अपने काम पर लग जाता हूं। आखिर इस उम्र में कोई काम न हो तो जिंदगी कटे कैसे। सच यह है कि जिंदगी जो भी बची है, उसे सो कर, टेलीविजन देखकर, मोबाइल में डूबकर और परनिंदा में आनंद लेकर काटना नहीं चाहता। जानता हूं कि एक जिंदगी में किसी से काम पूरे नहीं होते, पर यह तो मुमकिन है कि जो भी सांसें बची हैं उनका उपयोग निर्द्वंद्व होकर, निर्भय होकर पूरी मस्ती के साथ किया जाए और जो काम अधूरे हैं और जो शुरू करने के इंतजार में हैं, उन्हें पूरी लगन से किया जाए। मुझे तो यही जीवन-मंत्र सही लगता है। क्या यह बेहतर है कि आदमी मृत्यु के इंतजार में बैठा रहे या बेहतर है कि मृत्यु आए और आपको मालूम ही न पड़े कि वह कब आई और कब आपको ले गई?

कुछ समय पहले एक किताब आई थी- 'अस्सी का काशी' उसकी खूब चर्चा हुई। होती क्यों नहीं अस्सी तक पहुंचना एवरेस्ट की चढ़ाई से भी कठिन काम है और वह भी आपके हाथ में नहीं है, अन्यथा कौन नहीं चाहता कि वह अस्सी पार करे। यह परम परमात्मा की कृपा है जो अस्सी पार करने का सौभाग्य देता है। काशीनाथ सिंह सौभाग्यशाली हैं और रामदरश मिश्र, नामवर सिंह भी भाग्यशाली हैं जो नब्बे को पार करके सौ तक पहुंचने के लिए दौड़ लगा रहे हैं। वे सौ तक पहुंचेंगे तो कुछ अन्यों को भी इससे प्रेरणा मिलेगी और हिंदी साहित्य में सौ वर्षीय लेखकों की एक अलग दुनिया बन जाएगी। यदि मैं उस दुनिया का सदस्य बन सका तो भाग्यशाली होऊंगा। सच तो यह है- गालिब के शब्दों में-*'मौत का एक दिन मुअय्यन है, पर क्यों रात भर नींद नहीं आती।'* नींद नहीं आती तो अपने काम पर बैठ जाता हूं और तब न नींद की याद रहती है न मौत। और यही जीवन का आनंद है।

मुझे आत्म-कथ्य लिखना है। मैं व्यर्थ में बह रहा हूं। मेरा जन्म 11 अक्टूबर, 1938 को बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। मेरे दादाश्री बद्रीदास गोयनका मंडावा (राजस्थान) से आकर बुलंदशहर में स्थापित हो गए थे। मेरा जन्म लगभग सौ वर्ष पुरानी हवेली में हुआ। परिवार में जमींदारी थी और नगर में प्रतिष्ठा थी। मेरी दादी श्री कुंजिकुंवरि गोयनका ने मेरे

दादाश्री की असमय मृत्यु पर सन् 1916 में मोहल्ला शीतलगंज, बुलदंशहर में एक भव्य श्री लक्ष्मीनारायण का मंदिर उनकी आत्मा की शांति के लिए बनवाया था। उस समय राजा लक्ष्मण सिंह जिन्होंने 'मेघदूत' का अनुवाद किया था, बुलंदशहर के कलेक्टर थे और मेरे दादाश्री के उनसे अच्छे संबंध थे। वे बुलंदशहर म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष भी रहे थे। मेरे पिताश्री चंद्रभान गोयनका कांग्रेसी थे, जीवन-पर्यंत खद्दर पहनते रहे और 'शुद्ध खादी भंडार' की स्थापना की और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मेरठ के बाद बुलंदशहर को खादी के उत्पादन का केंद्र बनाया। मेरी माताश्री इलायची देवी गोयनका पटना की कनोडिया परिवार की थीं। स्वाभिमानी थीं, धार्मिक स्वाभाव की थीं और बचपन में 'श्रीभगवतगीता', 'रामचरितमानस', 'हनुमान चालीसा' का नियमित पाठ करने की आदत डाल दी। मंदिर में 'जानकी पुस्तकालय' था और उसमें 'चाँद', 'माधुरी', 'हंस', 'सरस्वती' आदि पत्रिकाएं आती थीं और प्रेमचंद आदि की पुस्तकें भी आती रहती थीं। इस पुस्तकालय ने मेरे अंदर साहित्य के प्रति अभिरुचि पैदा की और बी.ए. करने तक मैं साहित्य का विद्यार्थी बन चुका था। मैंने बी.ए. में एक बार जयशंकर प्रसाद की 'आँसू' के पदों का गायन किया था और बच्चन, नीरज आदि की कविताएं सुनकर यह संस्कार और भी पुष्ट होता गया। बुलंदशहर के डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज से सन् 1958 में बी.ए. किया तो आगे क्या करना है, यह समस्या आई। मैं एम.ए. करके हिंदी का प्रोफेसर बनना चाहता था, पर घर तो व्यापार की ओर धकेल रहा था। फैसला कठिन था लेकिन मैंने दिल्ली जाने का निर्णय किया। कुछ समय के लिए मेरी बहन सावित्री पोद्दार की ससुराल में ठहरने का अवसर मिला तो मैंने नब्बे रुपए महीने की नौकरी की, ईवनिंग से एम.ए. प्रथम श्रेणी में किया और सितंबर, 1962 में दो सौ रुपए महीने में दिल्ली कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय, इसका नाम अब 'जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज' है) में हिंदी का लेक्चरर हो गया। मेरे जीवन के ये चार वर्ष पूर्णतः संघर्ष-काल था। दिल में धैर्य था, हिम्मत थी, असुविधाओं के बीच रहने की आदत बना ली थी और बस एक ही लक्ष्य था- दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापक होना है। वह जमाना डॉ. नगेंद्र का था। वे प्रतीक-पुरुष थे। उनका व्यक्तित्व मोहक था और प्रेरक भी। डॉ. नगेंद्र की राह ही मुझे अपने मन की राह लगी। व्यापार की राह भी अपनी ओर खींच रही थी, शादी के लिए तीन मिलों के मालिक बनने का प्रस्ताव भी आया लेकिन मैं तो साहित्य-पथ की सचहरी की तलाश में था और वह पूरी हुई। मेरी पत्नी कुसुम गोयनका साहित्य की छात्रा रही और जिसने आगे चलकर बच्चों के लिए कहानियां लिखीं। आज भी वह मुझसे अधिक साहित्य पढ़ती हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज में हिंदी का अध्यापक होने से मेरे जीवन की दशा तय हो गई। तभी विवाह हुआ और पी.एच.डी. का विषय भी तय हुआ। डॉ. नगेंद्र के आदेश पर प्रेमचंद पर पी-एच.डी. की। आठ वर्ष लगे और वर्ष 1972 में पी-एच.डी. मिलने की घोषणा हुई। सवाल पैदा हुआ कि अब क्या करना है? पी-एच.डी. के बाद क्या? और एक रात विचार-प्रवाह में 'प्रेमचंद विश्वकोश' के चार खंडों की कल्पना पैदा हुई। शायद इसे ही लोग इल्हाम कहते हैं, पर कुछ भी हो इल्हाम तो मानवीय शरीर के तंतुओं से ही होता है। आदमी

स्वयं को गौरवान्वित करने के लिए इल्हाम का दर्जा दे देता है। उस सयम हिंदी के प्रसिद्ध लेखक गंगाप्रसाद विमल मेरे साथी थे और वे मेरे आग्रह पर प्रेमचंद के बड़े बेटे श्रीपतराय से मिलाने ले गए। मैंने प्रेमचंद पर अपनी योजना रखी और वे सहयोग के लिए तैयार हो गए। मैंने विमल के साथ 'प्रेमचंद विश्वकोश' का काम शुरू किया पर वर्ष 1972-73 के एक 'प्रगतिशील लेखक संघ' के सम्मेलन में नए बने युवा कामरेड सुधीश पचौरी ने एक हिंदूवादी तथा प्रतिक्रियावादी लेखक को सहयोग देने पर गंगाप्रसाद विमल को पार्टी से निकालने का प्रस्ताव किया। इस पर विमल ने मेरा साथ छोड़ दिया। मैं हतप्रभ था, क्योंकि मुझे तब इस घटना की जानकारी नहीं थी। बाद में मैंने 'आलोचना' पढ़ी तो उसमें उसका पूरा विवरण छपा मिला। उसके बाद प्रगतिशील लेखकों ने मुझे अपना शत्रु मान लिया। मलयज ने वर्ष 1979 की डायरी में प्रेमचंद पर मेरे नए-नए शोध-निष्कर्षों में आर.एस.एस से मेरे संबंधों को दोषी ठहरा दिया और उसके बाद यह सिलसिला नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र, मधुरेश, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, कमर रईस आदि कई वामपंथियों से गुजरता हुआ आज भी थोड़ी-बहुत सांसें ले रहा है।

प्रेमचंद पर मेरा शोध -ग्रंथ छप गया था, पर उसके बाद 'कादंबिनी', 'सारिका', 'धर्मयुग' आदि में मेरे लेख छपने लगे तो मार्क्सवादियों की टोली इकट्ठा होने लगी और मैं उनका घोषित शुत्र बन गया। तभी प्रेमचंद की जन्म-शताब्दी पर मैंने 'प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति' बनाई। जैनेंद्रजी उसके अध्यक्ष बने और उनके प्रस्ताव पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी संरक्षक और मैं महामंत्री। इससे महादेवी वर्मा, उमाशंकर जोशी, वेदप्रताप वैदिक, विजयेंद्र स्नातक, नगेंद्र आदि भी जुड़े पर अफसोस है कि मुझे केवल विजयेंद्र स्नातक आदि का ही सहयोग मिला। जैनेंद्रजी को उनके कुछ पुराने मित्रों ने ऐसा भड़काया कि वे सहयोग देने में आनाकानी करने लगे। वे मुझे इंदिरा गांधी से मिलते समय अपने साथ नहीं ले गए और श्रीमती गांधी से सहयोग भी नहीं मांगा। यहां तक कि कनॉट प्लेस में एक बिल्डिंग का केंद्रीय सरकार ने प्रेमचंद समिति को अलॉटमेंट भी कर दिया लेकिन उसका कब्जा भी नहीं लेने दिया। उनके इस व्यवहार के कारण 'प्रेमचंद अकादमी' तथा 'प्रेमचंद संग्रहालय' की स्थापना और 'प्रेमचंद' शीर्षक पत्रिका शुरू करने का स्वप्न धरा रह गया। वेदप्रताप वैदिक ने जैनेंद्रजी को बहुत समझाया पर वे मेरे संबंध में अपनी राय न बदल सके। मेरे जीवन का यह खेदजनक प्रसंग है।

प्रेमचंद-शताब्दी पर एक कार्यक्रम फिक्की, नई दिल्ली में हुआ। अमृतराय ने 'प्रेमचंद विश्वकोश' का लोकार्पण किया और वामपंथियों के घोर विरोध के बावजूद लगभग तीस हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों, आलोचकों तथा प्रोफेसरों ने मुझे 'प्रेमचंद विशेषज्ञ' के रूप में स्थापित कर दिया। प्रेमचंद-शताब्दी पर मैंने अपने कार्य का विस्तार किया लगभग चालीस पत्रिकाओं के प्रेमचंद विशेषांक निकलवाए, साहित्य अकादेमी दिल्ली के प्रांगण में 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' लगाई, दूरदर्शन के लिए प्रेमचंद पर वृत्त-चित्र बनाया तथा देश-विदेश में प्रेमचंद समारोह कराए और स्वयं भी भाग लिया। मॉरीशस में मेरे प्रस्ताव पर वहां की 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने अगस्त-सितंबर, 1980 में 'प्रेमचंद शताब्दी समारोह' किया और भारत सरकार ने मुझे तथा जैनेंद्रजी को भारत का प्रतिनिधि बनाकर भेजा और तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर

रामगुलाम ने मेरे द्वारा आयोजित 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' का उद्घाटन किया और मॉरीशस के कई स्थानों पर कार्यक्रम हुए।

प्रेमचंद पर मेरा काम कभी बंद नहीं हुआ। रात-दिन लाइब्रेरी में खाक छानकर तथा सैकड़ों पत्र लिखकर तथा दर-दर खोजता हुआ प्रेमचंद का लगभग 1400 पृष्ठों का अज्ञात-अप्राप्य साहित्य खोजा और 1988 में भारतीय ज्ञानपीठ ने 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (दो खंड) शीर्षक से प्रकाशित किया। इसके प्रकाशन को राजेंद्र यादव तक ने 'हंस' में इस कार्य को उच्चकोटि का शोधकर्म माना और सुधीश पचौरी तक ने 'नवभारत टाइम्स' में लंबा लेख लिखा, परंतु नामवर सिंह ने मुंह से तारीफ तो की पर लिखा एक शब्द नहीं अब बाद में तो वे मारवाड़ी सेठ कहकर मजाक उड़ाते रहे। वामपंथी आलोचक पार्टी के उदेश्यों-आदेशों की जंजीर में बंधे गुलाम होते हैं जिनका स्वविवेक खत्म हो जाता है। इसके बाद तो मेरी प्रेमचंद पर बराबर किताबें आती रहीं, वामपंथी विरोध करते रहे लेकिन प्रशंसा एवं समर्थन के आलोचकों-पाठकों का एक बड़ा राष्ट्रव्यापी समूह सामने आया जिसने प्रगतिशीलों का स्वर मध्यम होता गया और अब वे पराजित होकर मौन धारण करने लगे हैं। प्रेमचंद ने लिखा था कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है, इन वामपंथियों ने राजनीति को साहित्य के आगे बैठा दिया; प्रेमचंद ने साहित्य से 'भारतीय आत्मा' की रक्षा की बात कही थी; इन वामपंथियों ने मार्क्सवाद की रक्षा एवं 'विचार का साम्राज्य' फैलाने तक सीमित करके भयंकर अपराध किया। यहां तक कि प्रेमचंद के 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' से 'आदर्शवाद' को निकालकर आधे प्रेमचंद का बहिष्कार कर दिया और उन्हें कपोल-कल्पना करने का अपराधी बना दिया। इन वामपंथी लेखकों-आलोचकों ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' में प्रेमचंद के दिए व्याख्यान तक के संबंध में झूठ बोला। डॉ. रामविलास शर्मा से लेकर प्रायः सभी वामपंथियों ने लिखा कि प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की थी। स्थापना तो लंदन में सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनंद आदि युवकों ने की थी जो उच्च परिवारों- नवाबों के बेटे थे और जो लंदन उच्च-शिक्षा के लिए गए थे। इनमें सज्जाद जहीर नवाब के बेटे थे और वे केवल उर्दू और प्रेमचंद को ही जानते थे। उनमें कोई भी हिंदी का ज्ञाता नहीं था। इसके साथ प्रेमचंद के व्याख्यान में एक शब्द भी मार्क्सवाद के समर्थन में नहीं है। प्रेमचंद बार-बार आध्यात्मिक आनंद, आध्यात्मिक संतोष आदि की चर्चा करते हैं और 'मन का संस्कार' करना साहित्य का उद्देश्य बताते हैं। अफसोस है, किसी आलोचक ने इस व्याख्यान को नहीं पढ़ा अन्यथा बहुत पहले वामपंथियों की साजिश स्पष्ट हो जाती। वामपंथी अपने को प्रेमचंद का वारिस बताते हैं और प्रेमचंद के दावेदार बनते हैं, लेकिन ये वे लोग हैं, जिन्होंने प्रेमचंद का बड़ा अहित किया, उनकी साहित्य-मूर्ति को छोटा कर दिया और पार्टी के कटघरे में बंद करके उनका अंग-भंग कर दिया। अब मेरी लगभग 30 पुस्तकों और सैकड़ों लेखों ने इस बंदी प्रेमचंद को मुक्तकर दिया है और वे अब व्यापक भारतीयता के कालजयी लेखक हैं। प्रेमचंद अपनी विजय-यात्रा पर निकल चुके हैं और भारतीय जीवन के लगभग तीन हजार पात्रों के द्वारा मानवीय यातना और मुक्ति की महागाथा रचकर सदैव के लिए भारतीय मन में स्थापित हो चुके हैं।

प्रेमचंद के चार दशकों की यात्रा में मैंने कई बार अपमान, आरोप, धमकी, बहिष्कार आदि सहा है, परंतु मैं आहत तो हुआ पर टूटा नहीं। राम विरथी होकर रावण रथी का मुकाबला कर रहे थे। मेरे सामने डॉ. नामवर सिंह, मलयज, शिवकुमार मिश्र जैसे महान आलोचक थे। इनके सामने मेरी हैसियत क्या थी? पर शोध की सत्यता एवं दस्तावेजों की प्रामाणिकता तथा वामपंथियों के भ्रमजाल को तोड़ने के संकल्प और भारतीय की ताकत ने मुझे लड़ने के लिए उद्यत किया और अंत में लगा कि सत्य की जीत हुई और जीवन सार्थक हुआ। हिंदी की आलोचना तथा शोध की दुनिया में ऐसा साहित्यिक युद्ध पहली बार लड़ा गया था और अंत में झूठ को तथा मिथ्या धारणाओं को पराजित होना ही था।

मैं प्रेमचंद पर नहीं रूका। मैंने प्रवासी-विमर्श शुरू किया और अब तक मेरी 12 पुस्तकें प्रवासी साहित्य पर हैं। अभिमन्यु अनत से अपने चालीस वर्ष के संबंधों में मैंने अनत की पांडुलिपियों का शोधन किया, भूमिका लिखीं, उन्हें प्रकाशित कराया, साहित्य अकादेमी की मानद सदस्यता दिलवाई और भारत में अनेक कार्यक्रम कराए। मॉरीशस तथा अन्य देशों के अनेक लेखकों को प्रकाशक उपलब्ध कराए और उनकी पुस्तकों की भूमिकाएं लिखीं। लघुकथा के आंदोलन को सहयोग दिया और उसकी दो पुस्तकें छपाईं बालशौरि रेड्डी, मंजुल भगत, रवींद्रनाथ त्यागी रचनावलियों का संपादन किया और प्रकाशित कराई। इंटरव्यू विधा में बच्चन, अभिमन्यु अनत तथा दिनेशनंदिनी डालमिया पर अलग-अलग पुस्तकें आईं। महात्मा गांधी पर मेरी पुस्तकें प्रकशित हुईं- 'गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान' तथा 'गांधी : भू-लिपि विचार-कोश।' केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष के रूप में जो कार्य किया है उसकी तो अलग कहानी है।

आज अस्सी वर्ष का होने पर यह विचार आता है कि मैंने जो आज शताब्दी में किया और परिवार से भिन्न रास्ता अपनाया तो उसकी क्या सार्थकता है? सार्थकता का प्रश्न व्यक्ति के लिए तभी तक है जब तक वह जीवित है, अन्यथा मृत्यु के बाद तो उसकी सार्थकता समय और समाज तय करता है। साहित्य में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास आदि कुछ ही साहित्यकारों की सार्थकता कालजयी होती है, अन्यथा साहित्यकार के जाने के साथ ही उसकी सार्थकता भी अदृश्य होने लगती है। आज जैनेंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, चतुरसेन शास्त्री, नरेश मेहता, शिवप्रसाद सिंह जैसे अनेक साहित्यकार हमारी स्मृति से लुप्त होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में मेरी कोई कालजयी सार्थकता नहीं हो सकती और सोचता हूं, जब तक प्रेमचंद की सार्थकता रहेगी तब तक संभवतः मेरी कोई उपयोगिता बनी रहेगी। विष्णु प्रभाकर तथा मधुरेश ने मुझे 'प्रेमचंद के गोयनका' कहा था और डॉ. चंद्रकांत वांदिवडेकर ने 'प्रेमचंद का बॉसवेल' कहा और शुरू के दिनों में मेरे घर के कुछ लोगों की निगाह में मैं 'मास्टर' था, तथा आज मैं उनकी दृष्टि में परिवार का महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गया हूं तो मुझे लगता है कि मेरी साहित्य-यात्रा की कुछ-न-कुछ तो सार्थकता है ही। मैं आज भी प्रेमचंद के साहित्य के मूल पाठ और प्रथम संस्करणों को पुनः प्रकाशन और 'प्रेमचंद विश्वकोश' को पांच खंडों के प्रकाशन में लगा हूं। प्रेमचंद मूल रूप से आने वाली पीढ़ियों को उपलब्ध हों और भारतीय आत्मा के कथाकार के

रूप में जाने-पहचाने जाएं और जो कुछ छूट गया है उसे खोजा जाए तो इस कार्य को करने के लिए स्वयं को धन्य समझता हूं और इसे सरस्वती की कृपा मानता हूं। औरों की तरह मैं भी सौ वर्ष जीना चाहता हूं पर प्रेमचंद पर काम करते ही जीना चाहता हूं। मेरा कितना जीवन है, ईश्वर ही जानता है, जितना भी है, वह साहित्य-कर्म को अर्पित है। एक लेखक के अध्ययन-अनुसंधान के लिए एक जीवन देना पागलपन ही कहा जाएगा, पर मैं विवश था और हूं कि मुझे प्रेमचंद के अलावा कुछ सूझता ही नहीं। हिंदी के मठाधीशों ने साहित्य और उसके अध्ययन को धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा आदि में बांटकर बड़ा अपराध किया है। हमें इन संकीर्णताओं से साहित्य को मुक्त कराना होगा। और अंत में देश-विदेश के असंख्य व्यक्तियों का मुझे प्रेम और आशीर्वाद मिला, मैं उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

□

मूल्यांकन

- ज्ञानचंद जैन
- मंगलमूर्ति
- सभापति मिश्र
- व्यासमणि त्रिपाठी
- कमलेश भट्ट कमल
- नवीन नंदवाना
- ए. अच्युतन
- आदर्श मिश्र
- विनय षडंगी राजाराम
- कृष्ण वीर सिंह सिरकवार

हिंदी के माहिर-ए-प्रेमचंद (प्रेमचंद विशेषज्ञ) डॉ. गोयनका

ज्ञानचंद जैन

अनुवादक : जावेद आलम

उर्दू मे प्रेमचंद विशेषज्ञ एक हाथ की उगलियों पर गिने जा सकते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने प्रेमचंद के किसी विशेष पक्ष का अध्ययन किया है! लेकिन जिस प्रकार मौलाना इम्तियाज अली खां अर्शी और मलिक राम माहिर-ए-गालिबियात हैं, उर्दू में कोई ऐसा माहिर-ए-प्रेमचंद नहीं जिसने प्रेमचंद के जीवन और उनकी संपूर्ण रचनाओं का गहन अध्ययन किया हो! जिसने सिर्फ प्रेमचंद को अपना ओढ़ना बिछौना बना लिया हो! हिंदी में इस प्रकार का एक नौजवान स्कॉलर है जिसके नाम और काम को उर्दू वालों से परिचित कराना चाहता हूं।

ये साहब डॉ. कमल किशोर गोयनका है! देश एक गोयनका से परिचित है जो मशहूर उद्योगपति हैं और 'इंडियन एक्सप्रेस' के मालिक हैं! कमल किशोर भी उन्हीं की तरह मारवाड़ी हैं, लेकिन यूपी के इन सेठ की गोयनका से उनकी पूर्वजों की रिश्तेदारी रही है। यूपी वालों में 'अग्रवालों' का एक गोत्र 'गोयल' होता है (जो मेरा भी है), राजस्थान में इसी को गोयनका कहते हैं! कमल किशोर 11 अक्तूबर, 1938 को बुलंशहर में पैदा हुए लेकिन दादाश्री मंडावा (शेखावाटी, राजस्थान) से आकर इस शहर में बस गए थे। 1961 में दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम.ए. हिंदी में पास किया और 1972 में दिल्ली विश्वविद्यालय ही से प्रेमचंद पर पी-एच.डी. की। विषय था 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान'! यह शोध-प्रबंध दो वर्ष बाद प्रकाशित हुआ! गोयनका दिल्ली कॉलेज (जाकिर हुसैन कॉलेज सांध्य) के हिंदी विभाग में अध्यापक हैं, उन्हें उर्दू में ज्यादा दक्षता प्राप्त नहीं लेकिन जब भाषण देते हैं तो उनकी भाषा बिलकुल उर्दू होती है और रवानी से तकरीर करते हैं।

कलाकार का अर्थ यह समझा जाता है कि जो कम से कम के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानता हो, गोयनका साहब ने अपने अध्ययन को प्रेमचंद तक सीमित कर रखा है। प्रेमचंद से संबंधित उनके कार्यों का विवरण निम्नलिखित है!

1. **प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान**-सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1974, मूल्य 50 रुपये

प्रेमचंद के उपन्यासों की तकनीक पर यह पहला शोध-प्रबंध है! इसमें उपन्यासों के विभिन्न पक्षों, उदाहरणार्थ प्रकाशन की तारीखों पर भी बहस की गई है! यह बेहद महत्वपूर्ण काम है और देश के 15 विश्वविद्यालयों के पाठयक्रम में शामिल है!

2. **प्रेमचंद :** हिंद पॉकेट बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, 1980 पृ. 198 मूल्य 5 रुपये यह पुस्तक प्रेमचंद-शताब्दी पर आम पाठक के लिए तैयार की गई है। इसमें उनकी संक्षिप जीवनी, विचार, साहित्य और महत्वपूर्ण रचनाओं का निचोड़ और साहित्यिक प्रवृत्तियों पर सात निबंध है!

3. प्रेमचंद कुछ सस्मरणः शाहदरा दिल्ली, 1980, मूल्य 25 रुपये,

इसमें हिंदी-उर्दू अदीबों की प्रेमचंद से संबंधित स्मृतियां एकत्रित की गई हैं! यह स्मृतियां आम तौर पर नजरों से ओझल हो गई थीं, लिखने वालों में रशीद अहमद सिद्दीकी का लेख भी शामिल है। हिंदी मे यह किताब बहुत मशहूर हुई और एक साल मे एक हजार कॉपियां निकल गईं।

4. प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी : पूर्वोदय प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, 1980, पृ. 120, मूल्य 35 रुपये।

इस किताब में 'शतरंज के खिलाड़ी' की मूल पांडुलिपि का फोटो छापा गया है और उर्दू-हिंदी संस्करण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों में बहुत अंतर है हिंदी प्रारूप तथा हिंदी मुद्रित मूल लेख में भी असहमतियां हैं, प्रेमचंद पर संपादित पाठ का यह पहला काम है। डॉ. गोयनका स्वीकार करते हैं कि लखनवी माहौल, हिंदी की तुलना में उर्दू में ज्यादा बेहतर तरीके से पैदा हो गया है।

इस किताब की प्रेरणा पश्चिमी जर्मनी के प्रोफेसर लोठार लुत्से ने दी। इसे प्रकाशित करने के लिये उन्होंने सात हजार रुपये भी दिए। इसमे उनका एक लेख और गोयनका के 13 लेख शामिल हैं। लुत्से ने आग्रह किया कि संपादकों में ऊपर गोयनका का नाम और उसके नीचे उनका नाम लिखा जाएगा। यह पुस्तिका प्रेमचंद शताब्दी पर हिंदुस्तान और जर्मनी की एक संयुक्त श्रद्धांजलि है।

5. 'प्रेमचंद विश्वकोश'(इनसाइक्लोपीडिया) प्रभात प्रकाशन, 205- चावड़ी बाजार, दिल्ली, 1981, यह पांच खंडों की परियोजना है, दो खंड प्रकाशित हो गए हैं। पहले खंड मे 408 पृष्ठ हैं, मूल्य, 125 रुपये है!

इसमे प्रेमचंद की जीवनी ताजी खबार दी गई है, सौ फोटो हैं जिन में कई दस्तावेजों की प्रतिलिपियां भी हैं। इसमे प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू रचनाएं भी शामिल हैं। इस जीवनी से प्रेमचंद की जिंदगी से संबंधित कुछ नए पहलू सामने आते हैं! जिसमें उनका आर्थिक जीवन, यात्रओं का विस्तार, उनके अध्ययन में शामिल कुछ महत्वपूर्ण किताबें, हिंदी-उर्दू के उनके कलमकार दोस्त, रोजमर्रा के प्रयोग की चीजें और प्रकाशकों से प्राप्त हुई रॉयल्टी आदि का पूरा विवरण दिया गया है।

दूसरे खंड में 523 पृष्ठ हैं- कीमत 175 रुपये है। यह खंड साहित्यिक रचनाओं से संबंधित है! इसमें उनकी संपूर्ण उर्दू-हिंदी रचनाओं का क्रमानुसार बयान है। हिंदी-उर्दू की किताबों के पहले संस्करणों की प्रतिलिपियां, हिंदुस्तानी और विदेशी भाषाओं में उनके अनुवादों

की विषयानुसार सूची, हिंदी तथा उर्दू रचनाओं की अलग अलग सूची, अनुवादकों के फोटो और लगभग सौ ब्लॉक हैं!

6. 'रंगभूमि : नए आयाम' नवचेतना प्रकाशन, पहाड़गंज, नई दिल्ली, 1981 पृष्ठ 158, मूल्य 40 रुपये।

यह किताब रंगभूमि पर एक शोध-प्रबंध है! उर्दू मे बहस चली है कि 'गोदान' की तरह 'रंगभूमि' को भी प्रेमचंद ने पहले हिंदी मे लिखा और फिर उर्दू अनुवाद कराया। हकीकत यह है कि उन्होंने इसका पहला मसौदा उर्दू मे तैयार किया। मालूम नहीं किस तरह यह मसौदा डॉ. गोयनका की जागीर हो गया। केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद में अक्टूबर, 1981 में प्रेमचंद सेमिनार के मौके पर उन्होंने इसकी नुमाइश की, मैंने भी उसे देखा। उर्दू असल को बहुत विस्तार देकर हिंदी में परिवर्तित किया गया और फिर उसी को उर्दू में 'चौगाने हस्ती' के नाम से छापा गया। गोयनका ने इस किताब मे उर्दू मसौदे पर भी लेख लिखा है।

7. प्रेमचंद : अध्ययन की नई दिशाएं : साहित्य-निधि, सी/38, कृष्णा नगर, दिल्ली, 51-1981, पृष्ठ 215, मूल्य 55 रुपये।

इसमें उनके 25 शोध निबंध हैं जो इससे पहले हिंदी की मशहूर पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। हर निबंध प्रेमचंद से संबंधित कुछ नए तथ्य सामने लाता है। उनकी जन्मतिथि से होरी की मौत तक सवाल उठाए गए हैं और दस्तावेजी सबूत के साथ कुछ नई सच्चाइयों को पेश किया गया है! उदाहरणार्थ, प्रेमचंद ने अपनी बेटी की शादी मे दहेज दिया, वह भूत प्रेत पर यकीन रखते थे, 'सोजेवतन' के बारे मे कुछ नए यथार्थ, प्रेमचंद और इकबाल के संबंध, प्रेमचंद इकबाल को महान कवि मानते थे, इकबाल ने प्रेमचंद की कहानियों के संग्रह 'प्रेम-पचीसी' (उर्दू) पर राय दी जो किताब के विज्ञापन मे प्रकाशित की गई। प्रेमचंद इकबाल के पाकिस्तान के प्रस्ताव पर कड़ी आलोचना करते थे और धर्म के नाम पर विभाजन के खिलाफ थे।

इस संग्रह के निबंधों ने प्रेमचंद से संबंधित बहुत सी गलत-फहमियों को दूर किया और लेखक के बेलाग सच ने कई हंगामे भी खड़े किए।

डॉ. गोयनका के अन्य कारनामें इस प्रकार हैं-

(क) प्रेमचंद से संबंधित तीन हजार चीजों का संचयन! इसमें प्रेमचंद के लिखे हुए और प्रेमचंद को लिखे गए दो हजार से ज्यादा असंपादित पत्र हैं, सौ से ऊपर आमुख हैं, 'रंगभूमि' और 'प्रेमाश्रम' के मूल उर्दू मसौदे और 'कायाकल्प' तथा 'गोदान' के मूल हिंदी मसौदे हैं। 'सोजेवतन' के प्रथम संस्करण की एक कॉपी है साथ ही उनके पास प्रेमचंद का 1500 पृष्ठों का ऐसा साहित्य है जो आज हिंदी और उर्दू पाठकों के सामने नहीं हैं। इनमे 30 कहानियां हैं। एक कहानी 'गमी' 1930 में परिवार-नियोजन पर लिखी गई है और ये डॉ. गोयनका की खोज है। दूसरी उर्दू कहानी 'दोनों तरफ से' मिली है जो 1911 मे प्रकाशित हुई और जिसका विषय हरिजनों का कल्याण है। प्रेमचंद के अनेक हिंदी मसौदे गोयनका की संपत्ति हैं जिनसे यह अवधारणा गलत साबित हो जाती है कि प्रेमचंद आसानी के लिए हर किताब को मूलतः उर्दू में लिखते थे!

अगर प्रेमचंद म्यूजियम की स्थापना की जाए तो गोयनका इसमें महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

(ख) गोयनका अगस्त, 1980 मे 'प्रेमचंद शताब्दी' के अवसर पर मॉरीशस गए और प्रधानमंत्री सर शिव सागर राम गुलाम ने कार्यक्रम का उद्घाटन किया और गोयनका के कामों की तारीफ की।

(ग) उन्होंने प्रेमचंद के जीवन, विचार और तहकीकत पर नई सच्चाईयों का ढ़ेर लगा दिया। उन पर निबंध लिखे और दूसरो को प्रेरणा दी कि इन्हीं दिशाओं में आगे काम करें। प्रेमचंद के जीवन पर अनेक नई बातें मालूम की, जैसे आखिरी समय में उनके बैंक में 4550 रुपये थे, अर्थात् वह कंगाल नहीं थे। गोयनका की खोज से प्रेमचंद से संबंधित बहुत-सी गलत-फहमियां दूर हुईं। अमृतराय ने प्रेमचंद की जिंदगी के बारे में जो कुछ लिखा है उसमें गोयनका के लेखों से बहुत से संशोधन हुए, उन्होंने मुंशीजी की कुल कहानियों की संख्या, रचना और प्रकाशन की तारीखें सुनिश्चित कीं। उपन्यासों की प्रकाशन तिथि के बारे में हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में बहुत-सी गलतियां संशोधित हो गई थीं। उदाहरणार्थ, 'प्रतिज्ञा' को 1907 की रचना माना जाता था। गोयनका ने अपनी खोज से प्रमाणित किया कि वह हिंदी पत्रिका 'चाँद' मे जनवरी, 1927 से किश्तवार प्रकाशित होता रहा। हिंदी 'गोदान' 10 जून, 1931 को बाजार में आया। अमृतराय ने प्रेमचंद की कहानियों की संख्या 224 मानी है। गोयनका ने इस संख्या को 291 तक पहुंचा दिया। सभी नई कहानियों के पहले संस्करण की तारीख और उनका निचोड़ 'प्रेमचंद विश्वकोश' के दूसरे खंड में दिया है!

इसे कहते है माहिर-ए-प्रेमचंद (प्रेमचंद-विशेषज्ञ)। उर्दू मे इस दर्जे का कोई माहिर है जिसने प्रेमचंद की जीवनी, विचार, कला और संपूर्ण रचनाओं के हर कोण और चप्पे को इतनी सूक्ष्मता से देखा हो? जरूरी है कि डॉ. गोयनका के अधिकांश कामों का उर्दू में अनुवाद करके प्रकाशित किया जाए, ताकि प्रेमचंद की लेखनी के विभिन्न आयामों को उर्दू साहित्य-जगत भी जान सके।

□

कमल किशोर गोयनका का साथ

मंगलमूर्त्ति

साथ साहित्य-पथ पर साथ-साथ चलने का! साथ जीवन-यापन (प्राध्यापन) में, व्यसन (साहित्य-पाठ साहित्य-लेखन) में और लोक-व्यवहार में कई दशकों तक के एक जैसे जीवन-प्रवाह का! कोई संपर्क, कोई साहचर्य, कोई आत्मीयता इतनी मधुर और सार्थक नहीं हो सकती जितना एक साहित्यिक-सख्यभाव! डॉ. गोयनका से मेरा साथ लंबे समय का रहा है, और कुछ ऐसा ही रहा हैः उनसे मेरा पहला परिचय सत्तर के दशक में सामान्य पत्राचार से ही शुरू हुआ था, और धीरे-धीरे वह साहचर्य परस्पर स्नेह और सम्मान-भाव में ढलता गया, कुछ तो अपनी आजीविका की अभिरूचियों के अनुरूप और कुछ अपने संपोषित साहित्यिक संस्कारों के कारण यह संपर्क समय के साथ दृढतर होता गया, यहां कुछ पुरानी स्मृतियों को दुहराने से इनके सूत्र पूरी तरह स्पष्ट होंगे।

साठ के दशक के प्रारंभ में मेरे पिता (आचार्य शिवपूजन सहाय) का निधन हुआ था, और कई समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं ने उन पर स्मृति- विशेषांक निकाले थे, और एक बार श्रद्धा-सुमन-अर्पण के रूप में समस्त हिंदी-जगत का ध्यान उन पर केंद्रित हो गया था, जिसमें पुरानी पीढ़ी के साथ-साथ नई पीढ़ी के साहित्यकार भी बड़ी संख्या में थे। मेरे पिता (जो हिंदी-जगत में 'शिवजी' के नाम से जाने जाते थे) अपनी पारिवारिक विरासत के रूप में अपने गांव पर एक बहुत बड़ा पुस्तकालय और अनेक प्रकार की बहुमूल्य साहित्यिक सामग्री अपनी डायरियां, पांडुलिपियां, हजारों की संख्या में साहित्यकारों के पत्र, चित्र आदि छोड़ गए थे। तब मैं कॉलेज में पढ़ाने लगा था, और सदा अपने पिता के साथ उनके साहित्यिक संग्रहालय की देख-भाल में उनके साथ लगा रहने के कारण, अब इस सारी अतिशय मूल्यवान साहित्यिक सामग्री की देख-रेख के प्रति स्वाभाविक रूप से समर्पित हो चुका था।

अपने अंतिम दिनों में, 1960 की गर्मियों में जब मेरा कॉलेज भी बंद था, लगभग एक महीने गांव पर रहकर मेरे पिता गांव के पुस्तकालय में पुस्तकों को व्यवस्थित करते रहे और 6-7 बोरों में बंद चिट्ठियों में से उन्होंने दो बोरे चिट्ठियां छांटीं जो फिर पटना लाई गईं। पुस्तकालय की साफ-सफाई में और चिट्ठियां छांटने में मैं बराबर उनके साथ लगा रहता था, फिर भी वे घुटनों

पर बैठे, गर्द-गुबार में लथ-पथ, सुबह से शाम तक इसी काम में लगे रहते पटना लाने के बाद भी वे अंत-अंत तक उन चिट्ठियों को अलग-अलग लिफाफों में छांट-छांट कर रखते गए थे। यह वही समय था जब डा. रामविलास शर्मा, उन चिट्ठियों के व्यवस्थित होने के क्रम में, पटना आए थे, जब वे 'निराला की साहित्य-साधना' पर काम कर रहे थे और 'मतवाला'-मंडल से संबद्ध कुछ पत्रों को मेरे पिता से मांगकर ले गए थे (जिन्हें फिर लौटाया भी था)। उस समय मैं भी अपनी छुट्टियों में आया हुआ था और डा. साहब की सहायता कर रहा था। बाद में प्रकाशित होने पर उन्होंने उस पुस्तक के तीसरे पत्र-खंड की एक प्रति हस्ताक्षरित कर मुझे आगरा में भेंट दी थी, जो मेरे लिए एक थाती रह गई है। यह एक मनोरंजक संयोग है कि इस संस्मरण में रामविलासजी का उल्लेख स्वतः प्रसंगवश आ गया। पुरानी चिट्ठियां स्वयं ही पुरानी स्मृतियों को एक श्रृंखला में जोड़ देती हैं!

मेरे पिता का निधन रामविलासजी के आगमन के कुछ ही दिन बाद जनवरी, 1963 में हो गया था और उनके निधन के बाद उन चिट्ठियों की एक विस्तृत सूची बनी थी जिसे हम लोगों ने 'साहित्य' के 'शिवपूजन-स्मृति-अंक' (जनवरी, 1964) में प्रकाशित करा दिया था। इस सूची में शिवजी के पुराने और समकालीन साहित्यकारों के लगभग 7,500 पत्र थे, जिन्हें बाद में नेहरू संग्रहालय, दिल्ली को भेज दिया गया। कालांतर में गांव के उस पुस्तकालय में संगृहीत-संचित पत्रिकाओं को भी वहां भेज दिया गया, जहां उनकी माइक्रोफिश और माइक्रोफिल्म भी अब उपलब्ध हैं। पुस्तकालय का संपूर्ण पुस्तक-संग्रह भी बाद में पटना के गांधी संग्रहालय में सुरक्षित रखवा दिया गया। इस प्रकार शिवजी के आजीवन-संग्रह की पूरी साहित्यिक सामग्री अब पूर्णतः सुरक्षित तो है ही, शोध के लिए भी सुलभ है। मैंने भी अगली पीढ़ियों के लिए इस बहुमूल्य साहित्यिक सामग्री के सुरक्षित रख-रखाव को अपने कार्यकारी जीवन में सर्वोच्च प्राथमिकता दी, और इसे पिता की दी हुई जिम्मेदारी के निर्वहन से प्राप्त होने वाले सुख-संतोष की तरह स्वीकार किया। इसी दायित्व-भाव के अंतर्गत लगभग तीन दशकों (1990-2010) के श्रम के फलस्वरूप 'शिवपूजन सहाय साहित्य-समग्र'(10 खंड) का प्रकाशन भी हुआ, जिसके विषय में 'समग्र' के लोकार्पण में नामवरजी ने आशीर्वाद स्वरूप कहा कि इस महत्वपूर्ण कार्य से मैं 'पितृ-ऋण' से उऋण हो गया। यद्यपि सम्मानपूर्वक शिरोधार्य करते हुए भी मैं ऐसा नहीं मानता क्योंकि न तो 'पितृ-ऋण' जैसा कोई ऋण होता है, और न कोई उससे उऋण ही हो सका।

मेरे पिता के साहित्यिक पत्रों का यह सुदीर्घ प्रसंग ऐसा था जिसके क्रम में ही श्रीगोयनका से भी मेरा संपर्क सत्तर के दशक में हुआ, जब मैं इस पत्र-संग्रह के आधार पर प्रेमचंद पर केंद्रित एक पत्र-संग्रह के संपादन में संलग्न था। तब मैं भागलपुर विश्वविद्यालय के मुंगेर-स्थित एक कॉलेज में अंग्रेजी का प्राध्यापक था और इन्हीं दिनों मैं अपने पी-एच.डी. शोध में भी पूरी तरह व्यस्त था। मेरे द्वारा संपादित पुस्तक 'प्रेमचंद पत्रों में'(जिसका पहला संस्करण 1992 में 'प्रेमचंदः पत्र-प्रसंग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था) की तैयारी में भी मैं इन्हीं दिनों लगा था, और उस क्रम में पत्रों और फोन से मेरा संपर्क श्रीगोयनका से बराबर हुआ करता था, क्योंकि वे भी उन्हीं

दिनों अपने प्रेमचंद-संबंधी महत्वपूर्ण शोध में लगे हुए थे। उनके साथ के मेरे पत्राचार में से बहुत सारे पत्र तो गुम होते रहे जैसा मेरे पिता के साथ भी हुआ था, जो बराबर किराए के मकान बदलते ही रहे, कुल सात शहरों में और खुद मैंने भी कुछ आधा दर्जन शहरों में किराए के मकान तो बदले ही, जिनमें न जाने कितना कुछ खोया लेकिन बहुत सावधानी बरतने के कारण मेरे पास भी कुछ महत्वपूर्ण लोगों के पत्र बचे रहे जिनमें गोयनकाजी के भी कुछ पत्र हैं, और कुछ रामविलासजी के भी हैं।

उन बचे हुए पत्रों के इस पहले पत्र (अक्टूबर 84) से, पूर्व से चल रहे पत्राचार और संपर्क का कुछ अंदाज मिल जाता हैः 'आपको फोन किया तब ज्ञात हुआ कि आप मुंगेर चले गए। पिताजी के जयशंकर प्रसाद पर लिखे संस्मरण के संबंध में आपको पत्र लिखा था उसे संकलित करने की अनुमति प्रदान करें।'

पत्रों में छोटी-छोटी सूचनाएं होती हैं, जिनसे घटनाओं के समय-निर्धारण में सहायता मिलती है। आज यही काम मोबाइल मेसेज और सीसी कैमरों से लिया जा रहा है। पत्रों का तो एक प्रकार से युग ही समाप्त हो गया, और उसके साथ समाप्त हो गया संवेदना और सौहार्द का एक संसार ही! श्रीगोयनका का एक पत्र मार्च, 85 का है, जब वे जाकिर हुसैन इवनिंग कॉलेज में कार्यरत थेः 'आप दिल्ली आने वाले थे, लेकिन आप आए तो होंगे, परंतु आपसे संपर्क न हो सका। विश्वास है आपका कार्य सुचारू रूप से चल रहा होगा। इधर प्रेमचंद के पाठ पर कार्य कर रहा हूं। पाठ-भेद बहुत है प्रेमचंद की कृतियों में। आपके पास प्रेमचंद के प्रथम संस्करण हैं? आपके पास प्रेमचंद के प्रथम संस्करण किन-किन पुस्तकों के हैं, कृपया यह भी लिखें। मैं आपको यदा-कदा कष्ट देता रहता हूं, परंतु क्या करूं जिन पर अपना हक मानता हूं उनसे ही अपनी बात कह सकता हूं।' साल-भर बाद के एक और पत्र (5.8.86) में फिर ऐसा ही प्रसंग हैः 'इधर प्रेमचंद रचनावली' पर काम कर रहा हूं। यह 20 खंडों में होगी। इसके लिए मुझे प्रेमचंद की पुस्तकों के प्रथम संस्करण चाहिए। कुछ तलाश कर लिए हैं और कुछ की तलाश है। शिवपूजनजी के संग्रहालय में प्रेमचंद की पुस्तकें होंगी, 'हंस' तथा 'जागरण' के अंक होंगे। आप इसमें मेरी क्या मदद कर सकेंगे?'

इन्हीं दिनों मैं प्रेमचंद से संबद्ध पत्रों के अपने संकलन के संपादन में लगा था और पत्र से तथा फोन से भी गोयनकाजी से संपर्क बना रहता था। पिताजी के पत्र-संग्रह में प्रवासी लाल वर्मा के 121 पत्र थे। प्रवासी लाल वर्मा मुद्रण कला के विशेषज्ञ माने जाते थे, और मेरे पिता के प्रयास से ही प्रेमचंदजी के 'सरस्वती' प्रेस के प्रबंधन का कार्य संभालते थे। लेन-देन को लेकर दोनों के बीच कुछ बखेड़ा हो गया था, जिसमें शिवजी ने भी बीच-बचाव किया था। यह बात गांधीजी तक चली गई थी। इस प्रसंग में मैंने गोयनकाजी को जानकारी के लिए लिखा तो उन्होंने स्पष्टीकरण भेजा। 'प्रेमचंद ने दिसंबर, 1935 में प्रवासी लाल वर्मा को 900 रु. का गबन करने के आरोप में नौकरी से निकाल दिया था। दोनों पक्षों की सहमति से पंच भी नियुक्त हुए थे और प्रवासी लाल वर्मा ने सारा मामला महात्मा गांधी को लिख कर भेजा था और न्याय मांगा था। मेरे पास 18 जुलाई, 1936 का महादेव देसाई का पत्र है जिसमें उन्होंने प्रवासी लाल

वर्मा के पत्र प्राप्त होने की सूचना दी है तथा महात्मा गांधी द्वारा शीघ्र उत्तर देने के लिए लिखा है। महात्मा गांधी ने क्या निर्णय दिया यह अज्ञात है।' ध्यातव्य है कि इस प्रसंग में मेरी 'प्रेमचंद पत्रों में' पुस्तक में प्रवासी लाल वर्मा के लगभग 3 दर्जन पत्र प्रकाशित हैं जिनसे प्रेमचंद और प्रवासी लाल वर्मा के बीच के संबंधों पर अतिरिक्त प्रकाश पड़ता है, और श्रीगोयनका की बहुत सी बातों की पुष्टि भी होती है।

अब यह एक दीगर प्रश्न है कि प्रेमचंद के व्यक्तिगत जीवन में उन तथ्यों का क्या महत्व है, और उन ज्ञात तथ्यों का, जो साक्ष्य के आधार पर अकाट्य हैं, प्रेमचंद के रचना-अनुशीलन में किस हद तक प्रयोग किया जा सकता है अथवा नहीं किया जाना चाहिए; या यह कहना चाहिए कि, वास्तव में, साहित्यानुशीलन में उन जीवन-तथ्यों का महत्व नगण्य ही माना जा सकता है और इसीलिए तथ्यों को तथ्यों की तरह ही देखा जाना चाहिए। प्रेमचंद का जीवन गरीबी और संघर्ष में बीता यह तो उस समय के लगभग सभी ऐसे हिंदी लेखकों के विषय में ज्ञात है जो सब 'कलम के मजदूर' ही रहे, लेकिन उन दिनों, जब देश की उस समय की परिस्थितियों में जालियांवाला बाग का नरसंहार आँखों के सामने हो और गांधी की अहिंसात्मक क्रांति पूरे देश में नया अलख जगा रही हो, उस समय का कोई साधारण मसिजीवी लेखक केवल इसी कारण हालिया रूसी क्रांति से प्रभावित होकर अपने लेखन में साम्यवादी विचारधारा से अनिवार्यतः प्लावित हो जाएगा, ऐसा तय मानकर ही उसके रचना-कर्म का अनुशीलन किया जा सकता है, अथवा किया जाना चाहिए, ऐसा तर्क स्वयं-सिद्ध नहीं माना जा सकता। वस्तुतः तो साहित्यानुशीलन में किसी तरह का पूर्वाग्रह स्वीकार्य ही नहीं होता, यह साहित्यानुशीलन का एक सामान्य सिद्धांत है। इस तरह का एक प्रसंग गोयनका जी के एक प्रकाशित लेख 'प्रेमचंद डॉ. रामविलास शर्मा और मैं' (साक्ष्य, मार्च, 2007) में पढ़ने को मिलता है। उस लंबे लेख में गोयनकाजी ने रामविलासजी द्वारा प्रेमचंद की साम्यवाद-आधारित समालोचना के तर्कों को खारिज किया है। साम्यवाद के प्रति आकर्षित होना या उसके प्रति सहानुभूतिशील होना और अपने सृजन-कर्म को पूर्णतः साम्यवाद की विचारधारा से अभिसिक्त कर देना दोनों अलग-अलग बातें हैं। फिर भी गोयनकाजी का इस विचारधारा से विरोध है, यह महत्वपूर्ण नहीं है; महत्वपूर्ण यह है कि प्रेमचंद के संपूर्ण रचना-कर्म को इसी विचारधारा से प्रेरित माना जाना चाहिए अथवा नहीं। मुझे यह पूरा विवाद प्रेमचंद के रचना-कर्म के परिप्रेक्ष्य में अप्रासंगिक लगता है। एक लेखक अपने जीवन-दर्शन में कई विरोधी विचारधाराओं से प्रभावित दिखाई दे सकता है, लेकिन महत्वपूर्ण यह है विचारधाराओं का यह प्रवाह उसके रचना-कर्म को किस हद तक प्रभावित करता है।

फिर भी, वह जो हो, मेरा संपर्क गोयनकाजी से बना रहा, क्योंकि मेरी अभिरुचि विचारधाराओं के इस संघर्ष में नहीं रही है। जब प्रेमचंद के 125वीं जयंती-वर्ष में मेरी संपादित पुस्तक 'प्रेमचंद पत्रों में'(2005) अपने नए संस्करण में प्रकाशित हुई तब एक बार फिर गोयनकाजी से मेरा सघन पत्राचार तथ्यों की प्रामाणिकता को लेकर हुआ। प्रवासीलाल वर्मा वाले प्रसंग में उन्होंने कुछ नव-उद्घाटित तथ्यों से मुझे परिचित कराया और उसके लिए मैंने

उनके प्रति अपनी पुस्तक की 'प्रस्तावना' में विशेष आभार प्रकट किया, क्योंकि इस बीच उन्होंने प्रेमचंद से संबंधित बहुत सारी अप्राप्य सामग्री प्राप्त कर ली थी और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' के दो खंडों में उन्हें प्रकाशित किया था, जिनमें से लगभग 40 नए पत्रों को 'प्रेमचंद पत्रों में' पुस्तक में मैंने साभार सम्मिलित किया था। अपने आभार-वक्तव्य में मैंने लिखा, '(इस नए संस्करण में) चालीस पत्र वैसे प्रकाशित हो रहे हैं जिन्हें डा. कमलकिशोर गोयनका ने बड़े परिश्रम से वर्षों की खोज-ढूंढ और दौड़-धूप के बाद इकट्ठा किया और अपनी पुस्तक के दूसरे खंड में अन्य अत्यधिक बहुमूल्य सामग्री के साथ प्रकाशित किया। उन्होंने 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' में प्रकाशित इन पत्रों को इस पुस्तक में सम्मिलित करने की कृपापूर्ण अनुमति दी है। ऐसा उन्होंने निश्चय ही प्रेमचंद के साहित्य के प्रति अपनी समर्पण-भावना से प्रेरित होकर किया है।

इन उद्धरणों से इतना तो स्पष्ट होगा कि गोयनकाजी के साथ मेरा संबंध शुद्ध साहित्यिक प्रयोजनों को लेकर ही था। यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि हमारे परस्पर संबंध पूरी तरह विश्वास और सौहार्द पर ही आधारित थे। हम एक दूसरे के साथ इन साहित्यिक कार्यों में पूर्ण सहयोग करते थे, और एक दूसरे की कार्य-शैली का सम्मान करते थे। मैं उनके प्रेमचंद-संबंधी सघन शोध-कार्य का प्रशंसक रहा और, जैसा मैं कह चुका, मेरी दिलचस्पी कभी सृजनात्मक साहित्य के राजनीतिक रुझान में नहीं रही है। मैं साहित्य-पथ पर चलते हुए कभी दाएं-बाएं देखने में विश्वास नहीं करता गोयनकाजी के साथ प्रेमचंद के समालोचनात्मक अनुशीलन को लेकर ऐसे जो कुछ विवाद बने रहे हैं, उनको मैं समालोचन के लोकतंत्र के लिए अभिनंदनीय ही मानता हूं।

इन दशकों में कई-कई बार मेरा उनके साथ दिल्ली में मिलना भी होता रहा। कभी उनके आवास पर, कभी कनाट प्लेस के कॉफ़ी हाउस में, कभी साहित्य अकादेमी में, और हम ज्यादातर उनके कार्य की प्रगति के विषय में ही बातें करते रहे। हमारी सबसे यादगार और लंबी मुलाकात हुई थी, इससे कई वर्ष पहले जब प्रेमचंद के जन्म-शती वर्ष (1980) में मैंने मुंगेर की साहित्यिक संस्था 'विभावरी' के अंतर्गत द्विदिवसीय 'प्रेमचंद जन्मशती' का आयोजन किया था जिसमें गोयनकाजी को प्रेमचंद-साहित्य के एक विशेषज्ञ और विशिष्ट अतिथि के रूप में मुंगेर आमंत्रित किया था। वहां उन्होंने अपने मुख्य भाषण में विस्तार से प्रेमचंद के जीवन और कृतित्व पर विशद प्रकाश डाला था, और बहुत सी ऐसी अज्ञात बातें बताई थीं जिन्हें सुनकर सभी श्रोता अत्यंत प्रभावित हुए थे, तथा छात्रों ने उनसे कई प्रासंगिक प्रश्न भी पूछे थे। उन दो दिनों के घनिष्ठ संपर्क में प्रेमचंद-साहित्य पर श्रीगोयनका के साथ मेरी भी बहुत-सी अंतरंग और रोचक बातें हुई थीं, जिनसे बहुत-सी उलझनें दूर हुई थीं।

एक भिन्न प्रसंग पाठालोचन से संबद्ध भी महत्वपूर्ण रहा। वह था मेरे पिता द्वारा 'रंगभूमि' के संपादन का इस संबंध में मेरा एक लेख 'रंगभूमि की पांडुलिपि' प्रेमचंद-शती-प्रसंग में 'परिषद् पत्रिका' (व.20, अं.2) में प्रकाशित हुआ था। शिवजी दुलारेलाल के बार-बार बुलावे पर कलकत्ता 'मतवाला'-मंडल से अलग होकर गंगा-पुस्तकमाला के संपादकीय विभाग में काम करने

अप्रैल, 1924 में लखनऊ चले आए थे, और इसी समय प्रेमचंद की 'रंगभूमि' दुलारेलाल के यहां प्रकाशन के लिए आई थी, जो शिवजी को संपादन के लिए दी गई थी। 'प्रेमचंद पत्रों में' दुलारेलाल के पत्रों से स्पष्ट होता है कि संपादन के क्रम में शिवजी वह पांडुलिपि सितंबर, 1924 में लखनऊ के दंगे में अपने होटल में छोड़कर अपने गांव भागे थे और बाद में दुलारेलाल ने वह पांडुलिपि उस होटल से मंगा ली थी। सितंबर में ही प्रेमचंद अपनी मुश्किलों में दुलारेलाल के यहां गंगा-पुस्तकमाला में साहित्यिक सलाहकार की नौकरी पर लखनऊ आए थे। शिवजी भी नवंबर में फिर लौटकर लखनऊ आ गए थे, जब 'रंगभूमि' छपने लगी थी और अंततः फरवरी, 1925 में 'रंगभूमि' प्रकाशित हो गई थी। प्रेमचंद ने उसकी पहली प्रति जो शिवजी को भेंट की उस पर 22 फरवरी, 1925 की तिथि अंकित है। दुलारेलाल भार्गव के गंगा-पुस्तकमाला प्रकाशन की जो भी पुस्तकें छपती थीं उनमें वर्तनी आदि की एक 'स्टाइल-शीट' के कुछ निश्चित नियम थे, और जो भी छपता था संपादकीय विभाग के लोग जिनमें शिवजी प्रमुख थे उसी के अनुसार पांडुलिपियों की अलग से 'प्रेस-कॉपी' तैयार करते थे। 'रंगभूमि' की पांडुलिपि के साथ भी खास तौर से ऐसा ही हुआ था। शिवजी ने मूल पांडुलिपि पर कोई संशोधन नहीं किया था और उसकी 'प्रेस कापी' पर ही सारा संशोधन हुआ था, जैसा उनके प्रेमचंद वाले संस्मरण में लिखा भी है। वहां पूरा संदर्भ इस प्रकार वर्णित हैः उनसे घनिष्ठता बढ़ने का सुयोग मिला लखनऊ में, जब मैं 'मतवाला'-मंडल से 'माधुरी' के संपादकीय विभाग में गया। कुछ दिनों बाद वे भी 'माधुरी' के संपादक होकर आए। श्रीदुलारेलाल भार्गव ने कृपापूर्वक पत्रिका के अतिरिक्त कुछ पुस्तकों के संशोधन का काम भी मुझे दिया। भार्गवजी मेरी सेवा से संतुष्ट हुए और मुझे प्रेमचंद के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' की पांडुलिपि प्राप्त हुई, जो पहले से भार्गवजी के पास आ चुकी थी। जब 'रंगभूमि' की कापी मिली, मेरे आश्चर्य और आनंद का ठिकाना न रहा। सारी कापी प्रेमचंदजी की ही लिखी हुई थी। दो मोटी जिल्दों में खासा एक बड़ा पोथा, छोटे-छोटे अक्षर, घनी लिखावट, कहीं काट-छांट नहीं; मानो पूरी पुस्तक एक सांस में लिखी गयी हो। भार्गवजी की गंगा-पुस्तक-माला की पुस्तकों का संपादन जिन नियमों के अनुसार होता था, उन नियमों को मैं जान चुका था; क्योंकि भार्गवजी के संपादकत्व के कारण 'माधुरी' में भी उन्हीं नियमों का पालन करना पड़ता था। ('रंगभूमि' में) कुछ हिंदी-शब्दों की लिखावट में भूल मिलती थी और कुछ के उपयुक्त प्रयोग में भी वाक्यावली और वर्णन-शैली तो गंगा की धारा-सी स्वच्छ और सवेग थी। बंधे नियमों के अनुसार कुछ अक्षर बदलने पड़े। कुछ मात्राएं इधर-उधर हुईं, कुछ प्रसंगानुकूल यथोचित शब्द चस्पां किए गए। प्रेस-कापी तैयार हो गई भार्गवजी ने देखकर पास किया। छपाई के काम में हाथ लगा। उसी समय प्रेमचंदजी का शुभागमन हुआ।' (प्रेमचंद पत्रों में, पृ. 20)

यहां इटालिक्स में छपे अंश पर ध्यान देने पर कई बातें ज्ञात होती हैं। (1) संशोधन वाली कापी 'प्रेस-कापी' थी जो संभवतः पांडुलिपि से भिन्न थी, क्योंकि 'प्रेस-कापी' को कंपोजिटरों के हाथ में देना होता था, जिससे उनके गंदे होने-फटने का खतरा होता था। पांडुलिपि पर संशोधन नहीं करना पड़ता था। ऐसी शायद दुलारेलाल की हिदायत रहती होगी। शिवजी के

संस्मरण में उल्लिखित 'रंगभूमि' की उस मूल पांडुलिपि की तलाश मैंने भी और गोयनकाजी ने बहुत की थी पर वह कहीं मिल नहीं सकी। बहरहाल, उन्हीं दिनों 'माधुरी' में प्रकाशित प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' की मूल पांडुलिपि गोयनकाजी को मिल गई थी और उन्होंने लोठार लुत्से के साथ लिखी अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी' (1980) में उसकी छाया-प्रति प्रकाशित कर दी थी। लेकिन 'शतरंज के खिलाड़ी' की उस मूल पांडुलिपि पर संपादन-संशोधन का कहीं कोई चिन्ह नहीं है। इस प्रसंग में यहां यह पहली बार विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' का प्रकाशन उसी समय 'माधुरी' (अक्टूबर 1924) में हुआ था, जब 'पत्रिका के अतिरिक्त कुछ पुस्तकों के संशोधन का काम 'दुलारेलाल ने शिवजी को दिया था। इसलिए आगमिक-तर्क पद्धति के अनुसार निश्चय ही 'शतरंज के खिलाड़ी' का संशोधन भी उन्हीं दिनों (सितंबर, 1924 में) शिवपूजन सहाय का ही किया हुआ था। वस्तुतः, ऐसा सूक्ष्म संशोधन-कार्य दुलारेलाल की क्षमता-सीमा में किसी प्रकार हो भी नहीं सकता था, यद्यपि गोयनकाजी ने पाठ-शोध वाली अपनी उस पुस्तक में इस कहानी के संशोधन-कार्य का श्रेय, इन सभी प्रमाणों के होते हुए भी, शिवपूजन सहाय को नहीं दिया है, बल्कि दुलारेलाल को ही दिया है। दुलारेलाल भाषा-संपादन के आग्रही और पारखी जरूर थे, पर संपादन-कला के आचार्य तो शिवपूजन सहाय ही थे, और इसीलिए दुलारेलाल शिवपूजन सहाय को कलकत्ता से लखनऊ बुलाने को व्यग्र रहे थे। अब यदि, 'रंगभूमि' की मूल पांडुलिपि की अनुपस्थिति में, और 'शतरंज के खिलाडी' कहानी की मूल पांडुलिपि की उपलब्धता की स्थिति में, उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में, आगमिक-तर्क के अनुसार, यह मान लें कि 'रंगभूमि' के साथ-साथ, उन्हीं दिनों, शिवपूजन सहाय ने 'शतरंज के खिलाडी' कहानी का भी निश्चय ही संपादन-संशोधन किया था, और यह बारीक, कलात्मक काम दुलारेलाल से संभव नहीं था (क्योंकि शिवजी के संग्रह में दुलारेलाल के 135 पत्रों की भाषा को देखने से ऐसा मानना बिलकुल संभव नहीं है, और फिर दुलारेलाल यह काम स्वयं क्यों करते जब उन्होंने शिवजी को इसी काम के लिए अपने संपादकीय-विभाग में विशेष रूप से कलकत्ता से बुलाकर रखा था) तब, वैसी स्थिति में, गोयनका जी की पाठ-शोध की पुस्तक 'प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी' में संपादन-संशोधन के विषय में विचारित सभी निष्कर्ष स्वाभाविक रूप से शिवपूजन सहाय के संपादन-कौशल से जुड़ जाते हैं। तब उस स्थिति में, 'रंगभूमि' और 'शतरंज के खिलाड़ी' दोनों के प्रथम मुद्रित पाठों को आमने-सामने रखकर, उन दोनों के गद्य-लेखन पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए हम यह विश्लेषित कर सकते हैं कि प्रेमचंद के कथा-गद्य को हिंदी का संस्कार और परिमार्जन देने में शिवपूजन सहाय का योगदान कैसा और किस हद तक का था।

गोयनकाजी ने पाठ-शोध की अपनी पुस्तक में प्रेमचंद के गद्य-प्रयोग और उसमें संपादकीय संशोधनात्मक हस्तक्षेप का जो विश्लेषण किया है, और उससे जो निष्कर्ष निकाले हैं, उन सब से सहमत होना अनिवार्य नहीं है, किंतु वे पर्याप्त मार्ग-दर्शक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। उसमें यदि, ऊपर उल्लिखित तथ्यों के आलोक में हम इतना जोड़ लें कि 'रंगभूमि' के साथ-साथ

'शतरंज के खिलाड़ी' का संशोधन-कार्य भी शिवपूजन सहाय ने ही किया था, तब हम यह कह सकते हैं कि प्रेमचंद की कथा-भाषा के विकास में शिवपूजन सहाय के भाषा-आचार्यत्व की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। भाषा-विज्ञान मेरा भी विषय रहा है, और पाठ-शोध के शास्त्रीय पक्ष से मेरा भी थोड़ा परिचय रहा है और यही कारण है कि लंबे समय से मैं श्रीगोयनका के प्रेमचंद-संबंधी शोध-कार्य का बहुत गंभीर प्रशंसक और पाठक भी रहा हूं। साहित्य में शैली का विकास, गद्य और पद्य दोनों में ही, भाषा-विज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है, और मुझको लगता है प्रेमचंद के कथा-साहित्य का समाज-शास्त्रीय अथवा शिल्प-पक्षीय विवेचन समालोचना की मुख्यधारा का एक अग्रगण्य पक्ष अवश्य रहा है, परंतु हिंदी कथा-साहित्य के भाषा-पक्ष के विकास में प्रेमचंद की कथा-भाषा का योगदान कैसा रहा है, और उसमें उनके अभिन्न सखा (स्वयं एक सफल कथाकार) भाषा-आचार्य शिवपूजन सहाय की कितनी और कैसी सहभागिता रही है, इस दिशा में अभी पर्याप्त शोध की संभावनाएं शेष हैं।

गोयनकाजी को लेकर साहित्यालोचन में राजनीतिक पक्षधरता का एक लंबा और उलझा हुआ विवाद है, जो बहुत गहराई में डा. रामविलास शर्मा और कई और लोगों से जुड़ा रहा है, लेकिन उसमें फिलवक्त मेरी कोई अभिरुचि नहीं है। संभव है उनके विपक्ष और विरोध में जितनी बातें अब तक सामने आती रही हैं, उनमें बहुत दम भी हो, यद्यपि मेरा यह दावा बिलकुल नहीं है कि मैं उन विवादों से पूरी तरह परिचित, प्रभावित या अप्रभावित रहा हूं। मैं, उनके और अपने इस सुदीर्घ साहित्यिक साहचर्य को, और प्रेमचंद के बहाने उनके विपुल साहित्यिक शोध-कार्य को, बहुत मूल्यवान मानते हुए, अपनी व्यक्तिगत अभिरुचियों और अपने संस्कारित साहित्यिक प्रतिबद्धताओं के साथ, सदा उनके साथ खड़ा रहा हूं, यह मेरे लिए परम संतोष का विषय है। मेरा और गोयनकाजी का यह साथ साहित्य-पथ पर चलने वाले दो सह-यात्रियों का साथ है, जिनकी साहित्य-दृष्टि भी एक ही हो यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है तो हमारे बीच का यह परस्पर सह-यात्रा-भाव और सौहार्द।

□

गोयनका बनाम प्रेमचंद

सभापति मिश्र

महान कथाकार प्रेमचंद के चिंतन, जीवन दर्शन और उनकी व्यापक मानवीय दृष्टि को उनके बृहद् रचना-संसार में मानवीय धरातल पर निरंतर समग्रता से तलाशते हुए डॉ. कमल किशोर गोयनका ने साहित्य-जगत में एक नया मानदंड स्थापित किया है। मुंशी प्रेमचंद को विराट-भारतीय जनजीवन का महागाथाकार मानते हुए गोयनकाजी ने उनकी कालजयी रचनाओं और उनकी समग्र रचनाधर्मिता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया तथा कालक्रमानुसार उनका विस्तृत अनुशीलन किया इसीलिए प्रेमचंद के कथाकार के स्वरूप के निर्माण में डॉ. गोयनका की स्थापनाएं प्रामाणिकता मानी जाती हैं। भारतीय जन-जीवन के इस महान् रचना शिल्पी को डॉ. गोयनका ने भारतीय परंपरा का एक नय विशिष्ट रचनाकार माना। उन्होंने सर्जक प्रेमचंद और विचारक प्रेमचंद की अहम् भूमिकाओं पर एक साथ दृष्टि केंद्रित की। तब वे प्रेमचंद के विराट् व्यक्तित्व की चिंतनभूमि और भावभूमि पर पहुंचकर उनका बहुआयामी मूल्यांकन करने में समर्थ हो सके। वास्तव में प्रेमचंद का कथात्मक दर्शन संपूर्ण लोकमानस का ही दर्शन था'- इसी व्यापक भावभूमि पर गोयनकाजी ने अपने समीक्षात्मक मूल्यांकन की सुदृढ़ नींव रखी।

डॉ. कमल किशोर गोयनका से मेरा परिचय सर्वप्रथम सन् 1992 ई. में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में संपन्न भारतीय हिंदी परिषद् के बत्तीसवें अधिवेशन में हुआ था जिसमें वे परिषद् के प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए थे और मैं कार्यकारिणी सदस्य। तब से मैं उनका सान्निध्य प्राप्त कर रहा हूं। उसी समय से उनके साहित्यिक अवदान से अवगत होता रहा हूं। मुझे उनके साथ अनेक गोष्ठियों मे सहभाग करने का अवसर मिला था। वे प्रत्येक परिषद् के कार्यक्रम में डॉ. सुरेशचंद्र त्रिपाठी तथा डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज के साथ दिल्ली से प्रयाग आते थे और पुणे अधिवेशन के साथ परिषद् के कार्यों का उत्तम संचालन करते हुए श्रोताओं पर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ जाते थे। उनके प्रेमचंद संबंधी अनुशीलता से मैं तभी से परिचित हूं।

डॉ. गोयनका ने अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ कभी समझौता नहीं किया। वे निःस्वार्थ भाव से प्रेमचंद के साहित्य के प्रति पूर्ण समर्पित रहे। उनकी प्रतिबद्धता सदैव देश

की सांस्कृतिक अस्मिता तथा आधुनिक भारतीयता के प्रति रही है जिसमें भारतीय जनमानस सांस लेता है। प्रेमचंद के साहित्य के प्रति अभिरुचि का मूल कारण उनका यही राष्ट्रीयता बोध रहा है। प्रेमचंद के साहित्य के अनेक अनुद्घाटित पक्षों और तथ्यों को प्रकाश में लाने के लिए गोयनकाजी ने अनेक सूत्रों से महत्वपूर्ण एवं विशद् सामग्री एकत्रित की। केवल 'प्रेमचंद विश्वकोश' तैयार करने में उन्होंने दस वर्षों तक अनवरत कार्य किया। प्रेमचंदजी की प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त उनकी अप्राप्य, अप्रकाशित रचनाओं, पांडुलिपियों और पत्रों आदि की खोज में वे निरंतर यात्राएं करते रहे तथा शताधिक लेखकों से उन्होंने अनवरत संपर्क किया। भारत देश के विभिन्न पुस्तकालयों से महत्वपूर्ण सामग्री तलाशी। छह हजार से अधिक पत्र लिखकर विभिन्न व्यक्तियों से संपर्क किया। प्रेमचंद-साहित्य के क्रमिक अनुशीलन में उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं, तत्कालीन परिस्थितियों और परिवेश के साथ उनके जुड़ाव का सही मूल्यांकन प्रेमचंद संबंधी पत्राचार के माध्यम से ही गोयनकाजी कर सके। 'प्रेमचंद पत्रकोश' की भूमिका में गोयनकाजी ने स्पष्ट किया है कि 'प्रेमचंद के उपलब्ध लगभग सात सौ पत्रों में उनके जीवन की एक पूरी दुनिया छिपी पड़ी है। उनके निजी जीवन, परिवार, रिश्तेदार आदि का व्यापक संसार तो इन पत्रों में है ही, उनके साहित्यिक मित्रों, साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा उनके साहित्य के संबंध में प्रामाणिक जानकारी भी प्राप्त होती है। उनके युग का परिदृश्य, राजनीतिक गतिविधियों और आंदोलनों, राजनेताओं के चरित्रों तथा अंग्रेजों की नीतियों आदि पर उनकी टिप्पणियां भी इन पत्रों में मिलती हैं। ये पत्र इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं कि इनमें प्रेमचंद का अपना अनुभव, उनकी निजता एवं उनका वैचारिक संसार पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमचंद के पत्रों में उनका व्यक्तित्व, उनका दृष्टिकोण तथा उनकी आत्मा झलकती हे। ये पत्र उनके जीवन के सबसे अधिक प्रामाणिक दस्तावेज हैं, जिनके आधार पर उनकी एक जीवंत मूर्ति गढ़ी जा सकती है।'[1] 'प्रेमचंद की जीवनी' 'प्रेमचंद विश्वकोश' तथा उनकी कृतियों के कालक्रमानुसार अनुशीलन में डा.गोयनका को इन पत्रों से महत्वपूर्ण सहायता मिली है। डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की कहानियों की कालक्रम के अनुसार सूची प्रस्तुत की, जिसमें कहानी शास्त्र का ऐसा महत्वपूर्ण विवेचन है कि प्रेमचंद के कहानी-दर्शन के सभी सूत्र और बिंदु स्पष्ट हुए हैं।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इसी संदर्भ में यह भी स्पष्ट किया है कि प्रेमचंद के सम्मुख अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सरोकार थे, जिन्हें अपने कथात्मक विन्यास में उन्होंने भली-भांति प्रस्तुत किया। स्वराज्य स्वसंस्कृति, स्वभाषा, राष्ट्रीय जागरण, स्वदेशी तथा समतामूलक लोकतंत्र सामाजिक समन्वय, वैषम्य- विरोध, मानवीय एकता, प्राचीन मूल्यों का संरक्षण मध्ययुगीन जड़ता और पाखंड़ की आलोचना धार्मिक सद्भाव, आधुनिकता और जागृति आदि राष्ट्रीय-सांस्कृतिक सरोकारों का प्रतिफल है उनका कथा साहित्य। प्रेमचंद ने गांव के जीवन को अपनी अभिलाषाओं का स्वर्ग माना था और पश्चिमी सभ्यता की कृत्रिमता का विरोध किया था। डॉ. गोयनका ने स्पष्ट रूप से कहा है कि प्रगतिशील दृष्टि से केवल सात-आठ कहानियों तथा एकाध उपन्यास की चर्चा करके, उनकी समग्र भारतीयता और उनके मानवीय

बोध तथा उनकी मूल्यपरक सोच को खंडित करने का प्रयास किया गया है। प्रेमचंद के चिंतन और उनकी सृजनधर्मिता को खंड-खंड में देखना उचित नहीं है। 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि- 'यह प्रगतिशील आलोचना-विवेक प्रेमचंद की समग्रता की मूर्ति एवं विविधता के एकता को खंडित करता है तथा उनकी कहानियों के विराट् संसार को जैसे शून्य में बदल देता है। विश्व-साहित्य के समीक्षा-इतिहास में यह एकमात्र ऐसा दुस्साहस कहा जा सकता है, जहां लेखक को ही लेखक के विरुद्ध खड़ा किया हो तथा विराट्ता को शून्य में और शून्यता को विराट्ता में बदलने की साहित्यिक चेष्टा की गई हो। प्रेमचंद की कहानियों का यह अध्ययन ऐसी सभी अवधारणाओं और निष्कर्षों के जंजाल को तोड़कर कहानीकार प्रेमचंद के संबंध में सर्वथा नवीन अवधारणाएं प्रस्तुत करता है और प्रमाणों-साक्ष्यों से उन्हें सिद्ध भी करता है। अतः मेरा विश्वास है कि यह अध्ययन पाठकों को एक नए प्रेमचंद से परिचित कराएगा, जिसे इससे पूर्व न तो खोजा गया था, न देखा गया था, बल्कि उसे दबा दिया गया था।'[2]

प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य सभी के लिए है। वह हिंदी साहित्य के लिए भी है और अन्य साहित्य के लिए भी है। वह संपूर्ण मानवता की श्रेष्ठ और बहुमूल्य धरोहर है। ऐसा साहित्य यदि किसी एक प्रकोष्ठ में बंद किया जाए, तो सर्वथा उचित नहीं है। मानवीय बोध के कारण ही प्रेमचंद की रचनाओं का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है और आज भी अनेक अध्ययन और अनुसंधान हो रहे हैं, जिसके लिए डॉ. गोयनका के समग्र प्रदेय को प्रामाणिक आधार माना जा रहा है।

डॉ. गोयनका के अनुसार प्रेमचंद ने अपने कृतित्व के दो मूल उद्देश्य बताए थे-

1. देश के लिए स्वराज्य की प्राप्ति और
2. भारतीय आत्मा की रक्षा

प्रेमचंद ने एक ऐसे नए कथायुग का प्रवर्तन किया था। 'जिसमें भारतेंदु युग, द्विवेदी युग और गांधीवादी युग के रूप में अतीत, वर्तमान और भविष्य-तीनों कालों की चेतना एवं सरोकार इतने संश्लिष्ट और घनीभूत हो गए हैं कि प्रेमचंद के कहानी-दर्शन में एकरूप होकर साकार हो उठे। अतः यह कहानी-दर्शन वास्तव में भारत का नया युग-दर्शन था, जो साहित्य के माध्यम से मध्ययुगीन तथा उपनिवेशी भारत का एक स्वतंत्र एवं आधुनिक राष्ट्र के रूप में कायाकल्प करना चाहता था और कहानियों में नए भावों, नए विचारों, नए सरोकारों तथा नए चरित्रों का दिग्दर्शन कराकर इसे साकार करना चाहता था।'[3] डॉ. गोयनका प्रेमचंद के साहित्य-सिद्धांत को 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' मानते हैं, जो जीवन को समग्रता में देखता है। 'प्रेमचंद की कहानियां पाठक के हृदय, मन, मस्तिष्क तथा आत्म-सभी को संस्कारित, जागृत एवं गतिशील बनाती हैं। वे भारतीय चेतना, भारतीय विवेक से पाठक की आत्मा की शिल्प-संरचना करते हैं। उसे आधुनिक बनाते हैं और उसे देश, संस्कृति एवं मानवीयता की रक्षा के लिए सन्नद्ध करते हैं।'[4]

डॉ. कमल किशोर गोयनका की प्रेमचंद संबंधी प्रस्थापनाएं महत्वपूर्ण हैं। वे निम्नलिखित हैं-

1. प्रगतिशील या किसी भी अन्य खेमे में समाहित कर प्रेमचंद की समग्र रचनात्मक विराटता को खंडित करने के प्रयासों का विरोध करना।

2. उनको केवल प्रगतिवादी ही नहीं, अपितु मानवीय जीवन-मूल्यों और राष्ट्रीय अस्मिता के सजग प्रहरी के रूप में, उनकी समग्र रचनाधर्मिता को राष्ट्रीय अस्मिता से सम्पृक्त करके देखना और उनकी कालजयी कथात्मक कृतियों को विश्व-पटल पर विशेष अध्ययन के साथ प्रस्तुत करना, साथ ही साथ उनकी समग्र कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन-विवेचन प्रस्तुत करना, जिससे प्रेमचंद के चिंतन की विविध स्थितियों और उनके नैरन्तर्य की सूक्ष्म तरंगों को समझने का प्रयास किया जा सके।

3. प्रेमचंद द्वारा नए युग में कथ्य के नए-नए प्रतिमान स्थापित करना।

4. कथ्य, चरित्र, संवाद और शिल्प के प्रभावशाली तेवर प्रस्तुत करना, जिसमें जीवंतता भी है और सच्चाई भी है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद की मूल्यान्वेषी और मूल्य समावेशी कहानी-यात्रा को भारतीयता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा-परखा है तथा यह अनुभव किया है कि उनकी रचनात्मकता भारतीय चेतना तथा विवेकधार्मिता से अनुप्राणित है। उनमें आत्मबोध, स्वत्व तथा अस्मिता की पहचान और प्रतिष्ठा की आकांक्षा तथा सबसे जुड़ने और जोड़ने की लालसा है। उसमें परंपरा का प्रवाह है तो आधुनिकता का आग्रह भी है। वह यथास्थितिवादी है तो प्रगतिशील भी है। उसमें क्रांतिकारी भी है और समन्वयशीलता भी। वह विराटता का दर्शन है तो दर्शन की विराटता भी। इस परिप्रेक्ष्य में वह भारतीय संस्कृति, नव्यताबोध, स्वाधीनता और मानवीय मूल्यों की व्याख्याकार और संवाहिका है इसीलिए डॉ. गोयनका ने यह अपील की है कि 'यदि हम भारत को 'इंडिया' के स्थान पर भारत बनाए रखना चाहते हैं तो प्रेमचंद के कहानी-संसार की मूल आत्मा 'भारतीयता को अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक जीवन का अंग बनाना होगा।'[5]

कथा-सम्राट जीवन का प्रेमचंद की लगभग संपूर्ण कहानियां आज-अगर हमारे सामने हैं तो उसमें डॉ. गोयनका की सराहनीय भूमिका है। यद्यपि उनके साहित्य को खोजने के प्रयास निरंतर होते रहे हैं। किंतु गोयनकाजी की जिज्ञासा, गवेषणा और तपः साधना ने प्रेमचंद को जिस संपूर्णता के साथ उपस्थित किया है, उसकी कोई तुलना नहीं है। विभिन्न कोणों से प्रेमचंद को जांचने-परखने तथा उनके साहित्य के अन्वेषण-अनुसंधान के लिए संकल्पित गोयनकाजी की लेखनी की नवीनतम भेंट 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' उन सभी तथ्यों और संदर्भों को समेटे हुए है जो कहानी के अंतस्तल तक पहुंचने में किसी भी पाठक को आवश्यक हो सकते हैं। प्रेमचंद की कहानियों की संख्या, रचनाकाल, प्रकाशन वर्ष, हिंदी-उर्दू की कहानी? कहानी-लघु कहानी, प्रथम प्रकाशन आदि की दृष्टि से अब तक जो अनिश्चय और भ्रम की स्थिति रही है, उसका निराकरण इस पुस्तक में किया गया है। यह न केवल प्रेमचंद

की कहानियों का कालक्रमानुसार अनुशीलन है, अपितु उनकी कहानी-जगत में प्रवेश, कहानी-दर्शन और विभिन्न परिस्थितियों और मनोदशाओं में सृजित उनकी कहानियों के पूर्वापर संबंधों के आलोक में एक रचनाकार की विकासशीलता के उद्‌घाटन का सार्थक प्रयास भी है। जिन पुष्ट प्रमाणों, अभिलेखों, तथा महत्वपूर्ण दस्तावेजों के आधार पर कहानीकार प्रेमचंद को यहां उपस्थित किया गया है वहां नवीनतम आभा-का प्रस्फुटित हो जाना स्वाभाविक है और जब लेखक यह कहता है कि 'यह अध्ययन पाठकों को एक नए प्रेमचंद से परिचित कराएगा जिसे इससे पूर्व न तो खोजा गया था, न देखा गया था।'[6]

हिंदी की पहली कहानी और पहल आधुनिक हिंदी कहानी को लेकर विचार-विमर्श आज भी जारी है। इसलिए डॉ. गोयनका ने इस विषय पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है। 'प्रेमचंद-कहानीकार का इतिहास' में उन्होंने उन सभी विचारकों, जिन्होंने हिंदी की प्रथम कहानी के प्रश्न के निराकरण का प्रयास किया है, को संदर्भित करते हुए अपना निर्णय दिया है कि 'हिंदी की पहली आधुनिक कहानी के निर्धारण में सन् 1915-16 में प्रकाशित 'सौत' 'पंचपरमेश्वर' तथा 'उसने कहा था' कहानियों में से किसी एक को चुनने से यह अधिक उचित होगा कि इसका श्रेय 'सोजेवतन' की कहानियों को दिया जाए। 'सोजेवतन' से आधुनिक कहानी का श्रीगणेश होता है और यदि इसका श्रेय हिंदी और उर्दू की कहानियों को मिलता है तो हिंदी के आलोचकों को सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।'[7] इस अवधारणा के समर्थन में अमृतराय का यह कथन अवश्य सहायक है 'हिंदी की आधुनिक कहानी का इतिहास- चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' से शुरू मानना गलत है क्योंकि प्रेमचंद की कहानियां- 'बड़े घर की बेटी' (दिसंबर, 1940) 'नमक का दारोगा'(1913 ई.), 'रानी सारंधा' (अगस्त-सितंबर, 1910), 'राजा हरदौल' (1913), 'आल्हा' (जनवरी, 1912), 'अमावस्या की रात' (अप्रैल 1913) इत्यादि उससे पहले प्रकाशित हो चुकी थीं।'[8] प्रेमचंद की ये सभी कहानियां उर्दू में लिखी गई हैं। हिंदी-उर्दू में अभेद होने के कारण गोयनकाजी ने इन कहानियों को हिंदी कहानी स्वीकार किया है।[9]

कमल किशोर गोयनका ने अपने जीवन का तीन-चौथाई समय प्रेमचंद के अनुशीलन में व्यतीत किया है। उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि हिंदी कथा साहित्य में आज तक यदि कोई मूर्धन्य कथाकार बना हुआ है तो वह प्रेमचंद ही हैं जिनके अंदर से हिंदी के अनेक समकालीन और पूरवर्ती कथाकारों का उद्‌भव हुआ है। प्रेमचंद को अपनी एकनिष्ठ साधना से कालजयी कर देने का जो कार्य गोयनकाजी ने किया है वह हमारे समय और आगामी समय का सर्जनात्मक भूगोल भी है और स्मृति में जीवित रहने वाला इतिहास भी। इस दृष्टि से कमल किशोर गोयनकाजी का जो प्रेमचंदीकरण हुआ है, वह तो हिंदी साहित्य की एक अभूतपूर्व घटना है। गोयनकाजी ने भले ही अन्य बहुत सा महत्वपूर्ण कार्य किया है, लेकिन जब तक प्रेमचंद का अस्तित्व हिंदी साहित्य में रहेगा तब तक उनके सहगामी बनकर कमल किशोर गोयनका भी साहित्य के फलक पर स्थापित रहेंगे। प्रेमचंद के साहित्य के अध्ययन में गोयनकाजी की दृष्टि का नाभिकेंद्र केवल रचनाकार की रचनाशीलता रही है। इस रचनाशीलता के अक्षांश और

देशांतर उनको कभी-भारतीयता तक कभी संस्कृति तक और कभी आस्था तक खींच ले जाते हैं। इन सभी अक्षों में विदेशीपन, एकांगिता, वर्गीयता, विद्वेष और तिरस्कार का एक ऐसा नकार रहता है तो अतीत के ज्योतिर्मय मूल्यबोध को वर्तमान से जोड़ता है, वामपंथ को तार-तार करता है और गांधी की सात्विकता को आधार बनाता है।

डॉ. गोयनका ने अत्यंत गौरव के साथ उल्लेख किया है कि हिंदी के कथात्मक संसार में प्रेमचंद के पदार्पण से एक नई चेतना का संसार हुआ था, साथ ही भारतीय जन-जीवन में नवीन क्रांति का सूत्रपात हुआ था। आधुनिक समाज की स्वस्थ संरचना का जो स्वप्न प्रेमचंद ने देखा उसे उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा साकार किया और युगीन परिप्रेक्ष्य में रखकर डॉ. गोयनका ने उन्हें विश्व के बहुसंख्यक, पाठकों, अन्वेषियों, समीक्षकों, इतिहासकारों तथा अनुवादकों को प्रामणिकता के साथ सुलभ कराया। शास्त्रीयता के जटिल बंधनों को नकारते हुए लोकजीवन के निकट की भाषा उर्दू- हिंदी मिश्रित खड़ी बोली को प्रेमचंदजी ने अपने सृजन का माध्यम बनाया। भारतीय समाज में तीव्रता से हो रहे परिवर्तनों पर उनकी गहरी दृष्टि रही, इसीलिए उनका साहित्य सामयिक को कल्पना से मोड़कर आदर्शमय जीवन के प्रतिष्ठापन के लिए परिस्थिति जन्म यथार्थ से जोड़कर देखा और पात्र, स्थान तथा विषय की दृष्टि से हिंदी कथा साहित्य को इतनी व्यापकता दी तथा उस ऊंचाई तक पहुंचा दिया कि डॉ. गोयनका जैसे समीक्षक को कहना पड़ा कि वहां तक आज के समय का कोई भी कथाकार नहीं पहुंच सका।

प्रेमचंद एक मानवतावादी रचनाकार थे, इसीलिए उनकी समग्र रचनाधर्मिता में सभी प्राणियों के प्रति अपार संवेदना व्यक्त हुई है। वे लोकजीवन के समर्थ द्रष्टा थे और किसी विशिष्ट तर्क या समाज की अपेक्षा मानवता के अधिक पक्षधर थे। लोक के जिस व्यक्ति की अंतर्कथा वे लिखने लगते थे, वहां वे उसी आम आदमी की भूमिका में पहुंच जाते थे और उसकी पीड़ा, अनुभूति और द्वंद्व को अपनी सहज वाणी से सहज रूप में अभिव्यक्त करने लगते थे। उनके करुणा की यह तादात्म्य स्थिति कलात्मक प्रस्तुति पाठकों तक बड़ी सरलता, सहजता और तीव्रता से संप्रेषित हो जाती थी। डॉ. गोयनका ने प्रत्येक दृष्टिकोण से उनकी अनुभूति को समझा-परखा और उनके जीवन-दर्शन, सृजन प्रयोजन और उनकी साहित्यिक एवं शास्त्रीय मान्यताओं पर एक साथ दृष्टि रखी, तब उनकी चिंतन-भूमि पर पहुंचकर, उनके संपूर्ण प्रदेय को प्रामाणिकता और पर्याप्त साक्ष्यों के साथ प्रस्तुत किया। ऐतिहासिक दृष्टि से डॉ. गोयनका का यह अत्यंत विशिष्ट, महत्वपूर्ण एवं प्रथम कार्य है।

प्रेमचंद-साहित्य के सार्थक एवं सोद्देश्य कथ्य के आलोक में डॉ. गोयनका ने अनेक मूल बिंदुओं को उद्घाटित किया। मानवीय उन्नयन, उदात्त जीवन-मूल्य, समत्वभाव, वैचारिक जागृति, मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी आदि प्राणियों के प्रति संवेदना, सहानुभूति एवं करुणा का बोध, अपसंस्कृति का विरोध भारतीयता के स्वस्थ एवं अनिवार्य अंग थे, जिन पर अपनी समग्रता के साथ सर्वप्रथम डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपनी सारग्राही दृष्टि केंद्रित की और उनके कथा-संसार का सांगोपांग विवेचन किया। □

संदर्भ सूची

1. कमल किशोर गोयनका- प्रेमचंद पत्रकोश, भूमिका, पृष्ठ-2
2. कमल किशोर गोयनका- प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन, भूमिका, पृष्ठ-3
3. वही, पृष्ठ- 38
4. वही, पृष्ठ-52
5. कमल किशोर गोयनका- प्रेमचंद : कहानीकार का इतिहास, भूमिका, पृष्ठ-3
6. कमल किशोर गोयनका- प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन,भूमिका, पृष्ठ-1
7. कमल किशोर गोयनका- प्रेमचंद : कहानीकार का इतिहास, भूमिका, पृष्ठ-44
8. वही, पृष्ठ-18
9. वही, पृष्ठ-19।

अनुसंधान और आलोचना के शिखर पुरुष

व्यास मणि त्रिपाठी

ऐसा बहुत कम हुआ है कि किसी साहित्यसेवी ने अपने जीवन का अधिकांश समय किसी एक रचनाकार को खोजने और खोलने में अर्पित किया हो। डॉ. कमल किशोर गोयनका एक ऐसे अन्वेषक, आलोचक और संपादक हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा, अपना श्रम और अपने जीवन का लगभग तीन चौथाई भाग सिर्फ प्रेमचंद को समर्पित कर दिया है। कभी डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के लिए ऐसा ही किया था। 'निराला की साहित्य साधना' से कवि को न केवल एक नई आभा मिली बल्कि उसे सार्वभौम स्वीकृति भी प्राप्त हुई। यह बड़ा और कठिन कार्य होते हुए भी डॉ. शर्मा के लिए थोड़ा आसान इसलिए रहा होगा कि उन्हें दीर्घ अवधि तक निराला का सानिध्य प्राप्त था किंतु डॉ. गोयनका का जन्म ही प्रेमचंद के निधन के दो वर्ष बाद हुआ है। ऐसे में प्रेमचंद संबंधी ज्ञात-अज्ञात, प्राप्य-अप्राप्य साहित्यिक सामग्री का अनुसंधान, विश्लेषण और क्रमिक व्यवस्थापन का कार्य डॉ. गोयनका के लिए डॉ. शर्मा की तरह आसान नहीं रहा होगा। कहने के लिए तो यह भी कहा जा सकता है और कहा ही जाता है कि शोध-क्षेत्र में डॉ. गोयनका के प्रवेश से पहले प्रेमचंद पर ढेरों सामग्री उपलब्ध थी। अमृतराय की पिता पर लिखी जीवनी 'प्रेमचंद-कलम के सिपाही' तथा मदन गोपाल की 'कलम का मजदूर' जैसी पुस्तकें चर्चा में थीं। उपन्यास सम्राट को लेकर अनेकानेक शोध-कार्य किए जा रहे थे। ऐसे में प्रेमचंद तक पहुंचने के लिए राजमार्ग न सही पक्की सड़क तो अवश्य थी फिर डॉ. गोयनका ने पथ की दुर्गमता का इतना ढिंढोरा क्यों पीटा? प्रेमचंद के प्रचुर साहित्य की अनुपलब्धता को अनेकशः वाद-विवाद-संवाद का विषय क्यों बनाया? आदि प्रश्न बार-बार उठाए गए लेकिन डॉ. गोयनका ने उन सभी बौछारों का न केवल डटकर सामना किया बल्कि प्रामाणिकता के अस्त्रों से सबका मुंह भी बंद कर दिया। उन्होंने प्रेमचंद को अपनी गवेषणा, अनुसंधान और आलोचना का विषय बनाए जाने के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखा हैं- 'प्रेमचंद के छोटे पुत्र अमृतराय ने वर्ष 1962 में प्रेमचंद की जीवनी के साथ आठ पुस्तकें उनके अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की प्रकाशित की थीं जो इतने विपुल अनुपलब्ध साहित्य को खोजने का अनोखा उदाहरण था। हिंदी संसार में इसका दिल खोलकर स्वागत हुआ और यह मान लिया गया कि प्रेमचंद का संपूर्ण प्राप्य-अप्राप्य साहित्य सामने आ चुका है, किंतु इन ग्रंथों के प्रकाशन के दो वर्ष बाद मैंने जब दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रेमचंद पर अपना शोध-कार्य शुरू किया तो

मुझे धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा कि संपूर्ण साहित्य की खोज का दावा ठीक नहीं है और उनके निजी जीवन के दस्तावेजों तथा साहित्य की खोज के सिलसिले को कायम रखना होगा। इस प्रकार प्रेमचंद साहित्य पर शोध-कार्य के साथ उनके जीवन से संबंधित दस्तावेजों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफों के साथ उनके अन्य लुप्त एवं अज्ञात साहित्य को भी खोजने एवं समय-समय पर प्रकाशित करने का दायित्व भी जुड़ गया।' (गवेषणा, अंक-111, पृष्ठ सं. 9)। कहना न होगा कि डॉ. गोयनका ने इसे ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया और लगभग पांच दशकों से वे इस साधना-पथ पर निरंतर अग्रसर हैं। इसकी सफलता का परिणाम है कि उनकी प्रेमचंद संबंधी दो दर्जन से अधिक पुस्तकें हैं- प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान, प्रेमचंद कुछ संस्मरण, प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी, प्रेमचंदः अध्ययन की नई दिशाएं, प्रेमचंद विश्वकोश, प्रेमचंद चित्रात्मक जीवनी, प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां, प्रेमचंद-रचना संचयन, प्रेमचंद के नाम पत्र, प्रेमचंद संपूर्ण बाल साहित्य, प्रेमचंद और रंगभूमि उपन्यास, प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां, प्रेमचंद पत्र कोश, प्रेमचंद-कहानी रचनावली, प्रेमचंद-कालजयी कहानियां, प्रेमचंद-वाद प्रतिवाद और संवाद, प्रेमचंद= अनछुए प्रसंग, प्रेमचंद=राष्ट्र प्रेम की कहानियां, प्रेमचंद=संपूर्ण दलित कहानियां, प्रेमचंद-कहानी कोश, प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन आदि। इन पुस्तकों ने ही डॉ. गोयनका को 'प्रेमचंद विशेषज्ञ' के रूप में ख्याति दिलाने में आधार का काम किया है।

गोयनका संकल्पधर्मा होने के साथ-साथ अध्यवसायी और परिश्रमी भी हैं। 'प्रेमचंद विश्वकोश' उनकी दस वर्षों की अनथक साधना का परिणाम है। प्रेमचंद के अनछुए प्रसंगों, घटनाओं, तथ्यों तथा उनकी अप्रकाशित कहानियों, लेखों, पत्रों, दस्तावेजों को खोजने में डॉ. गोयनका ने जो तल्लीनता और तन्मयता प्रदर्शित की है वह हिंदी जगत में अनुपमेय है। प्रेमचंद से संबंधित बैंक खातों, प्रमाण-पत्र सेवा- पुस्तिका आदि की खोज भी कम श्रमसाध्य और विस्मयजनक नहीं है। प्रेमचंद के साक्षात्कार, उनकी निजी डायरियां, रायल्टी के लिए प्रकाशकों से किए गए उनके पत्राचार आदि को खोजना और उनकी असंदिग्धता की जांच करना भी कम चुनौतीपूर्ण और ऊबाऊ नहीं कहा जा सकता। फिर भी डॉ. गोयनका असंख्य कठिनाइयों, असुविधाओं, विघ्नों तथा बाधाओं की परवाह किए बिना अपने कर्म-पथ पर सतत गतिमान रहे तो यह उनकी जीवटता, कर्मठता, साहसिकता और समर्पण-भाव का ही परिचायक है। मार्क्सवादियों द्वारा बार-बार चिढ़ाने और नीचा दिखाने के बावजूद अगर वे अपनी सिद्धि की तरफ बढ़ते रहे तो यह एक अनन्य साधक की आस्था और विश्वास का ही सुफल है। यहां यह भी ध्यातव्य है कि अकादमिक शोध के नाम पर आज जो कुछ भी फैशन में है उससे बिलकुल अलग डॉ. गोयनका ने अपना गवेषणात्मक कार्य किया है। उन्होंने शोध का जो प्रतिमान निर्मित किया है उसका संस्पर्श आज की पीढ़ी की शक्ति-सामर्थ्य से परे इसलिए है कि उसके पास न धैर्य है, न समय, न अध्यवसाय है न परिश्रम। येन-केन प्रकारेण उपाधि-प्राप्ति की लालसा में वह शोध-कार्य संभव नहीं है जो डॉ. कमल किशोर गोयनका ने किया है। यही कारण है कि उनका नाम प्रेमचंद के साथ इस प्रकार जुड़ गया है कि उसे आसानी से विलगा पाना अत्यंत दुष्कर है।

प्रेमचंद साहित्य के अन्वेषण और अनुशीलन के माध्यम से डॉ. कमल किशोर गोयनका ने कुछ नई स्थापनाएं की हैं। हिंदी की पहली कहानी और पहली आधुनिक हिंदी कहानी को लेकर माथा-पच्ची आज भी जारी है। गोयनका ने इस मुददे पर काफी गंभीरता से विचार किया है। उन्होंने उन सभी आलोचकों जिन्होंने पहली कहानी के प्रश्न को सुलझाने का प्रयत्न किया है उनको संदर्भित करते हुए अपना मंतव्य दिया है कि 'हिंदी की पहली आधुनिक कहानी के निर्धारण में सन 1915-16 में प्रकाशित 'सौत', 'पंच परमेश्वर' तथा 'उसने कहा था' कहानियों में से किसी एक को चुनने से यह अधिक उचित होगा कि इसका श्रेय 'सोजे वतन' की कहानियों को दिया जाए। 'सोजे वतन' से आधुनिक कहानी का श्रीगणेश होता है और यदि इसका श्रेय हिंदी और उर्दू की कहानियों को मिलता है तो हिंदी के आलोचकों को सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।' (प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन, पृष्ठ 44)। यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या उर्दू कहानियों को हिंदी की आधुनिक कहानी के जन्म का श्रेय दिया जा सकता है? इस प्रश्न के उतर में डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद का उर्दू-प्रेम, उर्दू से हिंदी में आने के कारणों का सविस्तार उल्लेख किया है। साथ ही यह प्रश्न भी उठाया है कि 'क्या प्रेमचंद के संदर्भ में हिंदी-उर्दू की कहानियों का कोई भेद है या नहीं है और यदि है तो क्या हिंदी के आलोचकों तथा शोध-कर्ताओं ने प्रेमचंद संबंधी अपने आलोचनात्मक एवं शोधात्मक कार्यों में उनकी केवल हिंदी में प्रकाशित कहानियों तथा उपन्यासों का ही अध्ययन-विवेचन किया है अथवा अपनी नीति के विरुद्ध प्रेमचंद द्वारा केवल उर्दू में प्रकाशित रचनाओं को भी अपने अध्ययन में सम्मिलित कर लिया है? असल में, इस प्रश्न के समाधान से ही प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियों के भेद-अभेद का निर्णय हो सकेगा और तभी हम हिंदी की पहली आधुनिक कहानी का भी निर्णय कर सकेंगे।'(वही, पृष्ठ 19)।

हिंदी-उर्दू के भेद-अभेद वाले प्रश्न के उत्तर में डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू संबंधी अवधारणा को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि प्रेमचंद उर्दू को मुसलमानों की तथा हिंदी को हिंदुओं की भाषा मानने को तैयार नहीं थे। इसके प्रमाण में उन्होंने सन 1930 के 'जमाना' में प्रेमचंद द्वारा लिखित लेख की इन पंक्तियों को उद्धृत किया है -'उर्दू न मुसलमानों की बपौती है, ना हिंदुओं की। उसके लिखने और पढ़ने का हक दोनों को हासिल है। हिंदुओं का उस पर हक पहला है क्योंकि वह हिंदी की एक शाखा है, हिंदी के पानी और मिट्टी से उसकी रचना हुई और सिर्फ कुछ थोड़े से अरबी और फारसी शब्दों के दाखिल कर देने से उसकी असलियत नहीं बदल सकती।' (वही, पृष्ठ 23)। जाहिर है प्रेमचंद के अनुसार हिंदी और उर्दू तत्वतः एक ही हैं अंतर है तो केवल लिपि का। जहां तक प्रेमचंद के उर्दू-प्रेम की बात है तो उसे दर्शाने के लिए गोयनका ने उस पत्र का उल्लेख किया है जो उन्होंने 'साकी' के एडीटर को लिखा था-'मैं उर्दू के लिए न सिर्फ जिंदा हूं बल्कि ज्यादा जोरों से जी रहा हूं।'(वही, पृष्ठ 28)। प्रेमचंद हिंदी में आने के बाद भी उर्दू में लिखते रहे जिसका प्रमाण उनकी कहानी 'कफन' है जिसकी रचना पहले उर्दू में हुई और वह पहले उर्दू में ही 'जामिया' के दिसंबर, 1935 के अंक में छपी। अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जिस प्रेमचंद ने हिंदी-उर्दू में भेद नहीं माना, दोनों के संस्कारों एवं संवेदनाओं में कोई बुनियादी अंतर

नहीं माना, उन्हीं की कहानियों को हिंदी-उर्दू के दो वर्गों में बांटकर अध्ययन करना क्या उचित होगा? डॉ. गोयनका की शिकायत है कि 'प्रेमचंद की हिंदी और उर्दू कहानियों को अलग-अलग भाषाओं की कहानियां बताकर उनमें भेद तो खूब किया गया है जबकि इन दोनों भाषाओं में प्रकाशित कहानियों को हिंदी की एक धारा में रखने के वैज्ञानिक प्रयास नहीं हुए हैं।' (वही, पृष्ठ 19)। काश! ऐसे प्रयत्न हुए होते तो 'सोजेवतन' से आधुनिक हिंदी कहानी का श्रीगणेश मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होती और इस तरह डॉ. गोयनका के अनुसार हिंदी कहानी के इतिहास का एक बड़ा प्रश्न सुलझ गया होता।

डॉ. गोयनका ने अपनी विवेचन-क्षमता, अकाट्य तर्क-शैली और पुष्ट प्रमाणों के आधार पर प्रेमचंद की कहानियों की संख्या को भी सुलझाने का प्रयत्न किया है। उनका यह कार्य इसलिए भी और महत्वपूर्ण हो गया है कि स्वयं प्रेमचंद को भी अपनी कहानियों की संख्या ठीक-ठीक ज्ञात नहीं थी। गोयनका के अनुसार प्रेमचंद ने अपनी कहानियों की संख्या 250 मानी थी। उनके समालोचकों विशेषतः डॉ. रामरतन भटनागर, डॉ. इंद्रनाथ मदान, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. देवराज उपाध्याय, डॉ. गौतम सचदेव, डॉ. इंद्र कुमार सिन्हा, जाफर रजा, आदि ने उनकी कहानियों की संख्या 250 से लेकर 400 के बीच तक मानी है। उनके सुपुत्र अमृतराय ने 'प्रेमचंद=कलम का सिपाही' में 224 कहानियों की सूची दी है। इससे प्रेमचंद के पाठकों को होने वाली असुविधाओं तथा संदेहों का अंदाजा लगाया जा सकता है। प्रेमचंद की कहानियों की संख्या का निर्धारण बहुत जरूरी था जिसे डॉ. गोयनका ने पूरा करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती प्रयासों की प्रामाणिक विवेचना की है और उन न्यूनताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जिनसे प्रेमचंद की कहानियों की सही संख्या निर्धारित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। डॉ. गोयनका के अनुसार 'प्रेमचंद की 298 उपलब्ध कहानियां हैं तथा 3 अनुपलब्ध कहानियों का विवरण है। इस प्रकार प्रेमचंद की कहानियों की कुल संख्या 301 है।' (वही, पृष्ठ 82)। संपूर्ण कहानियों की काल-क्रमानुसार सूची तैयार करना भी एक जटिल कार्य था क्योंकि कालक्रम से अध्ययन और समीक्षा का अभाव था। यद्यपि कुछ शोधकर्ताओं तथा समीक्षकों ने प्रेमचंद की कहानियों की सूची तो बनाई थी लेकिन वे न तो पूर्ण थीं और न कालक्रम की दृष्टि से ही बनाई गई थीं। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने 'प्रेमचंद की कहानियों की कालक्रमानुसार सूची' तैयार की है और यह दावा भी किया है कि 'प्रेमचंद की कहानियों के कालक्रमानुसार अध्ययन का यह पहला प्रयास है। इससे पूर्व किसी आलोचक ने न तो इस दृष्टि से सोचा है और न कहानियों को कालक्रम में पढ़ने तथा परखने की चेष्टा की है।' (वही, भूमिका) इसमें सच्चाई भी है क्योंकि उन्होंने जिस वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लिया है उसमें किसी प्रकार के भ्रम की कोई गुंजाइश नहीं है। इस सूची की विशेषता यह है कि वर्ष के आधार पर कहानी-तालिका बनाई गई है। प्रत्येक वर्ष की कहानियों के लिए सात कॉलम बनाए गए हैं- यथा-क्रम संख्या, कहानी का हिंदी शीर्षक, कहानी का उर्दू शीर्षक, प्रथम प्रकाशन-पत्रिका/पुस्तक, प्रथम/अन्य संकलन-हिंदी, प्रथम/अन्य संकलन उर्दू। यह एक श्रम-साध्य कार्य था जिसे लेखक की निष्ठा और वैज्ञानिक दृष्टि ने पूर्णता प्रदान कर प्रेमचंद के अध्येताओं का मार्ग सुगम कर दिया है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने यह भी सिद्ध किया है कि प्रेमचंद महान कथाकार के साथ-साथ महान शास्त्रकार भी थे। उनका यह मानना है कि जैसा कहानी-शास्त्र प्रेमचंद ने हिंदी जगत को दिया है वैसा कोई अन्य नहीं दे पाया। यहां तक कि मार्क्सवादियों का कहानी-चिंतन भी प्रेमचंद का विकल्प प्रस्तुत नहीं कर सका है। डॉ. गोयनका ने तो यहां तक लिखा है- 'न उनमें (मार्क्सवादियों में) इतना साहस ही हुआ कि वे प्रेमचंद के कहानी-दर्शन को चुनौती दे सकें।' (वही, पृष्ठ 223)। डॉ. गोयनका का यह भी मानना है कि जिस प्रकार हिंदी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद ने नवयुग का सूत्रपात किया उसी प्रकार साहित्य के पुराने निष्कर्षों और प्रतिमानों का भंजन कर नवयुग के अनुकूल नए प्रतिमानों की स्थापना भी की किंतु यह ध्यातव्य है कि उनका साहित्य-चितंन नवीनता के साथ पुरातन से भी जुड़ा था। उन्होंने काव्य की आत्मा 'रस' के साथ साधारणीकरण के सिद्धांत को भी अपनाया था। उनके साहित्य-शास्त्र में भारतीय काव्यशास्त्र का महत्वूपर्ण योगदान है फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उनमें परंपरा के प्रति अंधभक्ति नहीं थी। डॉ. गोयनका यह लिखते हैं कि -'उन्होंने पुरातन से वही ग्रहण किया जो नई शताब्दी के लिए उपयोगी था तथा नवीन युग से भी वही स्वीकार किया जो हमारी पुरातन भारतीय चेतना से संपृक्त हो सकता था। प्रेमचंद की दृष्टि निश्चय ही नवीनता की ओर थी, परंतु उनकी नवीनता पूर्णतः न तो पश्चिमी थी और न आधुनिकता की नकल थी, न अविवेकी होकर उसमें बहने का पागलपन था, परंतु उनमें पुरातन की पवित्र 'भारतीय आत्मा' तथा श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को अक्षुण्ण रखने एवं आधुनिक विवेक से जीवन जीने का संकल्प था।'(वही, पृष्ठ 197)। इसी आधार पर डॉ. गोयनका उनके कहानी-दर्शन को हिंदी-उर्दू भाषा के सीमित क्षेत्र का दर्शन नहीं मानकर संपूर्ण भारत का कहानी-दर्शन मानते हैं। उनका यह दावा भी है कि ऐसा दर्शन वही दे सकता है जो राष्ट्र के सरोकारों, प्रश्नों, संघर्षों और चुनौतियों से व्याकुल होकर राष्ट्रीय मन-मस्तिष्क का चित्रण कर सकता हो। प्रेमचंद की व्यापक दृष्टि और अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य से किसी को असहमति नहीं हो सकती इसीलिए डॉ. गायेनका की तार्किकता में संदेह के लिए कोई जगह नहीं है। वैचारिक संवेदना का विस्तार रचना और आलोचना दोनों के उद्देश्य में शामिल है। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने सर्जना का पथ तो नहीं चुना लेकिन अनुसंधान के मार्ग पर चलते हुए जहां कहीं भी उन्होंने आलोचकीय दायित्व का निर्वाह किया है वहां उनका उद्देश्य वैचारिक संवेदना का विस्तार ही रहा है। प्रेमचंद रचना संचयन' के पुरोवाक पृष्ठ (ब्लर्ब) पर उन्होंने प्रेमचंद का जो यह कथन उद्धृत किया है- 'हमारी कसौटी पर वह साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाशन हो- जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।' वही उनकी आलोचना दृष्टि का केंद्र है। उसी को आधार बनाकर वे प्रेमचंद के कथा-चिंतन, कथा-प्रक्रिया, और लेखकीय संकल्प को उजागर करने का प्रयास करते हैं। उनकी प्रतिबद्धता सदैव 'अपने देश की संस्कृति तथा अस्मिता से है तथा उस आधुनिक भारतीयता से है, जिसमें भारतीय जन-मानस सांस लेता है।' डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की मूल्यान्वेषी और मूल्य समावेशी कथा-यात्रा को भारतीयता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में वह भारतीय संस्कृति, नव्यताबोध, स्वाधीनता और मानवीय मूल्यों की

व्याख्याकार तथा संवाहिका है। इसीलिए डॉ. गोयनका यह अपील करते हैं कि 'यदि हम भारत को 'इंडिया' के स्थान पर 'भारत' बनाए रखना चाहते हैं तो प्रेमचंद के कहानी-संसार की मूल आत्मा 'भारतीयता' को अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक जीवन का अंग बनाना है। उनकी रचनात्मकता भारतीय चेतना तथा विवेकधर्मिता से अनुप्राणित है। उसमें आत्मबोध, स्वत्व तथा अस्मिता की पहचान और प्रतिष्ठा की आकांक्षा तथा सबसे जुड़ने और जोड़ने की ललक है। उसमें परंपरा का प्रवाह है तो आधुनिकता का आग्रह भी है। वह यथास्थितिवादी है तो प्रगतिशील भी है। उसमें क्रांतिकारिता भी है और समन्यवशीलता भी। वह विराटता का दर्शन है तो दर्शन की विराटता भी। इसी परिप्रेक्ष्य में वह भारतीय संस्कृति, नव्यताबोध, स्वाधीनता और मानवीय मूल्यों की व्याख्याकार तथा संवाहिका है। इसीलिए डॉ. गोयनका यह अपील करते हैं कि 'यदि हम भारत को 'इंडिया' के स्थान पर 'भारत' बनाए रखना चाहते हैं तो प्रेमचंद के कहानी-संसार की मूल आत्मा 'भारतीयता' को अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक जीवन का अंग बनाना होगा।

डॉ. कमल किशोर गोयनका के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती प्रेमचंद पर लगाए गए मार्क्सवादी लेबल को लेकर भी रही है। दरअसल मार्क्सवादियों को एक ऐसे बड़े नाम की जरूरत थी जिन्हें उद्धृत कर वे अपनी विचारधारा को मजबूती प्रदान करते। उनके इस उद्देश्य की पूर्ति तब हो गई जब प्रेमचंद ने सन 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की अध्यक्षता की। इसे ही ढाल बनाकर प्रगतिशीलों ने उन्हें वामपंथी घोषित करने में अपनी पूरी ताकत लगा दी। उनकी गरीबी, लाचारी, विवशता और संघर्षशीलता को इस रूप में प्रचारित किया कि उनके कारण ही प्रेमचंद के मन में पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विद्रोह का भाव पैदा हुआ। उनकी निजी पीड़ा सामाजिक पीड़ा बनकर उभरी। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद पर लिखी अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' के माध्यम से उन्हें समाजवादी घोषित करके एक वैचारिक आंदोलन ही शुरू कर दिया।' 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़े लेखकों, प्रोफेसरों आदि का देश में एक विचार-समूह बन गया और पाठ्य-पुस्तकों, आलोचनात्मक ग्रंथों, संगोष्ठियों, सम्मेलनों तथा संवादों में बस प्रेमचंद की मार्क्सवादी चेतना एवं समाजवाद को उनकी प्रमुख विचारधारा के रूप में स्थापित किया जाने लगा। डॉ. गोयनका ने इसकी सत्यता के परीक्षण के लिए प्रेमचंद के उपन्यासों, कहानियों, लेखों, टिप्पणियों और भाषणों का गहन-गंभीर अध्ययन किया। उन्होंने यह लक्षित किया कि प्रेमचंद ने फरवरी 1919 में छपे अपने लेख 'नया जमाना-पुराना जमाना' में रूस की नई सभ्यता की चर्चा और समर्थन के बाद यह लिखा है कि इस जनतंत्र का अत्याचार पूंजीपतियों से भी अधिक घातक सिद्ध हो सकता है। डॉ. गोयनका को यह लगा कि प्रेमचंद समाजवाद के समर्थन में भी हैं और विरोध में भी। उन्होंने उन तथ्यों और प्रमाणों को भी खोजा जिनमें प्रेमचंद अपने को 'गांधी का चेला' कहते हैं। यह जगजाहिर है कि प्रेमचंद ने महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन पर अपनी सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दिया था। उनकी कुछ कहानियों तथा 'प्रेमाश्रम' एवं 'रंगभूमि' जैसे उपन्यासों पर गांधी-दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई भी देता है। डॉ. गोयनका प्रेमचंद के उन लेखों, टिप्पणियों को संदर्भित करते हैं जिनमें गांधी की प्रशंसा, सत्य, अहिंसा, न्याय, धर्म और रामराज्य का समर्थन तथा लाल क्रांति, वर्ग-संघर्ष आदि का विरोध है। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि 10 अप्रैल सन 1936 को

प्रगतिशील लेखक संघ में दिए गये अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील' शब्द को ही निरर्थक कहा था और 'आध्यात्मिक आनंद', 'आध्यात्मिक संतोष' आदि की चर्चा बार-बार की थी तथा 'मन के संस्कार' को साहित्य का लक्ष्य माना था। जाहिर है प्रेमचंद के लेखन के दो ही उद्देश्य रहे हैं-स्वराज्य की प्राप्ति तथा भारतीय आत्मा की रक्षा। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपने अनुसंधान तथा सटीक आलोचना से यह स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है कि प्रेमचंद 'भारतीय आत्मा के शिल्पी' हैं। उनका यह भी मानना है कि प्रेमचंद की भारतीयता में हिंदूवाद, राष्ट्रवाद, गांधीवाद, मानवतावाद, साम्यवाद आदि सभी किसी न किसी रूप तथा मात्र में समाविष्ट हैं। यही कारण है कि वे वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, कबीर आदि की परंपरा में आते हैं और उन्हीं की तरह जनमानस पर विराजमान भी हैं।

प्रेमचंद की चिंतनधारा पर विचार करते हुए डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस बात का उल्लेख किया है कि वे हिंदी के ऐसे पहले साहित्यकार थे जिन्होंने पश्चिमी पूंजीवाद और औद्योगिक सभ्यता के संकट को पहचाना तथा देश की कृषि संस्कृति तथा भारतीय जीवन-दर्शन की रक्षा के प्रति संकल्पित भाव से अग्रसर हुए। उनकी रचनाओं में उदात्त जीवन-मूल्य, समत्व-भाव, प्राणि-मात्र के लिए सहानुभूति, संवेदना और करुणा बोध तथा अपसंस्कृति का विरोध आदि उनकी उसी चिंतनशीलता के परिणाम हैं जिनसे भारतीयता का फलक व्यापक और विराट बनता है। डॉ. गोयनका का यह भी मानना है कि प्रेमचंद साहित्य की सारी प्रवृत्तियां भारतीयता में समाहित हैं जिनके मूल्यांकन के लिए समग्रता की दृष्टि और तटस्थता का विधान होना चाहिए। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद के अतिरिक्त देश-विदेश के अन्य साहित्यकारों पर जो गंभीर कार्य किया है उससे उनकी संपादन-कला, आलोचना-दृष्टि तथा विश्लेषण क्षमता का बोध होता है। प्रभाकर माचवे-प्रतिनिधि रचनाएं, जगदीश चतुर्वेदी=एक विवादास्पद रचनाकार, मन्मथनाथ गुप्त=प्रतिनिधि कहानियां, जिज्ञासाएं मेरी=समाधान बच्चन के, रवींद्रनाथ त्यागी-प्रतिनिधि रचनाएं, हजारी प्रसाद द्विवेदी- कुछ संस्मरण, विष्णु प्रभाकर= प्रतिनिधि रचनाएं, यशपाल कुछ संस्मरण, रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली, लघुकथा का व्याकरण, दिनेश नंदिनी डालमिया से बातचीत, मंजुल भगत-समग्र कथा-साहित्य (दो खंड), आपातकाल की प्रतिनिधि कविताएं, गांधी-पत्रकारिता के प्रतिमान, बाल शौरि रेड्डी=कथा रचनावली आदि के अलावा मॉरीशस की हिंदी कहानियां, अभिमन्यु अनत= एक बातचीत, अभिमन्यु अनत=काव्य रचनावली, अभिमन्यु अनत=प्रतिनिधि रचनाएं, हिंदी का प्रवासी साहित्य, विश्व हिंदी रचना, मॉरीशस के राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' काव्य-रचनावली आदि के माध्यम से डॉ. गोयनका के अध्येता, लेखक, आलोचक और चिंतक का जो स्वरूप उभरा है उसकी विलक्षणता अद्‌भुत है। प्रायः यह देखा गया है कि एक अन्वेषक की वृत्ति जितनी गवेषणा में रमती है उतनी आलोचना में नहीं और एक आलोचक की तन्मयता जितनी आलोचना में रहती है उतनी गवेषणा में नहीं। यह दुर्लभ संयोग है कि डॉ. गोयनका ने इन दोनों की एक साथ शिखर साधना की है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य हमारे सामने तो है ही प्रवासी हिंदी साहित्य भी अपनी आभा के साथ उपस्थित है। □

प्रेमचंद-मिशन के समर्पित योद्धा

कमलेश भट्ट कमल

किसी साहित्यकार का मूल्यांकन उसके विचारों और उसकी विचारधारा के आधार पर किया जाय या उसके द्वारा सृजित साहित्य में उसकी गहरी पैठ, उसकी अन्वेषी आलोचना-दृष्टि, उसकी समावेषी शोध-प्रवृत्ति और उसकी चेतना संपन्नता, प्रतिभा संपन्नता और विषय विशेषज्ञता तथा विद्वता के आधार पर किया जाए? यह सवाल डॉ. कमल किशोर गोयनका के संदर्भ में हमेशा उठ खड़ा होता है। वे साहित्य की मुख्यधारा के विपरीत, घोषित रूप से दक्षिणपंथी विचारधारा के रचनाकार माने जाते हैं और हिंदी की मुख्यधारा वामपंथी विचारध ाारा वाले रचनाकारों की रचनाशीलता के आधार पर बनती है! सवाल यह भी उठता है कि क्या आज एक तरह की चारदीवारी के भीतर पनपने वाली विचारधारा के आधार पर ही उन्हें देखा और परखा जाए या देश में ही नहीं, देश से बाहर विदेशों में फैले उनके समर्पित पाठकों और उन्हें मिली मान्यताओं के आधार पर उनके साहित्य के बारे में विचार किया जाए? सवाल तो यह भी उठता है कि यह मुख्यधारा किन लोगों ने बनाई और क्या इस कथित मुख्यधारा से बाहर के रचनाकारों को साहित्य में जीवित रहने का कोई लोकतांत्रिक अधिकार प्राप्त ही नहीं है ?

सच बात तो यह है कि हिंदी साहित्य में विचारधाराओं को लेकर जिस तरह की असहिष्णुता देखने को मिलती है वह हैरान करती है! देखकर आश्चर्य होता है कि चेतना-संपन्न तमाम रचनाकारों की मेधा मार्क्सवाद की बंधक बनती चली गई! वह या तो मार्क्सवाद की व्याख्या करती रही या उसके समर्थन में रचनाएं लिखती रही, जिसके चलते आजादी के बाद के हिंदी साहित्य की दुनिया राजनीति का अखाड़ा बनकर रह गई। यह कैसा विद्रूप है कि केवल मार्क्सवादी विचारधारा को ही साहित्य की प्रमुख धारा मान लिया गया और उससे इतर जो कुछ लिखा गया, उसे दोयम दर्जे का घोषित कर उसे साहित्य से ही बेदखल कर दिया गया। भिन्न धारा के साहित्यकारों की निर्मम उपेक्षा ही नहीं की गई ,बल्कि उन्हें कुचलने के हर संभव प्रयास भी किए गए। इसमें वे रचनाकार भी शामिल हैं जो न वामपंथ के अनुयायी हैं और न दक्षिण-पंथ के। विडंबना यह कि अभी भी स्थितियां बहुत ज्यादा बदली नहीं है क्योंकि तमाम

सारे साहित्य-सत्ता के केंद्र और पत्रिकाएं ऐसे लोगों के ही कब्जे और प्रभाव में हैं। साहित्य में एक ही विचारधारा को पनपने देने की दुराग्रही प्रगतिशीलता समझ से परे है। ऐसी विकट स्थिति में भी धुर दक्षिण-पंथी भारतीय जनता पार्टी के प्रबल समर्थक डॉ. कमल किशोर गोयनका की साहित्य-मंच पर सक्रिय और लगातार उपस्थिति और पाठकों के बीच उनकी स्वीकार्यता यह सिद्ध करती है कि विचारधाराओं से लेखकों और बुद्धिजीवियों को लुभाया और बरगलाया जा सकता है, पाठकों को नहीं, जो साहित्य की दुनिया का सबसे बड़ा स्टेकहोल्डर है। इसका सारा श्रेय जाता है रचनात्मक स्तर पर डॉ. गोयनका की लगातार सक्रियता को। प्रेमचंद को लेकर जितना काम अकेले डॉ. गोयनका ने कर दिखाया है, उतना उन्हें दक्षिण-पंथी विचारधारा का शिखर पुरुष समझने वाले मार्क्सवादियों ने मिलकर भी नहीं किया होगा। चूंकि प्रेमचंद हिंदी कथा के, देश में ही नहीं विदेशों में भी सबसे बड़े भारतीय आईकॉन हैं, ऐसे में अकेले उन पर किया गया कार्य ही समकालीन रचनाकारों में डॉ. गोयनका को सम्मानजनक स्थान प्रदान करने के लिए पर्याप्त है ।

डॉ. गोयनका से मेरे संबंध कोई चालीस वर्ष पुराने हैं और उसकी बुनियाद शुद्ध साहित्यिक आधारों पर टिकी है। मुझे याद नहीं पड़ता कि उनके साथ साहित्यिक संवाद और संबंधों के निर्वहन में राजनीति ने कभी कोई हस्तक्षेप किया हो। अगर मुझे सही याद है तो डॉ. गोयनका के साथ मेरे संबंधों का सिलसिला 1980 के दशक में प्रारंभ हुआ था और इसका निमित्त बनी थी हिंदी साहित्य की तब की प्रायः नवोदित विधा लघुकथा। तब लघुकथा लेखन में रचनाकारों की सक्रियता उफान पर थी लेकिन इसी के साथ अपने आप को लघुकथा का मठाधीश और इतिहास-पुरुष बनाने के लिए तिकड़म-बाजियां भी शुरू हो गई थीं। यद्यपि आगे चलकर कई बड़े कथाकार भी समय-समय पर अपनी मुख्यधारा की रचनात्मकता के साथ-साथ लघुकथाएं भी लिखते रहे, लेकिन लघुकथा उस तरह से मुख्यधारा की विधा नहीं बन पाई, जैसा एक समय लग रहा था। हो सकता है कलेवरगत अति संक्षिप्तता भी इसका एक कारण बनी हो। उस दौर में ही मैंने डॉ. कमल किशोर गोयनका से लघुकथा पर एक लंबी बातचीत की थी जो बाद में 'साक्षात' पुस्तिका के रूप में (विशाख प्रकाशन, लखनऊ) के बैनर पर प्रकाशित भी की गई थी। यह बातचीत लघुकथा विमर्श में बार-बार संदर्भित और उद्धृत होती रही है। जाहिर है तब केवल डॉ. गोयनका ही ऐसे चर्चित साहित्यकार और आलोचक थे जो इस आकार लेती नई विधा पर आलोचकीय दृष्टि से टीका-टिप्पणी कर रहे थे। इस बातचीत में वे प्रेमचंद को एक लघुकथाकार के रूप में भी याद करते हुए कहते हैं- प्रेमचंद ने उपन्यास तो लिखे ही, लघुकथाएं भी लिखी हैं- इसकी जानकारी कम लोगों को है। मुझे लगता है कि वे पहले सशक्त लघुकथाकार हैं जिन्होंने लगभग 27 लघुकथाएं लिखी हैं। प्रेमचंद की एक लघुकथा राष्ट्र का सेवक आदर्श लघुकथा के रूप में रखी जा सकती है। इस साक्षात्कार में उन्होंने बड़ी महत्वपूर्ण बात कही थी कि- प्रेमचंद जैसा रचनाकार जो छः सात सौ पृष्ठों का उपन्यास लिख सकता है, बीस-पच्चीस पृष्ठ की कहानियां लिख सकता है, वह तीन-चार सौ शब्दों की लघुकथा भी

लिख सकता है। ये क्षमता आज के लघुकथाकारों को विकसित करनी चाहिए कि वे अपने आपको केवल लघुकथा तक ही सीमित न रखें और प्रेमचंद के आदर्श को अपने सामने रखें।

मुझे लगता है कि जिन लघुकथाकारों ने अपने आप को केवल लघुकथा तक ही सीमित रखा, उनकी अभिव्यक्तियां बहुत सीमित रह गईं। अपने साक्षात्कार में डॉ. गोयनका आगे एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कहते हैं- 'लघुकथाकार यदि बड़े लेखक बनना चाहते हैं और प्रेमचंद की ऊंचाइयों तक पहुंचना चाहते हैं तो उसका रास्ता भी प्रेमचंद के रास्ते से ही होकर गुजरता है। यह रास्ता साधना का है और उसके बाद ही सिद्धि का है। आज लघुकथाकार सिद्धि पहले चाहते हैं और साधना बाद में। लघुकथा आंदोलन कदाचित सिद्धि और साधना के इसी द्वैत को ठीक से समझ नहीं पाया और अपवादों को छोड़कर, तमाम लेखक लघु बनकर ही रह गए!

लघुकथा को अपने समय का सत्य कहने वाले डॉ. गोयनका लघुकथा को एक लेखकविहीन विधा की भी संज्ञा देते हैं। इसके पीछे उनका तर्क है कि- महाकाव्य, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में लेखक जैसे अपनी रचनाओं में विद्यमान रहता है, वह जैसे तरह-तरह से अपनी रचना में हमारे सामने आ खड़ा होता है, वैसे-वैसे वह लघुकथा में एक कदम भी नहीं चल सकता। उनका साफ कहना है कि लघुकथा में लेखक के लिए कोई स्थान नहीं है। हमें यह समझना चाहिए कि पूर्ण निस्संगता विधा को एक बड़ी कला बनाती है। साहित्य की दुनिया में यह एक आम राय है कि जब-जब लेखक अपनी रचना में उपस्थित होता है, तब-तब वह उसका अनुचित हस्तक्षेप होता है।

लघुकथा को लेकर उस समय किसी स्थापित लेखक-आलोचक द्वारा की जाने वाली ये टिप्पणियां बहुत गंभीर और महत्वपूर्ण थीं और आज भी वे उतनी ही प्रासंगिक हैं। लघुकथा ही क्यों, थोड़े-बहुत संशोधनों के साथ वे साहित्य की दूसरी विधाओं पर भी लागू होती हैं। कहना न होगा कि लघुकथा को देखने का और उसको समझने का डॉ. गोयनका का जो तरीका था वह नितांत मौलिक था किंतु लघुकथाकारों ने कदाचित उसका संज्ञान पूरे मन से नहीं लिया! लघुकथा पर उनकी तीन पुस्तकें लघुकथा के प्रतिमान(1990) लघुकथा का व्याकरण (2003) तथा लघुकथा का समय (2017) प्रकाशित हो चुकी हैं।

लघुकथा के साथ ही, जे.एन.यू. में जापानी और पूर्व- एशियाई भाषा विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष एवं प्रोफेसर डॉ. सत्यभूषण वर्मा के सानिध्य से डॉ. गोयनका सन् 1985 -86 के आसपास हाइकु विधा से भी जुड़े। उन्होंने उस पर कुछ आलोचनात्मक लेख ही नहीं, अपितु कई मौलिक हाइकु भी लिखे, किंतु ज्यादा समय तक वे इस विधा से जुड़े नहीं रह पाए। कदाचित प्रेमचंद और उनके विश्वकोश तथा लघुकथा पर काम करते हुए वे हाइकु विधा पर काम कर पाने की स्थिति में नहीं थे, किंतु हिंदी की इन दो उभरती हुई विधाओं के प्रति उनका आकर्षण और उनकी गहरी रुचि यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि नवोन्मेष के प्रति उनके अंदर कितना आकर्षण था! जबकि उस समय के स्थापित हिंदी आलोचकों में इन दोनों विधाओं के प्रति कोई आकर्षण न तो तब था और न ही आज है, जबकि इन दोनों ही विधाओं में पर्याप्त सृजन कार्य हो चुका है और कई विश्वविद्यालय इन पर शोध-कार्य करवाकर

अपनी अकादमिक मुहर भी लगा चुके हैं। यह हिंदी साहित्य की आलोचना में यथास्थितिवाद का विचित्र उदाहरण है! यह कहना कदाचित गलत न होगा कि अपनी तमाम सारी प्रगतिशील और जनवादी चेतना के बावजूद हिंदी की साहित्यिक आलोचना बने-बनाए घेरे में रहने और उस घेरे के लोगों को आगे बढ़ाने में ही सुखी अनुभव करती रही है। उक्त स्थिति में प्रवासी भारतीयों के लेखन की यदि लगातार उपेक्षा होती रही हो तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए लेकिन डॉ. गोयनका ने इस स्थिति का भी संज्ञान लिया।

डॉ. गोयनका ने प्रवासी हिंदी साहित्य को रेखांकित करने और उसको आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाया तो वे इसके लिए वे तन-मन-धन से जुट गए। इस प्रक्रिया में उन्होंने एक भिन्न तरीके से, अपने नटराज प्रकाशन के माध्यम से, सुदूर मॉरीशस की धरती पर मौजूद सक्रिय हिंदी रचनाधर्मिता को आगे बढ़ाने तथा वहां के साहित्यकारों की रचनाओं को मुख्यधारा में शामिल करने का अटूट प्रयास किया। अपने इस प्रक्ाान से उन्होंने कोई दो दर्जन मॉरीशस के लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित कीं। इतना ही नहीं, उन्होंने खुद भी हिंदी के प्रवासी साहित्य पर सात पुस्तकें लिखीं। ऐसा करने वाले वे कदाचित हिंदी के पहले लेखक हैं। वे कहते हैं कि हिंदी के प्रवासी साहित्य से मुझे प्रेमचंद जैसा ही प्रेम हो गया है! अपने प्रयासों में वे कितने सफल हो पाए या नहीं हो पाए यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना यह महत्वपूर्ण है कि उन्होंने हजारों मील दूर बैठे रचनाकारों की रचनात्मकता को लगातार रेखांकित करते रहने का प्रयास किया। जिसकी तरफ से, अपवादों को छोड़कर, प्रायः शेष हिंदी जगत उदासीन ही रहा। यह यूं ही नहीं है कि मॉरीशस के सबसे चर्चित और महत्वपूर्ण कथाकार अभिमन्यु अनत उन्हें मॉरीशस बंधु कहकर गौरवान्वित होते थे तथा भारत-मॉरीशस के बीच के सांस्कृतिक पुल को और सशक्त बनाने वाला कहते थे। प्रवासी हिंदी साहित्य को मुख्यधारा में शामिल करने का डॉ. गोयनका का प्रयास केवल मॉरीशस तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उसका विस्तार अमरीका, इंग्लैंड, सूरीनाम आदि देशों तक भी हुआ। वे प्रवासी साहित्य के रंग-रूप, उसकी चेतना, संवेदना एवं सृजन-प्रक्रिया को भारतीय पाठकों के लिए एक नई वस्तु, एक नए भावबोध एवं नए सरोकार के साहित्य के रूप में रेखांकित करते हैं। उन्होंने 'चाँद' के जनवरी 1926 अंक में प्रकाशित प्रेमचंद की 'शूद्रा' को मॉरीशस के प्रवासी जीवन पर हिंदी की पहली कहानी के रूप में भी रेखांकित किया है। वे इस कहानी से ही भारतीय प्रवासियों के जीवन पर हिंदी में साहित्य-लेखन का प्रारंभ भी मानते हैं। शासन और सत्ता से अपनी निकटता के चलते वे इस दिशा में कई ऐसे महत्वपूर्ण कार्य करवा सके, जो अन्यथा संभव नहीं थे। इन्हीं में से एक अन्यतम और उल्लेखनीय कार्य है मॉरीशस से जनवरी 1935 से लेकर 1938 तक नियमित रूप से प्रकाशित मासिक हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' (संपादकः सूरज प्रसाद मंगर भगत) के सभी अंकों का तीन खंडों के 2100 पृष्ठों में पुस्तकाकार प्रकाशन। इस सामग्री के महत्व का आकलन आप इस बात से कर सकते हैं कि इसका प्रकाशन स्वयं भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने किया है! इस पुस्तक का लोकार्पण मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर 18 अगस्त 2018 को तत्कालीन विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज द्वारा किया

गया। हिंदी की ताकत को अंग्रेजी-फ्रेंच प्रेमियों को दिखाना, मुर्दा कौम में क्रांति की रूह फूंकना, हिंदुओं में राजनीतिक चेतना का संचार करना तथा दिग-दिगंत में हिंदी का डंका बजा देना जैसे दुर्गा के प्रकाशन के कुछ प्रमुख उद्देश्य थे। इन उद्देश्यों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय मॉरीशस के हिंदू समाज की क्या स्थिति रही होगी और पत्रिका यथास्थिति को तोड़ने तथा प्रवास के जीवन में भी हिंदी के प्रति किस तरह और कितनी व्यग्र व समर्पित थी!

प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खोजने तथा प्रेमचंद विश्वकोश तैयार करने में डॉ. गोयनका ने जो श्रम किया, उसकी कोई मिसाल नहीं मिलेगी! तमाम सारी विघ्न-बाधाओं, उपेक्षाओं, आरोपों-प्रत्यारोपों के बावजूद वह अपने मिशन में लगे रहे और उन्होंने प्रेमचंद के लगभग 1500 पृष्ठों के ऐसे हिंदी-उर्दू साहित्य को खोज निकाला और उसका प्रकाशन कराया जो कब का हिंदी साहित्य की दुनिया से ओझल हो चुका था। डॉ. गोयनका की प्रेमचंद पर अभी तक कुल 31 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और कोई आधा दर्जन प्रकाशन की प्रक्रिया अथवा प्रतीक्षा में हैं। प्रेमचंद विश्व कोश के प्रस्तावित दो खंडों का प्रकाशन क्रमशः प्रेमचंद का जीवन और प्रेमचंद का साहित्य शीर्षकों से 1981 में ही हो चुका था किंतु इनके संशोधित परिवर्धित संस्करणों के साथ शेष तीनों खंड भी जल्दी ही पुस्तक रूप में हमारे सामने होंगे। प्रेमचंद : अध्ययन की नई दिशाएं (1981), प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य (1988), प्रेमचंद- बाल साहित्य समग्र (2002), प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां(2005), प्रेमचंद पत्र-कोश (2007) प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन (2012), प्रेमचंद की कहानी-यात्रा और भारतीयता (2018) आदि प्रेमचंद पर केंद्रित कुछ विशेष महत्व की पुस्तकें हैं।

प्रेमचंद को उनके समग्र और सम्पूर्ण स्वरूप में सामने लाने में डॉ. गोयनका ने जिस अद्भुत जीवट का परिचय दिया है, हिंदी साहित्य को उसका ऋणी होना चाहिए हालांकि विचारधाराओं के दबाव के चलते समकालीन आलोचकों ने उनके इस महत्वपूर्ण कार्य की उपेक्षा भी की, इससे डॉ. गोयनका के उत्साह में कोई कमी नहीं आई है और वे विगत 46 वर्षों से लगातार अपने प्रेमचंद मिशन में लगे हुए हैं। प्रेमचंद की एक संपूर्ण भारतीय लेखक की छवि उभारने के ध्येय पर कुठाराघात करने वाले मार्क्सवादियों को उतनी ही मजबूती से प्रामाणिक जवाब देने में भी उन्होंने कभी कोई कोताही नहीं की। जहां भी उन्हें जो भी अनुचित लगा, उन्होंने उसका प्रतिवाद अवश्य किया।

साहित्य की दुनिया में सिर्फ तात्कालिकता ही सब कुछ निर्धारित नहीं करती, मुट्ठी भर आलोचक ही सब कुछ नहीं होते, अपनी झूठी रचनात्मकता के भ्रम में डूबे संगठन ही सब कुछ नहीं होते। असली ताकत पाठक के पास होती है। अगर पाठक ने किसी रचनाकार को अपना मान लिया और बड़ा समझ लिया तो उसकी रचनात्मकता को कोई भी आलोचक या लेखक-संगठन अथवा विचारधारा साहित्य की दुनिया से बेदखल नहीं कर सकते। ध्यान रखना होगा कि यह बात मंचीय या अगंभीर साहित्यिक लोकप्रियता के संदर्भ में बिलकुल नहीं की जा

रही है। यहा बात गंभीर लेखन की व्यापक स्वीकार्यता के संदर्भ में हो रही है और डॉ. कमल किशोर गोयनका एक ऐसे ही गंभीर, मजबूत और जुझारू साहित्यिक व्यक्तित्व का नाम है।

मुझे लगता है डॉ. कमल किशोर गोयनका को प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान विषय पर शोध करने के दौरान उनसे कुछ ऐसी आसक्ति हुई कि उन्होंने प्रेमचंद को अपना पूरा जीवन ही समर्पित कर दिया। उनके इस कार्य को देश-विदेश के कोई पांच दर्जन से अधिक विद्वानों, साहित्यकारों ने मान्यता प्रदान की है। ऐसे व्यक्तियों में जैनेंद्र कुमार, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, मन्मथनाथ गुप्त, शिवमंगल सिंह सुमन, प्रभाकर माचवे, विष्णुकांत शास्त्री, विवेकी राय, श्रीनारायण चतुर्वेदी, डॉ लोठार लुत्से (जर्मनी), अभिमन्यु अनत (मॉरीशस) सरीखे कद्दावर लोग शामिल रहे हैं, जिनकी प्रतिभा और विवेकशीलता संदेहों से परे रही है। डॉ. गोयनका का मानना है कि- प्रेमचंद पर मार्क्सवादी होने का जो ठप्पा लगाया गया वह साहित्यिक कम राजनीतिक अधिक था। संपूर्ण साहित्य के बिना किसी महान लेखक का विश्लेषण संभव नहीं हैं। उन्होंने प्रेमचंद का मूल्यांकन सही ढंग से न किए जाने को अन्याय माना और उनकी सही व प्रामाणिक छवि प्रस्तुत करने के लिए एक बड़े संकल्प के साथ इतना सारा कार्य कर डाला। डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद के सारी जिंदगी गरीबी में जीने के मिथ का भी सप्रमाण खंडन किया। मैं समझता हूं कि डॉ. गोयनका का लक्ष्य था कि प्रेमचंद को संपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व के माध्यम से समग्रता में प्रस्तुत किया जाए, न कि केवल कुछ रचनाओं के आधार पर एक खास विचारधारा तक सीमित कर दिया जाए।

प्रेमचंद निसंदेह हिंदी कथा साहित्य के ऐसे महान कथाकार रहे हैं जो अपने समय में भी देश के अंदर और देश के बाहर सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले हिंदी लेखक थे और आज भी उनकी स्वीकार्यता वैसी ही बनी हुई है। एक कहानीकार-उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद की सफलता के पीछे के कारणों की पड़ताल करते हुए डॉ. गोयनका कहते हैं कि- प्रेमचंद जिन पाठकों तक पहुंचे, वे उनके ही जीवन की कहानियां कहते हैं। पाठकों को पंच परमेश्वर व बड़े घर की बेटी अपने घर की कहानियां लगती हैं। जिस साधारण मनुष्य की बात प्रेमचंद अपनी कलम से करते हैं, वह बात पाठकों को संतुष्ट करती है। उनकी कहानियां और उनके उपन्यास पाठक की मूल चेतना को पकड़ते हैं। अतः पाठक उनका होकर रह जाता है। कविता में जो गुर तुलसीदास में पाठक को अपना बना लेने का था, गद्य में वही गुर प्रेमचंद में था। डॉ. गोयनका प्रेमचंद को दो आँखों से नहीं बल्कि हजारों आँखों से देखने वाले रचनाकार के रूप में देखते और उनकी अवधारणा है कि- उन हजार आँखों से उन्होंने जो कुछ देखा, पाठक उसे अपना अनुभव मानता है। लेखक दूसरों के कष्ट को अपना कष्ट बना ले और अपने कष्ट को दूसरों का कष्ट बना डाले, यह बहुत बड़ी बात है इसीलिए प्रेमचंद की रचनाओं से लगता है कि वे उनकी आत्मा से निकली हैं। डॉ. गोयनका प्रेमचंद की युगीन चेतना को आज भी प्रासंगिक मानते हैं जैसे कि तुलसी की चेतना प्रासंगिक है। उनकी लोकप्रियता के पीछे के कारणों की तलाश करते हुए डॉ. गोयनका कहते हैं कि साहित्य के प्रति जैसी निष्ठा और लगन प्रेमचंद में थी वैसी अब नहीं है।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि आजादी के बाद हम साहित्य, संस्कृति, कला, धर्म, दर्शन तथा अन्य क्षेत्रों में हम कोई बहुत बड़ी प्रतिभा ही नहीं पैदा कर पाए।

डॉ. गोयनका उन प्रगतिशील रचनाकारों की परंपरा से अपने आपको अलग मानते हैं जिन्हें स्वयं को हिंदू स्वीकार करना भी अप्रगतिशील होना लगता है। वे कहते हैं कि- हिंदू होने से हजारों वर्षों की सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक एवं ज्ञान-विज्ञान की अन्य उपलब्धियां मुझे सहज रूप में प्राप्त हो जाती हैं। इन उपलब्धियों पर मुझे गर्व है। हिंदू धर्म मुझे सहिष्णु, प्रजातांत्रिक, समन्वयवादी और विश्व को एक परिवार मारने की समझ देता है अपने संबंधों की स्थापना पर बल देता है। प्रेमचंद के साहित्य की ताकत को पहचानते हुए डॉ. गोयनका कहते हैं- 'प्रेमचंद के साहित्य की जो शक्ति है, जिसके कारण पाठक के मन का विकास होता है, जो उसे अच्छा मनुष्य बनने की प्रेरणा देता है, उस आदर्श को ये (मार्क्सवादी) अस्वीकार करते हैं। प्रेमचंद का यथार्थ भी इसी आदर्श चेतना के लिए है, इसी शिवत्व के लिए है। प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को डॉ. गोयनका कुछ इस प्रकार देखते हैं- वे सारा महल यथार्थ के ईंट-गारे से ही तैयार करते हैं , लेकिन प्रेमचंद जीवन को बहुत बेहतर ढंग से देखना चाहते थे। यह आकांक्षा उनके अंदर बहुत तीव्र थी। वे समाज को दमन और प्रताड़ना से मुक्त देखना चाहते थे। वस्तुतः प्रेमचंद यथार्थ का सृजन करते हैं निर्माण करते हैं। प्रेमचंद के यथार्थ की एक परिधि है और आदर्श की भी एक परिधि है। उनका आदर्श अकल्पनीय और अव्यावहारिक नहीं है। वे आदर्श को यथार्थ का स्पर्श देते हैं। वे नग्न यथार्थवाद के कट्टर विरोधी थे।'

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने खुद को प्रेमचंद के सबसे बड़े शोधकर्ता, आलोचक, विद्वान, अध्येता, विमर्शकार, अन्वेषक के रूप में जिस तरह स्थापित किया है, उसका लोहा पूरी दुनिया मानती है। ऐसा हो भी क्यों न, प्रेमचंद को लेकर उनका जो अभियान 1963 में शुरू हुआ था और जिसकी अभी तक 31 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, वह आज भी यथावत जारी है। प्रेमचंद को लेकर उनका यह भगीरथ प्रयास अद्‌भुत और अतुलनीय है! डॉ. गोयनका के पास सामग्री के रूप में इतना अस्त्र- शस्त्र उपलब्ध है कि वे उन पर होने वाले किसी भी अनुचित आक्रमण के खिलाफ क्रांतिकारी की मुद्रा में मुठभेड़ के लिए उठ खड़े होते हैं। मार्क्सवादी आलोचक डॉ. राम विलास शर्मा से भिड़ते हुए वे एक लेख में, उनकी स्थापनाओं के विपरीत यह सिद्ध करते हैं कि- प्रेमचंद भारतीय लेखक हैं तथा भारतीयता उनकी प्राण-शक्ति है। इस भारतीयता की बुनियाद अटूट देश-प्रेम है जिस की दिशाएं हैं- स्वतंत्रता, स्वराज, समानता, बंधुत्व, एकता, स्व-संस्कृति, स्व-भाषा और भारतीय स्वत्व की रक्षा। इसमें अंग्रेजी साम्राज्यवादियों का विरोध है और सामंतों का भी, अन्याय-दमन-शोषण से संघर्ष है, समाज को जड़ता-अंधविश्वास-कुप्रथाओं से मुक्त करना एवं उसे आधुनिक तथा प्रगतिशील बनाने का संकल्प है।(गवेषणा अप्रैल-जून 2018 पृ-23)।

प्रेमचंद- साहित्य के प्रति अपने समर्पण-भाव को सुधा ओम ढींगरा के साथ एक साक्षात्कार में डॉ. गोयनका कुछ यूं स्पष्ट करते हैं- प्रेमचंद-साहित्य आपको अपने में लीन कर

लेता है,आप प्रेमचंदमय हो जाते हैं, प्रेमचंद को जब आप उनकी दृष्टि से देखते हैं और अपने विचारों का उन पर आरोपण नहीं करते तो प्रेमचंद अपने सारे दरवाजे खोलकर आपके मन में बैठ जाते हैं कि फिर आप प्रत्येक वस्तु में उनकी ही छवि देखते हैं। (नव निकष-फरवरी 2018, पृष्ठ-28)

इस लेख में डॉ. कमल किशोर गोयनका के बहुआयामी व्यक्तित्व के कुछ महत्वपूर्ण छोरों को केवल छूने और संदर्भित करने का प्रयास मात्र किया जा सका है। उनका जितना बड़ा काम है, उसके मूल्यांकन के लिए एक-दो नहीं कई-कई पुस्तकों या शोध-प्रबंधों की आवश्यकता होगी। आज जो प्रेमचंद अपने विपुल साहित्य के साथ विश्व भर में कथा- साहित्य के एक महान रचनाकार के रूप में स्थापित हैं तो इसके पीछे डॉ. गोयनका का अपना निजी श्रम व इस कार्य के पीछे उनकी अनथक और गहन निष्ठा भी शामिल है। प्रेमचंद को लेकर पिछले 45-46 वर्षों में उन्होंने देश में ही नहीं विदेशों में भी जितनी यात्राएं की हैं, जितनी बैठकों, सेमिनारों, कार्यशालाओं आदि में भागीदारी की है, वह किसी सामान्य रचनाकार के बस की बात नहीं थी। जिस समर्पित भाव से उन्होंने प्रेमचंद के अपने मिशन को गतिशीलता प्रदान की है वह अपने आप में एक बड़ी मिसाल है।

□

प्रेमचंद अध्ययन की नई राहों का अन्वेषण

नवीन नंदवाना

समकालीन हिंदी साहित्य का फलक बहुत ही व्यापक और विस्तृत है। आज देश भर में कई ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने अपनी कलम की ताकत के बल पर साहित्य जगत् में विशिष्ट ख्याति अर्जित की है। कथा, कविता, नाटक और निबंध साहित्य के साथ-साथ अनुसंधान और आलोचना का क्षेत्र भी किसी भांति कमतर नहीं है। यदि हम आलोचना और अनुसंधान जगत् की बात करें तो इस विशाल सागर में चमकता हुआ एक बड़ा हस्ताक्षर हमारे ध्यान में आता है और वह है- डॉ. कमल किशोर गोयनका।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपने जीवन के विगत लगभग 50 वर्ष प्रेमचंद साहित्य से जुड़ी इसी आलोचना और अनुसंधान कर्म को समर्पित करके हिंदी जगत् की श्रीवृद्धि का अनुपम कार्य किया। हिंदी कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के जीवन और साहित्य को आधार बनाकर आपकी कलम बहुत विस्तार और गंभीरतापूर्वक चली। आपने इस विषय संबंधी लगभग 30 पुस्तकों की रचना कर प्रेमचंद साहित्य से जुड़े नए आयामों की ओर भी हिंदी संसार का ध्यान आकृष्ट किया। उनकी कलम केवल यहीं तक नहीं रुकी। प्रेमचंद को अपने आलोचना और अनुसंधान का विषय बनाने के साथ-साथ हिंदी संसार के 23 अन्य रचनाकारों के योगदान को भी केंद्रित कर लेखन किया। इन रचनाकारों व रचनाओं में 'मन्मथनाथ गुप्तः प्रतिनिधि कहानियां', 'जिज्ञासाएं मेरी : समाधान बच्चन के', 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीः कुछ संस्मरण', 'जगदीश चतुर्वेदीः एक विवादास्पद रचनाकार', 'विष्णु प्रभाकर : प्रतिनिधि रचनाएं', 'यशपालः कुछ संस्मरण', 'रामकुमार वर्मा : नाटक रचनावली', 'रवींद्रनाथ त्यागीः प्रतिनिधि रचनाएं', 'दिनेश नंदिनी डालमिया से बातचीत', 'मंजुल भगतः समग्र कथा साहित्य', 'हिंदी की व्यंग्यत्रयी', 'आपातकाल की प्रतिनिधि कविताएं', 'गांधीः पत्रकारिता के प्रतिमान' और 'पंडित दीनदयाल उपाध्यायः व्यक्ति और दर्शन' प्रमुख हैं।

प्रेमचंद साहित्य को आधार बनाकर डॉ. कमल किशोर गोयनका ने जो लिखा वह सदियों तक स्मरण किया जाएगा। प्रेमचंद साहित्य पर रचित ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान', 'प्रेमचंद अध्ययन की नई दिशाएं', 'प्रेमचंदः कुछ संस्मरण', 'प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां', 'प्रेमचंद विश्वकोश', 'प्रेमचंद पत्र कोश', 'प्रेमचंद की कहानियों

का कालक्रमानुसार अध्ययन', 'प्रेमचंद का कहानी दर्शन', 'प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी', 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां', 'प्रेमचंद : देशप्रेम की कहानियां', 'प्रेमचंद के नाम पत्र', 'प्रेमचंदः बाल साहित्य समग्र', 'प्रेमचंद और रंगभूमि उपन्यास', 'प्रेमचंदः अनछुए प्रसंग' और 'प्रेमचंदः वाद प्रतिवाद और संवाद' आदि प्रमुख हैं। 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' पुस्तक पर आपको वर्ष 2014 का व्यास सम्मान भी मिल चुका है।

हिंदी के प्रवासी साहित्य ने भी डॉ. कमलकिशोर गोयनका की कलम का सान्निध्य पाकर अपनी महक चहुंओर फैलाई। इस दिशा में 'अभिमन्यु अनतः एक बातचीत', 'अभिमन्यु अनतः प्रतिनिधि रचनाएं', 'मॉरिशस की हिंदी कहानियां', 'अभिमन्यु अनतः समग्र कविताएं', 'हिंदी का प्रवासी साहित्य', 'प्रवासी साहित्यः जोहान्सबर्ग से आगे' आदि प्रमुख हैं।

इतना लेखन और अनुसंधान एक साधारण लेखक के बूते का नहीं होता है। इतना सब करने के लिए एक लंबी साधना की जरूरत होती है। डॉ. गोयनका के इसी विशिष्ट व्यक्तित्व और रचना प्रक्रिया के विषय में डॉ. अनूप सिंह लिखते हैं कि- 'डॉ. गोयनका जी ऐसे हस्ताक्षर हैं, जिनसे कोई भी, कभी भी बतिया सकता है। एक गुरु के जीवंत हस्ताक्षर, पास बैठकर जीवन की उधड़ी पर्तों को बिना सुई-धागे के सीने की समझ मैंने उनसे पाई है। मैं समझ गया हूं कि साहित्य निरंतर जलाई जाने वाली दियासलाई की तीलियों की तरह है। जहां एक तीली समाप्त होने से पहले ही दूसरी तीली जलाने को तैयार रखनी पड़ती है।'[1]

हिंदी साधना में निमग्न ऐसे अप्रतिम हस्ताक्षर डॉ. कमल किशोर गोयनका का जन्म 11 अक्टूबर, 1938 को उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर नामक स्थान पर एक प्रतिष्ठित जमींदार सेठ चंद्रभान गोयनकाजी के घर हुआ। उनके जीवन की एक बड़ी समयावधि प्रेमचंद साहित्य को केंद्र बनाकर गुजरी है। प्रेमचंद की छवि को एक वाद या विचार के लोगों ने एक निश्चित सांचे-खांचे में ढाल दी थी, उसे डॉ. गोयनका के साहित्य ने बहुत कुछ बदला। कई समसामयिक साहित्यकारों की प्रतिक्रियाओं को सहते हुए भी अपने लक्ष्य की ओर निश्कंप बढ़ते जाना हम डॉ. गोयनका से सीख सकते हैं। कईं दिनों की साधना और घंटों पुस्तकालय में बैठकर डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की 30 अप्राप्य कहानियों को खोज निकाला। जिन्हें शायद प्रेमचंद के पुत्र और रचनाकार अमृतराय भी न खोज पाए। स्वयं गोयनकाजी के शब्दों में- 'मैंने प्रेमचंद पर जो कार्य किया था, उसकी प्रगतिशील समाज द्वारा कटु आलोचना होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि प्रेमचंद को लेकर उनकी अनेक भ्रामक अवधारणाएं ध्वस्त हो गई थीं। यह उनकी बौद्धिक पराजय थी और कार्ल मार्क्स उनकी रक्षा के लिए नहीं आ सकते थे, पर वे केवल अपने तर्कों से लड़ सकते थे, जो उनके पास नहीं थे। प्रगतिशीलों ने अपने तर्क बेबुनियाद जमीन पर बनाए थे और उन्हें किसी न किसी दिन ध्वस्त होना ही था। यह प्रेमचंद पर मेरी शोध का सुखद, सार्थक एवं सर्वस्वीकृत परिणाम था।'[2] 'प्रेमचंद विश्वकोश' की महत्ता इस बात से भी समझी जा सकती है कि गोपालराय द्वारा की गई इसकी आलोचना को डॉ. नामवर सिंह ने 'आलोचना' पत्रिका में स्थान दिया। डॉ. गोयनका का कथन है कि- 'प्रेमचंद के पूरे साहित्य को समझने की जरूरत है और उनके लेख चुनिंदा अध्ययन करने के लिए नहीं है। उन्होंने विभिन्न लघु

कहानियों और उपन्यासों में तीन हजार के आसपास पात्रों को चित्रित किया है जो कि हमारे दैनिक जीवन से प्रेरित है। एक विशेष कहानी पढ़कर किसी लेखक का विश्लेषण करना उसके व्यक्तित्व के साथ सरासर अन्याय है।'[3]

प्रेमचंद साहित्य को विश्व दृष्टि एवं एक कुशल आलोचक की भांति नए आयामों से प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ. कमल किशोर गोयनका को जाता है। 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली' के प्रकाशन के पश्चात् डॉ. शिवकुमार मिश्र ने तो साहित्य अकादेमी के भवन में डॉ. कमल किशोर गोयनका को गले से लगा लिया और अमरता का वरदान देते हुए कहा कि 'गोयनका तुम 'प्रेमचंदः कहानी रचनावली' जैसे कार्य करके अमर हो गए हो।' यह एक वामपंथी लेखक की दक्षिणपंथी लेखक के प्रति प्रेमचंद संबंधी-कार्य की श्रेष्ठता और महत्ता की स्वीकृति थी।'[4] गोयनकाजी के लेखन व श्रमसाध्य कार्य को हिंदी के कई विद्वानों ने स्वीकृति दी है। मत विभिन्नता के बावजूद प्रदीप पंत का मत है कि- 'डॉ. कमल किशोर गोयनका की इज्जत करने का एक अन्य प्रमुख कारण है, प्रेमचंद पर उनका शोधपूर्ण कार्य खास तौर पर प्रेमचंद विश्वकोश। उन्होंने प्रेमचंद के कृतित्व और व्यक्तित्व के परिचित पक्षों को तो रेखांकित किया ही है, उनके कृतित्व और व्यक्तित्व के बहुतेरे अपरिचित पक्षों को भी सामने ले कर आए। जैसे कि प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियों तथा अन्य रचनाओं को सामने लाना, उनके रचना-संसार को कालक्रमानुसार प्रस्तुत करना, उनकी चित्रात्मक जीवनी से पाठकों को परिचित कराना। अन्य शोधपूर्ण कार्य आदि। हाल में प्रेमचंद की समस्त कहानियों को भी उन्होंने साहित्य अकादमी के लिए कई खंडों में प्रस्तुत किया है। यह सब तो ठीक। इन पर किसी आपत्ति की गुंजाइश भी नहीं है। थोड़ा-थोड़ा विवाद भी हो सकता है तो ऐसी बातों पर कि कौन कहानी पहले उर्दू में आई, फिर हिंदी में या कौन कहानी हिंदी में पहले आई, उर्दू में बाद में। ऐसे ही कुछ अन्य छुटपुट विवाद भी संभव हैं, लेकिन गोयनका ने प्रेमचंद के व्यक्तित्व के उन पक्षों को छुआ या प्रस्तुत किया जिनकी जानबूझकर या अनजाने में अनदेखी कर दी गई थी।'[5]

'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान' नामक शोध प्रबंध को डॉ. कमल किशोर गोयनका ने छः अध्यायों में बांटते हुए शिल्प का अर्थ, स्वरूप और परिभाषा पर विचार करते हुए प्रेमचंद के उपन्यासों का रचनाकाल के आधार पर विवेचन-विश्लेषण किया। यह ग्रंथ औपन्यासिक तत्त्वों के साथ-साथ कालक्रमानुसार व तुलनात्मक दृष्टि से भी प्रेमचंद के साहित्य का विवेचन करता है। 'प्रेमचंद : कुछ संस्मरण' के माध्यम से डॉ. कमल किशोर गोयनका ने 28 संस्मरण संगृहीत कर प्रेमचंद के जीवन व साहित्य के अनछुए प्रसंगों को भी छुआ है। 'प्रेमचंदः अध्ययन की नई दिशाएं' पुस्तक भी अपनी महती भूमिका रखती है। इस पुस्तक के विषय में डॉ. कृष्ण वीर सिंह सिकरवार का मत है कि- 'प्रस्तुत पुस्तक में 31 आलेखों को संकलित किया गया है जो प्रेमचंद साहित्य के संदर्भ में अध्ययन की नई दिशाओं को खोलते हैं। डॉ. गोयनका के ये महत्वपूर्ण लेख प्रेमचंद-साहित्य समीक्षा में आई जड़ता को न केवल छिन्न-भिन्न करते हैं, बल्कि प्रेमचंद के संबंध में अध्ययन के नए द्वारों को उद्घाटित करते हैं।'[6] इस कथन से इस बात को भली-भांति समझा जा सकता है कि डॉ. कमल किशोर गोयनका

ने प्रेमचंद को एक सांचे-खांचे से बाहर निकालकर एक नए अंदाज में जानने व समझने की दिशाएं खोली हैं। 'पूंजीजीवाद से भयंकर है समाजवाद' जैसे मुंशी प्रेमचंद के अप्राप्य लेख को भी डॉ. कमल किशोर गोयनका ने खोज निकाला और उसे प्रकाशित कराया।

देवी नागरानी प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन पुस्तक समीक्षा करते हुए अपने लेख 'प्रेमचंद गंगा के भागीरथः कमल किशोर गोयनका' में गोयनकाजी के विषय में लिखती हैं कि- 'प्रेमचंद साहित्य के अध्येता- डॉ. कमल किशोर गोयनका के द्वारा रचित 757 पन्नों वाले इस प्रेमचंद शास्त्र को पढ़ते हुए एक बात निश्चित रूप से सामने आई कि उनकी रचनात्मक शिराओं में प्रेमचंद कुछ यूं रच बस गए हैं कि उन्होंने प्रेमचंद के जीवन, परिवेश, व साहित्य में धंसकर जिस साहित्य का सृजन किया है, वही उनकी रचनाधर्मिता की प्रामाणिकता है जो उन्हें प्रेमचंद स्कॉलर और प्रेमचंद विशेषज्ञ के नाम से एक अलग पहचान से अलंकृत करने से नहीं चूकी। यह हिंदी में एक अनूठे ढंग का प्रयास है और भविष्य में मील का पत्थर माना जाएगा। यही नहीं इससे प्रेरणा पाकर कुछ और अन्वेषणकर्ता इस प्रकार के कार्य शुरू करेंगे, और हिंदी में अन्य यशस्वी कवि-लेखकों के विश्वकोश के निर्माण-कार्य से संलग्न होंगे।'[7]

'प्रेमचंद और समाजवाद' विषय पर डॉ. कमल किशोर गोयनका ने भारतीय दृष्टिकोण को आधार में रखकर प्रेमचंद के मत पर एक नए प्रकार से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। 18 मार्च, 1928 को 'राज्यवाद और साम्राज्यवाद' नामक लेख जो कि 'स्वदेश' में प्रकाशित हुआ था, उसमें प्रेमचंद ने लिखा कि- 'साम्यवाद से ऐसी ही लंबी-चौड़ी आशाएं बांधी गई थीं, मगर यह अनुभव हो रहा है कि साम्यवाद केवल पूंजीपतियों पर मजूरों की विजय का आंदोलन है। न्याय के अन्याय पर, सत्य के मिथ्या पर विजय पाने का नाम नहीं। वह सारी विषमता, सारा अन्याय, सारी स्वार्थपरता, जो पूंजीवाद के नाम से प्रसिद्ध है, साम्यवाद के रूप में आकर क्षणभंगुर भी कम नहीं होती, बल्कि उससे और भयंकर हो जाने की संभावना है।'[8] डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस लेख के माध्यम से दर्शाया कि प्रेमचंद कार्ल मार्क्स, लेनिन, जार-सत्ता और कम्युनिस्ट पार्टी की गतिविधियों और विचारों से भली भांति परिचित थे। प्रेमचंद समाजवाद की बाहरी थोपी हुई अवधारणा के पक्षधर नहीं थे। वे चीजों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में विचार कर स्वीकारने के पक्षधर थे।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद की समाजवाद विषयक अवधारणा का अवलोकन किया और निष्कर्ष रूप में बताया कि- 'प्रेमचंद के समाजवाद-दर्शन पर विवेकानंद और गांधी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे एक स्थान पर तो विवेकानंद की ही शब्दावली में समाजवाद का संबंध वेदांत के एकात्मवाद से जोड़ते हुए लिखते हैं, यहां तो वेदांत के एकात्मवाद ने पहले ही समाजवाद के लिए मैदान साफ कर दिया है। हमें उस एकात्मवाद को केवल व्यवहार में लाना है। जब सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा का निवास है, तो छोटे-बड़े, अमीर-गरीब का भेद क्यों? प्रेमचंद विवेकानंद और गांधी के इस विचार से सहमत हैं कि यूरोप के समाजवाद के स्थान पर भारतीय समाजवाद हो, जिस पर 'भारतीयता' की छाप हो, जिसमें स्वार्थ और लूट प्रधान न हो, नीति और धर्म प्रधान हो।'[9]

प्रेमचंद के इस मत के आधार पर कहा जा सकता है कि गोयनकाजी ने प्रेमचंद को आलोचकों के एकांगी नजरिए से बाहर निकालकर साहित्य जगत को प्रेमचंद के हवाले से यह बताने का प्रयास किया कि प्रेमचंद भी किसी भी वाद, विचार या दृष्टि को विदेशी स्वीकृति के रूप में स्वीकार करने के पक्षधर नहीं थे। वे भारत में 'भारतीयता' के आधार पर उसकी स्वीकारोक्ति चाहते थे।

डॉ. कमल किशोर गोयनका की पुस्तकों को मंगवाकर डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा पढ़ना यह दर्शाता है कि डॉ. रामविलास शर्मा जैसा बड़ा आलोचक अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' के चतुर्थ संस्करण निकालने से पहले डॉ. कमल किशोर गोयनका की पुस्तक को पढ़ना अनिवार्य समझता है और डॉ. शिवकुमार मिश्र का कथन 'जो काम गोयनका ने प्रेमचंद पर किया, वह हम प्रगतिशीलों ने क्यों नहीं किया।'[10] भी गोयनकाजी की प्रेमचंद साहित्य पर विशिष्ट आलोचना दृष्टि को दर्शाता है। डॉ. कमल किशोर गोयनका के इस योगदान को हिंदी के कई प्रतिष्ठित लेखकों-आलोचकों ने सराहा है। इनमें हम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल और राजी सेठ आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

पुष्पिता अवस्थी अपने लेख 'कमल किशोर गोयनकाः एक बड़े लेखक का प्रतिबिंब' में गोयनकाजी के लेखन, शोध व आलोचना प्रक्रिया पर विचार करते हुए कहती हैं कि- गोयनकाजी के अन्वेषण, शोध एवं विवेचन की पद्धति पुरानी है। कार्ड पद्धति से हर प्रविष्टि को दर्ज करना और उसी वैज्ञानिक पद्धति से सारे संदर्भों को समेटने का काम कोई आसान नहीं है पर अपनी भीतरी इच्छाशक्ति और श्रमसाध्य लगन के बलबूते गोयनका ने इस कार्य को अपने लिए तप बना लिया है। अब तक भारतीय हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में प्रेमचंद के साहित्य को लेकर 400 के लगभग शोध लेख उनके प्रकाशित हुए हैं तथा कई गंभीर मसलों पर वे आज भी उसी निष्ठा से कार्यरत हैं। अचरज है कि प्रेमचंद पीठ पर बैठने वाले साहित्यकारों ने प्रेमचंद पर नगण्य काम किया और गोयनका ने कभी भी किसी प्रेमचंद पीठ पर आसीन न होने के बावजूद वह कार्य संभव किया है, जो बड़ी संस्थाएं भी नहीं कर पाती हैं। अस्सीवें वर्ष में प्रवेश करते हुए गोयनकाजी में आज भी एक युवकोचित उत्साह है। वे अभी भी तमाम साहित्यिक परियोजनाओं से संबद्ध हैं। प्रवासी साहित्य की दिशा में समय-समय पर उनके प्रयत्न यह दर्शाते हैं कि यदि हिंदी को वैश्विक भाषा बनना है तो वह केवल भारतीय हिंदी लेखकों के बलबूते नहीं, विश्व भर के हिंदी लेखकों को साथ लेकर चलने से बनेगी। कहना न होगा कि गोयनकाजी की साहित्यिक यात्रा उनकी अपनी अंतश्चेतना की वीथियों से गुजर कर मंजिल तक पहुंची है तथा अभी भी बहुत सारा कार्य शेष है। जिस तरह निराला पर मात्र अपनी तीन खंडों की आलोचना पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना' लिखकर रामविलास शर्मा ने पूरे हिंदी जगत में ख्याति पाई है, प्रेमचंद के विभिन्न पहलुओं पर लगभग पचास पुस्तकें रचने वाले गोयनका ने उससे कम ख्याति और प्रतिष्ठा अर्जित नहीं की है। जिस संजीदगी से उन्होंने अपने उत्तर जीवन को इस ओर एकाग्र किया है वह हिंदी जगत में एक मिसाल है।'[11]

दलित चिंतन को आधार बनाते हुए डॉ. कमल किशोर गोयनका ने लिखा कि दलित चिंतन तो विमर्श के रूप में काफी बाद में प्रकाश में आया। इससे बहुत पहले ही कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से दलितों के पक्ष में आवाज उठाते हुए अपनी कहानियों के माध्यम से उसे अभिव्यक्ति दी है। प्रेमचंद द्वारा रचित 'बांका जमींदार', 'पशु से मनुष्य', 'सवा सेर गेहूं', 'शूद्रा', 'कजाकी', 'खुदी', 'सद्गति', 'खेल', 'तावान', 'ठाकुर का कुआं' और 'दूध का दाम' आदि कहानियों में हम प्रेमचंद के दलित विमर्श को जान सकते हैं। 'गोदान' और 'रंगभूमि' नामक उपन्यासों में भी हम इस दृष्टि को देख सकते हैं। 'रंगभूमि' को लेकर भले ही प्रेमचंद को दलित विरोधी बताया गया किंतु प्रेमचंद का दृष्टिकोण बड़ा स्पष्ट था।

प्रेमचंद की कहानियों में दलित विमर्श को ध्यान में रखकर डॉ. कमल किशोर गोयनका ने भारतीय हिंदी साहित्य में दलित विमर्श के यथार्थ पर भी प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं- 'दलित लेखकों ने स्वानुभूति और परानुभूति के प्रश्न को उठाकर भी दलित लेखन को गैर दलित लेखकों के साहित्य से अलग करने का प्रयत्न किया है। ये दलित लेखक इस तर्क से दलित लेखकों के स्वानुभूति से रचे साहित्य को एक स्वतंत्र स्वायत्त इकाई के रूप में स्थापित करते हैं और डॉ. अंबेडकर को आदि स्रोत मानकर साहित्य और चिंतन की विगत परंपरा से स्वयं को विलग कर लेते हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद और निराला जैसे दलित-समर्थक एवं दलित-चेतना का विस्तार तथा जागृति उत्पन्न करने वाले लेखक भी उनके दलित विमर्श में स्थान नहीं पाते तथा जिन संत कवियों ने जातिवाद के विरुद्ध आवाज उठाई, वे भी उपेक्षा का शिकार हो गए।'[12] वास्तव में प्रेमचंद ने 'सूरदास' नामक पात्र के माध्यम से एक अछूत पात्र में गांधी दर्शन को अभिव्यक्ति दी है। अंधे भिखारी, किंतु अंतर्दृष्टि संपन्न सूरदास के व्यक्तित्व को विशिष्टता से अभिव्यक्ति दी। प्रेमचंद इसके माध्यम से किसी जाति का अपमान नहीं करना चाहते थे। प्रेमचंद की मान्यता लोक सामान्य की मान्यता से कुछ अलग है। तभी तो डॉ. कमल किशोर गोयनका प्रेमचंद की जाति विषयक दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए दर्शाना चाहते हैं कि प्रेमचंद की जाति को लेकर धारणा कुछ अलग प्रकार की थी। तभी तो प्रेमचंद अपनी रचना के एक पात्र से ये कहलाते हैं कि- 'मैं ब्राह्मण नहीं, दलित ही रहना चाहता हूं। जो अपना धरम पाले वही ब्राह्मण, और जो धरम से मुंह मोड़े वही दलित है।' प्रेमचंद इस उत्तर से ब्राह्मण, दलित आदि के जन्म से होने के विश्वास को खंडित करते हैं और धर्माचरण में ही जातिगत श्रेष्ठता देखते हैं। 'महाभारत' के भीम और सर्प रूपी राजा नृग के संवाद में नृग युधिष्ठिर से पूछता है कि ब्राह्मण कौन है? युधिष्ठिर कहते हैं कि जिसके मन में दया, करुणा, वैराग्य, तपस्या, दान लेना-देना, अध्ययन-अध्यापन आदि गुण हों, वह ब्राह्मण है, लेकिन नृग ने आपत्ति की कि ये गुण तो शूद्र में भी हो सकते हैं। इस पर धर्मराज का उत्तर था, 'जिस मनुष्य में ये गुण हों, वह शुद्र नहीं ब्राह्मण है और जिस मनुष्य में ये गुण न हों, वह ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर भी शुद्र है।'[13] गोयनकाजी इस कथन के माध्यम से दर्शाना चाहते हैं कि प्रेमचंद जाति को जन्मना नहीं कर्मणा ही स्वीकारते थे।

'प्रेमचंद शोध की नई दिशाएं' विषयक लेख के माध्यम से गोयनका कहते हैं कि लगभग दो सौ शोध ग्रंथों के बाद भी प्रेमचंद साहित्य पर शोध की अभी संभावनाएं हैं। दस्तावेज, पत्र, पांडुलिपियां, फोटोग्राफ और अन्य अज्ञात साहित्य प्रेमचंद के जीवन और साहित्य के नए आयामों को उद्घाटित करता है। उनका मानना है कि प्रेमचंद पर शोध को एक पूरा जीवन समर्पित किया जा सकता है। प्रेमचंद पर अध्ययन करते हुए डॉ. कमल किशोर गोयनका ने तीन बातों को ध्यान में रखा। वे लिखते हैं कि- 'मेरे इस शोध कर्म ने प्रेमचंद के संबंध में तीन दिशाओं को खोला है-

1. उनके जीवन के दस्तावेजों की खोज और उनके अज्ञात तथ्यों का प्रकाशन।
2. हिंदी-उर्दू की अज्ञात एवं दुर्लभ रचनाओं को खोजना एवं प्रकाशित करना।
3. प्रेमचंद के विचार पक्ष का तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर मूल्यांकन और दुराग्रही आलोचना से मुक्त करना।'[14]

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने ऐसी कई धारणाओं को निर्मूल कर दिया जो प्रेमचंद के विषय में बन चुकी थी। उन्होंने प्रमाण उपलब्ध करवाकर इस बात को निर्मूल सिद्ध कर दिया कि 'प्रेमचंद गरीबी में पैदा हुए, गरीबी में जिए और गरीबी में ही मर गए।' प्रेमचंद ने बेटी के विवाह में दहेज दिया था, इस बात को भी डॉ. कमल किशोर गोयनका ने सप्रमाण सिद्ध किया है। उन्होंने 'सरस्वती प्रेस' व प्रवासी लाल वर्मा 'मालवीय' के साथ प्रेमचंद के व्यवहार को भी सप्रमाण दर्शाया। इस प्रकार गोयनका ने प्रेमचंद के जीवन से जुड़े कई विषयों को जो कि किसी विचार विशेष के लोगों द्वारा प्रचारित किए गए हैं, को झूठा और अतार्किक-अप्रामाणिक सिद्ध करते हुए अपनी नूतन स्थापनाएं दी हैं।

डॉ. कमल किशोर गोयनका का मत है कि कुछ रचनाओं के सहारे हम प्रेमचंद को समग्रता से जान सकते। प्रेमचंद को ठीक से जानने के लिए उन्हें पूरे विस्तार से पढ़ना जरूरी है। प्रेमचंद साहित्य का विचार पक्ष महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद को गांधीवाद व समाजवाद के आलोक में जानना चाहिए। गांधी से प्रभावित प्रेमचंद की मान्यता समाजवाद के विषय में वैसी नहीं है, जैसी कि प्रगतिवादी आलोचक दर्शाते हैं। प्रेमचंद का अपने व्याख्यान में प्रगतिशील शब्द को गौण मानकर 'आध्यात्मिक आनंद', 'आध्यात्मिक संतोष' और मन के संस्कारों को प्रमुखता देते हैं। स्वराज्य की प्राप्ति और भारतीय आत्मा की रक्षा इन दो बातों को प्रेमचंद ने अपने उद्देश्यों के रूप में स्वीकारा था। इस विषय में डॉ. कमल किशोर गोयनका कहते हैं कि- 'प्रेमचंद साहित्य की विराटता और विविधता में भारतीयता के दर्शन होते हैं। इसी भारतीय आत्मा को गांधी 'हिंद स्वराज्य' में, मैथिलीशरण गुप्त 'भारत भारती' में, प्रेमचंद 'सोजेवतन' में तथा जवाहर लाल नेहरू 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में तलाश रहे थे। अतः प्रेमचंद को भारतीयता का लेखक कहना मुझे सार्थक लगता है। प्रेमचंद की भारतीयता में जो भारतीय आत्मा है, वह अनेक रूपात्मक है और उसके अंग हैं-राष्ट्र प्रेम, स्वराज्य, संस्कृति एवं मूल्यवादी उत्कर्ष, इतिहास की समकालीनता, सामाजिक जागरण और सामरस्य एवं एकता आदि।'[15]

डॉ. कमल किशोर गोयनका अपने अध्ययन से इस बात को सिद्ध करते हैं कि-'उनकी (प्रेमचंद) भारतीयता में हिंदूवाद, राष्ट्रवाद, गांधीवाद, मानववाद, साम्यवाद आदि सभी किसी न किसी रूप तथा मात्र में समाविष्ट हैं। इनमें से कोई भी एक विचारधारा प्रेमचंद के विराट औपन्यासिक संसार को प्रकट करने का दावा नहीं कर सकती, इसलिए वे भारतीय आत्मा के कुशल शिल्पी हैं। इसी कारण प्रेमचंद वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, कबीर की परंपरा में आते हैं और उनके समान ही कालजयी हैं।'[16]

प्रेमचंद के कम्युनिस्ट होने की बात पर डॉ. कमल किशोर गोयनका का मत है कि- 'उन्होंने (प्रेमचंद ने) कहा, 'मैं कम्युनिस्ट हूं लेकिन मेरा कम्युनिज्म गांधी का भी नहीं है। मेरा कम्युनिज्म है कि किसानों पर महाजनों का अत्याचार नहीं होना चाहिए।' यह उनका कम्युनिज्म है। भारतीय दृष्टिकोण वाले भी तो यही चाहते हैं। किसी का शोषण नहीं होना चाहिए। जब मैं यह कहता हूं कि किसानों का शोषण नहीं होना चाहिए तो क्या मैं कम्युनिस्ट हो जाऊंगा? जब हम कहते हैं कि सारी सृष्टि नारायण की है। जब हम मनुष्य की एकता की बात करते हैं तो हम साम्यवाद की बात स्वीकार क्यों करें। जब हमारा भारतीय दर्शन मनुष्य की एकता की बात करता है। अद्वैतवाद कहता है कि सब मनुष्य बराबर हैं। सब ईश्वर की संतान हैं तो मैं इस दर्शन को स्वीकार करूंगा या मार्क्सवादी दर्शन से स्वीकार करूगा? इसलिए प्रेमचंद में जो भारतीयता है, जो उनके जीवन मूल्य हैं, जो उनके साहित्य में आए हैं, वे भारतीय सनातन परंपरा से आए हैं। वे मार्क्स से नहीं आए हैं।'[17]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ. कमल किशोर गोयनका का प्रेमचंद विषयक गंभीर और गहन चिंतन पाठकों को प्रेमचंद साहित्य के विषय में एक नूतन दृष्टि देता है। उनका अध्ययन और आलोचना कर्म प्रेमचंद के जीवन व साहित्य के विषय में अनेक अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए हिंदी संसार को प्रेमचंद विषयक नवीन जानकारियों से अवगत कराता है। प्रेमचंद अध्ययन के अनेक नए आयाम हो सकते हैं, यह हम डॉ. कमल किशोर गोयनका के शोध और आलोचना के माध्यम से जान सकते हैं। □

संदर्भ सूची

1. डॉ. अनूप सिंहः 'आइए हस्ताक्षरों से बात करें', *बुलंदप्रभा,* सं. डॉ. अनूप सिंह, जनवरी-जून, 2018, बुलंदशहर, पृष्ठ-03, 2. डॉ. कमल किशोर गोयनकाः 'वह दौर था जब प्रेमचंद के अलावा कुछ सूझता न था', वही, पृष्ठ-19, 3. कर्ण वीर सिंह सिकरवारः 'प्रेमचंद साहित्य के अनन्यतम अध्येताः डॉ. कमल किशोर गोयनका', *बुलंदप्रभा,* सं. डॉ. अनूप सिंह, जनवरी-जून, 2018, बुलंदशहर, पृष्ठ- 39, 4. कर्ण वीर सिंह सिकरवारः 'डॉ. गोयनका का साहित्यिक रचना-कर्मः प्रेमचंद पर प्रकाशित पुस्तकें', *बुलंदप्रभा,* सं. डॉ. अनूप सिंह, जनवरी-जून, 2018, बुलंदशहर, पृष्ठ- 41, 5. डॉ. कमल किशोर गोयनकाः 'प्रेमचंद और समाजवाद', *बुलंदप्रभा,* सं. डॉ. अनूप सिंह, जनवरी-जून, 2018, बुलंदशहर पृष्ठ- 60, 6. वही, पृष्ठ- 62, 7. डॉ. कमल किशोर गोयनकाः 'प्रेमचंदः डॉ. रामविलास शर्मा और मैं', वही, पृष्ठ-73, 8. डॉ.कमल किशोर गोयनकाः सं. *प्रेमचंदः संपूर्ण दलित कहानियां,* सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 2014, भूमिका, पृष्ठ-16, 9. वही, पृष्ठ- 19, 10. डॉ. कमल किशोर गोयनकाः 'प्रेमचंदः शोध की नई दिशाएं', *गवेषणा,* प्र.सं. प्रो. नंदकिशोर पांडेय, अंक 111, जनवरी-मार्च, 2018, पृष्ठ- 10, 11. वही, पृष्ठ-16, 12. वही, पृष्ठ- 16, 13. डॉ. गोयनका से सतीश पेडणेकर की बातचीत, *पांचजन्य,* 5 अगस्त, 2018, पृष्ठ- 08।

गोयनका की रचनाधर्मिता : एक अनुशीलन

ए.अच्युतन

कमल किशोर गोयनका ऐसे प्राध्यापक विचारक एवं लेखक हैं, जिन्होंने अपनी निष्ठा, कर्मठता, परिश्रम और शोध के माध्यम से हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट पहचान बनाई है। उनके समस्त लेखन व्यवहार एवं अध्ययन-अध्यापन में राष्ट्र के प्रति संपूर्ण निष्ठा, समर्पण भाव से कार्य, हिंदी एवं उसके विकास, समृद्धि तथा प्रगति के प्रति प्रतिबद्धता देखने को मिलता है। उनका विश्वास है कि साहित्य और कला में एक मुक्त व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है, सहज जीवन का आभास मिलता है, ऐसा साहित्य और कला प्रगतिशील होती है। लगभग पैंतालीस प्रकाशित एवं अप्रकाशित कृतियों के विश्लेषण से पता चलेगा कि इन रचनाओं के मूल में भारतीय संस्कृति एवं मानव मूल्य की प्रधानता है।

हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आप का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हम जानते हैं कि आलोचना का क्षेत्र विस्तृत है और आलोचना या समीक्षा का कार्य दायित्वपूर्ण साधना है। आलोचना हमेशा व्यक्तिगत रुचियों से मुक्त होकर समाज, राष्ट्र एवं मानवता के प्रति अपना दायित्व निर्वाह करती है। आलोचना साहित्य सृजन का पुनर्सृजन है। आलोचक समाज का प्रतिनिधि बन कृति को देखता है। समाज को उसके मूल्यतम तथ्यों से परिचित कराता है। आलोचक का इसलिए भी महत्व है कि वे लोकहित की दृष्टि से कृति का मूल्यांकन कर मूल लेखक को भी दिशा-निर्देश दे सकते हैं। आलोचक मूलतः सहृदय पाठक ही हैं जो अपने विशेष मानसिक प्रशिक्षण के कारण पाठक से अधिक प्रबुद्ध होता है और मूल लेखक और पाठक के बीच एक माध्यम तथा अभिकर्ता का कार्य करता है। डॉ. कमल किशोर गोयनका की समीक्षात्मक दृष्टि सूक्ष्म, गहरी और मानवीय है। लगता है वास्तव में यह दृष्टि उनके अपने जीवन जीने के संस्कार के साथ जुड़ी हुई है। जीवन संघर्ष के साथ जीना और जीवन को मनुष्यता के साथ जीने का संस्कार उनमें है। संस्कार, परंपरा आदि का बीज अपने कुल या घर परिवार से ही मिलता है। 'उनका मानना है कि भारतीय संस्कृति परिवार निष्ठ है। परिवार व्यक्ति और समाज दोनों का केंद्र और संस्कृति के विकास का आधार भी है।'

वे जानते हैं कि जीवन के 'चतुर्विध शरीरों में से जरायुज' में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य का सर्वाधिक महत्व है। अतः मनुष्य का महत्व मनुष्यता में है। उनके परिवार संस्कार संपन्न हैं।

डॉ. गोयनका के व्यक्तित्व की विशेषता यह भी है कि उनमें अपने साथ दूसरों को सुनने, समझने की विन्रमता विद्यमान है। यह गुण वास्तव में भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक प्रक्रिया की ओर संकेत देता है, जो उनकी रचनाओं का मूल स्वर है।

वे कहते हैं कि भारतीय संस्कृति में धर्म और अध्यात्म एवं पनुर्जन्म, धर्म की संस्थापना और अधर्म का नाश, व्यक्ति संस्कार एवं आचारण की पवित्रता, सत्य, सेवा त्याग बलिदान, प्रेम समता, करुणा तथा परमार्थ, निष्काम कर्मयोग, समन्वय एवं समरसता वर्णाश्रम व्यवस्था एवं परिवार की महत्ता प्रकृति एवं उत्सवप्रियता एवं अतिथि संस्कार, आस्तिकता तथा पूजा आदि की स्वतंत्रता आदि ऐसी विशेषताएं हैं, जिनके कारण विश्व संस्कृतियों में भरतीय संस्कृति का विशेष महत्व है।' मनुष्य की श्रेष्ठतम अनुभूत साधनों की समष्टि का नाम 'संस्कृति' है तो वह 'सम्यककृति भी है और सम्यूय' कृति भी है। निरीक्षण से हमारे पूर्वजों ने यह भी सिद्ध किया है कि ताल, लय 'समन्वय' ही प्रकृति को संतुलित बना रखा है। अतः साहित्य में भी समन्वयात्मक दृष्टि का सर्वाधिक महत्व है। डॉ. गोयनका का रचना संसार इसी समन्वयात्मक दृष्टि का परिणाम है जो हमेशा सृजनात्मक रहा है।

डॉ. गोयनका हिंदी के उन विद्वानों में है जो अपने सृजनात्मक कार्य को अपने विचारों के साथ जोड़कर आगे बढ़ाया। अपने विचारों के साथ अटल रहने के कारण ही जेल गए। अवसर मिलने पर बदला नहीं अर्थात् उनके कथनी और करनी में अंतर नहीं। आज के संदर्भ में ऐसे व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्व है। आलोचना, पत्र साहित्य, संस्मरण, इंटरव्यू पाठांतर जैसे विषयों पर आपका विचार पठनीय एवं शोध का मांग करते हैं। इन विषयों को प्रस्तुत करते हुए आपकी दृष्टि का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए। विद्वानों का मानना है कि मनुष्य की तीन प्रकार की दृष्टि है। भौतिक दृष्टि जिसमें वस्तु के भौतिक रूप ही सामने आ जाते हैं। प्रतीक दृष्टि जिसमें किसी प्रतीक के माध्यम से कुछ और तथ्य ही सामने आ जाते हैं। दैविक दृष्टि जिसमें तथ्य की मूल बिंदु का ज्ञान या आभास मिलता है। लगता है कि गोयनका की कुछ रचनाओं को भौतिक दृष्टि से परखना चाहिए-कुछ प्रतीक दृष्टि से और कुछ वैदिक दृष्टि से क्योंकि कुछ रचनाएं कालजयी हैं, कुछ रचनाएं युग दृष्टि को सामने रखती हैं, कुछ रचनाएं नई परंपराओं का श्रीगणेश करती हैं।

डॉ. गोयनका यह मानकर चलते हैं कि आज के वैचारिक, पर्यावरण, बाजारवाद, भूमंडलीकरण के संदर्भ में भी अपनी परंपरा और संस्कृति की अवज्ञा संभव नहीं है। आज के उत्तर आधुनिक युग की एक विशेषता यह है कि हमें अपनी भाषा-साहित्य-संस्कृति की परंपरा पर गर्व नहीं, भरोसा नहीं, किसी नैतिक, आध्यात्मिक सामाजिक विचारधारा पर भी विश्वास नहीं। हमारा अतीत खो रहा है, परंपराएं क्षत-विक्षत हो रही हैं। परंपरा संस्कृति का वह भाग है जिसमें भूतकाल से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य तक निरंतरता बनी रहती है। यही निरंतरता डॉ. गोयनका की रचनाओं में भी मिलती है, जो भारतीय चिंतन की भाव भूमि पर अटल रहते हैं। परंपराएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित की जाती है। यही समाज की आदत है। अर्थात् परंपरा समूह विशिष्ट होता है। परंपरा कोई दैविक निर्माण नहीं। अपनी

आवश्यकताओं के अनुसार तत्वों का चुनाव कर समाज उन्हें आकार देता है। भारतीय समाज में पर्याप्त विविधता है, परंपराएं हैं लेकिन विविधता में एकता भी है। आज हमें एकता में विविधता देखने का वक्त का आया है।

डॉ. गोयनका निरंतर प्रेमचंद के जीवन, विचार और साहित्य का अध्ययन-अनुसंधान और विश्लेषण में लगे रहते हैं इसलिए देश-विदेश में उनका पहचान 'प्रेमचंद विशेषज्ञ' के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। हम जानते हैं कि प्रेमचंद हिंदी के पहले साहित्यकार थे जिन्होंने पश्चिमी पूंजीवाद एवं औद्योगिक सभ्यता के संकट को पहचाना और देश के मूल कृषि संस्कृति तथा भारतीय जीवन दृष्टि की रक्षा की और देशवासियों का ध्यान आकर्षित किया। सुमित्रानंदन पंत ने एक बार कहा था 'प्रेमचंद ने भारतीयता का नवीन राष्ट्रीयता का समुज्जवल आदर्श प्रस्तुत कर गांधी के सामने ही देश का पथ प्रदर्शन किया। उल्लेखनीय है कि डॉ. गोयनका के अनुसंधान और अध्ययन से पहली बार प्रेमचंद का भारतीय एवं मानवीय स्वरूप प्रमाण सहित सामने आया है। उनका कहना सारगर्भित है कि 'प्रेमचंद साहित्य की समीक्षा का यह सबसे अधिक हास्यास्पद पक्ष है कि उनके साहित्य का उनके देश की संस्कृति के आधार पर उसका मूल्यांकन न हो। वे भारत में उस समय पैदा हुए जब स्वदेशी स्व-संस्कृति, स्व-भाषा तथा स्वराज की नव-चेतना के साथ पश्चिम और भौतिकवादी संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ रहा था और हमारा समाज तथा चिंतक, लेखक, राजनेता आदि भारतीय संस्कृतिक के मूलभूत तत्वों तथा परंपराओं से आधुनिक ज्ञान विज्ञान के द्वंद्व के बीच अपनी भारतीयता की तलाश में लगे थे। युग के इस अन्वेषक तथा महानायकत्व के ज्वलंत प्रश्नों तथा संदर्भों के बीच प्रेमचंद को रखकर देखना आवश्यक है, क्योंकि वह भारत के मानस को आधुनिक संदर्भों से खोज रहे थे।' (प्रेमचंद के कथा साहित्य में भारतीय संस्कृति-लेख-कमल किशोर गोयनका) प्रेमचंद का भारतीय एवं मानवीय स्वरूप को प्रमाणित करने में उनके चरित्रों और उनके युग की परिस्थितियों के चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। यथार्थवादी चरित्रों की वैयक्तिक विशेषताओं की अपेक्षा नहीं करता, बल्कि उनके माध्यम से ही उन परिस्थितियों को भी उजागर करता है जो उनका निर्माण करती है, और जो समाज में व्यापक रूप से सक्रिय होने के कारण उसकी 'टिपिकल' परिस्थितियां होती हैं। ऐसी परिस्थितियां सामाजिक यथार्थ का एक अंश होकर भी हमें उसका समग्रता का बोध कराती हैं। यथार्थवादी प्रतिबिंब के इस प्रतिनिधिक चरित्र को प्रेमचंद ने बड़ी गहराई से समझा था इसलिए उन्होंने कहा- 'किन्हीं भी दो आदमियों की सूरतें नहीं मिलती, उसी भांति आदमियों के चरित्र भी नहीं मिलते। जैसे सब आदमियों के हाथ, पांव, आँखें, कान, नाक, मुँह होते हैं, पर इतनी समानता होने पर भी उसमें विभिन्नता मौजूद रहती है। उसी भांति सब आदमियों के चरित्रों में कुछ समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएं होती हैं। इसी चरित्र-समानता और भिन्नता, अभिन्नता और भिन्नता, और भिन्नत्व में अभिन्नत्व को दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है।'(आलोचना का जन पक्ष-चंद्रबली सिंह-वाणी प्रकाशन-प्रेमचंद जन्मशती समारोह और लेखकों का वर्तमान दायित्व-लेख से उद्धृत-पृ. 147)।

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का समग्र साहित्य निकालने में डॉ. गोयनका का योगदान हमेशा स्मरण रहेगा। प्रेमचंद संबंधी लगभग 3000 दुर्लभ दस्तावेजों के आधार पर 'प्रेमचंद विश्वकोश सहित प्रमाणित अध्ययन प्रस्तुत करना आसान कार्य नहीं है। निरंतर परिश्रम शोध एवं अध्ययन का यह परिणाम है। हम जानते हैं कि प्रेमचंद साहित्य के अनुवाद से वे विश्व साहित्यकार के रूप में भी जाने जाते हैं। बारान्निकोव ने उनके 'सप्त सरोज' का अनुवाद सबसे पहले रूसी में किया था। उसके बाद ब्रेसक्रोवनी, बलिन आदि ने उनकी रचनाओं का अनुवाद एवं अध्ययन किया। रूसी, चीनी, फ्रेंच, आदि भाषाओं में उनके योगदान तथा अन्य रचनाओं का अनुवाद हुआ। विश्व भाषाओं में प्रेमचंद का स्वागत भारत की सच्ची आत्मा का दर्शन कराने वाले साहित्यकार के रूप में हुआ। 'प्रेमचंद विश्वकोश' में सबका विवरण मिलता है। यही कारण है कि देश विदेश के विद्वानों ने डॉ. गोयनका को प्रेमचंद विशेषज्ञ के रूप में मान्यता एवं सम्मान दिया।

प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान डॉ. गोयनका का पहला शोधकार्य है जिसमें प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान तथा उनकी सामान्य शिल्प-विधि को व्यवस्थित रूप में अध्ययन किया गया है। विद्वानों का मानना है कि इस शोध अध्ययन में उन्होंने शोध के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने का पूरा प्रयास किया है। शोध की दृष्टि से ही नहीं वरन् आलोचना की दृष्टि से भी प्रेमचंद को समझने में यह अध्ययन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शायद शिल्प विधि ा की प्रमुखता को समझते हुए लेखक ने विषय चयन किया है क्योंकि किसी भी रचना के शिल्प की चर्चा को किसी भी स्तर पर सरलीकृत करना रचना के प्रति अन्याय है। नामवरजी शिल्प या रूप या रूपबंध का सटीक विश्लेषण करते हुए कहते हैं- 'साहित्य के रूप केवल रूप नहीं बल्कि जीवन को समझने के भिन्न-भिन्न माध्यम हैं। एक माध्यम जब चुकता दिखाई पड़ता है, तो दूसरा माध्यम का निर्माण किया जाता है। अपनी महान जय यात्रा में सत्य-सौंदर्य-स्रष्टा-मनुष्य ने इस तरह समय-समय पर नए-नए कला रूपों की सृष्टि की ताकि वह नित्य विकासशील वास्तविकता को अधिक से अधिक समझ और समेट सकें।' (बहुवचन-50 जुलाई-सितंबर, 2016) इसी प्रकार डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है जिससे प्रेमचंद को समझने में एक नई दिशा मिलती है।

हिंदी साहित्य में पाठांतर की समस्या के अध्ययन का प्रथम प्रयास डॉ. गोयनका का मौलिक योगदान माना जाता है। डॉ. विवेकी राय ने सही कहा कि- 'लेखक ने एक अमर कहानी-शतरंज के खिलाड़ी-को उठाकर इसके ऐतिहासिक, भाषिक, मनोवैज्ञानिक और प्रक्रियामूलक अध्ययन प्रस्तुत किया है।' उन्होंने इतना तक कहा कि पाठानुसंधान पर इस पुस्तक के आधार पर बहस होना चाहिए। वास्तव में लेखक कहानी में पाठभेद की समस्या को दो स्तरों पर अध्ययन किया है। एक मूल पांडुलिपि के आधार पर माधुरी के हिंदी पाठक में विद्यमान पाठ-भेद है तथा दूसरी माधुरी के हिंदी पाठभेद तथा जमाना में प्रकाशित उर्दू पाठ में विद्यमान पाठभेद।

कहानी की मूल पांडुलिपि उपलब्ध होने के कारण पाठांतर की अनेक समस्याएं आई हैं लेकिन हमारा मानना यह है कि इस पाठांतर के अध्ययन की अनेक संभावनाएं हैं क्योंकि आज के उत्तर आधुनिकतावादी या उत्तर संरचनावादी यह मानते हैं कि कोई भी साहित्यिक कृति अन्य पाठों की तरह एक पाठ है। इस पाठ में अनेक उपपाठ हैं। इन अनेक उपपाठों की अनंत अर्थ-ध्वनि है- व्यंजन वक्रोक्ति है। प्रकरण वक्रता तथा प्रबंध वक्रता वाले पाठ चाहे जैसे हो वे सभी एक पाठ है और एक समान हैं। वे अपने अर्थ संदर्भ अर्थध्वनि और वक्रोक्ति में अनेकार्थी हैं। यद्यपि डॉ. गोयनका के अध्ययन में इस विषय की ओर सीधा संबंध नहीं जोड़ा जा सकता फिर भी पाठांतर तथा उससे निष्पन्न पाठ का उपपाठ या उनके अर्थ एवं संदर्भों का भी अध्ययन अपने आप में एक अलग विषय हो सकता है। विशेषकर आज के संदर्भ में-जहां भाषा संबंधी नए विचार प्रस्तुत हो रहे हैं। भाषा संस्कृति का मुख्य रूप है। भाषा में समाज का अतीत और वर्तमान मौजूद रहता है। भाषाएं सांस्कृतिक उपज हैं, और जनजीवन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। अतः डॉ. गोयनका के पाठांतर तथा पाठानुसंधान का काम अवश्य ही भाषा संबंधी अध्ययन के लिए भी-एक नया आयाम जरूर प्रस्तुत करते हैं।

प्रेमचंद को लिखे पत्रों का संकलन तथा 'प्रेमचंद के नाम पत्र' शीर्षक के पुस्तकाकार रूप में हिंदी साहित्य में एक नई परंपरा की शुरुआत करती है। हिंदी में पत्र साहित्य की संभावनाओं को उजागर करने के साथ-साथ यह ग्रंथ सामाजिक दायित्व को भी उद्घाटित करता है। यह पत्र प्रेमचंद को तथा उनके समकालीन परिसर को सही ढंग से समझने में बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ है। डा. गोयनका के रचना संसार में 'रंगभूमि नए आयाम' का विशेष महत्व है। हम जानते हैं कि यह उपन्यास भारत के स्वाधीनता संग्राम की व्यापक पृष्ठभूमि पर लिखा गया महाकाव्यात्मक उपन्यास है। महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन, सत्य और अहिंसा पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष, स्वराज्य और औद्योगिक नीति, कृषि संस्कृति आदि विचारों का समाज पर जो प्रभाव पड़ा, उसी का चित्रण रंगभूमि में प्राप्त होता है। वास्तव में अपने देश की मिट्टी, संस्कार तथा संस्कृति से आत्मसात् करना की जो मानसिक प्रक्रिया 'सोजेवतन' से आरंभ हुई थी उसका विकसित रूप या चरम सीमा हमें रंगभूमि में मिलता है। डॉ. गोयनका का योगदान इसमें यह है कि उन्होंने रंगभूमि से संबंधित जो अज्ञात एवं अप्राप्य दस्तावेज जो प्राप्त हुए, उसी के आधार पर अपना दृष्टिकोण 'रंगभूमि नए आयाम में प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. गोयनका पांच बार मॉरीशस और कई बार विदेश जा चुके हैं। हम जानते हैं कि मॉरीशस के प्रतिष्ठित साहित्यकार अभिमन्यु अनत पर उन्होंने 'अनत' की समग्र कविताएं' शीर्षक पुस्तक को प्रकाशित किया। इस संदर्भ में डॉ. गोयनका की ये पंक्तियां प्रवासी लेखकों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहेंगी- 'अभिमन्यु अनत भारत में मॉरीशस के प्रतीक हैं। साहित्य कला और संस्कृति के राजदूत हैं और वे ऐसे प्रवासी हिंदी साहित्यकारों में हैं जिन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य को अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया है। उनकी मॉरीशस जैसे छोटे से द्वीप में रहकर इतनी बड़ी उपलब्धि साहित्य कला के इतिहास में दुर्लभ है। अभिमन्यु बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। उन्होंने प्रायः सभी विधाओं में लिखा है परंतु उन्हें कविता, उपन्यास, कहानी नाटक आदि

में विशेष ख्याति मिली है। उनका निर्देशन, छायांकन अभिनय, संपादन, चित्रकारिता में भी कम उपलब्धियां नहीं हैं। वे ऐसे संपूर्ण कलाकार है जो जीवन के अनेक रूपों रंगों दृश्यों, चुनौतियों एवं संभावनाओं को चित्रित करते हैं।' इसमें कोई संदेह नहीं कि यह किताब मॉरीशस की हिंदी कविता का उद्‌भव और विकास को समझने में मदद करती हैं।

रचनाओं के संकलन तथा संपादन कला में डॉ. गोयनका की एक मौलिक एंव अनुपम दुष्टि रही है। प्रभाकर माचवेः प्रतिनिधि रचनाएं, मन्मथनाथ गुप्तः प्रतिनिधि कहानियों, मॉरीशस की हिंदी कहानियां, रामकुमार वर्माः नाटक रचनावली, मंजुलभगत : समग्र कला साहित्य आदि ग्रंथ इसका उत्तम उदाहरण है। वास्तव में ये ग्रंथ संपादन कला की एक नई प्रवृत्ति की ओर संकेत दे रहे हैं। इसमें संपादन के साथ-साथ संपादक की शोधात्मक एवं आलोचनात्मक क्षमता तथा सर्जनात्मक स्वरूप ही सामने आता है। उल्लेखनीय है कि दक्षिण के हिंदी विद्वान एवं लेखक बालशौरी रेड्डी के संपूर्ण रचनाओं का संग्रह एवं संपादन से उत्तर दक्षिण के संपर्क सेतु के निर्माण में भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

'जिज्ञासाएं मेरीः समाधान बच्चन के', 'दिनेश नंदिनी डालमिया से बातचीत', 'अभिमन्यु अनतः एक बातचीत' जैसी रचनाएं भेंटवार्ता या इंटरव्यू विधा के श्रेष्ठ ग्रंथ हैं। 'अभिमन्यु अनत से बातचीत' गोयनकाजी का पहला प्रयास है जब मीलों दूर बैठे लेखक से सीधे संवाद किया गया हो और संसार को समझने का सफल प्रयास किया गया हो। यह ग्रंथ अनत की रचनाध र्मिता, सृजनात्मक क्षमता एवं उनके संपूर्ण साहित्य के विविध आयामों को समझने एवं उसकी उपलब्धियों को रेखांकित करने में सक्षम रही है। 'जिज्ञासाएं मेरीः समाधान बच्चन के'- विशेषता यह है कि प्रस्तुत रचना हरिवंशराय बच्चन साहित्य कला, समाज, राजनीति, देश, धर्म, संस्कृति, भाषा आदि पर उनके विचारों एवं धारणाओं को पहली बार व्यवस्थित ढंग से, शास्त्रीय रूप में प्रस्तुत किया है। वास्तव में यह ग्रंथ बच्चनजी के मूल्यांकन का प्रचलित अनेक भ्रांतियों का निराकरण कर नया सिलसिला शुरू करती है। 'विषयातीत ईमानदारी और विषयगत् वैविध्य' इस रचना को सर्वथा मौलिक बना देता है। दिनेश नंदिनी डालमिया, गद्य गीत प्रतीक लेखिका के रूप में ख्याति प्राप्त हैं। उनके साथ बातचीत करके डॉ. गोयनका ने डालमियाजी के जीवन, विचार तथा सृजनात्मकता को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। यह एक ऐसा प्रयास है जो भेंटवार्ता विधा को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाता है।

इसी प्रकार हिंदी के संस्मरण साहित्य के लिए डॉ. गोयनका का योगदान भी महत्वपूर्ण है। 'हजारी प्रसाद द्विवेदी : कुछ संस्मरण, यशपाल : कुछ संस्मरण, प्रेमचंद : कुछ संस्मरण जैसी रचनाएं अपने आप में विशिष्ट हैं। हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा द्विवेदी यशपाल तथा प्रेमचंद का संस्मरण इन कालजयी रचनाकारों के बाहर-भीतरी जीवन को तथा सृजनात्मकता को निकटता और गहराई से प्रस्तुत करता है। संस्मरण के संबंध में डॉ. गोयनका का विचार उल्लेखनीय है। 'हमारे यहां जीवित व्यक्ति के संस्मरण लिखने की परंपरा नहीं है, और मृत्यु के उपरांत जो संस्मरण लिखे जाते हैं उनमें सत्‌गुणों की प्रशंसा अधिक और मानवीय दुर्बलता न के बराबर होती है। इस प्रकार के संस्मरण जीवन के अर्द्धसत्य ही उद्‌घाटित करते हैं। संस्मरण

लेखक मानवीय दुर्बलताओं के क्षणों को छिपा लेता है। संस्मरण व्यक्ति के अंर्तबाह्य जीवन के ज्ञात-अज्ञात, सबल-दुर्बल, सभी प्रसंगों को निस्संकोच उद्‌घाटित करने के लिए होना चाहिए।'

द्विवेदीजी के संस्मरण पुस्तक में एकत्र लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों का संस्मरण द्विवेदीजी के जीवन और कृतित्व को जानने के लिए आधारभूत सामग्री है। 'यशपाल के संस्मरण' पुस्तक के पीछे गोयनकाजी का उद्देश्य यह रहा है कि यशपाल का जीवन और साहित्य समान रूप से महत्वपूर्ण है। जब भी कोई उनकी जीवनी लिखेगा तो ये संस्मरण ऐसे आधारभूत सामग्री के रूप में कार्य करेंगे। प्रेमचंद कुछ संस्मरण में संकलित संस्मरण ऐसे दस्तावेज हैं जो प्रेमचंद के जीवन के अज्ञान पक्षों, घटनाओं और प्रसंगों को प्रमाणित रूप में उद्‌घाटित करते हैं। डॉ. गोयनका के अनेक और भी रचनाएं हैं। अनके ग्रंथों के लिए उन्होंने भूमिका लिखी है। इतनी विविधता एवं सृजनात्मकता उनके कृतित्व में है कि देश-विदेश के अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं से आप पुरस्कृत हो चुके हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि डॉ. कमल किशोर गोयनका के अध्ययन अनुसंधान का दायरा व्यापक है। विविध आयामी रचना संसार के लेखक डॉ. गोयनका हिंदी भाषा और साहित्य के शोधार्थी, विद्यार्थी, लेखक तथा पाठक के लिए प्रेरणास्रोत रहे हैं। आपके जैसे सूक्ष्म दृष्टा और भविष्य-दृष्टा साहित्य में बहुत कम देखने को मिलते हैं। हिंदी साहित्य में ऐसे अनेक मुद्दे हैं जो मतभेदों से भरे पड़े हैं। ऐसे में डॉ. गोयनका के लेखन कार्य का महत्वपूर्ण पहलू यह रहा है कि उन्होंने अपने-संस्मरण, साहित्य-इंटरव्यू, साहित्य-पत्र, साहित्य-शोध या आलोचना साहित्य के माध्यम से प्रमाण सहित आधारभूत सामग्रियों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। फलस्वरूप बहुत से विद्वान साहित्यकार एवं विद्यार्थी भ्रम से मुक्त हो चुके हैं। डॉ. गोयनका के व्यक्तित्व के बारे में डॉ. विश्वनाथ अय्यर का कहना उल्लेखनीय है कि 'उनमें एक अच्छे संपादक के गुण हैं, एक समीक्षक की विवेचना शक्ति है तथा एक शोधार्थी की अप्राप्य तक पहुंचने की तीव्र लालसा एवं क्षमता है। उनका व्यावहारिक पक्ष भी बड़ा मजबूत है। उन्होंने स्वयं हिंदी साहित्य की नई दिशाओं में कदम रखा और आज के युवा भी उनसे प्रेरणा लेकर स्वयं नए आयामों की तरफ बढ़ सकते हैं।' (समीचीन 13, डॉ. गोयनका अंक जनवरी, 1990 पृष्ठ-16-17) डॉ. कमल किशोर गोयनका सफलता का मूल मंत्र तपस्या को मानते हैं इसलिए उन्होंने कहा- रचनाकार अपना रास्ता स्वयं बनाता है। दूसरों के इशारे पर चलने वाला रचनाकार कभी मौलिक रचनाकार नहीं बन सकता। रचनाकार के अंतर्मन में जलने वाली अग्नि ही उसे रचनाकार बनाती है। इतना कहना चाहूंगा कि सिद्धि अथवा लाभ की चिंता न करें, बस साधना करते जाएं। लक्ष्य तपस्या हो, उसका प्रतिफल नहीं। सफलता का बस यही मंत्र है। □

प्रेमचंद और डॉ. गोयनका

आदर्श मिश्र

हिंदी जगत् में वरिष्ठ लेखक, मूर्धन्य समीक्षक, और साहित्य-चिंतक डॉ. कमल किशोर गोयनका का नाम एक सुपरिचित रचनाधर्मी के रूप में ख्यात है। प्रेमचंद के कथा-साहित्य का कहीं भी कोई संदर्भ आए, उसमें कमल किशोर गोयनका का नाम अवश्य उल्लिखित होता है। गोयनकाजी ने मुंशी प्रेमचंद के व्यक्तित्व, कृतित्व, कथा-प्रणयन, समाज चिंतन, शैली-निर्माण, रूढ़ियों पर प्रहार आदि सभी आयामों पर जो साहित्य लिखा है, वह उनके लेखन से सुविदित होता है। इस प्रकार की विशिष्ट पहचान बिरले समीक्षकों को ही मिलती है। गोयनकाजी को प्रेमचंद के समग्र साहित्य के अनुशीलन का श्रेय मिला है। कमल किशोर गोयनका का लेखन व्यापक तथा पूरी तरह प्रेमचंद-केंद्रित है। प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों के शिल्प की शैलीगत और भाषिक नवीनगत, भाषा की संरचना, वस्तु की प्रयोगशीलता, विचार की बुनावट और कहानी के कहानीपन की अनिवार्यता को उन्होंने बखूबी अपनी कृतियों में रेखांकित किया है।

गोयनकाजी ने प्रेमचंद पर जितना और जैसा गूढ़ कार्य किया है, वैसा कार्य हिंदी साहित्य में शायद ही किसी कथाकार पर हुआ हो। कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद संबंधी जो कार्य किया है, वह इस प्रकार है- 1. प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान 2. प्रेमचंद : कुछ संस्मरण 3. प्रेमचंद पाकेट बुक 4. प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी 5. प्रेमचंद : अध्ययन की नई दिशाएं 6. रंगभूमि : नए आयाम 7. प्रेमचंद विश्वकोश (दो खंड) 8. प्रेमचंद-चित्रात्मक जीवनी 9. प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य 10. प्रेमचंद की हिंदी उर्दू कहानियां 11. प्रेमचंद रचना संकलन 12. प्रेमचंद-देश प्रेम की कहानियां 13. प्रेमचंद के नाम पत्र 14. प्रेमचंद बाल साहित्य समग्र 15. प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां 16. प्रेमचंद और रंगभूमि उपन्यास 17. प्रेमचंद पत्रकोश 18. प्रेमचंद : नई पहचान 19. प्रेमचंद कहानी रचनावली (छह : खंड) 20. प्रेमचंद : अनछुए प्रसंग 21. प्रेमचंद : वाद विवाद, संवाद 22. प्रेमचंद मोनोग्राफ 23. प्रेमचंद : प्रतिनिधि संचयन 24. गोदान : प्रथम संस्करण 25. कफन कहानी : आत्मा की तलाश 26. प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन।

प्रेमचंद संबंधी इतना विशद कार्य करने के साथ गोयनकाजी ने अन्य साहित्यकारों पर भी अत्यंत गंभीर कार्य किया। उनकी ऊर्जा और लेखन को देखकर लगता है कि मनुष्य अपनी

उम्र को अक्षर (लेखन) से ही परास्त कर सकता है। अक्षर का जैसे क्षरण नहीं होता, वैसे ही लेखन यदि उसी अक्षरात्मा में किया गया हो तो वह भी क्षरित और लुप्त नहीं होता है। उन्होंने प्रेमचंद पर लिखे साहित्य के अलावा अन्य सत्रह पुस्तकें लिखीं हैं, जो इस प्रकार हैं- 1. प्रभाकर माचवे : प्रतिनिधि रचनाएं 2. जगदीश चतुर्वेदी : एक विवादास्पद रचनाकार 3. मन्मथनाथ गुप्त : प्रतिनिधि कहानियां 4. जिज्ञासाएं मेरी : समाधान बच्चन के 5. हजारी प्रसाद द्विवेदी- कुछ संस्मरण 6. रवींद्रनाथ त्यागी-प्रतिनिधि रचनाएं 7. विष्णु प्रभाकर-प्रतिनिधि रचनाएं 8. यशपाल : कुछ संस्मरण 9. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली (तीन खंड) 10. लघुकथा का व्याकरण 11. दिनेशनन्दिनी डालमिया से बातचीत 12. मंजुल भगत : समग्र कथा साहित्य (दो खंड) 13. गरीब होने के फायदे और अन्य व्यंग्य रचनाएं 14. आपातकाल की प्रतिनिधि कविताएं 15. गांधी : पत्रकारिता के आयाम 16. बालशौरि रेड्डी : कथा रचनावली 17. रवींद्रनाथ त्यागी रचनावली आदि।

इनके अतिरिक्त प्रवासी साहित्य पर चिंतन करते हुए गोयनकाजी ने लिखा है कि- 'अभिमन्यु अनत', मॉरीशस की हिंदी कहानियां, 'अभिमन्यु अनत : प्रतिनिधि रचनाएं समग्र कविताएं', मॉरीशस के राष्ट्रकवि बृजेंद्र कुमार भगत-मधुकर काव्य रचनावली और हिंदी का प्रवासी साहित्य। इसके साथ ही उन्होंने यह भी प्रयत्न किया है कि मॉरीशस जैसा एक छोटा हिंदी, फ्रेंच, अंग्रेजी और क्रियोली भोजपुरी-भाषी देश हिंदी साहित्य की सर्जना के प्रति कितना समर्पित है। कमल किशोर गोयनका में कोई मौलिक साहित्य तो नहीं लिखा लेकिन जो निबंध लिखे अथवा रचनाकारों पर जो कार्य किया, वह न केवल उत्कृष्ट शोध-कार्य है, बल्कि शोध में भी मौलिक सोच की अभिव्यक्ति है। आलोचना अथवा समालोचना एक दुष्कर कार्य है। एक सर्जक की आत्मा में उतरकर और अध्ययन की सीमाओं को असीमित करके ही ऐसा कार्य संभव है। यह भी सच है कि कोई लेखक तो सूर, जायसी, तुलसी, प्रसाद, निराला, या प्रेमचंद नहीं हो सकता। इन बड़े सर्जकों की एक महानता तो वे स्वयं रचते हैं, किंतु महानता के इस क्षितिज को विश्वव्यापी और महान बनाते हैं अध्येता, आलोचना और चिंतक। गोयनकाजी ने प्रेमचंद संबंधी किसी सैद्धांतिक की रचना तो नहीं की, किंतु प्रेमचंद के विषय में जो कुछ लिखा है, वह मील का पत्थर है।

गोयनकाजी हिंदी के प्राध्यापक रहे हैं। उन्होंने अध्ययन-अध्यापन एवं अन्वेषण का जो क्षेत्र चुना, वह था कथा-साहित्य लेकिन कथा साहित्य में किसी एक कथाकार की स्थापना इस प्रकार कर देना कि शोध के तमाम मानक टूट जाएंगे, यह गोयनकाजी का ही कमाल है। गोयनकाजी ने प्रेमचंद पर एकल एकाग्र होकर जो काम किया है वह पश्चिम के विश्वविद्यालयों के शताधिक अन्वेषक भी मिलकर नहीं कर सकते। गोयनकाजी ने प्रेमचंद संबंधी अनवरत शोध-सर्जनात्मक आलोचना, संचयन, संकलन आदि कार्यों का निष्पादन कर यह भी सिद्ध किया कि प्रेमचंद जैसे एक ही कथाकार का शोध-फलक कितना व्यापक और विराट है और शोध की संभावनाएं कितनी चुनौतीपूर्ण एवं विचारात्मक है। अकेले प्रेमचंद पर छब्बीस पुस्तकों का प्रणयन और प्रेमचंद को लेकर इसके शिल्प-विधान का आकलन करना साधारण काम इसलिए नहीं है कि जरा-सी चूक हो जाने पर विचारधारागत अंतर्विरोध पैदा कर सकती है। 'प्रेमचंद

विश्वकोश' 'प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी', 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्यः 'प्रेमचंद रचना संचयन' आदि लिखने के बाद जब उन्होंने 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन जैसी पुस्तक लिखी तो ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी उपाधि के लिए लिखा गया शोधप्रबंध हो, किंतु उन्होंने पुस्तक की भूमिका में यह कहा है कि प्रेमचंद की उपलब्ध 298 कहानियों का कालक्रमानुसार उनकी रचना-प्रक्रिया के साथ वह साक्ष्य सिद्ध शोधकार्य हो, किंतु इससे यही प्रमाणित होता है कि गोयनका शोध को विश्वविद्यालयी उपलब्धियों के पार ले जाकर शोध का नया अस्तित्व, नई अस्मिता और एक निर्बाध परंपरा रचते हैं। उन्होंने 'प्रेमचंद रचना संचयन' के पुरोवाक् में प्रेमचंद का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो कथा में चिंतन और कथा के स्वरूप की स्पष्ट करता है। प्रेमचंद जी कहते हैं कि 'हमारी कसौटी पर वह साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाशन हो- जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।'[1] इस एक उद्धरण से गोयनकाजी ने प्रेमचंद के कथा-चिंतन, कथा-प्रक्रिया तथा लेखकीय संकल्प को एक साथ प्रस्तुत कर दिया है।

गोयनकाजी प्रेमचंद के प्रशंसक अथवा अन्वेषण-समीक्षक तक ही सीमित नहीं हैं, लेकिन उन्होंने कथाकार की आत्मा में उतरकर रचना-प्रक्रिया के मूल तक पहुंचने का प्रयास किया है। उनकी आत्मा में उतरकर अवगाहन किया है। यदि बाह्य रूप से देखा जाए तो उनके शब्द परिवेश, पात्र, कथानक आदि के साथ-साथ प्रेमचंद की प्रत्येक रचना को जीवन-दृश्य की भांति प्रकट किया है। ठीक प्रेमचंद जैसी कल्पना और विचार के साथ आंतरिक रूप से उन्होंने प्रत्येक रचना की अंतर्यात्रा की है। यहां यह कहना है उचित होगा के गोयनकाजी किसी विचारधारा विशेष के आग्रह से आबद्ध होकर प्रेमचंद के यथार्थ अथवा आदर्श की खोज नहीं करते, अपितु वे तो प्रेमचंद जैसे महान कलाकार के उस कलात्मक यथार्थ को उद्घाटित करते हैं जो मनुष्य में मनुष्य होने का संवेदन भी है, सौंदर्य भी है, उत्पीड़न और शोषण के बीच जीने की अदम्य जिजीविषा है। हिंदी आलोचना आज महान् रचनाकारों को वामपंथी, दक्षिणपंथी, कलावादी, यथार्थवादी आग्रहों के परिप्रेक्ष्य में देखती है लेकिन गोयनका ने प्रेमचंद को लेकर ऐसा कोई दुराग्रह नहीं अपनाया।

कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद की सन् 1903 से सन् 1936 तक के बृहद् कालखंड में रचित तीन सौ एक कहानियों में से उपलब्ध 298 कहानियों की वर्षवार तालिका प्रस्तुत करते हुए उनके प्रकाशन आदि का भी परिचय दिया है। इनमें बीस कहानियां ऐसी हैं जिन्हें गोयनकाजी ने खोजा और उसका हिंदी लिप्यांतरण करके प्रकाशित कराया। प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने 'प्रेमचंदः कलम का सिपाही' में केवल 224 कहानियों की सूची दी है। इसी में हिंदी-उर्दू कहानियों के शीर्षक तथा प्रकाशन संबंधी अनेक दोष विद्यमान हैं। डॉ. गोयनका ने अनेक वर्षों तक विभिन्न पुस्तकालयों में जाकर पुरानी पत्रिकाओं का अनुशीलन कर इस अभाव को पूर्ण किया। 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में प्रेमचंद के 'कहानी-दर्शन' का विस्तृत विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में सभी कहानियों को चार दशकों में बांटकर

प्रत्येक दशक की कहानियों का परिचय देते हुए प्रेमचंद की कहानी-यात्रा का विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह एक महान् कार्य था, जिसकी सिद्धि किसी परिश्रमी, कर्मठ और निष्ठावान् साहित्यकर्मी द्वारा ही संभव हो सकती है। डॉ. गोयनका ने इस कार्य को बखूबी निष्पादन किया है। प्रेमचंद पर अब तक अकेले जो कार्य उन्होंने किया है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद साहित्य की गवेषणा, समीक्षा, प्रलेखन, विश्वकोशीय संदर्भ ग्रंथ का निर्माण और दुर्लभ सामग्री के संपादन-प्रकाशन का जो कार्य उन्होंने किया है, वह एक अपूर्व साधना का परिणाम है। अपनी आलोचना और अनुसंधान में आद्यांत उन्होंने वैज्ञानिक और तटस्थ दृष्टिकोण अपनाया है और अपनी राजनीतिक विचारधारा को कहीं आरोपित नहीं किया है। हिंदी साहित्य की वर्तमान गुटबाजी एवं पूर्वाग्रही आलोचना की दुनिया में उनकी यह उपलब्धि गौरव का विषय है।

प्रेमचंद के उपन्यासों के शिल्प-विधान पर गोयनकाजी ने जो कार्य किया था, वह सन् 1974 में प्रकाशित हुआ था। उनके इस इस अध्ययन के पहले और बाद में भी गांधीवादी एवं मार्क्सवादी, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधारा को विद्वानों ने प्रेमचंद विषयक अध्ययन के केंद्र में रखा है। गोयनकाजी ने यह विचार प्रस्तुत किया कि शिल्प-विधान की विशिष्टता के कारण ही प्रेमचंद के उपन्यासों ने हिंदी उपन्यास में युगांतर उपस्थित किया था। शिल्प-विधान, भाषा-शैली, देशकाल, समाख्यानक उपकरण एवं नाटकीय उपकरणों के साथ जोड़ा और एक समग्र आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया। चूंकि प्रत्येक उपन्यास का शिल्प-विधान अलग है, इसलिए उन्होंने प्रत्येक उपन्यास को ही अध्ययन की इकाई माना। कृतियों के अलग-अलग अध्ययन को अधिक वैज्ञानिक उन्होंने इसलिए माना है कि शिल्प-विधान की भिन्नता एवं उसके निरंतर विकास का आकलन उसी से संभव होगा। उपन्यासों का रचनाकाल और प्रकाशन की तिथियों का निर्धारण करते हुए उन्होंने तीन कालों में इस अध्ययन को विस्तार दिया। 'असरारे मबाअिद' से लेकर 'प्रेमा-, 'रूठी रानी', तथा 'वरदान' तक का प्रारंभिक काल, 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' एवं 'कायाकल्प', का शैल्पिक उत्कर्ष का काल तथा 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा', 'गबन', 'कर्मभूमि', गोदान और 'मंगलसूत्र' तक का शैल्पिक विकास का काल, यह उनका अपना काल-विभाजन है। प्रेमचंद ने चूंकि 1936 ई. में प्रथम प्रगतिशील लेखक सम्मेलन की लखनऊ में अध्यक्षता की और कार्ल मार्क्स की विचारधारा के वे कहीं-कहीं प्रशंसक रहे, इसलिए मार्क्सवादियों का उन्हें मार्क्सवादी सिद्ध करने का प्रयास सहज है। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि गांधीजी राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य कर रहे थे, उसी को प्रेमचंदजी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से अंकित करने का प्रयास किया था इसलिए उन्हें गांधीवादी कहना भी गलत नहीं है। वास्तविकता यह है कि इस सब विचारधाराओं से प्रभावित होते हुए भी प्रेमचंद मूलतः और सामाजिक विचारधारा की अभिव्यक्ति उपन्यासों के शिल्प-विधान से जुड़ी हुई है, इसलिए डा. गोयनका पाठ आधारित, वैज्ञानिक अध्ययन को प्रेमचंद के असली योगदान को समझने के लिए आवश्यक मानते हैं। उल्लेखनीय है कि अपनी-अपनी विचारधाराओं को प्रेमचंद पर आरोपित करने के कारण ही प्रगतिशील लेखक संघ और जनवादी लेखक संघ जैसे संगठनों के सदस्य लमही सम्मेलन में विवाद करने की कोशिश कर

रहे थे। गोयनकाजी ने जो वैज्ञानिक और संतुलित अध्ययन की परिपाटी चलाई, वह इसी संदर्भ में प्रशंसनीय बन जाती है।

प्रेमचंद जैसे महान् साहित्यकार के जीवन और साहित्य के किसी भी पहलू पर अध्येताओं को प्रामाणिक सूचना तत्काल मिलने के उद्देश्य से 'प्रेमचंद विश्वकोश' का प्रकाशन गोयनकाजी ने 1981 ई. में किया था। पांच भागों में प्रकाशित इस विश्वकोश के पहले भाग में प्रेमचंद के जीवन से संबंधित तथ्य हैं। दूसरे भाग में संपूर्ण साहित्य के बारे में सूचनाएं हैं। तीसरे भाग में प्रेमचंद के पात्रों का परिचय है। चौथे भाग में प्रेमचंद के विचारों का दिग्दर्शन है और पांचवें भाग में उनकी रचनाओं की समीक्षा है। यह सामग्री वस्तुनिष्ठ खोज, प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य का मंथन एवं विश्लेषण समीक्षा और कोश-विज्ञान के अनुप्रयोग के आधार पर निर्मित हुई है। 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (1988 ई.) शीर्षक से दो भागों में दुर्लभ सामग्रियों का प्रकाशन कर प्रेमचंद विषयक अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए आवश्यक सारी बुनियादी सामग्री का दस्तावेजीकरण एवं प्रकाशन गोयनकाजी ने किया है, जो हिंदी की एक अपूर्व कृति है। इसके प्रथम भाग में अप्राप्य उपन्यास, कहानी, दस्तावेज एवं प्राचीन पत्रिकाओं में प्रकाशित समीक्षाएं हैं। दूसरे भाग में प्रेमचंद के पत्र, प्रेमचंद के नाम पत्र, भूमिकाएं स्फुट लेख एवं संपादकीय प्रकाशित हैं। इन सब सामग्रियों से प्रेमचंद के जीवन एवं साहित्य पर नई रोशनी पड़ती है। इस दृष्टि से प्रेमचंद द्वारा जयशंकर प्रसाद और अन्य साहित्यकारों को लिखे गए पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचंद की रचनाओं के जो अनुवाद विश्व की भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं, उसकी संपूर्ण सूचना अत्यंत उपयोगी है। प्रेमचंद की अप्राप्य रचनाओं की खोज भीष्म साहनी, मदनगोपाल तथा अमृतराय जैसे लोगों ने की थी। उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए गोयनकाजी ने उर्दू और हिंदी में व्यापक खोज की और तीस से अधिक अज्ञात कहानियों तथा अन्य अज्ञात सामग्री प्राप्त की जो इस ग्रंथ में पाठकों को मिल जाती है।

विश्व हिंदी कथा-साहित्य, विशेषकर मॉरीशस के हिंदी कथा-साहित्य के अध्ययन संपादन और मूल्यांकन की दिशा में भी गोयनकाजी ने ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया है। यह भी एक तथ्य है कि अपनी परिचय सीमा से बाहर होने के कारण या अन्य पूर्वाग्रहों के कारण हिंदी के आलोचक और विद्वान विश्व हिंदी साहित्य के अध्ययन एवं मूल्यांकन की दिशा में बहुत कम प्रवृत्त हुए हैं। मॉरीशस की हिंदी कहानियों पर साहित्य अकादेमी का ध्यान आकर्षित करने का कार्य पहली बार गायेनकाजी ने ही किया था। साहित्य अकादेमी के द्वारा प्रकाशित 'मॉरीशस की हिंदी कहानियां' शीर्षक पुस्तक के लिए उन्होंने जो भूमिका लिखी है, वह भी एक प्रामाणिक दस्तावेज बन गया है।[2]

गोयनकाजी ने अथक परिश्रम करके प्रेमचंद के मूल दस्तावेजों, पत्रों, डायरी, फोटोग्राफ, बैंक पासबुक और पांडुलिपियों के साथ लगभग तीन हजार वस्तुओं का संग्रह किया है। वे इसके सार्थक प्रयोग के लिए प्रेमचंद अकादमी और संग्रहालय की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हैं। गोयनकाजी मॉरीशस में महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट से भी संबद्ध हैं। गोयनकाजी निर्भाव से अनेक दशकों से साहित्य-लेखन में लगे हैं। देश और विदेश के लोग गोयनकाजी के साहित्य-लेखन से लाभान्वित हुए हैं। हिंदी के प्रख्यात विद्वानों, लेखकों एवं समीक्षकों ने उनके कार्यों की सराहना

की है। गोयनकाजी अपनी मान्यताओं को अपनी निष्ठा के साथ जीते हैं। उनके व्यक्तित्व में कोई आडंबर नहीं है। गोयनकाजी ने अनेक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय गोष्ठियों में सहभागिता की है। इस प्रकार उन्होंने अपने देश के बाहर भी अपनी पहचान बनाई। उन्होंने प्रवासी साहित्य में अभिमन्यु अनत पर विशेष कार्य किया है। साथ ही 'मॉरीशस हिंदी साहित्य कोश' भी लिखा। इसमें स्थानांतरित भारतीयता के दर्शन होते हैं। वे मॉरीशस के हिंदी साहित्य के प्रकाशन के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। वे विदेशों में जहां भी गए वहां हिंदी साहित्य के विकास की योजनाओं को भी प्रारंभ किया। 'अप्रवासी हिंदी मंच' की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद को लेकर प्रचलित अनेक मिथकों को ध्वस्त किया। उनकी अच्छाइयों और बुराइयों दोनों को उजागर किया। प्रेमचंद के रचनाधर्म पर समय और परिस्थितियों के पड़ने वाले दबावों का वह निरंतर खुलासा करते हैं। वे अपने तर्कों और उदाहरणों से अपना पक्ष, निर्भीक होकर रखते हैं। वामपंथियों के सम्यक सोच से वे चिढ़ते हैं तथा उनके हिंदू-संस्कृति विरोधी दोगलापन की भर्त्सना करते हैं।

गोयनकाजी का प्रवासी लेखन से गहरा जुड़ाव है। वे उन लेखकों में विरल हैं, जिन्हें भारतेतर देशों में हो रहे हिंदी लेखन की गहरी जानकारी है, वहां के रचनाकारों से उनका व्यक्तिगत परिचय है और वे अनेक प्रवासी रचनाकारों के सुख-दुःख में सहभागी रहे हैं। वे पांच बार मॉरीशस गए। 2002 में गोयनकाजी मॉरीशस की हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्मानित किए गए। अभिमन्यु अनंत ने उन्हें 'मॉरीशस बंधु' की उपाधि से अलंकृत किया।

हिंदी साहित्य की 'साक्षात्कार विधा' से डॉ. गोयनका को विशेष प्रेम है। अनेक साहित्यकारों से इस क्रम में गोयनकाजी ने गंभीर विचार विश्लेषण किया। व्यक्तिवादी कविता धारा के प्रवर्तक डॉ. हरिवंशराय बच्चन, स्व. दिनेश नंदिनी डालमिया सदृश साहित्यिक व्यक्तियों पर इनके ग्रंथ इसके प्रमाण हैं। प्रश्नकर्त्ता का महत्व इस बात में है कि वह उस व्यक्ति को उसकी संपूर्णता में जाने, जिससे वह साक्षात्कार कर रहा है। फिर वह यह भी निर्धारित करे कि वह जिसका साक्षात्कार ले रहा है उस व्यक्ति के उन प्रच्छन्न, गुप्त, प्रसुप्त, अप्रकट पूर्व विचारों अथवा भावों का अवतरण कराए, जो समाज, साहित्य और उस उपस्थित वर्तमान के लिए समीचीन, उत्कर्षक और कल्याण समुल्लासक हो। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपना संपूर्ण जीवन साहित्य-साधना के लिए समर्पित कर दिया। उनका प्रेमचंद पर वृहद् साहित्य पाठकों को आश्चर्यचकित करता है साथ ही दूसरे साहित्यकारों पर उनकी संपादित पुस्तकें, प्रवासी साहित्य पर उनका लेखन कार्य और अभिमन्यु अनत को भारत में जन-जन तक पहुंचा देना उनके लेखक, साहित्यकार तथा अन्वेषक होने का प्रबल साक्ष्य है। व्यक्ति के रूप में निरंतर सृजनशील, निष्काम, निर्भाव से साहित्य साधना में अनुरत वे एक योगी हैं। उनकी रचनाधर्मिता प्रणम्य है। □

संदर्भ सूची-

1. कमल किशोर गोयनका- प्रेमचंद : रचना संचयन, पुरोवाक, पृष्ठ-2,
2. मॉरीशस की हिंदी कहानियां- भूमिका लेखक कमल किशोर गोयनका।

व्यास-पुरुष : कमल किशोर गोयनका

विनय षडंगी राजाराम

भारतीय ज्ञान परंपरा में 'व्यास' एक विद्वत् आसन है। ऐसा आसन जिस पर बैठा व्यक्ति गणेश जैसे महाज्ञानी से लेखकीय कार्य करवाने की क्षमता रखता है। किंवदंती है कि महाभारत के रचनाकार 'वेदव्यास' ने श्री गणेश को अपना लेखक बनाकर अनेक आख्यानों-उपन्यासों-व्याख्यानों का महासंकल्प करते हुए महाभारत जैसे महान ग्रंथ की रचना और युग-युगांतर से महान साहित्य-वेत्ता के रूप में व्यासपीठ पर विराजमान हैं। 'व्यास' भारत के आदि साहित्य संवर्धक तथा साहित्य-संयोजक हैं। कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जो महाभारत में उल्लेखित नहीं, कोई ऐसा तथ्य नहीं जिसका आधार महाभारत में नहीं।

इस समग्र रूपक को मैं वर्तमान समय के महान कालजयी कथाकार प्रेमचंद के समग्र साहित्य के संयोजक, संरक्षक, संधानक डॉ. कमल किशोर गोयनका के कार्य में प्रतिरोपित करती हूं तो पाती हूं कि प्रेमचंद से जुड़ी कोई भी सामग्री, प्रेमचंद रचित कोई कथा, कथांश निबंध, विचार या कोई पत्र भी यदि किसी के पास संचित है तो वह हैं डॉ. गोयनका।

प्रेमचंद से संबंधित संपूर्ण साहित्य को एकत्र करने में गोयनकाजी ने अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया। किसी के पास, कहीं भी, कोई भी अप्रकाशित, अज्ञात या अल्पज्ञात सामग्री थी तो उसे अपनी पारखी, खोजी दृष्टि से खोजकर बाहर निकाला और उसकी प्रामाणिकता सिद्ध कर उस पर लिखा। प्रेमचंद को एक वर्ग विशेष की बपौती बनने से रोककर समग्र हिंदी या समग्र भारतीय साहित्य की महान थाती के रूप में उन्हें स्थापित किया। जैसे एक डॉक्टर अपने मरीज की हर-धड़कन की भाषा पहचानता है, वैसे ही श्री गोयनका ने प्रेमचंदीय साहित्य का अक्षर-अक्षर आत्मसात् किया है।

'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान' के रूप में प्रेमचंद विषयक व्यापक शोध-कार्य से प्रारंभ गोयनकाजी का प्रेमचंद प्रेम ऐसा विकसित हुआ कि उन्होंने प्रेमचंद लिखित समग्र साहित्य को खजाने की भांति खंगाला और उनके हर उस महत्वपूर्ण लेखन को उजागर किया जो साहित्य-समाज के लिए रत्नों-उपरत्नों से कम महत्व, के नहीं हैं।

'वाद' विशेष से जुड़े वर्चस्वी साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के कवि-लेखकों को अपनी विचारधारा को अनुकूलता के अनुसार बखूबी विभाजित किया है। भक्तिकाल के कबीर को

अपनाया, तुलसी को छोड़ा। भूषण की कविताएं उन्हें रास नहीं आती हैं, तो रीतिकाल की रीतियां उनको सामंतवादी लगती हैं। किसी भी साहित्यकार का समग्र अनुशीलन न करके खंडशः विचारधारा के अनुरूप उसका व्यक्तित्व आंकना अर्धसत्य को स्थापित करने जैसा है। हमारे दिग्गज नामधारी आलोचकों ने ऐसा भी ही किया है। आधुनिक साहित्य का एक बहुत बड़ा कालखंड और इस कालखंड के बहुत से कवि-लेखकों को इस विभाजनवादी दृष्टिकोण का बहुत खामियाजा झेलना पड़ा है।

ऐसे खेमा-परस्त साहित्यकारों ने जैसे कबीर के समग्र लेखन को परखे बिना उन्हें हिंदू विरोधी के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है, वैसे ही प्रेमचंद के कथा-साहित्य में से 'सद्गीत मार्का' लेखक की विशिष्ट श्रेणी में रखकर साहित्य-सागर को विभाजित करने का प्रयास किया है।

डॉ. गोयनका ऐसी समस्त जड़ धारणाओं को तोड़ने के लिए 'प्रेमचंद विश्वकोश' को प्रकाश में लाए। यह ग्रंथ प्रेमचंद की कथाओं में कहानियों के साथ-साथ जिहाद जैसी कहानियां भी हैं। सच तो यह है कि प्रेमचंद ने अपने समय में अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक असामाजिकताओं, कुरीतियों और वैमनस्य को उजागर किया नहीं है।

प्रेमचंद की कथाओं के समग्र संसार को डॉ. गोयनका ने एक स्थान पर तो एकत्र किया ही साथ में प्रेमचंद के जीवन से जुड़े अनेक अछूते, प्रसंग, अनेक, अनजाने-अनचीन्हे पत्र एवं दस्तावेजों को भी सहेजा, उन पर गंभीर विचार एवं शोधात्मक लेखन किया। प्रेमचंद के जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण दस्तावेजों से सज्जित पुस्तक 'प्रेमचंद समग्र के प्रकाशन से डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की जीवन-यात्रा के वैचारिक विकास के साथ-साथ उनके कथा-साहित्य की विकास यात्रा का भी 'राष्ट्रमार्ग' खोल दिया।

प्रेमचंद पर अब कोई एकांगी विचार नहीं है न ही कोई एकांगी एकाधिकार की चेष्टा है। प्रेमचंद अपने समय के ऐसे कथाकार थे जिन्होंने अपनी कथाओं के माध्यम से समाज को आईना दिखाया, आगे बढ़ने को प्रेरित किया और कथा-कहानी को सामाजिक युद्ध का हथियार भी बनाया। उनका समस्त साहित्यिक व्यक्तित्व देश-प्रेम से ओत-प्रोत देश के विकास के लिए समर्पित रहा है। प्रेमचंद से संबंधित ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों को सविस्तार साहित्य-समाज के सामने लाकर उनके नाम के साथ जुड़े 'प्रगतिशील लेखक' के तमगे को छीनकर उनके गले में खांटी 'देश-हितैषी कथाकार' की माला डालने का कार्य किया है डॉ. कमल किशोर गोयनका ने।

इस प्रकार के नवोन्मेषी कार्य से गोयनकाजी को स्थापित साहित्यकारों की जली-कटी भी खूब सुननी पड़ी किंतु, 'जली-कटी' की सारी जलन और पीड़ा पर उनके निरंतर शोधरत प्रयासों के परिणामस्वरूप प्रकाशित होते ग्रंथों के शीतल लेप लगते गए। धीरे-धीरे वामपंथी लेखकों-आलोचकों को भी उनके कार्य के महत्व को स्वीकार करना पड़ा। उनके वृहदाकार ग्रंथ 'प्रेमचंद विश्वकोश' की भूमिका गोपाल राय ने लिखी और अपनी पत्रिका 'आलोचना' में नामवर सिंह ने प्रकाशित की। 'प्रेमचंद कहानी रचनावली' के कुशल संपादन प्रकाशन के बाद डॉ. शिव कुमार मिश्र ने गोयनकाजी को गले से लगाकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी की।

प्रेमचंद के कथा-साहित्य की सर्वांग खोज के साथ-साथ गोयनकाजी की पारखी दृष्टि ने भारत पार के अप्रवासी भारतीयों के साहित्य से भारत को परिचित किया। अभिमन्यु अनत तथा उन जैसे अनेक मॉरीशस के हिंदी साहित्यकारों को प्रकाश में लाने का श्रेय गोयनकाजी को ही जाता है।

2015 में 'जोहांसबर्ग से आगे' नाम से प्रवासी भारतीयों को एक बहुत सार्थक हिंदी कहानी-संग्रह डॉ. गोयनका के संपादन में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की कहानियां विदेशी भूमि पर मनोभावों का चित्रण करती हैं। भारत से बाहर, भारत से दूर भी भारतीय आत्मा का विकास इन कथाओं में नए-नए रूप धरकर साकार होता है। यही इस संकलन की आत्मा है। इस आत्म तत्व की पहचान कर उसे प्रकाशित करने का कार्य करने वाले 'साहित्य पारखी' भी समर्थ कथाकारों के समान ही प्रशंसनीय तथा सम्माननीय हैं। 'हिंदी साहित्य' के अंतर्गत अनेक उप-विषयों का अध्ययन किया जाता है। उसी के तहत 'प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य के नाम से एक अध्ययन क्षेत्र विकसित हुआ है। डॉ. कमल किशोर गोयनका संभवतः इस विषय के प्रारंभिक सचेतकों में से एक हैं।

डॉ. गोयनका का संपूर्ण जीवन तथा उसका समग्र कार्य निश्चित ही व्यास पीठ पर आसीन व्यास-पुरुष के समान रहा है जो सहेजता है, संचित करता है और समाज को देता है। व्यास सम्मान से सम्मानित डॉ. कमल किशोर गोयनका वास्तव में 'व्यास-पुरुष' हैं।

□

प्रेमचंद साहित्य के अनन्यतम अध्येता

कृष्ण वीर सिंह सिकरवार

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध चितंक समीक्षक व प्रेमचंद साहित्य मर्मज्ञ के रूप में देश विदेश में विख्यात ख्यातिप्रद विद्वान आलोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका पर केंद्रित कई पत्रिकाओं ने अपने स्तर से सामग्री एकत्रित कर अद्‌भुत विशेषांक प्रकाशित किए है, परंतु प्रेमचंद साहित्य को पढ़ने वाले लेखक व पाठकों के बीच प्रेमचंद साहित्य पर किए गए शोधकार्य की लोकप्रियता इस कदर है कि पत्रिकाओं के संपादक उनके द्वारा किए गए इस कार्य को ज्यादा से ज्यादा पाठकों तक पहुंचाना चाह रहे हैं।

डॉ. गोयनका के साहित्यिक रचनाक्रम पर अगर नजर डाले तो हम देखते है कि उन्होंने मौलिक साहित्यिक रचनाकर्म कम किया है, परंतु प्रेमचंद संबंधी व प्रवासी साहित्य के ऊपर शोधकार्य के रूप में डॉ. गोयनका ने हिंदी साहित्य जगत् की जो सेवा की है वह अद्वितीय है। कोई भी व्यक्ति इतना श्रमसाध्य कार्य नहीं कर सकता है। अभी भी उम्र के इस पड़ाव पर प्रेमचंद पाठकों के समक्ष कुछ न कुछ साहित्य की अतुलनीय कृति पेश करते रहते है। अतः उनके द्वारा किए गए प्रेमचंद पर गंभीर शोधकार्य के जरिए उनकी साहित्य यात्रा की चर्चा करना मैं उचित व श्रेयस्कर समझता हूं क्योकि डॉ. गोयनका को उनके द्वारा किए गए विभिन्न शोधकार्यों के जरिए ही बेहतर जाना व समझा जा सकता है।

प्रस्तुत आलेख में डॉ. गोयनका के जीवनवृत्त के संबंध में उनकी प्रेमचंद पर लिखी लगभग 31 पुस्तकें, अन्य रचनाकारों पर लगभग 20 पुस्तकें एवं प्रवासी साहित्यकारों पर 8 पुस्तकों का उल्लेख किया जा रहा है, ताकि पाठक जान सकें कि लगभग 81 वर्ष की आयु में भी उनका श्रमसाध्य कार्य रुका नहीं है। अभी भी विभिन्न विषयों एवं लेखकों पर कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन होना शेष है।

सर्वप्रथम मैं डॉ. गोयनका के जीवन व व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना चाहता हूं, ताकि उन्हें और नजदीक से जाना जा सके। डॉ. गोयनका का जन्म 11 अक्टूबर 1938 को बुलंदशहर (उ.प्र.) के प्रतिष्ठित जमींदार परिवार में सेठ बद्रीनाथ गोयनका के परिवार में हुआ था, वे अपने माता-पिता की पांचवीं संतान हैं और उनके बाद तीन भाइयों का और जन्म हुआ। उनके दादाजी सेठ बद्रीदास गोयनका शेखावटी के मंडावा से निकले थे और बुलंदशहर के प्रतिष्ठित जमींदार और म्युनिसिपलिटी के चेयरमैन थे। बुलंदशहर में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और अंग्रेज

अधिकारी उनका सम्मान करते थे। दादी श्रीमती कुंजकुंवरि गोयनका दृढ़ निश्चय वाली गृहिणी थी और दादाश्री के देहांत के बाद उन्होंने वर्ष 1916 में शहर के शीतलगंज मोहल्ले में लक्ष्मीनारायणजी का भव्य मंदिर अस्सी हजार रुपये लगाकर बनवाया जो आज भी नगर का सबसे बड़ा मंदिर है, तथा उसमें अनेक उत्सवों, त्यौहारों पर अनेक प्रकार के धार्मिक कार्यक्रम होते रहते है। डॉ. गोयनका अब उसके मैनेजिंग ट्रस्टी हैं।

डॉ. गोयनका के पिताजी श्री चंद्रभान गोयनका महात्मा गांधी के अनुयायी थे और धार्मिक प्रकृति के सीधे सरल मनुष्य थे, तथा कांग्रेस के सदस्य थे और उनका 500 जुलाहों वाला शुद्ध खादी भंडार था। वे जीवन-भर खादी पहनते रहे और सदैव सादा जीवन, उच्च विचार का जीवन व्यतीत किया। वे सीधे-सरल व धार्मिक व्यक्ति थे, अपने सरल स्वभाव के कारण उन्होंने व्यापार में कई बार हानि उठाई, परंतु स्वभाव वैसा ही बना रहा। गोयनकाजी की मां पटना के प्रसिद्ध कानोडिया परिवार की थीं, उनमें उच्च परिवार का स्वाभिमान था, किंतु विपरीत परिस्थितियों में वे समझौता करके आगे बढ़ना जानती थीं। उन्हें झुकाना कठिन था, पर वे तर्क की बात सुनती थीं। आपको माता-पिता दोनों के ही संस्कार मिले। हिंदू धर्म के प्रति आस्था का भाव उनसे ही मिला।

आपकी प्रारंभिक शिक्षा म्युनिसिपल स्कूल तथा डी.ए.वी. इंटर स्कूल, डी.ए.वी. कॉलेज, बुलंदशहर में ही हुई थी। शुरू की पहली-दूसरी कक्षाएं म्युनिसिपल स्कूल, अपरकोट, बुलंदशहर में हुईं। तख्ती पर लिखते और टाट पर स्कूल में बैठते। वे सबसे पहले स्कूल पहुंचते और स्कूल की घंटी बजाते थे। अपने बचपन को याद करते हुए डॉ. गोयनका कहते हैं- 'मुझे स्कूल के दृश्य अभी तक याद हैं। तीसरी कक्षा में मुझे डी.ए.वी. इंटर स्कूल में दाखिल किया गया। मैं अपने भाई नवल किशोर के साथ बस्ता लेकर जाता और उसी तरह लौटता। स्कूल घर से दूर था, परंतु याद नहीं कि कभी डर लगा हो। यहीं से इंटर परीक्षा उत्तीर्ण की और स्कूल में प्रथम आया। समस्या आई बी.ए.करने की। बुलंदशहर में तब तक डिग्री कॉलेज नहीं था, खुर्जे में था, पर मैं वहां पढ़ना नहीं चाहता था। मेरी बड़ी बहन श्रीमती सुशीला सेक्सरिया कानपुर में थीं। मेरे बहनोई नंदन प्रसाद सेक्सरिया जे.के. मिल्स में उच्च अधिकारी थे। मैंने अपनी बहन से बात की और उन्होंने कानपुर में मेरा बी.ए. में एक कॉलेज में दाखिला करा दिया, परंतु एक महीने के बाद ही बुलंदशहर में ही डिग्री कॉलेज खुल गया और मैं वापिस बुलंदशहर आ गया और दाखिला ले लिया। मैंने बी.ए. में भी कॉलेज में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। इतिहास विषय में मेरा डिस्टिंकशन आया। अब समस्या आगे पढ़ने की थी। परिवार चाहता था, मैं व्यापार में लग जाऊं, परंतु मुझे प्रोफेसर होने का स्वप्न आ रहा था, लेकिन परिवार ने हाथ खड़े कर दिए। अब मुझे स्वयं निश्चय करना था कि क्या करूं ? मेरी एक और बहन जो उम्र में मुझसे बड़ी थीं, दिल्ली के चांदनी चौक में रहती थीं। मैंने अपने बहनोई सत्यनारायण पोद्दार से और बहन से पूछा और उन्होंने सहर्ष मुझे अपने पास दिल्ली बुला लिया। मुझे तत्काल 90 रुपए महीने की नौकरी मिल गई और फिर दो महीने के बाद बैंक की और सरकारी, दो नौकरियां एक साथ मिलीं। मैंने सरकारी नौकरी स्वीकार की क्योंकि उससे मैं एम.ए. कर सकता था और वही मेरा स्वप्न था। मैंने कैंप कॉलेज में एम.ए. (अर्थशास्त्र) में दाखिला लिया, लेकिन प्रथम श्रेणी न आते

देख मैंने उसे बीच में ही छोड़ दिया। मुझे उसी समय ज्ञात हो गया था कि दिल्ली विश्वविद्यालय ईवनिंग कॉलेज 1959 वर्ष से खोलने जा रहा है। मैंने अब एम.ए. (हिंदी) से करने का निर्णय लिया तब दाखिला मिला। मुझे अब प्रथम श्रेणी लेनी थी, क्योकि उससे ही मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षक हो सकता था। दिन में तीन घंटे दफ्तर में काम करता था और उसके बाद लाइब्रेरी में, फिर शाम की कक्षाओं में पढ़ता। होटल में रोटी खाता, फिर रात को 12-1 बजे तक पढ़ता। गर्मी में मेरे पास न बिजली का पंखा था, न पलंग। रात को पार्क में सोता, कुत्ते भौंकते तो डर लगता, पर दिल को बांधे रखता। एक बड़ा लक्ष्य मेरे सामने था और उस संघर्ष में गुजरना ही था। ईश्वर ने मदद की। एम.ए. (हिंदी) में प्रथम श्रेणी आई, तो एक बार यकीन नही हुआ। उसके बाद भी एक वर्ष बाद मैं दिल्ली कॉलेज में (ईवनिंग) में अध्यापक हुआ। उसके बाद दिल्ली विश्वविद्यालय से 1972 में प्रेमचंद पर पी-एच.डी. की और 1984 में रांची से प्रेमचंद पर डी.लिट. की। भारत में संभवतः मैं ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति हूं जिसने प्रेमचंद पर ही पी-एच.डी. और डी.लिट्. की है।'

डॉ. गोयनका का साहित्य में मौलिक कार्य कम ही देखने को मिलता है। अपनी मौलिक प्रकाशित रचनाओं के संबंध में डॉ. गोयनका कहते हैं कि- 'सन् 1959-60 में मेरी एक कहानी 'रिक्शेवाला' छपी थी और एक-दो कविताएं भी। इसके बाद मेरे सहपाठी डॉ. महावीर सरन जैन ने निबंधों की एक पुस्तक निकाली थी तब प्रेमचंद पर मेरा पहला लेख छपा था। मैं बुलंदशहर में जून, 1958 तक रहा और उसके बाद दिल्ली आ गया। बुलंदशहर में कुछ साहित्य के संस्कार पड़ चुके थे, परंतु दिल्ली में एम.ए. करते साहित्य की समझ विकसित हुई और कविता-कहानी लिखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई।'

अपनी साहित्यिक यात्रा आरंभ करने के संबंध में डॉ. गोयनका कहते है 'मेरे पिताश्री का बुलंदशहर में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था जहां मैने 'माधुरी', 'चाँद', 'प्रभा', 'हंस' एवं 'कल्याण' आदि अनेक पत्रिकाएं पढ़ने के साथ-साथ प्रमुख साहित्यकारों की कृतियां पढ़ीं। माताश्री तो जीवन के अंत तक अखबार-पुस्तकें पढ़ती रहीं। माताश्री में प्रबल जिज्ञासा भाव था, उस कारण वे अंत तक नई-नई वस्तुओं तथा तिथियों को जानने के लिए उत्सुक बनी रहीं। धार्मिक साहित्य का तो कोई अंत नही था, परंतु उपन्यास, नाटक, कहानी आदि की समुचित पुस्तकें भी पर्याप्त संख्या में थी। इस संस्कार ने साहित्य की ओर मुझे मोड़ दिया। बी.ए. करते हुए मैं एक बार जयशंकर प्रसाद बना था और छात्रों के सम्मुख 'आँसू' का पाठ किया था। इस संस्कार और मानसिक रचना के साथ दिल्ली आया और एम.ए. (हिंदी) में प्रवेश लिया तो डॉ. नगेंद्र के युग का संपूर्ण साहित्यिक वातावरण मुझे मिला और इस प्रकार साहित्य तथा लेखन की प्रवृत्ति विकसित होती गई।' डॉ. नगेंद्र ने जयशंकर प्रसाद पर मुझे पी-एच.डी. करने का विषय नहीं दिया और मैं अनजाने में प्रेमचंद की ओर मुड़ गया। डॉ. नगेंद्र ने मुझे प्रेमचंद पर विषय न दिया होता तो न जाने मैं किस ओर मुड़ गया होता। आगे वे कहते हैं कि मैं जो भी आज हूं, उसमें माता-पिता का सर्वाधिक योगदान है।'

प्रेमचंद के ऊपर कार्य करने हेतु डा. नगेंद्र ने सोलह विषय दिए जिनमें से-'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान' पर मौलिक शोध-कार्य करने हेतु निर्देशित किया।' यह शोध-कार्य

डॉ. गोयनका की अथक साधना, लग्नता एवं समर्पण की बदौलत वर्ष 1972 में प्रकाशित हुआ। इस शोधकार्य की थीसिस जमा करने में डॉ. गोयनका को 7-8 वर्ष लगे क्योंकि इन वर्षों में उनके द्वारा प्रेमचंद के संपूर्ण उपन्यासों में छिपी यों विभिन्न प्रकार की कलाओं, उनके पात्र, उनके भाषा वैशिष्ट्य आदि का बारीकी से अध्ययन किया गया जो कि किसी आलोचक द्वारा प्रथम बार किया गया था इससे वे जानकारियां बाहर निकलीं जिनसे पाठक अभी तक अनभिज्ञ था। इस पुस्तक के द्वारा उनको साहित्य जगत मे एक नई पहचान मिली व पाठकों ने इस गंभीर शोधकार्य की भरपूर प्रशंसा की। इस पुस्तक में दी गई जानकारी ने साहित्य जगत् को चौंकाया भी।

इस शोधकार्य के दौरान उनको प्रेमचंद के बारे में जो तथ्य व मान्यताएं गठित थीं उनसे अलग नए तथ्यों की तलाश की भी बड़ी संभावनाएं दिखीं। अतः डॉ. गोयनका निष्क्रिय न बैठकर प्रेमचंद साहित्य पर और अधिक मौलिक शोधकार्य की संभावनाएं तलाशने लगे। इस कारण वे पूरे मनोयोग से इस प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा मे जुट गए और इस लग्न का ही परिणाम था कि उनके द्वारा हिंदी साहित्य को प्रेमचंद का वह साहित्य मिला जो अभी तक यहां-वहां पत्र-पत्रिकाओं में अचिन्हा पड़ा था एवं जिस पर किसी आलोचक का ध्यान नहीं गया था।

डॉ. गोयनका स्वयं को प्रेमचंद साहित्य में स्थापित करने के लिए कोई बड़ा कार्य करना चाहते थे इसलिए उन्होने 'प्रेमचंद : विश्वकोश' (पांच खंड) की योजना का कार्य अपने हाथ में लिया इसके लिये उन्होंने प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय से इस योजना में मदद करने के लिए विचार रखा तो वे सहर्ष तैयार हो गए एवं उन्होंने मदद भी की, लेकिन आगे उन्होंने मदद करने से इनकार कर दिया जिस पर डॉ. गोयनका बड़े दुःखी एवं विचलित हुए। डॉ. गोयनका इतने बड़े कार्य को बीच में नहीं छोड़ना चाहते थे इस कारण उन्होंने अपने बूते पर ही इस कार्य को पूर्ण किया एवं वर्ष 1981 में प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली से इस वृहद ग्रंथ को प्रकाशित करवाया। प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली से यह पहला इतना बड़ा वृहद ग्रंथ था जो उन्होंने प्रकाशित कराया था। यह पुस्तक वर्ष 1981 की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक साबित हुई और सभी साहित्यिक विद्वानों ने इस पुस्तक की सराहना की। डॉ. नामवर सिंह ने इस पुस्तक की गोपाल राय द्वारा लिखी लंबी आलोचना 'आलोचना' पत्रिका में प्रकाशित की।

वर्ष 1988 में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से दो खंडों में पुस्तक 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के द्वारा डॉ. गोयनका ने लगभग 1400 पृष्ठों का अप्राप्य साहित्य खोज निकाला था जिससे पाठक अभी तक अपरिचित था। इन पुस्तकों के प्रकाशन के बाद डॉ. गोयनका को प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ व प्रेमचंद बेसवॉल कहा जाने लगा जो किसी भी आलोचक के लिए एक गौरवान्वित करने वाली बात थी। इस पुस्तक की परख करते हुए राजेंद्र यादव ने आरोप भी यह कहकर लगाए कि यह शोध नहीं बल्कि पुलिसिया तफ्तीश है, प्रेमचंद की मूर्ति को तोड़ने की सांप्रदायिक कोशिश है या दूसरों से झटका हुआ माल है, परंतु इन आरोपों की परवाह न करते हुए डॉ. गोयनका अपने सृजन कार्य में तल्लीन रहे।

इन पुस्तकों के प्रकाशन के पश्चात् प्रेमचंद विषयक अनेक पुस्तकों द्वारा कई ज्ञात व अज्ञात साहित्य हिंदी जगत् को मिला। इन प्रमुख पुस्तकों में वर्ष 1990 में 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां', वर्ष 1994 में 'प्रेमचंद : रचना संचयन', वर्ष 2002 में 'प्रेमचंद की देशप्रेम की कहानियां', 'प्रेमचंद के नाम पत्र', 'प्रेमचंद : बाल साहित्य समग्र', वर्ष 2005 मे 'प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां', 'प्रेमचंद और रंगभूमि उपन्यास', वर्ष 2007 में 'प्रेमचंदः पत्र-कोश', 'प्रेमचंदः कहानी रचनावली' (छः खंडों में), वर्ष 2010 में 'प्रेमचंदः वाद-प्रतिवाद एवं संवाद्', वर्ष 2012 में 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन', 'प्रेमचंदः प्रतिनिधि संकलन', साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली से 'प्रेमचंद (मोनोग्राफ)' पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुई है। 'प्रेमचंदः कहानी रचनावली के प्रकाशन पश्चात् डॉ. शिवकुमार मिश्र ने तो साहित्य अकादेमी के भवन में डॉ. गोयनका को गले से लगा लिया और अमरता का वरदान देते हुए कहा कि गोयनका तुम प्रेमचंद कहानी रचनावली जैसा कार्य करके अमर हो गए हो। यह एक वामपंथी लेखक की दक्षिणपंथी लेखक के प्रति प्रेमचंद संबंधी कार्य की श्रेष्ठता और महत्ता की स्वीकृति थी।

पाठकों के बीच डॉ. गोयनका की पूर्व प्रकाशित पुस्तकों की लोकप्रियता ही है कि जिन पुस्तकों के प्रथम संस्करण समाप्त हो गए थे उनको पुनः पाठकों एवं शोधार्थियों हेतु द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने हेतु विवश होना पड़ा। अब पाठक उनकी कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों के द्वितीय संस्करण के माध्यम से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान कर सकता है। हाल में जिन पुस्तकों के द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुए हैं उनका विवरण इस प्रकार है-(1) वर्ष 1974 में सरस्वती प्रेस, नई दिल्ली से प्रकाशित शोध ग्रंथ 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्पविधान' का द्वितीय संस्करण यश पब्लिकेशंस, नई दिल्ली से प्रकाशित। (2) वर्ष 1980 में सरस्वती विहार, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद : कुछ संस्मरण' का द्वितीय संस्करण सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित। (3) वर्ष 1980 में पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी' का द्वितीय संस्करण यश पब्लिकेशंस, नई दिल्ली से प्रकाशित। (4) वर्ष 1990 में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां' का द्वितीय संस्करण प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित। (5) वर्ष 2002 में निर्मल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद : देशप्रेम की कहानियां', का द्वितीय संस्करण अनिल प्रकाशन, नई दिल्ली से 'प्रेमचंद : राष्ट्रप्रेम की कहानियां' शीर्षक से प्रकाशित। (6) वर्ष 2002 में मेधा बुक्स, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद : बालसाहित्य समग्र', का द्वितीय संस्करण यश पब्लिकेशंस, नई दिल्ली से 'प्रेमचंद : संपूर्ण बाल साहित्य' शीर्षक से प्रकाशित। (7) वर्ष 2005 में अनिल प्रकशन, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां', का द्वितीय संस्करण अनिल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित। (8) वर्ष 2007 में अमित प्रकाशन, गाजियाबाद से प्रकाशित 'प्रेमचंदः पत्र-कोश' का द्वितीय संस्करण स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित। (9) वर्ष 2012 में नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' का द्वितीय संस्करण किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित।

डॉ. गोयनका बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं उन्होंने प्रेमचंद साहित्य पर तो लिखा ही बल्कि अन्य लेखकों पर भी कई बेहतरीन पुस्तकों का संकलन संपादन किया जिनमें प्रमुख हैं-प्रभाकर

माचवे (प्रतिनिधि रचनाएं), जगदीश चतुर्वेदीः एक विवादास्पद रचनाकार, जिज्ञासाएं मेरीः समाधान बच्चन के, रवींद्रनाथ त्यागी (प्रतिनिधि रचनाएं), यशपालः कुछ संस्मरण, लघुकथा का व्याकरण, मंजुल भगत-समग्र कथा साहित्य एवं गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान, हजारी प्रसाद द्विवेदी : कुछ संस्मरण आदि। उन्होंने लेखकों के ऊपर अपने विचार व्यक्त किए एवं उनका अमूल्य साहित्य देश के हिंदी पाठकों को उपलब्ध करवाया।

डॉ. गोयनका ने प्रवासी साहित्य पर भी काफी कुछ लिखा व मॉरीशस के हिंदी लेखक अभिमन्यु अनत के ऊपर बेहतरीन पुस्तकों को हिंदी पाठकों को उपलब्ध करवाया जिनमें प्रमुख अभिमन्यु अनत-एक बातचीत, अभिमन्यु अनत-प्रतिनिधि रचनाएं, अभिमन्यु अनत-समग्र कविताएं, मॉरीशस की हिंदी कहानियां, मॉरीशस के राष्ट्रकवि, बृजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' काव्य रचनावली एवं हिंदी का प्रवासी साहित्य आदि के द्वारा उन्होंने भारत से बाहर रह रहे प्रवासी साहित्य को उपलब्ध करवाया।

इतनी बेहतरीन पुस्तकों की रचना करने वाले डॉ. गोयनका की सतत् साधना अभी जारी है तथा कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन होना शेष है, जिनमे प्रमुख है-प्रेमचंद के उपन्यासों के प्रथम संस्करणों का प्रकाशन, प्रेमचंद विश्वकोश के शेष तीन खंड, प्रेमचंद की कालजयी कहानी 'कफन' पर एक पुस्तक एवं प्रेमचंद : भारतीयता की पहचान आदि पुस्तकों पर डॉ. गोयनका की साधना जारी है। अगर प्रेमचंद साहित्य पर किसी को अपना शोध कार्य करना है तो उसे डॉ. गोयनका की इन पुस्तकों से गुजरना ही पड़ेगा।

अपनी इस साहित्यिक यात्रा के दौरान डॉ. गोयनका के ऊपर कई प्रकार के आरोप भी लगे किसी ने उन्हें सेठ बताया और कहा कि वे प्रेमचंद की दुकान लगाकर बेच रहे हैं, परंतु डॉ. गोयनका इन आरोपों से विचलित नहीं हुए व अपने कार्यों में लगे रहे। यह सब सोचकर बड़ा अटपटा व विचित्र ही लगता है कि जीवन के 80 वर्ष पूर्ण करने वाला व्यक्ति कैसे इतना कार्य कर सकता है। इसके वावजूद यह सत्य है कि अभी भी डॉ.गोयनका निरतंर कार्य करने में लगे हुए हैं एवं देश के कालजयी लेखक प्रेमचंद एवं अन्य लेखकों के लुप्तप्रायः साहित्य को बचाने के लिए दृढ संकल्प हैं।

□

प्रवासी-संस्मरण

- अभिमन्यु अनत
- सत्यदेव टेंगर
- पुष्पिता अवस्थी
- उषा राजे सक्सेना
- पुष्पा सक्सेना
- अनिल प्रभा कुमार
- अनीता कपूर
- अर्चना पैन्यूली

मॉरीशस बंधु : कमल किशोर गोयनका

अभिमन्यु अनत

भारत से कई विद्वान, कलाकार तथा लेखक मॉरीशस आते रहे पर मॉरीशस में श्रीमती इंदिरा गांधी जी की पहली यात्रा और फिर द्वीप में दूसरे 'विश्व हिंदी सम्मेलन' के बाद यह सिलसिला जोर पकड़ता गया। प्रायः सभी भारतीय जो यहां पहुंचते रहे वे मॉरीशस की सुंदरता, यहां के भारतीय वंशजों की सफलता की कहानी, यहां की भारतीय संस्कृति तथा भारतीय भाषाओं की जीवंतता से मुग्ध हुए और मॉरीशस की अपनी दूसरी यात्रा के सपने देखते रहे। बहुत कम ऐसे लेखक यहां पहुंचे जिन्होंने मॉरीशस और भारत को एक दूसरे के और भी करीब लाकर दोनों देशों के बीच के सांस्कृतिक रिश्ते को और भी प्रगाढ़ बनाने की कोशिश की। मॉरीशस के द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान तो देश के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम तथा मंत्री खेर जगतसिंह के सहयोग से सौ से अधिक भारतीय लेखकों, संपादकों और प्रकाशकों को मॉरीशस पधारने का एक सुनहरा अवसर पैदा किया गया। पहली बार मॉरीशस की धरती पर बुद्धिजीवियों की इतनी बड़ी संख्या पहुंच पाई थी जिनमें ऐसी हस्तियां भी थीं- कर्ण सिंह, अमृता प्रीतम, विमल मित्र और शीला संधु इत्यादि, लेकिन इस सम्मेलन से पहले भी लोगों का यहां आना शुरू हो चुका था और रामधारी सिंह 'दिनकर', शिवमंगल सिंह 'सुमन', यशपाल और जैनेंद्र कुमार जैसी विभूतियां यहां पहले ही पहुंच चुकी थीं। इनमें केवल यशपालजी मॉरीशस पर एक पुस्तक लिख पाए। इस पुस्तक के बाद कुछ ऐसे लेखक-संपादक हुए जिन्होंने मॉरीशस के सांस्कृतिक संबंध को और भी घनिष्ठता प्रदान करने की प्रतिबद्धता दिखाई। भारतीजी ने 'धर्मयुग' के माध्यम से और कमलेश्वरजी ने 'सारिका' के जरिए भारत के पाठकों के सामने मॉरीशस को उभारना शुरू किया। मॉरीशस पर विशेषांक निकालकर भारतवासियों का ध्यान द्वीप की ओर आकृष्ट किया। इस कार्य में महावीर अधिकारी तथा कुछ अन्य लेखकों ने अपना-अपना सहयोग दिया। मॉरीशस भारत के इस सांस्कृतिक पुल को और भी सशक्त बनाने की इस प्रक्रिया में 1980 में एक नाम और जुड़ा और वह था कमल किशोर गोयनका का।

डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी से मेरी मुलाकात अगस्त, 1980 में पहली बार मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान में हुई थी। जैनेंद्रजी के साथ वे 'प्रेमचंद शताब्दी समारोह' के दौरान

मॉरीशस पहुंचे थे। उस पहली ही मुलाकात से मुझे इस व्यक्ति में मॉरीशस के प्रति विशेष रुझान दिखाई पड़ी। फिर भी मैं उसी वक्त यह नहीं सोच पाया था कि डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी के साथ आगे जाकर मेरी इतनी घनिष्ठता बढ़ सकती है। दिल्ली में जब पहली बार उनके परिवार के साथ ठहरने का अवसर मिला तब लगा कि मैं अपने किसी बहुत करीब के परिवार के यहां ठहरा हुआ था। अगर कभी सरकारी अतिथि के रूप में अच्छे होटलों में ठहरने का अवसर मिला तो भी गोयनका परिवार ने मुझे उन स्थानों पर रहने नहीं दिया। गोयनकाजी की पत्नी कुसुमजी तथा उनके तथा दो-बेटों-संजय और राहुल भी इतने अपने लगे कि कभी लगा ही नहीं कि मैं मॉरीशस के अपने त्रिओले निवास से दूर था। उस घर में मेरा इस तरह ख्याल रखा जाता रहा गोया कि मैं कोई बच्चा था। अब उस घर में रूपाली आई और फिर अस्मिता का प्रवेश हुआ तो वह घर और भी मनभावन बन गया।

कमल किशोर गोयनका परिवार का यह स्नेह केवल मेरे और मेरे परिवार के प्रति नहीं रहा। वक्त के साथ वह घर मॉरीशस के बेशुमार छात्रों और हिंदी प्रेमियों का भी अपना घर-सा बनता गया। यही कारण है कि अशोक विहार के उस घर को मैं 'मॉरीशस-भवन' कहता रहता हूं। मैंने कमल किशोरजी को अपने यहां भी काम करते देखा और उनके अपने घर पर भी और हर बार मैं अपने से यही कहता रहा-काश! मैं भी उनकी तरह अनुशासित होता और इतनी देर तक बिना विश्राम के काम कर पाता। मैंने अपने को उनके सामने बार-बार इस बात तक के लिए शर्मिंदा पाया कि उनके नियमित और लंबे पत्रों का मैंने ढंग से उत्तर नहीं दिया और इस बात को लेकर उनकी शिकायत आज भी बनी हुई है।

मॉरीशस के कई लेखकों की रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं मे छपवाने और उन्हें लिखने का प्रोत्साहन वे देते रहे। यही नहीं मॉरीशस में यहां की संस्थाओं, हिंदी जगत तथा आमजनों के बीच भी वे इतने प्रसिद्ध हुए कि कई बार मुझे उनसे कहना पड़ा कि यार, 'तुम तो मेरे देश में मुझसे अधिक मशहूर हो।' प्रेमचंद के इस विशेषज्ञ से जहां मेरी जमकर पटती रही है वहीं उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता को लेकर हमारे बीच लंबी बहसें भी होती रहीं और उसके बावजूद उन्होंने मेरे विचारों का कभी अनादर नहीं किया, उसी तरह मैंने भी उनके, प्रतिमानों को उनके अपने विश्वास, उनके अपने प्रतिमान मानकर उसकी कदर की। मेरा घनिष्ठ दोस्त जब भी मॉरीशस में रहा मैंने उसका सहायक रह के खुशी हासिल की और मेरे दिल्ली में होने पर कमल किशोर अपनी सारी गतिविधियों को पीछे रखकर मेरी दोस्ती को प्राथमिकता देते रहे।

इस आपसी सहयोग और आपसी दोस्ती में मैं हमेशा पीछे ही रहा क्योंकि गोयनकाजी दिल्ली में मेरे लिए जितना समय निकाल पाते थे और जितना कुछ मेरे लिए कर पाते थे उस मुकाबले में मैं उनका आधा भी नहीं कर पाया। उस आदमी की वह अपनी खासियत थी कि बीमारी की हालत में भी वे कदम-कदम पर मेरे सहयोगी बने रहे। कभी इस हद तक कि मुझे कहना पड़ता कि भैया अपने को मित्र ही बनाए रखो सेक्रेटरी तक मत उतरो। अपने इस मित्र के बारे में बोलते हुए मैं उनकी पत्नी के बारे में अगर न बोलूं तो कमल किशोर के प्रति मेरी आत्मीयता अधूरी रहेगी। जितना ख्याल वह मेरा रखने के आदी थे उतना ही ख्याल कुसुम ने

मेरे और मेरे परिवार के सदस्यों के साथ रखने में कुछ भी बाकी नहीं रखा। पहली भेंट से कुसुम को मैंने अपनी छोटी बहन मान लिया था और वह मुझे अपना बड़ा भाई मानकर राखी बांधती रहीं।

डॉ. गोयनका के भीतर दोस्ताना पक्ष और आत्मीयता भरे भाग ने मुझे उनके विद्वत पक्ष और साहित्यिक पहुंच से कहीं अधिक प्रभावित किया है। यह उनकी एक ऐसी खासियत है जिसके कारण मॉरीशस में लोग अथाह स्नेह और सम्मान देने में कभी नहीं चूके। उनके साथ के मेरे बेशुमार संस्मरणों में दो का मैं यहां जिक्र करना चाहूंगा।

पहली घटना तब की है जब भारत सरकार के आमंत्रण पर मैं दिल्ली के जनपथ होटल में ठहरा हुआ था। दिल्ली में मेरा दो सप्ताह का कार्यक्रम था। बंबई आते समय हवाई जहाज ही में मुझे बुखार शुरू हो गया था। होटल पहुंचते-पहुंचते तो मैं और भी अधिक बीमार पड़ गया और मौसम के एकाएक परिवर्तन के कारण मुझे ब्रोंकाइटिस हो गया था। श्रीमती बनर्जी के साथ जो कि शिक्षा मंत्रालय में मुझे लेने आई थीं और जो मेरे दिल्ली के सारे कार्यक्रमों की जिम्मेदार थीं, डॉ. गोयनका ने बात की कहा वे वैसी हालत में मुझे किसी के घर नहीं भेज सकतीं। उनकी स्थिति को समझते हुए मैंने अपने दोस्त से कहा कि राजकीय अतिथि होने के कारण मेरा श्रीमती बनर्जी की देख-रेख में रहना ही उचित होगा। पति-पत्नी कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। इस पर श्रीमती बनर्जी ने अपनी ओर से रियायत की और कहा कि मैं पहले अच्छा हो जाऊं फिर वे लोग मुझे अपने घर ले जा सकते हैं। डॉ. गोयनका और उनकी पत्नी यही चाहते थे कि मेरी देखभाल उनके घर पर हो। सरकारी पक्ष और दोस्ती पक्ष की इस रस्साकशी में आखिर जीत दोस्ती पक्ष की होकर रही और श्रीमती बनर्जी मुझे मेरे दोस्ती के हवाले करते हुए बोलीं, 'इस आत्मीयता के सामने मैं अपने फर्ज से हट रही हूं। पर सुबह-शाम आप लोगों को तंग करने पहुंचती रहूंगी, यह घटना जहां दोस्ती की पहचान देती है, वहीं यह घटना डॉ. गोयनका के भीतर के इनसानी पक्ष को रेखांकित करती है। हमे सुरेश ऋतुपर्णजी के यहां रात को खाने पर जाना था। मेरे परिवार के लोग तो डॉ. गोयनका की गाड़ी में जा चुके थे। मुझे और डॉ. गोयनका को एक थ्री-व्हीलर लेनी पड़ी। हमें कुछ देर हो गई थी इसलिए कमल किशोरजी ने चालक को हिदायत दे रखी थी कि वह कुछ तेज चलाए। हम जिस सड़क से जा रहे थे वह ट्रैफिक जाम से खचाखच था और चालक पूरी सावधानी के साथ निकालता हुआ आगे बढ़ रहा था कि एकाएक एक मोटरसाईकिल हमारी थ्री-व्हीलर को पार करके एकाएक हमारे आगे खड़ी हो गई। पीछे बैठी एक पुलिस महिला, जो वर्दी में नहीं थी, उतरी और अचानक हमारी थ्री-व्हीलर के ड्राईवर को अंधाधुंध कई थप्पड़ जड़ दिए। हम आवाक् देखते रहे। इसके बाद मोटर साईकिल चलाने वाली पुलिस अफसर, जो कि महिला का जूनियर लग रहा था, आकर चालक को डांट-डपट लगाने लगा कि हमारी गाड़ी ने गलत ढंग से उसका ओवरटेक किया था। जब हमारे चालक ने अपनी सफाई देने की कोशिश की तो उस महिला ने उसकी बांह जकड़कर उसको गाड़ी से बाहर कर लिया और चुनिंदा गालियां देती हुई उस पर लात-मुक्के से प्रहार कर बैठी।

मैं हैरत से पड़ा सभी कुछ इस तरह देख रहा था जैसे कि कुछ भी समझ में नहीं आ रहा हो। इस तरह का कांड मेरे अपने देश में कल्पना से बाहर का था। औरत का उस तरह गाली देना और अपने अधिकार का इतना गलत उपयोग कर सचमुच ही हैरत में डाल देने वाली बात थी। पर अभी मैं अपने दोस्त से कुछ कहता कि वह सवारी से झट उतरकर पुलिस और चालक के बीच खड़ा हो गया। भीड़ इकट्ठा हो गई थी। शुरू-शुरू में तो उस महिला और उसके साथी को कोस रहे थे पर जब उन्हें पता चला कि वे दोनों पुलिस अफसर थे तो भीड़ चेखव की कहानी 'कामेलेवन' की भीड़ वाली रुख हासिल कर ली और रंग बदल कर बेचारे थ्री-व्हीलर के चालक को कोस बैठे। उस भीड़ में केवल डॉ. गोयनका ने ही उस चालक के पक्ष में खड़े होकर दोनों पुलिस अफसरों को उनकी गलती की ओर संकेत करने की कोशिश की। समझाने-बुझाने की वह प्रक्रिया देखते ही देखते झगड़े का रूप लेने लगी फिर भी डॉ. गोयनका उस चालक को उन दो आपे-से बाहर और अपने अधिकार के नशे में चूर अफसरों के क्रूर पंजे से बचाकर ही रहे।

प्रेमचंद-जीवन और प्रेमचंद-साहित्य के मेहनतकश अध्येता के अपने व्यक्तित्व की यह एक झलक उस रात मुझे यह एहसास देकर रही कि डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद पर केवल गहरा अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि प्रेमचंद से उन्होंने सीखा भी है। और एक दिन राजेंद्र यादव ने बड़े ही दोस्ताना ढंग से कहा कि अभिमन्यु अनत, हमें कमल किशोर से दो आदमियों को मुक्त करना है, एक प्रेमचंद को और एक तुम्हें। तो मुझे लगा कि हम दोनों की मित्रता की इससे बड़ी अच्छी परिभाषा और शुभकामना क्या हो सकती है?

□

सृजनरत डॉ. कमल किशोर गोयनका

सत्यदेव टेंगर

डॉ. कमल किशोर गोयनका आधुनिक हिंदी साहित्य के चेतना के प्रतीक हैं। इतिहास, शोध, आलोचना, निबंध, संस्मरण, प्रवासी-साहित्य लेखन आदि क्षेत्रों में उनकी विरल मौलिकता और उत्कृष्टता ने उन्हें शीर्ष स्तर का रचनाकार बनाया। डॉ. गोयनका के बहुआयामी व्यक्तित्व ने अपनी पूरी सृजनात्मक ताकत से हिंदी साहित्य को 'अपने आप में एक शक्तिशाली वस्तु' और हिंदी को भारतीय चिंतन परंपरा का प्रतिनिधित्व करने वाली सशक्त भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। डॉ. गोयनका ने न केवल मानवतावादी भूमि को साहित्य के मूल्यांकन का आधार बनाया बल्कि तत्कालीन लेखन को प्राचीन सांस्कृतिक धारा से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। शोध और आलोचना जैसी सृजनशील विधाओं में नई संभावनाओं का द्वार खोला। प्रेमचंद पर शोध परंपरा को विकसित करते हुए उसे एक नया स्वरूप, एक नया तेवर दिया।

डॉ. कमल किशोर गोयनका का व्यक्तित्व विराट है। इनके जीवन और कृतित्व को सर्वांगीण रूप में प्रस्तुत करना सरल नहीं है। हम देखते हैं कि डॉ. गोयनका की परिवर्तनशीलता और गतिशीलता के पीछे उनकी ज्ञान पिपासा और उनके मनोजगत में चलने वाले गहन आंदोलन हैं जो सतत रूप से सक्रिय हैं और उन्हें कहीं संतुष्ट नहीं होने देते और बार-बार नए और बेहतर की तलाश में आगे बढ़ने, नूतन को अजमाने के लिए प्रेरित करते हैं। डॉ. गोयनका हिंदी के उन साधक पुत्रों में हैं, जिनके जीवन और साहित्य में कोई अंतर नहीं रहा। तप उनका संबल और सत्य स्वभाव बन गया। डॉ. गोयनका जैसे निष्ठावान, सरल और जागरूक साहित्यकार विरले ही मिलेंगे। इन्होंने अपने जीवन की सारी परीक्षाएं हँसते-हँसते ही पार की हैं। डॉ. गोयनका का साहित्य सदैव नई पीढ़ी के लिए प्रेरक बना रहेगा। इनकी साहित्य सृष्टि उन विलक्षण तत्वों का संकेत देती हैं जो चिरकालिक तत्व हैं। साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में जिनका उल्लेख और विश्लेषण कभी रूकता नहीं है।

हिंदी आलोचना के अपराजेय योद्धा डॉ. कमल किशोर गोयनका का जन्म सेठ चंद्रभान गोयनका के यहां 11 अक्टूबर 1938 को शीतलागंज, बुलंदशहर उत्तर प्रदेश भारत में हुआ था। डॉ. गोयनका के दादा सेठ बद्रीनादास गोयनका जमींदार थे और बड़े व्यापारी थे। डॉ. गोयनका

के पिता गांधी के भक्त थे और 'शुद्ध खादी भंडार' के नाम से खादी का बड़ा व्यापार करते थे। 1958 में बुलंदशहर के डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज से गोयनका ने सर्वाधिक अंकों के साथ स्नातक (बी.ए.) पूर्ण किया तथा 1961 में दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में स्नाकोत्तर (एम.ए.) पास किया। इसके बाद सितंबर, 1962 में डॉ. गोयनका जाकिर हुसैन कॉलेज, (सांध्य) में हिंदी प्रोफेसर हो गए और 2003 में रिटायर हुए। डॉ. नगेंद्र के निर्देशन में डॉ. गोयनका ने 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधा' विषय पर मौलिक शोध कार्य किया। डॉ. गोयनका प्रेमचंद पर पी-एच.डी. तथा डी.लिट् करने वाले भारत के एकमात्र शोधार्थी हैं, इन्होंने प्रेमचंद संबंधी अपने अनुसंधान कार्य से प्रेमचंद की नई 'भारतीयता' से परिपूर्ण मूर्ति की संरचना का महत्वपूर्ण कार्य किया। डॉ. गोयनका के गुरुओं में डॉ. नगेंद्र के अलावा उदयभानु सिंह, दशरथ ओझा, ओमप्रकाश, तारकनाथ बाली जैसे प्रतिष्ठित अध्यापक थे जिनसे इनको साहित्य की समझ मिली। जैनेंद्र कुमार, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, विद्यानिवास मिश्र, कमलेश्वर, चित्रा मुद्गल, चंद्रकांता, राजी सेठ, रमेशचंद्र शाह, अभिमन्यु अनत आदि अनेक लेखकों से इनके घनिष्ठ संबंध रहे हैं। दिल्ली की साहित्यिक दुनिया ने डॉ. गोयनका में साहित्य संस्कारों का विकास किया और ये इस दुनिया के अंग बनते चले गए। प्रेमचंद संबंधी कार्यों ने डॉ. गोयनका को देश-विदेश में प्रतिष्ठा तो दी ही साथ ही प्रेमचंद स्कॉलर के रूप में भी उल्लेख कराया। आधुनिक हिंदी साहित्य चिंतन के अंतर्गत साहित्य समीक्षा की लंबी परंपरा रही है। डॉ. गोयनका ऐसे ही साहित्य समीक्षक, विचारक और चिंतक हैं जिन्होंने आचार्य शुक्ल की आलोचना की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसमें अपना मौलिक योगदान देकर आधुनिक आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया और अपने विचारात्मक लेखन द्वारा हिंदी गद्य को समृद्ध किया। यह निर्विवाद सत्य है कि डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपना जीवन प्रेमचंद साहित्य की खोज, उसकी पड़ताल और व्याख्या को समर्पित कर दिया। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद के समूचे कृतित्व को न केवल उद्घाटित किया बल्कि उसके परिप्रेक्ष्य को भी इस प्रकार स्पष्ट किया कि प्रेमचंद का कृतिकार आज सर्वकालिक हो गया। 'प्रेमचंद विश्वकोश' की रचना हिंदी जगत की अन्यतम उपलब्धि है। प्रेमचंद पर डॉ. गोयनका की 28 कृतियां और 350 लेख, शोध-आलेख हैं। ऐसा अद्भुत तर्पण शायद ही किसी कृतिकार का किया गया हो। इस प्रकार के कार्य का हिंदी में कोई दूसरा उदाहरण दिखाई नहीं देता। डॉ. गोयनका ने मौलिक साहित्यिक रचना कर्म कम किया है, परंतु प्रेमचंद संबंधी व प्रवासी साहित्य के ऊपर शोधकार्य के रूप में हिंदी साहित्य-जगत की जो सेवा की है वह अद्वितीय है। अभी भी उम्र के इस पड़ाव पर प्रेमचंद के बारे में पाठकों के समक्ष कुछ न कुछ साहित्य की अतुलनीय कृति पेश करते रहे हैं अतः उनके द्वारा किए गए प्रेमचंद पर गंभीर शोधकार्य के जरिए ही डॉ. गोयनका को बेहतर जाना व समझा जा सकता है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका का साहित्य-जगत में प्रवेश डॉ. नगेंद्र के आदेश पर प्रेमचंद के ऊपर मौलिक शोध कार्य करने से हुआ। इनके द्वारा किए गए शोधकार्य से वह अद्भुत जानकारियां निकलकर बाहर आई जिनसे पाठक अभी तक अनभिज्ञ थे। अपने शोधकार्य के

दौरान डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद साहित्य के संदर्भ में जो तथ्य व मान्यताएं-स्थापित की थीं उनसे अलग नए तथ्यों की तलाश की भी बड़ी संभावनाएं दिखीं अतः डॉ. गोयनका निष्क्रिय न बैठकर प्रेमचंद साहित्य पर और अधिक मौलिक शोधकार्य की संभावनाएं तलाशने लगे। उनकी इस लगन का ही परिणाम था कि उनके द्वारा हिंदी साहित्य को प्रेमचंद का वह साहित्य मिला जो अभी तक यहां-वहां पत्र-पत्रिकाओं में अचिन्हा पड़ा था एवं जिस पर किसी आलोचक का ध्यान नहीं गया था। डॉ. गोयनका स्वयं को प्रेमचंद साहित्य में स्थापित करने के लिए कोई बड़ा कार्य करना चाहते थे इसलिए उन्होंने 'प्रेमचंद-विश्वकोश' पांच खंड की योजना का कार्य अपने हाथ में लिया। इस योजना की शुरुआत में प्रेमचंद के बड़े पुत्र अमृतराय ने मदद की लेकिन आगे उन्होंने मदद करने से इनकार कर दिया। डॉ. गोयनका ने अपने बूते पर ही इस कार्य को पूर्ण किया एवं वर्ष 1981 में प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली से इस वृहद ग्रंथ को प्रकाशित करवाया। अभी तक इस ग्रंथ के दो खंड प्रकाशित किए गए हैं बाकी तीन खंडों का भविष्य में प्रकाशित होना निश्चित किया गया है।

प्रेमचंद-विश्वकोश के प्रथम खंड में प्रेमचंद की जीवनी को तारीखवार कैलेंडर के आधार पर प्रस्तुत किया है। इसी खंड में प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू रचनाओं की कालक्रमानुसार सूची दी है जो डॉ. गोयनका के कठिन परिश्रम एवं वैज्ञानिक सूझ-बूझ को बताती है। इस पुस्तक के द्वितीय खंड में प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू रचनाओं को अकारादि क्रम में प्रस्तुत किया गया है। इस खंड की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य की जानकारी एक ही ग्रंथ के माध्यम से प्राप्त हो जाती है इसके साथ ही इस खंड में प्रेमचंद की लगभग 70 पुस्तकों के प्रथम संस्करणों के आवरण पृष्ठों को दिया गया है। इसी कारण यह पुस्तक वर्ष 1981 की सर्वश्रेष्ठ रचना साबित हुई। हालांकि इस पुस्तक के प्रकाशित होने के बाद डॉ. गोयनका पर प्रगतिशील खेमे के लेखकों ने यह आरोप लगाया कि वे प्रेमचंद को पूंजीवादी सिद्ध करना चाहते हैं, उनके इस आरोप का जवाब डॉ. गोयनका ने प्रमाण के साथ दिया। प्रेमचंद का वो बैंक खाता सबके सामने रखा जिसमें उनकी मृत्यु के कुछ समय पहले एक बड़ी रकम जमा थी। अनेक प्रमाणों के साथ डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की आर्थिक स्थिति का पूरा इतिहास अपनी पुस्तक में दिया जिससे मार्क्सवादियों का यह भ्रम भंग हो गया कि प्रेमचंद गरीबी में पैदा हुए व गरीबी में ही मर गए। और भी अनेक महत्वपूर्ण बातें है जिससे प्रेमचंद के जीवन के अनछुए- अनदेखे पहलू सामने आते हैं। डॉ. गोयनका ने कथा सम्राट प्रेमचंद का वो मानवीय रूप सामने रखा है जो किसी भी मनुष्य का होता है या हो सकता है। डॉ. गोयनका पर यह परंपरागत आक्षेप भी लगता रहा है कि वे प्रेमचंद को हिंदुत्ववादी बतलाते हैं। यह आक्षेप केवल इसलिए लगाया जाता रहा है क्योंकि वे बचपन से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े हुए हैं। वास्तविकता तो यह है कि उन्होंने पूरी निष्पक्षता के साथ तथा प्रमाण सहित प्रेमचंद के कृतित्व को सामने रखा है। उनकी दृष्टि एक वैज्ञानिक इतिहासकार की दृष्टि होती है, कहीं अनुमान या परिकल्पना का आश्रय लेकर अपने अभिगत को व्यक्त करने का संस्कार उनके लेखन का नहीं है।

प्रवासी भारतीय साहित्य, भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग है। डॉ. गोयनका ने प्रवासी साहित्य पर काफी लिखा है। उन्होंने प्रवासी भारतीयों की प्रखर संवेदना एवं उनके संघर्ष को शब्द दिए। हिंदी का प्रवासी साहित्य डॉ. गोयनका की प्रतिभा के इस आयाम का उद्घोषक है। मॉरीशस के हिंदी लेखक अभिमन्यु अनत के महत्वपूर्ण साहित्य को हिंदी पाठकों के लिए उपलब्ध कराया। जिनमें प्रमुख हैं-अभिमन्यु अनत-एक बातचीत, अभिमन्यु अनत-प्रतिनिधि रचनाएं, अभिमन्यु अनत-समग्र कविताएं, मॉरीशस की हिंदी कहानियां, मॉरीशस के राष्ट्रकवि, बृजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' काव्य रचनावली एवं हिंदी का प्रवासी साहित्य आदि।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने मॉरीशस के हिंदी साहित्य को भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित करने और कराने का प्रयत्न किया। मॉरीशस के हिंदी साहित्य के प्रकाशन, प्रचार तथा प्रतिष्ठा के लिए निरंतर कार्यरत रहना एवं यहां के हिंदी लेखकों की रचनाओं को भारत में प्रकाशित कराने में पूर्ण सहयोग करना इनके व्यक्तित्व की विशेषता है।

केंद्रीय हिंदी संस्थान में उपाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहते उन्होंने हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए जो कार्य किया है वह अद्भुत है। डॉ. गोयनका जैसे सर्जक यात्री आज के समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में दिखाई नहीं देते हैं। डॉ. गोयनका की सतत् साधना अभी भी जारी है तथा कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन होना शेष है। अगर प्रेमचंद साहित्य पर किसी को अपना शोधकार्य करना है तो उसे डॉ. गोयनका के साहित्य से गुजरना ही पड़ेगा। वर्ष 2012 में नटराज प्रकाशन नई दिल्ली से डॉ. गोयनका के कुशल संपादन में 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को पाठकों द्वारा बेहद पसंद किया गया, जिसके फलस्वरूप डॉ. गोयनका को वर्ष 2014 में के.के बिड़ला फाउंडेशन की ओर से व्यास सम्मान दिया गया।

हिंदी में आलोचना को व्यवस्थित विधा का रूप और आकार देने का कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, विजयदेव नारायण साही, नामवर सिंह, डॉ. गोयनका सरीखे लोगों ने इसे विस्तार दिया। हिंदी आलोचना की व्याप्ति और स्वीकृति की जमीन करने वाले विद्वानों की फेहरिस्त काफी बड़ी है। इसमें डॉ. गोयनका अनन्य हैं। वजह साफ है। ये आलोचना विधा को केंद्रीय स्थान दिलाने में बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। वर्तमान दौर में डॉ. गोयनका का केंद्रीय शख्सियत बनकर उभरना और बरकरार रहना इसका परिणाम है और प्रमाण भी। समीक्षा के अलावा डॉ. गोयनका ने जो भी रचा है उसका महत्व गौण है। अपनी साहित्यिक यात्रा के दौरान डॉ. गोयनका के ऊपर कई प्रकार के आरोप भी लगे, किसी ने उनको सेठ बताया और कहा कि वे प्रेमचंद की दुकान लगाकर बेच रहे हैं, परंतु डॉ. गोयनका इन आरोपों से विचलित नहीं हुए तथा वह अपने कार्यों में लगे रहे। आज भी जीवन के 80 वर्ष पूर्ण करने के बाद भी डॉ. गोयनका निरंतर कार्य करने में लगे हुए हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. कमल किशोर गोयनका का प्रकाशित साहित्य,
2. पत्र-पत्रिकाएं एवं समाचार पत्र, इत्यादि।

वैश्विक भारतीयता की अंतश्चेतना के उपासक

पुष्पिता अवस्थी

शब्दों में हम हैं हममें शब्दों को हम प्राणत्व प्रदान करते हैं और शब्द हमें प्राणवान बनाते हैं। जीवंत व्यक्ति का शब्दों और जीवन के साथ सजल उर चेतना के साथ सजगता का अनुबंध होता है जो जितना स्वयं के साथ होता है उतना ही समाज, साहित्य, देश और भाषा के साथ होता है। शब्दों ने हमें धारण किया है और हमने शब्दों को। शब्दों में हमारा व्यक्तित्व है और व्यक्तित्व में हमारे शब्द ठहरते हैं। इसी तरह से अपने कहे शब्दों में और जीवन की साधना में डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी ने अपने को साधा है। वे स्वयं में एक ऐसे व्यक्तित्व है जिनमें व्यक्तियों के व्यक्तित्व के निर्माण की शक्ति है।

वस्तुतः व्यक्ति अपनी चिंता और चेतना के अनुसार ही अपनी प्रवृत्तियां रचता और गढ़ता है। आदतें सिरजता है। गोयनकाजी ने अपनी आकांक्षाओं के अनुकूल अपने संकल्पों और सपनों का सृजन किया। प्रेमचंद, हरिवंशराय बच्चन, अभिमन्यु अनत जैसे संवेदनशील साहित्य साधकों को अपनी साहित्यिक चिंताओं का विषय बनाया उनकी रचनाओं में रमें। इनके चित्त और चेतना में जगह छेंकनी शुरू कर दी और धीरे-धीरे इन साहित्यकारों के कृतित्व और व्यक्तित्व का दर्शन गोयनकाजी के साहित्य विवेक का निकष हो गया कि प्रेमचंद के साहित्य और उसके प्रभाव को वे राष्ट्र की राष्ट्रवादी शक्तियों, भारतीय संस्कृति और किसान मजदूर से संबद्ध कर कम्युनिज्म के छदम् दर्शन से मुक्त करा सकें। मॉरीशस देश की हिंदुस्तानी शख्सियत, हिंदी की विरासत और भारतीय संस्कृति को वैश्विक स्तर पर उजागर कर उन्होंने भारतीयता की शक्ति को मुखर किया है।

अपने संकल्पों और उदात्त विचारधारा ने उन्हें प्रेमचंद साहित्य का मुरीद बनाया और उस साहित्य ने उन्हें प्रेमचंद की गांधीवादी विचारधारा के राष्ट्रसेवक होने की विलक्षण पहचान दी। वे प्रेमचंदीय गांधीवादी विचारधारा के प्रवर्तक है। उन्होंने किसानों और मजदूरों के श्रम करने की पक्षधरता सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं रखी बल्कि मॉरीशस में गिरमिटिया के रूप में ले जाए गए किसानों मजदूरों की अग्रतर पीढ़ियों तक के हिमायती के रूप में जारी रखी।

प्रेमचंद ने लिखा है- मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल-प्रपंच और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर

प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है, उपदेशों से नहीं, नसीहतों से नहीं, भावों को स्पंदित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर प्रकृति से सामंजस्य उत्पन्न करके। हमारी सभ्यता साहित्य पर ही आधारित है हम जो कुछ हो साहित्य के ही बनाए हुए हैं। विश्व की आत्मा के अंर्तमन से भी राष्ट्र या देश की एक आत्मा की प्रतिध्वनि है साहित्य।

जीवन सापेक्ष सार्थक सुभाषित किसी भी देश के साहित्य की अस्मिता का प्राणतत्व होता है। संवेदना ही वह बीज है जिससे अभिव्यक्ति की फसल तैयार होती है। संभवतः सृजन की आकांक्षा मनुष्य की प्रकृति में है जब वह तीव्र होती है तो परिवेश की प्रतिकूलता को भी चुनौती देती है इसलिए समाज के चिंतकों को सदा इस समस्या से दो-चार होना पड़ता है कि मनुष्य के अनुकूल परिवेश बने, जिसमें हर व्यक्ति अपने को अभिव्यक्त कर सके। इन दिनों गोयनकाजी की यह प्रमुख चिंता है क्योंकि परिवेश की प्रतिकूलता के परिणाम से वह बखूबी परिचित हैं।

साहित्य के लोकतंत्र में असहमतियों की संभावना हमेशा रही है उनका सम्मान करते हुए भी गोयनकाजी गुटवादियों और दुष्प्रचार करने वाले बुद्धिजीवियों के वक्तव्यों, टिप्पणियों से अपनी असहमति जताते हैं। प्रेमचंद से संबंधित, अर्धसत्यों-भ्रांतियों का वे साक्ष्यों के आधार पर तर्कसंगत विरोध करते हैं। गोयनकाजी की विचारधारा भाषाज्ञान, उर्दू से हिंदी में प्रवेश, निर्धनता में जीना और दरिद्रता में निधन आदि संदर्भों का वे प्रामाणिकता-पूर्वक खंडन करते हैं।

सत्याग्रही होने की शक्ति से समृद्ध गोयनकाजी ने अपनी एक लंबी बातचीत में निःसंकोच ही नहीं बल्कि निर्ममता के साथ कहा कि-'मैंने प्रेमचंद का लगभग 1400 पृष्ठों का उर्दू-हिंदी में लिख हुआ अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य खोजा जो भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली ने प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य (दो खंड) नाम से वर्ष 1988 में प्रकाशित किया। इस साहित्य में तीस तो कहानियां ही हैं जिनसे हिंदी संसार परिचित ही नहीं था। इस अप्राप्य साहित्य से प्रेमचंद के अनेक पक्ष उद्घाटित हुए। उनकी एक नई छवि उजागर हुई। प्रेमचंद जैसे विश्व-विख्यात लेखक के इतने विपुल साहित्य की खोज हिंदी में ही नहीं विश्व साहित्य की एक अनोखी घटना थी लेकिन प्रगतिशीलों ने इसका स्वागत करने के स्थान पर मुझ पर यह आरोप लगाया कि मैं प्रेमचंद को हिंदू बना रहा हूं पर प्रेमचंद तो हिंदू थे, फिर मैं उन्हें कैसे हिंदू बना सकता था? इस अप्राप्य साहित्य के उद्घाटन से प्रगतिशीलों को हीनता का अनुभव हुआ तथा वे यह भी सिद्ध नहीं कर पाए कि गोयनका का इतना साहस कैसे हुआ कि वह हमारी मान्यताओं को ध्वस्त करें। अब स्थिति यह है कि देश-विदेश में हिंदी विद्वान प्रोफेसर तथा पाठक मुझे प्रेमचंद का स्कॉलर कहते हैं और यह प्रगतिशील मुझे लेखक भी नहीं मानना चाहते हैं। इनकी पीड़ा मैं समझता हूं क्योंकि मैंने यह भी सिद्ध किया कि प्रेमचंद मार्क्सवादी नहीं थे। वे बीसवीं शताब्दी के भारतीयता के लेखक थे। वे बार-बार लिखते हैं कि मैंने साहित्य में भारतीय आत्मा की रक्षा की है। वह युग ऐसा ही था जब पूरा देश नवजागरण के प्रभाव में स्वराज्य, स्वदेशी, स्वसंस्कृति तथा स्वभाषा के लिए संघर्षरत था और आत्मबिंब की खोज में था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्व पश्चिम परंपरा और आधुनिकता तथा स्वाधीनता एवं पराधीनता का संघर्ष व्यापक रूप

में चल रहा था और मंथन एवं आलोड़न से एक नई आधुनिक भारतीयता जन्म ले रही थी। प्रेमचंद इसी भारतीयता के कथाकार थे। इससे मार्क्सवादियों की प्रमुख मान्यता खंडित हो गई। अच्छा था कि वे आत्म मूल्यांकन करते और अपने विचारों को नई खोज में आधार पर बदलते, परंतु पूरी दुनिया में मार्क्सवादी स्वयं को नहीं दूसरों को बदलते हैं और अपने छल, छदम् और कपट नीति को विश्व का सत्य बनाना चाहते हैं और जो अस्वीकार करता है उसे नष्ट कर देते हैं। प्रेमचंद ने सही लिखा था कि साम्यवादी विचारों का साम्राज्य चाहते हैं और साम्राज्य का विस्तार या तो धर्मांतरण से होगा या विनाश से। इसी को ध्यान में रखकर ही प्रेमचंद ने वर्ष 1928 में 'स्वदेश' पत्रिका में लिखा था कि साम्यवाद तो पूंजीवाद से भी भयानक है।'

आज भूमंडलीकरण के इस दौर में भी मूल्यहीनता और आत्मकेंद्रित संकट के हत्यारे हमारे बीच से गुजर रहे हैं कि राष्ट्रहित को विघटित करने वाली संस्कृति और विचार हमें विकलांग बनाने में सक्रिय हो सकें। ऐसे समय में गोयनकाजी वैश्विक स्तर पर एक ऐसे समाज की संगठित छवि निर्मित करने में दत्त चित्ततापूर्वक लगे और अड़े हुए हैं जो उनकी आत्मा की अंतरंग ईश्वरीय शक्ति का ही परिचायक है। जिसमें जनतांत्रिक मूल्यों, प्रगतिगामी विचारों के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के स्रोत, धारणाएं और वैश्विक मानवीयता की नैतिकताएं भी शामिल हैं। 2008 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित फ्रेंच लेखक गुस्तावले क्लेजियो का कथन है कि 'भारतीय मनीषा को वेद, उपनिषद और क्लासिकल सोच ने उसके साहित्यिक मानस का विन्यास किया है।'

संवाद साहित्य और संस्कृति का प्रभावशाली सूत्र है। संपर्क, संवाद-परिसंवाद, संपादन, लेखन, सृजन सारी शक्तियों का भाषा, साहित्य और राष्ट्रहित में उपयोग करने में प्राणपण से लगे हुए हैं। भौगोलिक दूरियों को यदि एक ओर तकनीक ने पाटा है तो इन्हीं को अपनी हार्दिकता और सब चिंताओं से गोयनकाजी ने विश्व स्तर पर खत्म करने की साधना साधी है।

राइनेर मारिया रिल्के द्वारा क्लैरा रिल्के को 24 जून 1907 को पेरिस से पत्र लिखा गया था, जिसमें उल्लेख था- कलाकृतियां सदा से ही जोखिम ही संतानें रही हैं? अंतिम कगार तक पहुंचे हुए ऐसे अनुभव की उद्घोषित हैं, जहां से आगे कोई नहीं जा सकता। जितना ही कोई इससे आगे चला जाता ही उतना ही उसका अनुभव अभिन्न, निजी एवं अद्वितीय बनता है, अंततः तो हर कलाकृति इसी अद्वितीयता की एक अनिवार्य, अदम्य, यथासंभव प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। इसी स्थल पर पहुंचकर ही कलाकृति उस व्यक्ति के जीवन में अगाध रूप से सहायक होती है, जो इसका सृजन करने को बाध्य हुआ है। इसके लिए यह कर्म अपनी शक्ति को संजोने जैसा है, अपनी उस जप-माला में एक गांठ बांधने जैसा रहे, जिसे फेरता रहता उसका जीवन सदा प्रार्थनारत हो। हम कलाकारों के पास अंतिम छोर तक जाकर देखने के अलावा निश्चय ही कोई और रास्ता नहीं है पर उस छोर को व्यक्त करना, अपने से अलग करना या दूसरों को सौंप देना तब तक जरूरी नहीं है जब तक यह सब कुछ हमारे सृजन में प्रवेश नहीं पा जाता। अपने अनुभव की अद्वितीयता को कोई दूसरा नहीं समझ सकता है न ही समझने

की जरूरत है। इस तरह के निजी पागलपन को प्रामाणिकता पाने के लिए या नियमसिद्ध होने के लिए सृजन में से गुजरना पड़ता है। (रिल्के के पत्र, राइनेर मारिया रिल्के-पृष्ठ-115, साहित्य अकादेमी दिल्ली) यह संदर्भ गोयनकाजी की रचनात्मक दृष्टि के प्रसंग में उल्लिखित है। सजृनात्मकता के संपादन निमित्त जिस संवेदनशील बौद्धिक विवेक के विनियोजन की आवश्यकता होती है। लेखक जिससे जूझता है-पाठक प्रायः चेतना के उस संवेदनशील शिखर को सहजता से नहीं हृदयंगम कर पाते हैं। कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने रचनात्मकता के संघर्ष की अंतर्चेतना की इन अंतरपर्तों को अनावृत्त करने का प्रयत्न किया है जो गोयनकाजी के लेखन में भी अनुभव किया जा सकता है।

अपने लेखन संपादन और संस्थाओं के गठन एवं मित्रों तथा अपने व्यक्तित्व के संगठन में वैश्विक भारतीयता का सदैव सन्निवेश किया है। गंभीरता से विश्लेषित किया जाए तो गोयनकाजी वैश्विक भारतीयता की अंतरपर्तों के सजल उपासक हैं। उनकी रचनात्मकता के उन्मेष का आधार भारतीय संस्कृति और उसकी उपासना में संलग्न उनकी अपनी निजी भारतीय मनीषा है। वे उस व्यक्ति और विचारधारा के साथ हैं जो मनुष्यता समर्पित भारतीयता से समृद्ध है।

कवि निराला ने एक प्रसंग में लिखा है- 'मनुष्य का मनुष्य के प्रति इतना ही अधिकार है कि वह उसके स्वाधीन विचारों की रुकी हुई नाली साफ कर दे, न कि यह कि दूसरे को यंत्र समझकर अपनी राह पर चलाने की कोशिश करे।' प्रेमचंद के अधिकांश साहित्य में सृजन के केंद्र में यही मूल शक्ति है जिसको पुनः उद्घाटित और प्रकाशित करवाने में गोयनकाजी का जीवन लग गया। प्रायः गोयनकाजी के कृतित्व से गुजरते हुए -'विस्लावा शिम्बोस्की' की पंक्तियां याद आती हैं-

हमें विरासत में उम्मीद भी मिली है
और स्मृति का वरदान भी
तुम देखोगे कि किस तरह से हम
विनाश के बीच में
सृजन के बीज बोते हैं

गोयनकाजी की रचनात्मकता की और भी विशिष्ट साहित्यिक दृष्टि और दक्षता है कि वे अपने तथ्यों, कथ्यों और निज विवेक के सत्यों को बहुत ही सूत्रात्मक शैली में उजागर करने में सिद्धहस्त हैं।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के संपादकत्व में प्रकाशित कवि अज्ञेय के अभिभाषणों के संग्रह के संदर्भ में गोयनकाजी ने लिखा है- 'इन अभिभाषणों में अज्ञेय का बहुआयामी चिंतन मिलता है जिसमें परंपरा और आधुनिकता के संगम से नए भारत के चिंतन का स्वरूप झलकता है। वे साहित्य में आधुनिक चिंतन के उद्भावक है जिसमें पुरखों की वाणी के साथ-साथ नए भारतीय समाज की भी वाणी है। अज्ञेय जीवन और साहित्य के बुनियादी प्रश्नों को उठाते हैं और उनका समुचित उत्तर देते हैं। हिंदी में किसी भी लेखक के इतने अभिभाषणों का यह पहला

संकलन है। गोयनकाजी वैश्विक हिंदी साहित्य और भारतीयता के सजग प्रहरी हैं। उत्कृष्ट लेखन उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं हो पाता है। साहित्य में रमे हुए, साहित्य- साधना में ही अपने जीवन का सुख अनुभव करते हुए वे साहित्यिक दुनिया का राजनीतिक दुःख और संत्रास सहते रहते हैं। प्रेमचंदजी के जीवन-संघर्ष की चेतना आज भी उनके संघर्ष की शक्ति बनी हुई है। वस्तुतः साहित्य का संबंध जीवन से होता है। जीवन की संजीवनी शक्ति से होता है। मनुष्यता की पक्षधरता करने वाला साहित्य ही विश्व का दीर्घकालिक, ऐतिहासिक और वास्तविक साहित्य होता है जिसे समय भी चुनौती नहीं दे पाता है और न ही मानव विरोधी राजनीतिक वैचारिक शक्तियां ही पराजित कर पाती हैं। उसका संबंध व्यक्ति के समाज की संस्कृति की अंतश्चेतना से होता है और साथ ही उसका संबंध जिजीविषा से होता है जो रचनात्मकता का उन्मेष करती है। गोयनकाजी का अधिकांश लेखन अनुसंधान से अधिक अन्वेषणात्मक है जो रचनात्मकता की गहरी और सघन पर्तों के भीतर की अंतश्चेतना को अनावृत्त करने का दुःसाध्य कार्य साधता है। प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य को सहृदय और संवेदनशील पाठक की तरह संयोजित करके गोयनकाजी ने सहृदय और संवेदनशील पाठकों का एक सदृढ़, समृद्ध और विश्वसनीय वर्ग तैयार किया है जो किसानों, मजदूरों और मध्यवर्गीय समाज में विरोधी हुए संवेदनहीन समय में अद्‌भुत तीमरदारी का कार्य करेगा। हिंसात्मक समय के विरुद्ध आज के समय में अपनी तरह की अनोखी अहिंसात्मक साधना है जिसके परिणाम अति शीघ्र नई पीढ़ी में उजागर होंगे। गोयनकाजी की हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति सघन और गहरी वैश्विक दृष्टि का सुपरिणाम है कि वे विश्व के हिंदी भाषा प्रेमियों, रचनाकारों और कार्यकर्ताओं के बीच हितैषी और विश्वसनीय शुभचिंतक बने हुए हैं।

वस्तुतः गोयनकाजी की यह दृष्टि उनके पारदर्शी विचार शक्ति का परिणाम है। प्रेमचंदजी यदि भारतीय समाज और संस्कृति के सिपाही रहे हैं तो गोयनकाजी साहित्य और हिंदी-भाषा के मजदूर रहे हैं- बौद्धिक मजदूर-अहर्निश सक्रिय। किसान और मजदूर तो रात्रि में विश्राम भी कर लेता है सो लेता है पर गोयनकाजी प्राणपण से चौबीस घंटे लगे रहते हैं- वे सोते हुए भी जागते रहते हैं क्योंकि मस्तिष्क कभी नहीं सोता है, आँखें लगने, पर भी वह सपनों के लिए जागता है। सारा जीवन उन्होंने हिंदी-भाषी साहित्यिक समाज के लिए उत्सर्ग कर दिया।

इस हार्दिक सम्मोहन का ही परिणाम है कि देश, समय और सीमा की परिधि को लांघकर, विश्व साहित्य के सजृन के रचनाकारों के संघर्ष को इन्होंने अपनी अंतश्चेतना की विवेकी दृष्टि से अनुसरण किया और उनके कृतित्व को संपूर्ण तन्मयता से उजागर किया जो गोयनकाजी के कृतित्व की साधना की पावनता का ही परिणाम है कि उन्होंने साहित्य में 'स्व' से अधिक 'पर' की साधना की। समाज का सांस्कृतिक पुनर्सृजन ही उनके साहित्य का सर्वदा अभीष्ट रहा है। साहित्य के सत्य का उद्‌घाटन ही समाज के सांस्कृतिक उत्थान का मूल उद्देश्य होता है। भारत के हिंदी साहित्य को उन्होंने वैश्विकता प्रदान की है और विश्व को हिंदी साहित्य को उन्होंने अपनी लगन और तत्परता की साधना से भारतीयता प्रदान की है।

□

डॉ. गोयनका और प्रवासी हिंदी साहित्य

उषा राजे सक्सेना

यू.के. हिंदी समिति के गठन के बाद भारत के जिस हिंदी प्रेमी साहित्यकार ने फोन पर सबसे पहले ब्रिटेन से हिंदी की एक साहित्यिक पत्रिका निकालने के लिए हमें प्रेरित किया था वे थे डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी। पद्मेश गुप्त की अगुवाई में 'पुरवाई' का पहला अंक भारत की स्वाधीनता की स्वर्ण जयंती, द्वितीय अंतरराष्ट्रीय हिंदी भाषा सम्मेलन एवं विराट कवि सम्मेलन के अवसर पर 14 सितंबर 1997 को प्रकाशित एवं लोकार्पित हुआ। 'पुरवाई' पत्रिका हिंदी समिति के अध्यक्ष पद्मेश गुप्त के कंप्यूटर पर फोटो कॉपी करके बनाई गई थी। रात-रात भर जगकर फोटो कॉपी निकालना, पढ़ना, कटाई करना, स्टेपल करना अच्छा तो बहुत लगा था, अपरिमित आनंद भी मिला। उत्साह की तो कोई कमी ही नहीं थी। ब्रिटेन को हिंदीमय बनाने का जनून जो सिर पर सवार था परंतु बाद में हर तरह से जांचने-परखने पर लगा कि आगे से यह काम प्रोफेशनल ढंग से होना चाहिए। बीच-बीच में गोयनकाजी से संवाद होता रहता था। वे हमारा मार्ग-दर्शन करते रहते थे। ब्रिटेन में हिंदी-भाषियों को आपस में जोड़ने के उन्होंने कई तरीके हमें सुझाए, एक तो मुझे अभी भी याद है उन्होंने कहा कि आप लोग हिंदी-भाषियों को आपस में जोड़िए, चंदा इकट्ठा कर एक बुक-क्लब बनाइए। बुक-क्लब तो नहीं बन पाया परंतु हम सबकी पोशाक से ब्रिटेन के तकरीबन सभी पुस्तकालयों में हिंदी की पुस्तकें शेल्फ पर आ गईं और इधर (पुरवाई) का दूसरा अंक गोयनकाजी के सुझाव पर नटराज प्रकाशन से छपवाया गया। 'पुरवाई' पत्रिका की प्रिंटिंग के दौरान हमें पता चला कि गोयनकाजी कितने तेजस्वी, कर्मठ और संवेदनशील साहित्यकार हैं। वे सहृदय, ईमानदार और स्पष्ट वक्ता होने के साथ-साथ मृदुभाषी भी हैं।

पिछले चार-पांच विश्व हिंदी सम्मेलनों में हमारी उनसे भेंट होती रही। इस बीच हमने अनुभव किया कि गोयनकाजी एक कुशल आयोजक और वक्ता होने के साथ-साथ एक अच्छे श्रोता भी हैं। वे हमारी चिंताओं, दुविधाओं और कठिनाइयों को बड़े ध्यान से सुनते हैं। उनमें निर्णय लेने की अपार क्षमता है। विवादास्पद स्थिति में भी वे अपने आपको सदा संतुलित रखते हैं। मैंने उन्हें कभी उत्तेजित अथवा किसी बात को अन्यथा लेते हुए नहीं देखा है। विषयवस्तु की बारीकियों को समझते हुए वे किसी भी विषय को निर्णायक ढंग से व्याख्यायित करते हुए

उसका समापन सादगी से करने की कला जानते है। कोई भी बात वे मात्र किसी को प्रसन्न करने के लिए नहीं कहते हैं और यही कारण है कि वे जिस पायदान पर खड़े हैं वह बहुत कम लोगो को नसीब होता है। मुंशी प्रेमचंद और प्रवासी हिंदी साहित्य पर तो वे चलते-फिरते 'एनसाक्लोपीडिया' हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य को परिभाषित करते हुए जिस तरह से उन्होंने हिंदी की मुख्य धारा में प्रवेश दिलवाया है वह सराहनीय है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका दृढ़निश्चयी और धुन के ऐसे पक्के हैं कि जो एक बार निश्चय कर लिया उसे पूर्ण करने में उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया, यहां मेरा संकेत उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की ओर है। आज डॉ. कमल किशोर गोयनका विश्व के एकमात्र ऐसे अध्येता हैं जिन्होंने प्रेमचंद पर पी-एच.डी. तथा डी.लिट् दोनों उपाधियां प्राप्त की हैं। उन्होंने अपना जीवन मुंशी प्रेमचंद के साहित्य, साहित्य संसार और उनके जीवन के अनुसंधान को समर्पित कर दिया। प्रेमचंद संबंधी उनके शोध की मौलिकता एवं उनके नए शोध-निष्कर्षों को सर्वत्र मान्यता मिली। वास्तव में आज विश्व में मुंशी प्रेमचंद और उनके साहित्य पर कोई शोध कार्य तब तक प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है जब तक शोधार्थी डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा प्रेमचंद साहित्य पर लिखे गए अन्वेषणात्मक ग्रंथों का पूर्णरूप से अध्ययन करके शोध नहीं करता है इसीलिए आज विश्व में डॉ. कमल किशोर गोयनका मुंशी प्रेमचंद के साहित्य के प्रमुख अध्येता और विशेषज्ञ के रूप में विख्यात हैं। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित प्रेमचंद ग्रंथावली के संकलन एवं संपादन में भी उनका उनका विशेष योगदान रहा है।

11 अक्तूबर, 1938, बुलंद शहर में जन्में कमल किशोर गोयनका ने दिल्ली विश्वविद्यालय से 1961 में हिंदी में स्नातकोत्तर प्रथम श्रेणी में प्राप्त करने के बाद उपन्यास सम्राट प्रेमचंद पर शोध किया। सुधा ओम ढींगरा द्वारा लिए गए एक साक्षात्कार में वे कहते हैं-'मैं पी-एच.डी करने के बाद अन्य शोधार्थियों की तरह चुप बैठने को तैयार नहीं था। सन् 1972 में पी-एच.डी की उपाधि मिली और कुछ समय बाद ही 'प्रेमचंदः विश्वकोश'(पांच खंड) की योजना की परिकल्पना की और प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय का सहयोग लिया और प्रेमचंद की अज्ञात, अप्राप्य रचनाओं, पत्रों, पांडुलिपियों, दस्तावेजों की खोज में लग गया। मैं पूरी तरह से प्रेमचंद के प्रति समर्पित हो गया और मेरे मन में प्रेमचंद को लेकर तरह-तरह की जिज्ञासाएं जन्म लेने लगीं। इसके बाद 'प्रेमचंद विश्वकोश' (दो खंड) 1981 में छपे और जितना व्यापक उसका स्वागत हुआ, उसने तो मुझे हमेशा के लिए प्रेमचंद का बना दिया। इसी बीच सन् 1984 उन्हें रांची विश्वविद्यालय से डी.लिट की उपाधि मिली। इस तरह मुंशी प्रेमचंद संबंधी शोध कार्यों से डॉ. गोयनका को देश-विदेश में खूब प्रतिष्ठा मिली किंतु भारत के प्रगतिशील लेखकों ने उनके कार्यों की उपेक्षा के साथ तर्कहीन आलोचना भी की परंतु दृढ़-निश्चयी, आत्मविश्वास से दीप्त डॉ. गोयनका अपने निष्कर्षों पर अटल रहे। देश-विदेश के अनेक लेखकों जैसे-अमृत लाल नागर, विष्णुकांत शास्त्री, प्रभाकर माचवे, डॉ. लोठार लुत्से, प्रोफेसर तात्याना ओरान्स्कया, अमबर्तो नरदेला आदि ने उनके कार्यों की अनुशंसा की।

गोयनकाजी ने प्रेमचंद पर 22 पुस्तकें और अनेक निबंध लिखें हैं, साथ ही अन्य लेखकों पर 20 पुस्तकें संपादित कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। प्रेमचंद अकादमी तथा प्रेमचंद संग्रहालय की स्थापना के लिए प्रयत्नशील तथा लगभग 3000 मूल दस्तावेजों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफों का संग्रह करने के साथ वे हिंदी के प्रवासी साहित्य की स्थापना, मूल्यांकन के लिए तीन-चार दशकों से लगातार कार्यरत हैं। प्रवासी साहित्य पर डॉ. गोयनका की छह पुस्तकें प्रकाशित हैं। प्रवासी साहित्य के तीन प्रतिनिधि संकलनों का संपादन-प्रकाशन भी गोयनकाजी कर चुके हैं।

हिंदी के उन प्रवासी साहित्यकारों (गिरमिटिया) को ही ले लीजिए जिनके पूर्वज डेढ़-दो सौ वर्ष पूर्व-शर्त बंदी के तहत भोजपुरी इलाके से बंधुआ मजदूर के रूप में छल-बल से मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद और सूरिनाम आदि देशों में श्रमिक के रूप में अंग्रेज मालिकों द्वारा जहाज में भरकर ले जाए गए थे। बरसों बाद उनकी दूसरी-तीसरी पीढ़ी से हिंदी साहित्य की एक शाखा फूटी जिसे गिरमिटिया या प्रवासी साहित्य कहा गया। प्रवासी साहित्य के उद्‌भव और विकास की एक लंबी कहानी है।

कुछ वर्षों पूर्व सूरिनाम जैसे छोटे से द्वीप में 7वां विश्व हिंदी सम्मेलन 2003 में आयोजित हुआ जिसमें एक पूरा सत्र प्रवासी साहित्य को समर्पित था। मॉरीशस जैसे खूबसूरत द्वीप में विश्व हिंदी सचिवालय स्थापित है। 11वां विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में 2018 में संपन्न हुआ। एक घटना का जिक्र करते हुए गोयनकाजी प्रवासी साहित्य के प्रति अपने समर्पण का खुलासा करते हुए कहते हैं कि 1980 में प्रेमचंद जन्म शताब्दी पर जब उन्हें प्रेमचंद के मूल दस्तावेजों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफी एवं चित्रों आदि की प्रदर्शनी लगाने मॉरीशस भेजा गया तो वहां उनकी भेंट अभिमन्यु अनत तथा मॉरीशस के अन्य प्रतिष्ठित लेखकों, एवं हिंदी प्रेमियों आदि से हुई। वे उनके प्रेम और सौहार्द से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मन में ठान लिया कि वे मॉरीशस के हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार तथा उनकी प्रतिष्ठा के लिए जीवन पर्यंत कार्य करते रहेंगे। उसके बाद से अब तक वे न केवल मॉरीशस बल्कि अमेरिका, इंग्लैंड, सूरीनाम आदि देशों के भारतवंशियों द्वारा रचित हिंदी साहित्य के अध्ययन, प्रचार-प्रसार तथा उसे प्रतिष्ठित करने में लगे रहे। वे कहते हैं, 'हिंदी के प्रवासी साहित्य से मुझे प्रेमचंद जैसा ही प्यार हो गया है।' डॉ. गोयनका विदेशों में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य को गंभीरता से लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिंदी के प्रवासी लेखकों की लगभग 30-32 पुस्तकों की भूमिकाएं लिखी हैं, अनेक लेखकों पर लेख और पुस्तकों की समीक्षाएं लिखी हैं। गोयनकाजी के प्रोत्साहन से भारत के कई पत्र-पत्रिकाओं ने प्रवासी साहित्य विशेषांक भी निकाले हैं।

मुझे याद है जब ब्रिटेन, अमेरिका यूरोप मे लिखे जाने वाले हिंदी साहित्य को प्रवासी साहित्य का विशेष दिया गया तो पश्चिमी देशों में रहने वाले अनेक हिंदी के लेखक असंतुष्ट हो उठे उनमें से स्वयं मैं भी एक लेखिका थी। इसका कारण था कि जब हम प्रवासी लेखक भारत जाते तो वहां के साहित्यिक समाज में बात-चीत के दौरान यह संदेश मिलता कि मॉरीशस त्रिनिदाद आदि देशों में जिस हिंदी भाषा का प्रयोग हो रहा है वह गंवई और भदेस है। उपन्यास

'लाल पसीना' और 'डउका- पुराण' आदि को जो पुरस्कार मिला वह एक विशेष प्रोत्साहन कैटेगरी के अंतर्गत मिला जिसके पीछे एक बड़ा बारीक सा दोयम दर्जे या आरक्षण का संकेत छुपा हुआ है।

हमें भी ऐसा महसूस हुआ कि यह तो ठीक है कि हम विदेश में रहते हैं परंतु विदेश में रहना हमारा चुनाव है। हम जब भी चाहें भारत आ-जा सकते हैं। हम मजबूर नहीं, समर्थ हैं। अंग्रेजी-भाषी देश मे रहते हुए भी हम अपनी मातृ-भाषा हिंदी को लेखन के लिए चुनते है, क्योंकि हमें अपनी भाषा से प्रेम है। हमें उस पर गर्व है। अंग्रेजी में लिखकर हम ढेरों धन अर्जित कर सकते हैं परंतु हमें वह लालसा नहीं है। हम अमेरिका, ब्रिटेन और यूरोप के इमिग्रैंट हैं। इमिग्रैंट का अर्थ डॉ. कामिल बुल्के के शब्दकोश में प्रवासी है अतः हम प्रवासी तो हैं पर हमारा लेखन कैसे प्रवासी हो गया। हमारा लेखन मॉरीशस, त्रिनिदाद, फिजी आदि से बिलकुल भिन्न है। हमारी भाषा-शैली विषय-वस्तु और संवेदना गिरमिटिया लेखन से बिलकुल भिन्न है। हम तो उसी स्तरीय हिंदी में लिख रहे हैं जो इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ और दिल्ली में बोली और लिखी जा रही है। इस तरह हम लोगों ने बड़ी सजगता से अन्य आधुनिक भाषाओं में लिखे जाने वाले साहित्य की खोज-बीन की तो पता चला कि किसी भी अन्य भाषा में इमिग्रैंट द्वारा लिखे जा रहे साहित्य को 'इमिग्रैंट लिटेरेचर' या 'प्रवासी साहित्य' नहीं कहा जा रहा है। हिंदी में ही ऐसा क्यों हो रहा है? हमारे मन में संदेह पैदा हो गया, कुछ संपादकों, प्रकाशकों और लेखकों ने हमारी इन धारणाओं को अपने आचार-विचार और व्यवहार से पुष्ट किया और विदेशों में बैठे हम लेखकों ने 'प्रवासी साहित्य' शब्द का विरोध किया यह बात डॉ. गोयनका तक पहुंच गई। उन्होंने हमारे संदेहों का निराकरण बड़ी स्पष्टता और सहजता से करते हुए कहा, 'मानता हूं कि साहित्य प्रवासी नहीं होता, किंतु उसका लेखक तो प्रवासी होता है अतः प्रवासी लेखक द्वारा लिखे गए साहित्य को प्रवासी साहित्य कहना अनुचित तो नहीं? वर्तमान में भारतवासियों द्वारा रचे साहित्य के लिए 'प्रवासी साहित्य' शब्द इतना प्रचलित और लोकप्रिय हो गया है कि अब उसका प्रयोग बंद करना कठिन है।' हमें भी लगा 'प्रवासी साहित्य' शब्द अब इतना रूढ़ हो चुका है कि अब उसका प्रयोग बंद करना असंभव है। आगे उन्होंने कहा 'प्रवासी शब्द का प्रयोग लेखकों के अपमान के लिए नहीं उनके सम्मान के लिए प्रयुक्त होता है। उनकी अलग पहचान के लिए है और उनके स्वतंत्र मूल्यांकन की परंपरा को आरंभ करने के लिए है।' गोयनकाजी के इस विश्लेषण का प्रभाव यह हुआ कि 'प्रवासी साहित्य' शब्द अब हमारे कानों को इतना नहीं खटकता है क्योंकि 'प्रवासी साहित्य' शब्द अब वास्तव में विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य की पहचान और विशिष्टता उद्‌भाषित करने लगा है।

हिंदी का प्रवासी साहित्य आज एक नई साहित्यिक शैली की सर्जना कर रहा है। प्रवासी हिंदी लेखक विदेशों की साहित्यिक प्रवृत्तियों को अपनी साहित्यिक कृतियों में सहजता से समाहित कर एक नई शैली की संरचना कर रहे हैं जिसमें नवीनता के साथ नई संवेदना का पुट भी है जो पाठकों को अपनी ओर खींचता है। मैं ही नहीं, लगभग सभी प्रवासी भारतीय हिंदी लेखकों ने विदेशों में रह रहे लेखकों के द्वारा लिखे जा रहे हिंदी साहित्य के लिए अब

'प्रवासी-साहित्य' शब्द को स्वीकार कर लिया है। इस तरह गोयनकाजी ने बड़ी शालीनता के साथ हमारे मन में जड़ें जमाती कुंठा का निदान कर दिया। गोयनकाजी अकसर प्रवासी साहित्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं- 'हिंदी के इस साहित्य का रंग रूप, उसके चेतना, संवेदना एवं सृजन प्रक्रिया भारत के हिंदी पाठकों के लिए नई वस्तु है, यह एक नए भाव बोध एवं नए सरोकार का साहित्य है। एक नई व्याकुलता, बेचैनी तथा एक नए अस्तित्वबोध व आत्मबोध का साहित्य है; जो हिंदी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नए साहित्य संसार से समृद्ध करता है। इस साहित्य में एक ऐसी भारतीयता है जो स्वदेश-परदेश के द्वंद्व से जन्म लेती है और एक नया परिवेश, एक नई जीवन दृष्टि तथा जीने का नया सरोकार देती है। हिंदी की मुख्य धारा का यह साहित्य एक महत्वपूर्ण अंग है और यह अपनी पहचान भी रखता है।'

गोयनकाजी रचनात्मक विचारों के व्यक्ति हैं। 80 पार करने के बावजूद आज भी उनमें युवकोचित उत्साह और स्फूर्ति है। कभी गंभीरता तो कभी निश्छल हँसी उनके चेहरे पर अठखेली करती है। उनकी तमाम साहित्यिक परियोजनाओं और उनकी प्रतिबद्धता को देखते हुए ऐसा नहीं लगता है कि आयु का बंधन उनके उत्साह, ऊर्जा और स्फूर्ति को रोकने में असमर्थ है। वे स्वालंबी, कर्मठ, प्रगतिशील और समय की गति साथ गति मिलाकर चलने वाले व्यक्ति है। वे जमीनी सच्चाइयों के साथ जीते हैं। व्यास सम्मान से अलंकृत, केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष जैसे उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद वे उभरते हुए नए लेखकों के बीच 'व्हाट्स-एप' 'फेसबुक' 'मैसेंजर' पर संवाद करते नजर आते हैं। गोयनकाजी, ने जिस ऊर्जा के साथ अपने उत्तर जीवन को रचनात्मक दिशा दी है वह हिंदी जगत में एक मिसाल कायम करता है।

□

प्रवासी-साहित्य और डॉ. गोयनका

पुष्पा सक्सेना

एक तेजस्वी, सरल सौम्य मुखाकृति, स्नेहपूर्ण मुस्कान से सबको अपनत्व देने वाले गोयनकाजी का यह परिचय उनके व्यक्तित्व के लिए पर्याप्त नहीं है। पहली बार उनसे मिलने जाने के लिए मन में संशय था, इतने प्रतिष्ठित पुरस्कार और सम्मानों से अलकृत, इतनी पुस्तकों के लेखक, यह महान विद्वान कैसे होंगे, उनसे कैसे बात होगी? कहीं मेरे प्रश्न मूर्खतापूर्ण तो नहीं होंगे? जब भी रांची विश्वविद्यालय में हिंदी की विभागाध्यक्ष अपनी बड़ी दिवंगत बहिन डॉ. उषा सक्सेना के घर जाती तो उनकी मेज पर गोयनकाजी की पुस्तकें देखकर सोचती, प्रेमचंद को अमरत्व देने में उनका कितना बड़ा योगदान है। कैसे वह उनकी अप्राप्य कहानियां खोज पाए हैं?

घर की बेल बजाते ही सामान्य भारतीय परिधान में सामने गोयनकाजी खड़े थे।

'घर ढूंढने में कष्ट तो नहीं हुआ?' स्नेहपूर्ण शब्दों में जिज्ञासा थी।

'जी नहीं, आपको जानने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि एक सज्जन तो यहां तक पहुंचाने को तैयार थे।' सच में शायद मुझे पहुंचाने के बहाने वह स्वयं गोयनकाजी के दर्शन करना चाहते थे। 'आजकल घर में कुछ बनवाने का काम चल रहा है, इसलिए आइए इधर बाहर की तरफ ही बैठते हैं।' बाहर कुछ कुर्सियां थीं, हम वहीं बैठ गए। समझ में नहीं आ रहा था, बात कैसे शुरू करूं।

'मैं अमरीका से आई हूं, कहानियां लिखने का शौक है।'

'जानता हूं, आपकी कुछ कहानियां पढ़ी हैं।'

'आपको मेरी कहानियां कैसी लगीं?' उत्सुकता स्वाभाविक थी।

'अच्छा लिखती हैं। प्रवासी जीवन को साकार करने के साथ प्रवासी और भारतीय जीवन का विरोधाभास भी स्पष्ट किया है। उन्होंने गंभीरता से अपने विचार दिए थे। 'आपसे एक अनुरोध करने का दुस्साहस कर रही हूं। मेरा एक प्रवासी कहानियों का संकलन नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया से प्रकाशनार्थ स्वीकृत हुआ है। क्या आप इस संकलन की भूमिका लिखने के लिए समय दे सकते हैं?'

'इस कार्य के लिए एन. बी. टी. से आपकी पांडुलिपि मुझे भेजी जानी चाहिए।' गंभीरता से उत्तर आया।

'जी हां, आपकी अनुमति लेने के लिए ही आपके पास आई हूं, पांडुलिपि आपके पास पहुंच जाएगी।'

गोयनकाजी की स्वीकृति से कितनी उत्साहित हुई थी और आज अपने संकलन में उनकी सशक्त पठनीय भूमिका को अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धि मानती हूं। अपने अति व्यस्त कार्यक्रमों और व्यस्तताओं के मध्य यह भूमिका लिखना उनके प्रवासी-साहित्य को हिंदी की मुख्य-धारा से जोड़ने का प्रमाण है।

गोयनकाजी में अभिमान तो लेशमात्र का भी नहीं है, कोई भी, कभी भी उनसे मिल सकता है। सबको सहज स्नेह से उनकी सम्मति, मार्ग-दर्शन मिलता है। व्यस्तताओं में एक सहायक या सचिव रखना सामान्य बात होती है, जो उनकी फोन काल्स को ले सके, पर गोयनकाजी सदैव स्वयं फोन पर बात करते हैं, ईमेल्स का तत्काल उत्तर देते हैं। मुझे याद है एक विद्यार्थी भोपाल के विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रवासी साहित्य पर उनसे बात करने पहुंचा था। अति व्यस्तता के कारण वह उस समय उस विद्यार्थी का मार्गदर्शन नहीं कर सके, पर उसे दिल्ली बुलाकर उसकी शंकाओं का समाधान किया था। ऐसे उदार और स्नेही हैं गोयनकाजी।

चालीस वर्षों तक दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए उन्होंने विद्यार्थियों की समस्याओं का मात्र समाधान ही नहीं किया बल्कि उनका सही मार्गदर्शन भी किया। उन्हें प्रेमचंद साहित्य से परिचित कराया, हिंदी के प्रति निष्ठा और प्रेम का संदेश दिया। इस प्रयास में समस्याएं भी आईं, पर दृढ़ प्रतिज्ञ, धैर्यवान, कर्मठ गोयनकाजी तो पराजय जानते ही कहां हैं?

प्रदीप पंतजी ने गोयनकाजी पर अपने आलेख में लिखा है- 'प्रेमचंद-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ विद्वान शोध- कर्ता राग-द्वेष, वैमनस्य वैचारिक मतभेदों और स्वभाव की भिन्नता को दूसरों के प्रति आदर-भाव और मैत्री को आड़े नहीं आने देते। वह लोकतांत्रिक हैं।'

यह कथन नितांत सत्य है, प्रेमचंद पर अपने कार्यों पर वह कई साहित्यकारों की आलोचना के पात्र बने, पर अपने शोध से प्राप्त दस्तावेजों को साहस और ईमानदारी से सबके सामने रख अपना कर्तव्य पूर्ण किया। आज उनकी लेखनी ने प्रेमचंद को अमर किया है।

आज गोयनकाजी प्रवासी साहित्य को हिंदी साहित्य की मुख्य धारा से जोड़ने के संकल्प के साथ अथक प्रयास कर रहे हैं, गोयनकाजी ने स्वीकार किया है कि प्रवासी साहित्य के प्रति उनकी रुचि, उसके अध्ययन और मूल्यांकन के साथ उसे भारत में लोकप्रिय बनाने तथा उसे मुख्यधारा का अंग बनाने में उनकी सक्रियता प्रेमचंद शताब्दी वर्ष (1980-81) से ही प्रारंभ हो गई थी।

गोयनकाजी ने दिल्ली में 'प्रेमचंद जन्म शताब्दी राष्ट्रीय समिति' का गठन किया। समिति के अध्यक्ष जैनेंद्र कुमार तथा संरक्षक श्रीमती इंदिरा गांधी थीं। महामंत्री के रूप में गोयनकाजी देश-विदेश में शताब्दी-आयोजन कराने के लिए विभिन्न संस्थाओं, अकादमियों, विश्वविद्यालयों आदि के संपर्क में आए। मॉरीशस की नागरी प्रचारिणी सभा को लिखे उनके पत्र के आधार

पर वहां कार्यक्रम आयोजित हुआ। इस कार्यक्रम में गोयनकाजी तथा जैनेंद्रजी को भारतीय प्रतिनिधि के रूप में मॉरीशस भेजा गया। गोयनकाजी ने वहां प्रेमचंद के मूल दस्तावेजों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफों आदि की प्रदर्शनी लगाई। प्रदर्शनी का उद्घाटन मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री शिवसागर रामगुलाम द्वारा किया गया। मॉरीशस के इतिहास से गोयनकाजी द्रवित हुए, उन्होंने देखा विपरीत और विषम स्थितियों में भी कवियों और लेखकों द्वारा हिंदी में साहित्य रचा जा रहा है।

'इस कार्यक्रम से लौटते समय मैंने यह संकल्प किया कि प्रेमचंद के साथ हिंदी के प्रवासी साहित्य के प्रोत्साहन, प्रकाशन तथा उसके समुचित मूल्यांकन के साथ उसे पाठ्यक्रमों का अंग बनाने के लिए जीवन भर प्रयत्न करता रहूंगा।'

इस प्रयास में उन्हें सफलता भी मिली है। उनके प्रयासों से प्रवासी-साहित्य अब पाठ्यक्रमों में सम्मिलित हो रहा है, इस पर शोध-कार्य किए जा रहे हैं। संगोष्ठियों, परिचर्चाओं और पेपर प्रस्तुतियों में प्रवासी साहित्य सम्मिलित किया जा रहा हैं। पत्रिकाओं में प्रवासी साहित्य के लिए कॉलम, पृष्ठ ही नहीं रखे जा रहे हैं वरन प्रवासी साहित्य विशेषांक प्रकाशित किए जा रहे हैं। इस सफलता का पूरा श्रेय केवल गोयनकाजी को जाता है। विरोधों-आपत्तियों से अविचिलित वह अपना संकल्प पूर्ण करने में लगे रहे। इस संकल्प के सुपरिणाम-स्वरूप गोयनकाजी के हिंदी के प्रवासी साहित्य पर अभी तक अनेकों लेख एवं छह पुस्तकें जिसमें- अभिमन्यु अनत-एक बातचीत, अभिमन्यु अनत 'प्रतिनिधि रचनाएं', मॉरीशस की हिंदी कहानियां, अभिमन्यु अनत समग्र कविताएं, मॉरीशस के राष्ट्र-कवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर काव्य रचनावली', हिंदी का प्रवासी साहित्य आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

साहित्य अकादेमी दिल्ली में प्रवासी मंच की स्थापना उन्हीं के सद्प्रयासों का परिणाम है, जहां विदेशों से आने वाले प्रवासी साहित्यकार भारत के साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों आदि के समक्ष अपनी रचनाओं का पाठ करते हैं। उनकी रचनाओं पर चर्चा की जाती है। प्रायः इन रचनाओं में प्रवासी जीवन की झलक भी मिलती है। यह मेरा सौभाग्य था कि नवंबर वर्ष 2014 में आदरणीय गोयनकाजी एवं अनेकों साहित्यकारों तथा दिल्ली के बुद्धिजीवियों की उपस्थिति में साहित्य अकादेमी में मुझे अपनी कहानियों का पाठ करने का अवसर मिला। कहानियों पर सार्थक चर्चा की गई। यह उत्साहपूर्ण स्मृति मेरे मानस में चिरस्थायी रहेगी।

साहित्य अकादेमी से प्रकाशित होने वाले हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रवासी हिंदी साहित्य पर एक स्वतंत्र अध्याय को सम्मिलित कराने तथा लिखने में गोयनकाजी का महती योगदान है। गोयनकाजी ने प्रवासी साहित्य को आलोचना और शोध का विषय बनाने के कार्यों को आगे बढ़ाया है। इसके लिए 'साक्षात्कार'(भोपाल), 'शब्दयोग'(नई दिल्ली), 'बुलंदप्रभा'(बुलंदशहर), तथा 'पांडुलिपि' (रायपुर), 'राजभाषा मंजूषा'(नई दिल्ली) आदि पत्रिकाओं का संपादन किया।

गोयनकाजी के मानस में प्रवासी साहित्य सदैव प्राथमिकता में रहा है। जोहांसबर्ग में आयोजित नौवें विश्व हिंदी सम्मलेन में प्रवासी साहित्य पर गोष्ठी के अध्यक्ष के रूप में गोयनकाजी ने प्रवासी साहित्य के प्रचार प्रसार तथा इसे मुख्यधारा का अंग बनाने के लिए कई

प्रस्ताव रखे और दृढ़ शब्दों में कहा- 'मै अब कह सकता हूं, प्रवासी साहित्य एक वास्तविकता है, उसका एक इतिहास है, एक परंपरा रूप ले रही है, उसका अपना वैशिष्ट्य है, उसकी अपनी संवेदना, अपनी जीवन दृष्टि और अपने सरोकार हैं और अब वह हिंदी की मुख्यधारा का अंग है।

प्रवासी साहित्य शब्द को लेकर बहुतों को आपत्ति है। कुछ लेखक अपने को अपने विस्थापित देश के नाम से अपने साहित्य को पहचान देना चाहते हैं। गोयनकाजी का विश्वास है, वह कहते हैं- 'जब भी कोई भारतवासी इस साहित्य को पढ़ेगा और उसके वैशिष्ट्य को समझेगा तो वह इसे प्रवासी साहित्य या भारतवंशी लेखकों के साहित्य के रूप में ही स्वीकार करेगा।'

यह सत्य है, सरल शब्दों में प्रवासी-साहित्य को विस्थापितों का साहित्य कहा जा सकता है। यह विस्थापन विवशता या अपने लाभ के लिए हो सकता। इस साहित्य में उनके अपने अनुभव, विचार, खुशी या पीड़ा समाहित है। अपने परिवेश और अपनों से दूर रहते हुए ये प्रवासी उन्हीं यादों और नए अनुभवों को अपने साहित्य मे रचते हैं।

प्रवास में रचित साहित्य के विषय में प्रो. सुरेश ऋतुपर्णजी ने अपने आलेख 'प्रवासी साहित्य कितना-प्रवासी' में आषाढ़ का एक दिन में कालिदास द्वारा उज्जयिनी में बिताए गए जीवन के संदर्भ में कालिदास के शब्दों का उल्लेख करते हुए लिखा है कालिदास मल्लिका से कहते हैं- 'लोग सोचते हैं कि मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर कुछ लिखा है, परंतु मैं जानता हूं, मैंने वहां रहकर कुछ नहीं लिखा है। जो कुछ लिखा है, वह यहां के जीवन का ही संचय है। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया, तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई।'

प्रवासी-साहित्य के विषय में कालिदास का यह कथन नितांत सत्य है, विस्थापन या प्रवास में अपने परिचित परिवेश और अपनों से बिछुड़ने की पीड़ा के साथ नए परिवेश और वहां के लोगों, संस्कृति, भाषा के साथ समायोजन करने का द्वंद्व होता है। कुछ लोग अपने लाभ की दृष्टि से इस परिवर्तन को आसानी से स्वीकार कर लेते हैं, पर कुछ अपने खेत-खलिहान, गांव, पनघट को नहीं भुला पाते। ऐसी स्थिति में प्रवास की सच्चाई के साथ अपने पूर्व परिचित परिवेश को याद करते हुए जो साहित्य रचा जाता है, उसमें प्रवास स्पष्ट उजागर होता है। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत का उपन्यास 'लाल पसीना' इस प्रवासी-साहित्य का अनुपम उदाहरण है। 'नंगी पीठों पर सहकर बांसों की बौछार/बहा-बहा कर लाल पसीना/वह पहला गिरमिटिया इस माटी का बेटा/जो मेरा भी अपना था, तेरा भी अपना।' गोयनकाजी ने अभिमन्यु अनत को मॉरीशस के प्रेमचंद की संज्ञा दी है।

गोयनकाजी ने अपने आलेख 'हिंदी का प्रवासी साहित्यः दशा और और दिशा' में गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के प्रवास-काल के सत्य तथा 'इंडियन ओपीनियनः अखबार के प्रकाशन एवं वर्ष 1901 में मॉरीशस की यात्रा से भारतीय प्रवासियों की समस्याओं और यातनाओं के प्रति जागरण का वातावरण निर्मित होने का उल्लेख किया है।

गोयनकाजी की मान्यता है, इंग्लैंड में उच्चायुक्त पद पर आसीन डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी का प्रवासी साहित्य के विकास में स्मरणीय योगदान है, अटल बिहारी वाजपेयीजी का एकल काव्य-पाठ कराकर उन्होंने कवि सम्मेलनों की परंपरा प्रारंभ की थी। गोयनकाजी आदरणीय अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में 11 जनवरी, वर्ष 2003 में प्रथम 'प्रवासी भारतीय दिवस' के उद्घाटन का स्मरण करते हैं तदुपरांत डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी की 'डायस्पोरा' रिपोर्ट के आधार पर प्रवासी दिवस आयोजन की परंपरा शुरू हुई, पर राजनीतिक स्थितियों में हिंदी की उपेक्षा के कारण यह परंपरा नहीं चल सकी।

गोयनकाजी प्रवासी साहित्य के विकास में अपने योगदान को बहुत शालीनता के साथ स्वीकार करते हैं। सूरीनाम और न्यूयार्क के विश्व हिंदी सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व के समय भी प्रवासी साहित्य उनकी प्राथमिकता में रहा। सूरीनाम में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में 'विश्व हिंदी- रचना' नाम से जिस ग्रंथ का संपादन किया, उसमें पहली बार प्रवासी साहित्य की झलक देने का प्रयास किया है। न्यूयार्क सम्मेलन में प्रवासी साहित्य के प्रतिनिधि रूप को उजागर करने के लिए 'साक्षात्कार' पत्रिका का संपादन किया। मॉरीशस के प्रसिद्ध लेखक अभिमन्यु अनत पर पत्रिकाओं के विशेषांक निकलवाकर हिंदी प्रवासी साहित्य के प्रति देश में रुचि उत्पन्न करने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

इन कार्यों के मूल में गोयनकाजी का एक ही सोद्देश्य है कि भारत के बाहर के देशों में रहने वाले जिन प्रवासी एवं भारतवंशी लेखकों ने अपने हिंदी भाषा एवं साहित्य प्रेम से एक अभिनव रचना संसार की सृष्टि की है, उसे विश्व के हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाए और बताया जाए कि अनेकों बाधाएं भी उनकी कलम को नहीं रोक सकीं उन्होंने भी हिंदी की दुनिया बनाई है। गोयनकाजी के शब्दों में 'यह दुनिया प्रत्येक देश की अपनी है, स्थानीयता का उस पर गहरा प्रभाव है, परंतु उसकी आत्मा हिंदी की, स्वदेश की और भारतीयता की है।'

गोयनकाजी ने विभिन्न देशों में रचे जा रहे प्रवासी साहित्य का उल्लेख अपने आलेख में विस्तार से किया है। उन्होंने हिंदी में प्रवासी साहित्य को दो मुख्य धाराओं में विभक्त किया है। एक धारा मॉरीशस' फिजी, सूरीनाम, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिदाद में गए गिरमिटिया मजदूरों की संतानों द्वारा रचित साहित्य है। दूसरी धारा अमेरिका, इंग्लैंड, यूरोप तथा मध्य एशिया में अपनी इच्छा से जाने वाले लेखकों का साहित्य है।

पहली धारा के लेखकों ने अमानवीय अत्याचार सहन करते हुए अपने साथ ले गए धार्मिक ग्रंथों के सहारे अत्याचार सहकर भी धर्म में अटूट आस्था रखी। अभिमन्यु अनत का विश्वास है कि ये भारतीय प्रवासी मजदूर अपने साथ 'गंगा की निर्मलता और हिमालय की महानता' लेकर आए थे अन्यथा गोरे मालिकों के अत्याचार और पश्चिमी आंधी में खो गए होते। उन दुखद स्थितियों में कुछ कवियों की प्रेरक कविताओं ने प्रवासी भारतीयों की दयनीय दशा के चित्रण के साथ स्वतंत्रता की नई चेतना उत्पन्न की थी। इस चेतना का परिणाम मॉरीशस की पराधीनता से मुक्ति थी। गोयनकाजी कहते हैं- 'मॉरीशस' के हिंदी प्रवासी साहित्य के इतिहास में 12 मार्च 1968 का स्वतंत्रता दिवस बहुत महत्वपूर्ण है। हिंदी भाषा और साहित्य को खुला

आकाश मिला। नए कवि उभरकर आए, पुराने काव्य संकलन और नई पत्रिकाएं प्रकाशित की गईं।' इसी समय अभिमन्यु अनत जैसे सशक्त हिंदी प्रवासी लेखक का आविर्भाव हुआ। मॉरीशस के प्रवासी साहित्य के केंद्र में अभिमन्यु अनत ही हैं। गोयनकाजी के शब्दों में 'अभिमन्यु अनत अपने पूर्वजों के गूंगे इतिहास और चीखती पीड़ा के गायक हैं, वे एक चिंतित लेखक हैं, विद्रोही लेखक हैं और ये सब देश और जनता और पूरी मानवता के लिए है जो अपने वर्तमान में अतीत और भविष्य को जीते हैं। अनतजी ने 'वसंत पत्रिका' का चालीस वर्षों तक संपादन किया, दासता और जड़ता से मुक्ति तथा मानवीय समाज की रचना की है। उन्होंने लेखकों की एक पूरी पीढ़ी की रचना की है।

गोयनकाजी के अनुसार, हमारे यहां के भारतेंदु युग या प्रेमचंद युग की तरह से अभिमन्यु अनत एक युग प्रवर्तक हैं। उनसे पूर्व के कवियों में ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', मुनीश्वरलाल, चिंतामणि, सोम दत्त बखोरी आदि हैं। मॉरीशस' के आज के अन्य कवियों में हरिनारायण, काली चरण, हेमराज सुंदर, पूजानंद नेमा, इंद्रदेव भोला, ठाकुर दत्त पांडेय, राज हीरामन आदि हैं। मॉरीशस' में लगभग 200 से अधिक कवि हैं तथा 700 से अधिक छात्र हिंदी पढ़ते हैं। नाटक के क्षेत्र में मॉरीशस के लेखकों द्वारा लिखे गए नाटकों का मंचन किया जाता है तथा प्रतियोगिताएं आयोजित कराई जाती हैं।

मॉरीशस में महात्मा गांधी संस्थान के अतिरिक्त हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस हिंदी अकादेमी, विश्व हिंदी सचिवालय, आर्य समाज, रामायण सेंटर आदि कई संस्थाएं हैं जो हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं।

गोयनकाजी ने प्रवासी साहित्य के क्षेत्र में मॉरीशस के बाद फिजी, त्रिनिदाद तथा सूरिनाम के प्रवासी साहित्य का उल्लेख किया है। फिजी के प्रवासी-साहित्य को उजागर करने में गोयनकाजी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की अहम् भूमिका स्वीकार करते हैं। पं. बनारसीदासजी ने फिजी में 21 वर्षों से रह रहे एक भारतीय के जीवन पर 'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष', शीर्षक से लिखा और प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त 'प्रवासी भारतवासी' तथा 'फिजी में भारतीय' पुस्तकों की रचना की। फिजी के कमला प्रसाद मिश्र, डॉ. सुब्रमणी विवेकानंद शर्मा आदि लेखन कर रहे हैं। डॉ.विमलेश कांति वर्मा द्वारा 'फिजी का सर्जनात्मक साहित्य' नाम से संकलन आया है। इन पुस्तकों द्वारा फिजी, सूरीनाम तथा मॉरीशस में रह रहे भारतीयों की त्रासदी, शोषण ने भारतीयों का ध्यान इस दिशा में खींचा। लंदन से लौटने पर बच्चनजी की 'प्रवास की डायरी' में प्रवास उजागर है। साहित्य में पहली बार मॉरीशस में प्रवासी भारतीय जीवन पर आधारित प्रेमचंद की 'शूद्रा' कहानी चाँद पत्रिका में प्रकाशित हुई।

सूरीनाम में 5-9 जून 2003 में आयोजित विश्व हिंदी सम्मलेन में भी गोयनकाजी ने अपने प्रवासी साहित्य प्रेम का परिचय देते हुए प्रथम बार विश्व के प्रवासी एवं भारतवंशी हिंदी लेखकों का संकलन 'विश्व हिंदी-रचना' का संपादन किया। संकलन का लोकार्पण सूरीनाम के राष्ट्रपति द्वारा किया गया। तत्कालीन प्रोफेसर डॉ. पुष्पिता अवस्थी द्वारा 'कविता सूरीनाम' तथा 'कथा

सूरीनाम' द्वारा दो ग्रंथ प्रकाशित किए गए। अब नीदरलैंड से पुष्पिताजी की एक और नई पुस्तक 'सूरीनाम का हिंदी सर्जनात्मक साहित्य' आई है। इन पुस्तकों से सूरीनाम के साहित्य के विषय से काफी जानकारी मिलती है।

त्रिनिदाद में हरिशंकर आदेश, सुरेश ऋतुपर्ण, प्रेम जनमेजय, तथा प्रो. भूदेव शर्मा तथा प्रो. जगन्नाथ ने हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रवासी भारतीयों में आदेशजी के तीन सौ ग्रंथों का भारतीय संगीत, संस्कृति, भाषा और साहित्य के क्षेत्र में बहुत महत्व है।

गोयनकाजी विभिन्न देशों हिंदी में साहित्य लिखने वालों का भी उल्लेख करते हैं। नेपाल में भी हिंदी में लिखा जा रहा है। इसके अतिरिक्त नार्वे, जर्मनी, इटली, जापान, दक्षिणी कोरिया के लेखक जिस साहित्य की रचना कर रहे हैं, उसे भी प्रवासी-साहित्य की श्रेणी में सम्मिलित कहा जाना उचित होगा।

मॉरीशस के बाद अमरीका और इंग्लैंड के प्रवासी साहित्य की गोयनकाजी ने विस्तार में चर्चा की है। अमरीका में भारतीय विद्या भवन, चिन्मय मिशन, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, विश्व हिंदी न्यास, विश्व-हिंदी समिति आदि संस्थाएं भारतीय संस्कृति, भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए कार्य कर रही हैं। अमरीका में हिंदी का वातावरण बनाने की दिशा में डॉ. विजय मेहता, डॉ.भूदेव शर्मा, गुलाब खंडेलवाल, वेद प्रकाश बटुक, अंजना संधीर, सुधा ओम ढींगरा, रेणु गुप्ता 'राजवंशी', सुषम बेदी, कुंवर चंद्रप्रकाश जैसे महत्वपूर्ण नाम हैं जो हिंदी भाषा और साहित्य के सतत् विकास-कार्य में संलग्न हैं। इन समस्त लेखकों की अनेकों महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

अमरीका में कविता एक महत्वपूर्ण विधा है। यहां पचास से अधिक कविता संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। उपन्यास और कहानी लेखन में स्त्री लेखिकाओं का योगदान अधिक है। सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, रेणु गुप्ता 'राजवंशी', पुष्पा सक्सेना, इला प्रसाद, सुदर्शन प्रियदर्शनी, आदि के कई उपन्यास और कहानी-संकलन प्रकाशित हुए हैं। इसी श्रृंखला में अमरेंद्र कुमार, रामेश्वर अशांत के कहानी संकलन भी प्रकाशित हैं।

इन लेखकों के भारतीय अनुभव अमरीकी वातावरण से प्राप्त अनुभवों से पुष्पित पल्लवित होकर नवीन रूप लेते हैं। यह नवीन कलेवर प्रवासी साहित्य की झलक दर्शाता है। अपनों से दूर होने की पीड़ा को उनकी यादों के सहारे जीते हुए नवीन परिवेश से सामंजस्य स्थापित करने के द्वंद्व के साथ प्रवासी साहित्य जन्म लेता है। कविता एवं कहानी उपन्यास लेखन के अतिरिक्त आत्मकथा, संस्मरण, निबंध आदि की भी कुछ पुस्तकें मिलती है, किंतु अमरीका में उनकी लोकप्रियता कम है।

अमरीका में स्तरीय हिंदी की पत्रिकाओं में 'विभोम स्वर', 'विश्व हिंदी जगत', 'विश्व विवेक' (पूर्व में प्रकाशित), 'विज्ञान प्रकाश', 'बाल-जगत' आदि मुख्य हैं। 'चेतना' पत्रिका कुछ समय पूर्व तक अमरीका और कनाडा के सम्मिलित अंक के रूप में प्रकाशित होती रही, अब यह केवल कनाडा से प्रकाशित होती है।

कनाडा में हिंदी तथा पंजाबी भाषियों की काफी बड़ी संख्या होने के कारण यहां हिंदी तथा पंजाबी के कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। अमरीका की तरह कनाडा में भी विश्व हिंदी परिषद्, हिंदी साहित्य परिषद्, सद्भावना हिंदी साहित्यिक संस्था, नागरी प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाएं हिंदी भाषा साहित्य तथा हिंदू धर्म-संस्कृति के प्रचार-प्रसार में वर्षों से लगी हुई हैं। यहां से 'चेतना' तथा 'वसुधा' जैसी स्तरीय पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। कनाडा में सरन घई का 'विश्व हिंदी संस्थान' हिंदी के विकास के लिए सतत कार्यशील है।

यूरोप में इंग्लैंड में प्रवासी साहित्य के विकास में अनेकों लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यहां कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यास जैसी कई विधाओं में लिखा गया है। वर्ष 1951 में हरिवंश राय 'बच्चन' के इंग्लैंड में अध्ययन के लिए आने के समय सर्वप्रथम 'हिंदी' परिषद् की स्थापना से प्रवासी भारतीयों के मन में अपनी भाषा, धर्म और संस्कृति के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ और वहां नाटकों का मंचन हुआ तथा हिंदी में तीन पत्रिकाएं प्रकाशित की गईं थीं। इसी प्रेरणा से कई हिंदी समितियों की स्थापना हुई। इस प्रेरणा के परिणामस्वरूप अब यहां से 'पुरवाई', 'प्रवासी; टुडे', 'लंदन 'टाइम्स' आदि प्रकाशित होते हैं।

इंग्लैंड अब प्रवासी साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इन आयोजनों में भारत के साहित्यकार आमंत्रित किए जाते हैं तथा यहां से भारत जाते हैं, इस से प्रवासी साहित्य के विकास में बहुत मदद मिलती है। इंग्लैंड में कविता और कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। सत्येंद्र श्रीवास्तव यहां के सबसे प्रसिद्ध कवि हैं एवं दिव्या माथुर, मोहन राणा, गौतम सचदेव, कृष्ण कुमार, उषा राजे सक्सेना, पद्मेश गुप्त, निखिल कौशिक शैल अग्रवाल आदि के कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कहानीकारों में कीर्ति चौधरी, उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, उषा वर्मा, तेजेंद्र शर्मा, कादंबरी मेहता, महेंद्र दवेसर आदि हैं। उपन्यास के क्षेत्र में नरेश भारतीय, भारतेंदु विमल, नीला पॉल के नाम उल्लेखनीय हैं। गोयनकाजी के विचार में प्रवासी जीवन की वास्तविकता जानने के लिए ये कहानियां सबसे अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती हैं।

प्रवासी साहित्य को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए कृत संकल्प गोयनकाजी ने 'हिंदी के प्रवासी साहित्य का विस्तृत रूप' शीर्षक से तीन खंडों में पुस्तक का संपादन कर एक और बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रवासी साहित्य को उजागर करने की दिशा में कविता, कहानी तथा लेख, लघुकथा, डायरी, साक्षात्कार, पत्र इन तीन खंडों में पुस्तक को विभाजित किया गया है।

प्रथम खंड कविता में अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, खाड़ी देश, दुबई, जर्मनी, डेनमार्क, नार्वे, फिजी, मॉरीशस, तथा सूरीनाम आदि बारह देशों के नब्बे कवियों की कविताएं संकलित हैं।

हिंदी प्रवासी साहित्य के दूसरे खंड में प्रवासी लेखकों की कहानियां संकलित हैं। अर्थात यह दूसरा खंड कहानी खंड है। इस खंड में कुल चवालीस कहानियां संकलित हैं। ये कहानियां अमरीका, आबूधाबी, इंग्लैंड, कनाडा, जापान, डेनमार्क, नार्वे तथा मॉरीशस के प्रवासी भारतवंशियों द्वारा लिखी गई हैं। इन प्रवासी कहानियों से भारत का पाठक लगभग अपरिचित ही था। इन

प्रवासी कहानियों ने इसी अपरिचित प्रवासी संसार को हिंदी पाठकों के समक्ष उपस्थित किया और भारतीय प्रवासी जीवन की यथार्थ कहानियों का द्वार खोल दिया। इन कहानियों में नया भारतीय संसार है, नई अनुभूतियां और संवेदनाएं हैं, जीवन को देखने-समझने का नया दृष्टिकोण है। दो भिन्न संस्कृतियों में जीने के संघर्ष और उनके द्वंद्व करने का सफल प्रयास है।

हिंदी प्रवासी साहित्य के तीसरे खंड में प्रवासी साहित्यकारों की गद्य में लिखी गई और प्रकाशित गई वो रचनाएं हैं जो लेखकों में कम लोकप्रिय होती हैं, परंतु इनमें सर्जनात्मकता का दबाव कम नहीं होता। ऐसी रचनाओं में आलेख, डायरी, पत्र, पुस्तक समीक्षा, भूमिका, यात्रा-वृत्तांत, लघुकथा, संपादकीय तथा साक्षात्कार जैसी विधाएं हैं। इस खंड में लगभग बीस लेखकों द्वारा लिखे गए आलेख संकलित हैं।

विश्वास है, प्रवासी साहित्य की यह त्रिखंडी प्रवासी साहित्य को देश के दूर-दूर स्थानों तक पहुंचकर भारतीय पाठक को प्रवासी साहित्य से परिचित करा सकेगी। इस साहित्य में स्थानीयता की सुगंध है, जो नवीन होते हुए भी मोहक है। गोयनका जी कहते हैं- 'अभी इस साहित्य को लंबी यात्रा तय करनी है, प्रवासी लेखकों को आत्म-प्रशंसा से बचते हुए श्रेष्ठ साहित्य की रचना करनी चाहिए।'

प्रवासी साहित्य के मुख्य धारा से संगम के लिए बढ़ते कदम अब नहीं रूकेंगे, जुड़कर ही थमेंगे। विश्वास है, प्रवासी साहित्य को मुख्य धारा से जोड़ने में गोयनकाजी के भगीरथ प्रयास पूर्ण रूपेण सफलता प्राप्त करेंगे। प्रवासी साहित्यकार और साहित्य डॉ. कमल किशोर गोयनका के इस महत्वपूर्ण कार्य का सदैव ऋणी रहेगा।

□

सत्य के मेरुदंड पर विकसित कमल

अनिल प्रभा कुमार

राजनीति के ककहरे से मैं अधिक परिचित नहीं हूं और न ही धर्म-जातिवाद की कोई बारीक समझ है मुझे। केवल किसी के पद या प्रतिष्ठा में मुझे प्रभावित कर सकने की क्षमता नहीं है। प्रभावित करती है तो मनुष्य के भीतर की मानवता। पहचानती हूं तो उस उदारता को जिसका अंश उसके आत्मीयों, मित्रों, सहकर्मियों के ही नहीं बल्कि विरोधियों के भी हिस्से आता है। मुझे समझ है तो व्यक्ति के गरिमा-पूर्ण व्यवहार की। सम्मान करती हूं तो उस व्यक्तित्व का जो सच के आगे अडिग खड़ा रहता है। जिसकी विचारधारा में उसके संस्कार और मूल्य अंतर्निहित हों। विद्वता से प्रभावित अवश्य होती हूं पर उसी विद्वान की जो चरित्र और विनम्रता की ठोस जमीन पर खड़ा हो। कितना भी प्रतिष्ठित विद्वान क्यों न हो यदि उसमें चारित्रिक मर्यादा नहीं तो मेरे लिए उसका कोई अस्तित्व ही नहीं। सबसे बढ़कर यदि कोई व्यक्ति अहंवादी न होकर विनीत भी हो तो ऐसे व्यक्ति के लिए मन में सम्मान के अतिरिक्त और कोई भाव हो ही नहीं सकता।

जीवन में बहुत कम लोग मिले हैं मुझे जिनके लिए मन में सहज आदर का भाव उत्पन्न हुआ हो। प्रवास में लंबे समय से रहने के कारण और कुछ अपने जीवन की निजी व्यस्तताओं में आकंठ निमग्न होते हुए मैं साहित्यिक जगत की दुनिया और उसकी गतिविधियों से कटी रही हूं। जब जीवन की दूसरी पारी खेलने के लिए फिर से साहित्य का आंचल पकड़ा तो नामों से परिचय भी आरंभ हुआ। डॉ. कमल किशोर गोयनका का नाम सबसे पहली बार अंजना संधीर की संपादित पुस्तक 'प्रवासिनी के बोल' में देखा जिसमें अमरीका में रह रही सभी कवयित्रियों की रचनाएं संकलित थीं। फिर तो धीरे-धीरे यह नाम प्रवासी रचनाकारों के संदर्भ में कई पुस्तकों और पत्रिकाओं में अपनी विशिष्टता लिए प्रगट होता रहा। लगभग पिछले तीन दशकों से गोयनकाजी विश्व भर के प्रवासी साहित्यकारों को प्रचारित और उन्हें हिंदी साहित्य प्रेमियों के सम्मुख लाने में एक मुख्य भूमिका निभाते रहे हैं और अभी भी कितने ही विशेषांक प्रवासी रचनाकारों के लिए प्रकाशित करवाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। मैंने उन्हें जब भी, जिस भी प्रवासी लेखक से मिलते पाया सदैव उनको प्रेरणा देते, प्रोत्साहित करते ही पाया। वह पूरी निष्ठा से कार्यरत हैं कि प्रवासी लेखक साहित्य के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाएं।

उन दिनों सुधा ओम ढींगरा 'हिंदी चेतना' की संपादिका थीं और डॉ. गोयनका उसके परामर्शदाता। सुधाजी ने बताया कि गोयनकाजी 'पांडुलिपि' नाम से किसी पुस्तक का संपादन कर रहे हैं। उन्हीं के आग्रह पर मैने अपनी कुछ कहानियां और कविताएं गोयनकाजी को डाक द्वारा भेज दीं। यह बात अलग है कि दिल्ली में वर्षा ऋतु के रहते उन्हें मेरी रचनाएं मिलने में विलंब हो गया और वे उस संकलन में सम्मिलित न हो सकीं। इसका लाभ यह हुआ कि इस संदर्भ में मुझे गोयनकाजी से बात करने का अवसर मिला। प्रेमचंद के विषय में उनके विस्तृत शोध-कार्य का ज्ञान हुआ। यह उनकी दंभविहीन सहजता और सरलता से मेरा पहला परिचय था। उनकी इसी बात से मैं प्रभावित हुई जबकि उन्हें आत्म-श्लाघा का पूरा अधिकार था।

हिंदी साहित्य का इतिहास प्रेमचंद के योगदान के बिना अधूरा है और प्रेमचंद के साहित्य का विस्तृत विश्लेषण डॉ. कमल किशोर गोयनका के शोध के बिना अधूरा है। 'प्रेमचंद की कहानियों का काल क्रमानुसार अध्ययन' स्वयं में एक चुनौतीपूर्ण और अथक लग्न और परिश्रम का उदाहरण है। प्रेमचंद साहित्य के इस मर्मज्ञ के विषय में डॉ. रमेश कुंतल मेघ लिखते हैं- 'मैं आपकी मेहनत, लगन और शोध-साधना का सदैव से कद्रदान रहा हूं बावजूद इसके कि हमारी विचारधारा परस्पर विरोधी है। आपने जो कार्य किया है प्रेमचंद पर, वह एक संस्था भी नहीं कर सकती।'

यह अपने आप में एक विडंबना है कि उनके विरोधी दोनों खेमों में हैं। प्रगतिवादी और जनवादी बुद्धिजीवी उन्हें संघ का व्यक्ति कहकर, उन पर हिंदुत्व का ठप्पा लगाकार नकार देते हैं। दूसरी ओर हिंदुत्ववादी गोयनकाजी को उनके उदार दृष्टिकोण के कारण मार्क्सवादी कहकर। गोयनकाजी के विरोधी जो उनके कार्य को कमतर करने का प्रयास करते हैं संभवतः उसके पीछे उनकी छिपी हुई ईर्ष्या की भावना भी रही होगी। प्रेमचंद पर इतना विश्लेषणात्मक शोध करने का श्रेय हम क्यों नहीं ले पाए? किसी भी विचारधारा के बुद्धिजीवियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बिना किसी पर कोई भी ठप्पा लगाए, बिना किसी विशेष रंग का चश्मा चढ़ाए, कृति का निष्पक्षता के साथ अवलोकन, अध्ययन करें। उसका मूल्यांकन तथ्यों और तर्क के अंतर्गत हो न कि विचारधारा के अनुरूप।

यह सही है कि प्रेमचंद के विषय में चले आ रहे कई भ्रमों का खंडन हुआ है इन शोधों के द्वारा। उन तथ्यों का आम पाठक के लिए जानना रोचक और अनिवार्य भी है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने जो भी निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं उसे उन्होंने प्रमाण और तर्कपूर्ण शोध के साथ सिद्ध भी किया है। नए तथ्यों का आधार उपलब्ध दस्तावेज हैं न कि कोई पूर्वाग्रह। सर्वोपरि बात तो यह है कि गोयनकाजी ने आने वाली पीढ़ियों के लिए एक संग्रहणीय शोध सामग्री प्रस्तुत की है जिसके लिए भविष्य उनका आभारी रहेगा। कमलेश्वर के शब्दों में प्रेमचंद पर उनका व्यापक कार्य गोयनकाजी की 'साहित्यिक और बौद्धिक शुचिता का प्रमाण' है।

डॉ. गोयनकाजी के इस साहित्यिक अवदान पर तो बहुत विद्वानों ने लिखा है और भविष्य में भी लिखेंगे। मैं साहित्य की मर्मज्ञ और आलोचक नहीं हूं। कहानी लेखिका हूं। मैं तो उस व्यक्ति के बारे में लिखना चाहती हूं कि जो इतने सहज, स्वाभाविक और विनम्र हैं कि मुझ जैसी

अबोध की, बिना लाग-लपेट के कही गई बातों को भी उतनी ही सहजता से स्वीकार कर लेते हैं जितनी किसी भी प्रबुद्ध विद्वान की। मैं 2015 में उनके अमरीका आगमन पर उनसे पहली बार मिली थी। उस समय मेरी धारणाओं का पटल एकदम धुला हुआ था। उनके और उनके परिवार की आत्मीयता ने उन सबसे बार-बार मिलने का आकर्षण उत्पन्न कर दिया। उनके पुत्र राहुल गोयनका हमारे घर के बहुत पास ही रहते हैं। संयोग बनते रहे और हमारे बीच एक पारिवारिक-सा संबंध बन गया। केवल मैं ही नहीं मेरे पति भी उनके अनुभवों के जिज्ञासु श्रोता बन गए। रोचक, रोमांचक और अविश्वसनीय अनुभव। गोयनकाजी को पूरा प्रेमचंदमय पाया। उनके साहित्य-शोध के प्रति घोर निष्ठा और अपने लक्ष्य को पाने के लिए उनकी कटिबद्धता, समर्पण और गहन परिश्रम की कथा रोमांचित करती है।

धीरे-धीरे समझ में आता गया कि गोयनकाजी की इस सत्य-निष्ठता और प्रतिबद्धता के पीछे जो शक्ति नेपथ्य में काम करती है उसका नाम है- कुसुम गोयनका। गोयनकाजी को जानने के लिए कुसुमजी को जानना आवश्यक है। वह एक आध्यात्मिक विचारधारा वाली गरिमामयी महिला हैं। सशक्त इतनी कि स्वयं सब कुछ झेल जाएंगी पर गोयनकाजी को विचलित होने का भी अवसर नहीं देंगी। आपातकाल में जब गोयनकाजी को कारावास में रहना पड़ा तो उस समय कुसुमजी स्वयं युवती थीं और उनकी गोद में था एक वर्ष का बालक। जब एक प्रतिष्ठित सज्जन उनके पास यह सुझाव लेकर आए कि यदि गोयनकाजी माफी मांग लें तो उन्हें क्षमा मिल सकती है, तब इन शक्तिरूपा ने कहा कि मैं उनसे कभी माफी मांगने को नहीं कहूंगी, भले उन्हें कितने ही वर्ष जेल में क्यों न रहना पड़े। उन्होंने कुछ गलत किया ही नहीं है।

गोयनकाजी की संकल्प शक्ति और उनकी संबल कुसुमजी के विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है। कुसुमजी के एक और अज्ञात पक्ष जिसने मुझे प्रभावित किया वह है उनका कवयित्री रूप। उसके पश्चात तो हम उन्हें भारत में और पुनः अमरीका में भी कई बार मिले। जितना उन्हें जाना उतना ही हमारी श्रद्धा का रंग गहरा हुआ।

अब उनकी हिंदुत्ववादी और संघ की छवि की आलोचना करने वालों के सामने अपना एक निजी अनुभव। यह सही है कि वह हिंदुत्ववादी हैं और अपने को संघ से जुड़ा भी मानते हैं। मै किसी भी तरह की विचारधारा से अपने को जुड़ा हुआ नहीं पाती। जो बात मैंने सचेत होकर उनके बारे में अनुभव की कि वह इन सब बातों से भी ऊपर पहले एक संवेदनशील मनुष्य हैं। उनके विचारों में तर्क है, पर कट्टरता नहीं। उनकी सोच और अनुभूति में दूसरों के विचारों और संवेदनाओं के प्रति भी स्थान है। पिछली बार जब मैं भारत आई तो अपनी किसी और धर्म की मित्र के साथ रही। वह मेरी बचपन की मित्र हैं और हमारा बहनों जैसा ही स्नेह है। जैसा मैंने सुन रखा था, सोचा कि गोयनकाजी की पता नहीं क्या प्रतिक्रिया होगी। उनकी प्रतिक्रिया ने मुझे सहज ही किया था। वह प्रतिबद्ध हैं अपनी मान्यताओं के प्रति परंतु उनके विचारों में मैंने ऐसी कोई हठधर्मिता भी नहीं पाई कि जहां बस मैं ही मैं हूं या मेरे विचार। उनकी सोच में दूसरों के दृष्टिकोण के प्रति भी सम्मान है, लचकीलापन है समय और परिस्थितियों के अनुकूल। विश्वास की इस परिधि में सभी आयु और वर्गों, देश और विदेश के सभी मनुष्यों

का स्वागत है। न ही वह अंधविश्वासी हैं और न ही कठोर। ताजे विचारों और अनुभवों के लिए एक खिड़की हमेशा खुली रखते हैं वह।

वह सहृदय हैं पर अशक्त नहीं। यदि कोई सीमा का उल्लंघन करे तो वह पलटवार करने की सामर्थ्य भी रखते हैं। 'क्षमा शोभति उसी भुजंग को जिसके पास गरल है।' नामवर सिंहजी ने जब उनके लेखन और शोध की आलोचना तर्क के आधार पर न करते हुए उनकी जाति और उनकी साहित्य मर्मज्ञता पर आघात किया तो गोयनकाजी ने भी पलटवार करते हुए पूछा कि आप तो ठाकुर हैं। प्रेमचंद के साहित्य में तीन ठाकुरों का प्रसंग है। बताइए आप इनमें से किस ठाकुर के प्रतिनिधि हैं? इस तर्कसंगत उत्तर के बाद विवाद ने चुप्पी ठान ली।

मुझे मालूम था कि गोयनकाजी को 2014 का व्यास सम्मान 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' पर मिल चुका है। उनकी विनम्रता देखिए कि उन्होंने कभी न इसका और न ही किसी और उपलब्धि का उल्लेख तक नहीं किया। इस बीच मैं भी यह बात भूल गई थी। आज जब उनके विषय में लिखने बैठी तो इस तथ्य पर दृष्टि पड़ गई। संकोच से गड़ गई कि मैं तो उनसे ऐसे ही बातें करती रही हूं जैसे किसी भी सामान्य पुरुष से करती। बहुत कम विद्वान और विदुषियां मैंने अपने जीवन में देखी हैं जिनके पांव धरती पर जमे हों। यह लेख लिखने की तैयारी मन ही मन कर रही थी तो सोचा क्यों न कुसुमजी से ही उनके बारे में पूछूं? गोयनकाजी हमारे साथ किसी कार्यक्रम में जा रहे थे। मैं 'एक मिनट' कहकर कुसुमजी के पास भाग आई। कहा मुझे एक प्रश्न का उत्तर चाहिए, आप सोचकर रखिएगा, लौटकर जवाब ले लूंगी।

प्रश्न था 'यदि आपको एक पंक्ति में गोयनकाजी को परिभाषित करना हो तो क्या कहेंगी?'

वह बोलीं- 'इसका उत्तर तो मैं तुम्हें अभी दे सकती हूं इनमें छल-कपट लेश मात्र भी नहीं, बहुत सीधे हैं ये।'

'यह तो मैं भी जान गई हूं। यह भी कि घनघोर परिश्रमी हैं गोयनकाजी।'

'सही बात। बात के भी बहुत पक्के हैं। यदि किसी की सहायता करने का संकल्प कर लेते हैं तो फिर पीछे नहीं हटते।'

'और कमजोरी क्या है?'

'बस, इनसान को पहचानने में भूल कर जाते हैं, इन्हें बिलकुल पता नहीं चलता कि कोई इनका उपयोग कर रहा है।'

मैं बाद में सोचती ही रह गई इन सब बातों को। उनके व्यक्तित्व का यह पक्ष तो बहुत स्पष्ट था। मैं शायद कुछ और ढूंढ रही थी पर उस बात को पकड़ नहीं पा रही थी। मुझे लगता था कि कोई और तत्व भी है उनके व्यक्तित्व के मूल में जो उनके सभी पक्षों को उजागर करता है। बाद में मुझे अपना उत्तर भी मिल गया।

डॉ. कमल किशोर गोयनका जब से केंद्रीय हिंदी संस्थान (आगरा) के उपाध्यक्ष बने हैं उनके पास अपना स्वार्थ साधने वालों की भीड़ लगी रहती है। विभिन्न अनुदानों और अपने

विशिष्ट स्वार्थों के लिए उनका उपयोग करने वालों की कमी नहीं। उनके संवेदनशील स्वभाव की कमजोरी को कैसे भुनाया जा सकता है, चतुर लोग जानते हैं। कितने दशकों से गोयनकाजी और उनके परिवार ने कितने ही प्रवासी साहित्यकारों को अपने सहयोग से प्रसिद्धि के शिखर तक पहुंचाया है। स्वार्थ-सिद्धि हो जाने पर वही लोग विरोधी हो गए या अपरिचित बन गए। गोयनकाजी सब बातों को जानते हुए भी इसे विस्मृत कर देते हैं। 'कोई बात नहीं। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा होता है।' मैं आश्चर्यचकित हूं कि यह व्यक्ति किस धातु का बना है।

बाह्य रूप में गोयनकाजी कुछ भी कर रहे हों, आंतरिक रूप से वह सभी बातों से ऊपर एक सीधे-सच्चे, बेहद ईमानदार और परिश्रमी मनुष्य हैं। कुछ लोग उनकी शक्ति को पहचानने में भूल कर जाते हैं जो उन्हें अपने भीतरी सत्व के कारण प्राप्त है। ज्यों ही कोई उन्हें प्रलोभन देकर भ्रष्टाचार के लिए लालायित करता है वहीं वह मुंह की खा जाता है। कोई आलोचना, कोई विरोध या कोई उत्क्रोच इस संवेदनशील व्यक्ति को अपने मूल्यों से डिगा नहीं पाया। वह सत्यनिष्ठ हैं और वही सत्य उन्हें ऊर्जा देता है अपने कर्म की ओर अग्रसर होने का।

□

गोयनकाजी : मेरी दृष्टि में

अनीता कपूर

डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी, जो स्वयं में एक पूरा साहित्य-संस्थान हैं, से मेरा मिलना दो-एक बार दिल्ली में ही हुआ था। उन्हें जितना समझा और जाना उसके आधार पर कह सकती हूं कि साहित्य-साधना कर साहित्य-सृजन करने वाली शख्सियत का नाम डॉ. कमल किशोर गोयनका है। चूंकि मैं अमेरिका में रहती हूं और जब तक गोयनकाजी से मिलना न हुआ था, उसके पहले उन्हें उनको नाम के अनुसार ही एक भारी भरकम व्यक्तित्व समझती रही, पर मिलने पर उनसे मिला आशीर्वाद और प्यार सहेजने योग्य पाया।

गोयनकाजी ने हिंदी में हाइकु कविताएं भी लिखी हैं, यह ज्ञात होते ही मैंने उन्हें एक दिन फोन करके निवेदन किया कि मेरा हाइकु संग्रह प्रकाशित होने को हैं, और चाहती हूं कि आप अपनी लिखित शुभकामनाएं मेरे हाइकु-संग्रह को दें। मन में कहीं संशय भी था कि इतने बड़े विद्वान हैं, कहीं समयाभाव के चलते न कर दें तो पर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था, जब उन्होने तुरंत न सिर्फ हामी भरी बल्कि तय वक्त से पहले संग्रह के लिए शुभकामनाएं लिखकर भेजी भी। डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अवकाश प्राप्त प्राध्यापक हैं। उन्होंने वहां चालीस वर्ष अध्यापन किया। गोयनकाजी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंदजी साहित्य के सर्वोत्तम विद्वान शोधकर्ता माने जाते हैं। मुंशी प्रेमचंद पर उनकी अनेकों पुस्तकें व लेख प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित प्रेमचंद ग्रंथावली के संकलन एवं संपादन में उनका विशेष योगदान है। वे प्रेमचंद में संपूर्ण रूप से तन्मय होकर उनसे अटूट रूप में जुड़कर उन्हीं की भांति खुद प्रेमचंद बन गए हैं। विष्णु प्रभाकरजी ने स्वयं कहा था 'डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद पर जितना कार्य किया है, वैसा संभवतः किसी शोधकर्ता ने किसी लेखक पर नहीं किया होगा।' इसी सिलसिले में कड़ी जोड़ते हुए 'प्रेमचंद विश्वकोश' पर लिखे हुए एक लेख में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के शब्दों में उनका कथनः 'गोयनका ने बड़ी खोजबीन के साथ दुर्लभ तथ्य, दस्तावेज आदि एकत्रित किए हैं और उन्हें तरतीब से लगा दिया है।'

डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी को वर्ष 2018 का डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान तथा इसके पहले वर्ष 2014 के व्यास सम्मान के लिए चुना गया। 2012 में प्रकाशित उनकी शोध पुस्तक 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' के लिए उन्हें यह पुरस्कार दिया गया। डॉ.

गोयनका इसके पूर्व उत्तर प्रदेश हिंदी-संस्थान के साहित्य भूषण सम्मान, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के पंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार, साहित्य अकादमी भोपाल के आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना पुरस्कार से सम्मानित हो चुके हैं।

कोई भी रचनाकार समय और समाज से निरपेक्ष होकर लेखन को अंजाम तलक पहुंचा ही नहीं सकता। काल और परिवेश का सूक्ष्म पारखी ही जीवंत रचनाओं को जन्म दे सकता है, क्योंकि रचना का जन्म शून्य से नहीं हुआ करता, अपितु सृजन के गर्भ से सृष्टा का वैयक्तिक एवं सामाजिक परिवेश से हुआ करता है। इसी के चलते डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद पर 22 पुस्तकें तथा अन्य लेखकों पर 20 पुस्तकें लिखीं। प्रेमचंद अकादमी तथा प्रेमचंद संग्रहालय की स्थापना के लिए प्रयत्नशील तथा लगभग 3000 मूल दस्तावेजों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्रॉफों का संग्रह करने वाले, हिंदी के प्रवासी साहित्य की स्थापना, मूल्यांकन के लिए तीन दशकों से कार्यरत हैं। प्रवासी साहित्य पर छह पुस्तकें लिखी हैं तथा प्रवासी साहित्य के तीन प्रतिनिधि संकलनों का संपादन-प्रकाशन भी किया है। अत्यंत सहज और सरल व्यक्तिव के धनी डॉ. गोयनकाजी, केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष भी हैं। अपनी अस्मिता की रक्षा के साथ विश्व को एक कुटुंब मानने वाले भारत के एकमात्र ऐसे स्कॉलर गोयनकाजी, (जिन्होंने प्रेमचंद पर पी-एच.डी. तथा डी.लिट् दोनों उपाधियां प्राप्त कीं) के गतिशील मार्गदर्शन में केंद्रीय हिंदी संस्थान, अपने निर्धारित उत्तरदायित्वों की पूर्ति करते हुए भविष्य पथ पर आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध है।

इसके अलावा प्रवासी हिंदी साहित्य के संकलन, अध्ययन एवं विश्लेषण करने में भी आपकी अहम भूमिका स्वीकार की जाती है। प्रवासी हिंदी साहित्य को एकत्रित करने, अध्ययन एवं विश्लेषण करने में उनकी अहम भूमिका रही है। डॉ. कमल किशोर गोयनका प्रवासी साहित्य के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने साहित्य लेखन में अपना प्रारंभिक नाम प्रेमचंद पर काम कर बनाया। लोग उन्हें प्रेमचंद के विशेषज्ञ के रूप मे जानते थे। इससे उन्हें एक पहचान मिली। बावजूद इस बात के एक खेमे के लेखकों को यह पसंद नहीं था कि वे प्रेमचंद पर एक अधिकारी विद्वान के रूप में जाने जाएं चूंकि उनका प्रेमचंद पर शोध प्रेमचंद के बारे में बंधे-बंधाए प्रतिमानों को तोड़ता था। प्रवासी साहित्य में अभिमन्यु अनत पर उन्होंने काम किया और फिर मॉरीशस के अन्य लेखकों पर, इसी क्रम में अन्य गिरमिटिया देशों पर और उसके बाद डायस्पोरा लेखन पर उन्होंने कलम चलाई। उनकी यात्रा सार्थक और प्रेरणादायी है। लगभग तीन दशक से ज्यादा समय से उन्होंने प्रवासी साहित्य पर समग्रता से अपना चिंतन विकसित किया। किसी भी विषय को समय के कसौटी कसकर उसकी गवेषणा करना उनका मूल स्वभाव है। यही कारण है कि डॉ. गोयनका सर्वसुलभ में से भी दुर्लभ विषयों की पहचान कर लेते हैं और फिर उसे अपने द्वारा प्रतिपादित या आविष्कार यंत्रों, विचारों से उसका एक नया स्वरूप समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं, जो हम सब को अचंभित कर देता है। अनुसंधान के साथ उनका रागात्मक रिश्ता है। उनकी यही प्रवृत्ति उनकी पहचान भी है जो उनको उस श्रेणी में ले जाकर स्थापित कर देती है जो अत्यंत दुर्लभ है। □

गोयनकाजी-एक हस्ती

अर्चना पैन्यूली

नर्म एवं तर्कपूर्ण, प्रेमचंद स्कॉलर, हाइकु कविताओं के रचयिता, प्रवासी हिंदी साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका हिंदी साहित्य जगत की एक जानी-मानी हस्ती हैं।

क्या कहूं आप पर?
कैसे करूं कविता?
किरणों का सा तेज
सागर सी गंभीरता।

डॉ. गोयनका का नाम मैं तब से सुन रही थी जब वे दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर थे और उन्होंने प्रेमचंद्र पर ऐतिहासिक काम किया था। मारवाड़ी बिजनेस परिवार के डॉ. गोयनका साहित्य में कैसे घुसे, इसकी एक कहानी है।

गांवों से शहरों को कूच करना, स्वदेशों से विदेशों में कूच करना एक सहज, स्वाभाविक प्रक्रिया है। भटकन, सुदूर अनजान जगहों में जाकर रहना इनसान की पुरानी फितरत है। कमल किशोर के दादाजी सेठ बद्रीदास गोयनका मंडावा, शेखावाटी (राजस्थान) से निकलकर उत्तरप्रदेश के नगर बुलंदशहर में स्थापित हो गए। जुलाई 1958 में बीस वर्ष की अवस्था में वे अपने मूलशहर बुलंदशहर से दिल्ली आए। तब बुलंदशहर में पोस्ट-ग्रेजुएशन क्लासें नहीं थी। दिल्ली आना और वहां से एम. ए. करना उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना थी। वे कहते हैंः कई बार विस्थापन जीवन की दिशा बदल देता है, जीवन संघर्ष के साथ उपलब्धियों की भी। दिल्ली ने मुझे रंगमंच दिया जो देश में कहीं और नहीं मिल सकता था। अगर दिल्ली नहीं आता तो प्रेमचंद के कामों की कल्पना नहीं कर सकता था। हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में उन्होंने चालीस वर्ष अध्यापन किया। प्रखर शोध प्रवृत्ति वाले गोयनकाजी प्रेमचंद के साहित्य के सर्वोत्तम विद्वान शोधकर्ता माने जाते हैं। मुंशी प्रेमचंद पर उनकी अनेकों पुस्तकें व लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने प्रेमचंद जन्म शताब्दी राष्ट्रीय समिति बनाई थी। प्रेमचंद जन्म शताब्दी समारोह में भाग लेने के लिए वे 1980 में मॉरीशस गए थे। मॉरीशस में उनकी अभिमन्यु अनत से भेंट हुई और उन्होंने संकल्प किया कि प्रेमचंद के साथ प्रवासी साहित्य पर भी काम करेंगे और 1986 में उनकी प्रवासी साहित्य पर पहली किताब आई- 'अभिमन्यु अनत-एक बातचीत।'

1980 से डॉ. गोयनका प्रवासी साहित्य के संपर्क में हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य को एकत्रित करने, अध्ययन एवं विश्लेषण करने में उनकी अहम भूमिका है। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित प्रेमचंद ग्रंथावली के संकलन एवं संपादन में उनका विशेष योगदान है। उन्होंने हिंदी में हाइकु कविताएं भी लिखी हैं।

गोयनकाजी के विस्तृत लेखन का ब्यौरा देने और उनका गुणगान करने लग जाऊं तो एक महाकाव्य भी कम पड़ेगा। हनुमानजी की दुम और द्रोपदी के चीर की तरह ब्यौरा बढ़ता ही जाएगा। दीये को रोशनी दिखानी वाली बात भी होगी। गोयनकाजी के साथ अपने व्यक्तिगत संपर्क और बातचीत के विषय पर अधिक कहना चाहूंगी।

गोयनकाजी से मेरा सीधा संपर्क मई 2016 में सधा जब उन्होंने 'लमही' में मेरी कहानी 'कितनी मांएं हैं' पढ़कर मुझे ई-मेल भेजी। डॉ. गोयनका जैसे विद्वान, भाषाविद् से अपनी रचना पर प्रंशसा पाना मेरा अहोभाग्य। अधिकतर वरिष्ठ और विख्यात कथाकार अहम के दायरे में कैद अपने ही बिगुल बजाते रहते हैं।

खैर जून 18 को मेरी एक कहानी के संदर्भ में उनकी ई-मेल मिलीः वीणा में प्रकाशित कहानी मैं उन्हें पहचान न सकी बहुत बढ़िया कहानी है। एक भारतीय का बड़ा ही प्रभावशाली चरित्र है और हिंदू पात्र को सही संदर्भों में देखा गया है। बधाई।

गोयनकाजी किसी भी कथाकार की रचना पर प्रतिक्रिया और सुझाव देने से कतराते नहीं, यह किसी भी भाषा या साहित्य के उत्थान के लिए अति आवश्यक है। कृतियों का मूल्यांकन, टिप्पणियां, फीडबैक, समीक्षा अति आवश्यक है। किसी रचना विशेष पर उनकी टिप्पणी विशेषकर नए या उभरते हुए लेखकों को नवीन ऊर्जा से भर देती है, जिससे उनका साहित्य सर्जन थमता नहीं। डॉ. गोयनका सभी कथाकारों को पूरा-पूरा सम्मान देते हैं। अपने विचारों को किसी आक्रामक भाषा में प्रस्तुत नहीं करते।

मैंने गोयनकाजी को लातविया यूनिवर्सिटी की पी.एचडी. छात्रा अलीना नीदागुंदी, जो डायस्पोरिक इंडियन राइटर की कृतियों पर शोध कर रही हैं, उन्होंन मेरी पुस्तक (वेयर डू आई बिलांग) (अंग्रेजी संस्करण) पर लिखा रिव्यू भेजा, उनका तुरंत जवाब आया, धन्यवाद अर्चनाजी। यह आपके रचनाकार की बड़ी उपलब्धि है। हिंदी में उपन्यास मैंने देखा नहीं है। प्रकाशक का नाम बताएं तो मंगा लूंगा। इसका शीर्षक आकर्षक है और कुछ विषय का संकेत भी देता है। अंग्रेजी अनुवाद खूब पढ़ा जा रहा है यह शुभ समाचार है। हिंदी की गति पर क्या लिखूं? अलीना जैसे पाठक हिंदी में नहीं हैं। हम दूसरों की प्रशंसा करना ही भूल गए हैं।

आपके उपन्यास का शीर्षक आकर्षक है और विशेष रूप से प्रवासी लेखकों के सम्मुख यह बड़ी समस्या है कि वे कहां के हैं, उनका देश कौन सा है और जमीन कौन सी है। मैं समझता हूं कि आपका उपन्यास इसी विषय पर होना चाहिए। विस्थापन के साथ यह प्रश्न जुड़ा रहता है पर दो तीन पीढ़ी के बाद धूमिल होने लगता है।

हिंदी में अधिकांश लेखक आत्ममुग्ध हैं और गुट के साथ जीते हैं तथा उनका गुट उनके लिए पुरस्कार/यश/ प्रकाशन आदि की व्यवस्था करता है। मैंने यह कष्ट 40-45 वर्ष झेला है

और अभी भी कोई न कोई वामपंथी डंक मार देता है। वामपंथियों ने हिंदी में अपना कब्जा बनाए रखा और अपने विरोधियों को हाशिए पर डाल दिया या गायब कर दिया। ये लोग प्रशंसा अपने लोगों की करते हैं और दूसरों की बुराई। इन्हें साहित्य नहीं पार्टी साहित्य चाहिए। आप लिखती रहें और इस राजनीति की चिंता न करें। इनका सूर्य डूब रहा है पर इनके काफी चेले विश्वविद्यालयों तथा अकादमियों में बैठे हैं लेकिन परिवर्तन हो रहा है। यदि मोदी सरकार को और 5 वर्ष मिले तो साहित्य में इनका वर्चस्व दिखाई नहीं देगा। मुझे समय-समय पर लिखे ईमेल्स में गोयनकाजी ने विस्थापन, हिंदी लेखकों व संस्थापकों के गुटों, राजनीति पर अच्छा प्रहार किया है। विगत दो-ढाई सालों से ईमेल से उनसे मेरा संपर्क निरंतर रहा, विशेषकर विश्व हिंदी सम्मेलनों के दिनों पर उनकी कई ईमेल्स आ जाती और फोन पर भी उनसे बातचीत हो जाती है।

डॉ. गोयनका ने कई पत्रिकाओं से हमें परिचित करवाया। अभी तक साक्षात रूप में कभी मिली नहीं उनसे। दरअसल उनसे दो बार भेंट होती-होती रह गई। दिसंबर 2017 में के.के. बिड़ला फाउंडेशन ने मेरी पुस्तक 'पॉल की तीर्थयात्रा' पर एक संगोष्ठी आयोजित की थी, जिसकी अध्यक्षता गोयनकाजी को करनी थी। मैं उसी दिन सुबह भारत पहुंची थी। सभागृह में मेरी आँखें उन्हें खोज रही थीं, उनकी छवि मेरे जेहन में थी मगर उनके स्वरूप का कोई नहीं दिखा, फिर के.के. बिड़ला फाउंडेशन के निदेशक सुरेश ऋतुपर्णजी ने बताया कि गोयनकाजी नहीं आ पाए हैं, कार्यक्रम की अध्यक्षता ममता कालियाजी कर रही हैं।

गोयनकाजी से मुझे ईमेल प्राप्त हुई कि कार्यक्रम में न आने का बहुत अफसोस है। मैं दिल्ली कब तक हूं। वे मुझसे मिलना चाहेंगे मगर तब तक मैं दिल्ली से अपने होमटाउन देहरादून रवाना हो गई थी। दूसरी बार जुलाई 2018 में उनसे न्यू-जर्सी में मुलाकात होने की संभावना जगी। वे दो महीनों से अमेरिका (न्यू-जर्सी) में थे और मेरा भी न्यू-जर्सी जाने का कार्यक्रम था, मगर अफसोस से मेरे अमेरिका पहुंचने से दो दिन पहले वे भारत लौट गएं। उनसे मिलना फिर रह गया। पता नहीं कब उनसे मिलना हो पाएगा। उनके व्यक्तित्व ने मुझे हमेशा विशेष रूप से प्रभावित किया है। उनसे व्यक्तिगत तौर पर मिलने की तमन्ना है।

जब पता चला कि 'बहुवचन' उनके अस्सीवें जन्म दिवस पर एक विशेषांक निकाल रहा है तो अचरज हुआ कि वे अपने जीवन के आठ दशक पूरे करने जा रहे हैं। मुझे तो डॉ. गोयनका कभी 66-68 से अधिक लगे नहीं। फोन पर बातचीत के दौरान जब मैंने उनसे यह बात कही तो वे हँसते हुए बोले। 'मैं अभी अपने को अभी साठ-पैंसठ का ही समझता हूं।'

मैंने उनसे अपने नए उपन्यास की भूमिका लिखने का अनुरोध किया। वे मॉरीशस विश्व हिंदी सम्मेलन में अत्यधिक व्यस्त थे, फिर भी वे मेरा अनुरोध मान गए। मगर भूमिका लिखने से पहले उन्होंने मेरे लेखन और नए उपन्यास से संबंधित आठ प्रश्न पूछकर मेरा अच्छा-खासा इंटरव्यू लिया। मुझ पर उनका प्रभाव और अधिक बढ़ा। उनके प्रश्नों ने मुझे आत्म विश्लेषण के लिए प्रेरित किया। जब हम कोई भी कृति लिखते हैं तो उसका उद्देश्य क्या है? एक पाठक के रूप में मुझे अपना उपन्यास कैसे प्रभावित करेगा? मैं क्या कहना चाह रही हूं, और जो कहना

चाहती हूं वह कह पाई हूं? क्या मैं स्वयं उपन्यास के प्रतिपाद्य से सहमत हूं? उनके प्रश्नों का जवाब देते-देते मुझे एक बहुत बड़ी अंतर्दृष्टि मिली। अपनी कृति का खुद ही मूल्यांकन व विश्लेषण करने का मौका मिला।

किसी जमाने में बुलंदशहर से दिल्ली जाना गोयनकाजी के लिए बड़ी बात हुआ करती थी, अब उनके लिए एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप जाना छोटी सी बात है। अपने भ्रमण की वजह से गोयनकाजी को भिन्न-भिन्न महाद्वीपों की रवानगी, संस्कृति, व्यावसायिकता और लोगों के बारे में अच्छी जानकारी है। आज दुनिया में दूरियां कम हो रही हैं और कहीं भी जाकर जीवन यापन करना असंभव नहीं रहा।

हिंदी जगत में डॉ. गोयनका का योगदान सराहनीय है। उन्होंने हिंदी साहित्य के माध्यम से दुनिया भर में फैले हिंदी लेखकों और प्रचारकों को जोड़ने में अहम भूमिका निभाई है। विश्व को एक कुटुंब बनाया है। अपने अस्सी जीवन यात्रा में उन्होंने कई कीर्तिमान स्थापित किए हैं। वे कहते हैं कि हर पुरुष की सफलता के पीछे एक महिला होती है। डॉ. कमल किशोर गोयनका के जीवन को भी कई स्त्रियों ने प्रभावित किया। उनकी दादी श्रीमती कुंजिकुंवर गोयनका ने पति की असमय मृत्यु के बाद अपने आठों बच्चों को अच्छा नेतृत्व दिया। बुलंदशहर के शीतलगंज मोहल्ले में उनकी दादी ने सन 1916 में एक लाख रुपये से लक्ष्मी नारायणजी का भव्य मंदिर बनवाया था, जिसके आज कमल किशोर गोयनका मैनेजिंग ट्रस्टी हैं। उनकी शिक्षित, सुघड़ व साहित्यप्रेमी पत्नी कुसुम गोयनकाजी पति को अपना पूरा योगदान देती है। □

'रचनाकार अलग से प्रगतिशील नहीं'

(डॉ. कमल किशोर गोयनका से जयप्रकाश मानस की बातचीत)

रायपुर में सन् 2008 में हिंदी लघुकथा विधा को लेकर पहली अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी हुई थी। इस संगोष्ठी में कई देशों के विद्वानों ने भाग लिया था। इस संगोष्ठी में डॉ. कमल किशोर गोयनका हिंदी लघुकथा पर अपने सार्थक आलोचकीय हस्तक्षेप के साथ उपस्थित थे। इस मौके पर जयप्रकाश मानस ने डॉ. गोयनका से लघुकथा के विकास और उन्नयन, प्रेमचंद के व्यक्तित्व सहित कई विषयों पर विस्तार से बात की थी। पाठकों के लिए यह बातचीत प्रस्तुत की जा रही है:

लघुकथा की ओर प्रवृत्त होने वाले आप पहले आलोचक भी माने जा सकते हैं। प्रेमचंद जिसे विश्व प्रसिद्ध कथाकार के विशेषज्ञ होने के बाद अचानक आप लघुकथा को गति देने कैसे उतर आए? क्या आपको आलोचना जगत में एक श्रेष्ठ आलोचक या अध्येता के रूप में मान्यता नहीं मिली या लोकप्रियता के साथ जुड़ने का दबाव भी था?

लघुकथा का मैं पहला आलोचक नहीं हूं। मुझसे पहले कई प्रतिष्ठित लेखकों ने लघुकथा पर प्रिय-अप्रिय टिप्पणियां की हैं, लेकिन इतना सही है कि संभवतः मैं पहला आलोचक हूं, जिसने लघुकथा की आलोचना पर पुस्तक लिखी है। प्रेमचंद पर काम करते हुए मैंने केवल लघुकथा पर ही काम नहीं किया है बल्कि यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, बच्चन, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, मन्मथनाथ गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, मंजुल भगत, रामकुमार वर्मा आदि पर भी पुस्तकें आ चुकी हैं। हिंदी के प्रवासी साहित्य पर मेरी पांच पुस्तकें हैं। अतः यह कहना उचित नहीं है कि मैं अचानक लघुकथा के क्षेत्र में आ गया। मेरे साथ ऐसा भी नहीं था कि प्रेमचंद साहित्य पर प्रकाशित मेरी पुस्तकों (प्रेमचंद विश्वकोश, प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान, प्रेमचंद, प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी, प्रेमचंद-चिंतात्मक जीवनी, प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां, प्रेमचंद के नाम पत्र, प्रेमचंद पत्र कोश आदि) ने मुझे प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि न दी हो। आप जो मुझे प्रेमचंद विशेषज्ञ कह रहे हैं, यह उसी प्रसिद्धि का प्रमाण है। अतः निराशा की कोई बात नहीं थी और वैसे भी मैंने प्रसिद्धि के उद्देश्य से कोई काम नहीं किया। प्रसिद्धि चाहने से नहीं मिलती, वह केवल साधना से मिलती है और कई बार साधना-सिद्ध व्यक्ति भी ख्याति से वंचित रह जाता है। लघुकथा में आने का कारण यह था कि मुझे लघुकथा से प्रेम था और प्रेमचंद ने भी लघुकथाएं लिखी थीं, लेकिन लघुकथा की आलोचना में अपने कुछ मित्र लघुकथाकारों के कारण आया जिन्होंने अपने प्रेम से मुझे विवश किया कि मैं लघुकथा पर कुछ लिखूं तथा कहूं।

प्रेमचंद को आम आदमी का कथाकार कहा जाता है। इसका मतलब क्या ऐसा भी है कि वे खास से दूर थे। मैंने कहीं पढ़ा है कि वे तो अपने समय में, अपने समाज में खास हैसियत रखते थे। कहते हैं कि अपनी बेटी की शादी में उन्होंने काफी खर्च किया था, फिर ऐसी कौन-सी परिस्थिति, मनः स्थिति, दबाव रहा होगा, जिससे एक खास आर्थिक स्थिति वाला रचनाकार आम आदमी का विश्व स्तरीय कथाकार बनने की ओर प्रस्थान कर जाता है?

प्रेमचंद खास आर्थिक स्थिति वाले रचनाकार नहीं थे, जैसे कि टॉल्सटॉय और टैगोर थे। ये दोनों रचनाकार अभिजात्य वर्ग के थे, किंतु प्रेमचंद एक साधारण परिवार में जन्मे थे और अपने जीवन के अंतिम बीस वर्षों में उस समय के मध्यवर्ग में आ चुके थे। उनके देहांत के समय उनके बैंक खातों में लगभग पांच हजार रुपए थे, दो बीमा पॉलिसियां थीं, सरस्वती प्रेस था, घर का मकान था और हजारों रुपयों की पुस्तकों का स्टॉक था। वे 1934-35 में बंबई की एक फिल्म कंपनी में काम करने गए थे, तब उनका वेतन आठ सौ रुपए मासिक था। वे जब वहां से लौटे तो पुत्री के लिए हीरे की लौंग लेकर आए थे। आपने यह सही सुना है कि उन्होंने अपनी पुत्री कमलादेवी के विवाह में, उस समय की स्थिति के अनुसार, काफी पैसा खर्च किया था। उनकी पुत्री से हुई मेरी बातचीत के अनुसार यह धनराशि आठ से दस हजार रुपयों के बीच थी, जो उस युग में काफी अधिक थी। प्रेमचंद पूंजीपति नहीं थे, लेकिन वे मध्य वर्ग तक पहुंच गए थे। उन्होंने अपने पुत्रों श्रीपतराय और अमृतराय को हॉस्टल में रखकर पढ़ाया था जो उस समय हर व्यक्ति के लिए संभव न था, लेकिन वे अपने जीवन में 'खास वर्ग' या अभिजात्य-वर्ग से दूर ही थे। उनका संबंध प्रायः लेखकों से था या आर्य-समाजी एवं कांग्रेसी नेताओं से, जिनके साथ उनका उठना-बैठना था। वे धन को मनुष्य का दुश्मन मानते थे, अतः धनियों एवं पूंजीपतियों या अभिजात्य-वर्ग से आत्मीयता का भाव होना कठिन था। प्रेमचंद आम आदमी के रचनाकार थे, इसमें दो राय नहीं हो सकती, परंतु उनके साहित्य में एक खास वर्ग जमींदार, प्रोफेसर, डॉक्टर, वकील, अंग्रेज शासक, पत्रकार आदि न हों, ऐसी बात नहीं है। प्रेमचंद ने इस अभिजात्य वर्ग का जो चित्रण किया है, वह काफी यथार्थपूर्ण है। अतः प्रेमचंद को आम आदमी के रचनाकार तक सीमित रखना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता। जो उन्हें इस रूप में सीमित करते हैं, वे राजनीतिक उद्देश्यों से पीड़ित हैं एवं प्रेमचंद की अधूरी मूर्ति रखने के दोषी हैं।

आपने प्रेमचंद साहित्य को काफी गंभीरता के साथ अनुशीलन किया है। आप उन्हें अन्य प्रगतिशील कथाकारों, आलोचकों की मान्यता के बरक्स भिन्न कैसे सिद्ध करते हैं?

हिंदी के प्रगतिशील आलोचकों ने मार्क्सवाद के आधार पर उनका विवेचन किया है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकारियों को बताया कि प्रेमचंद की मार्क्सवादी व्याख्या से उन्हें जनता तक पहुंचाया जा सकता है और इससे समाजवाद का विस्तार होगा। पार्टी नेताओं से अनुमति मिलने पर प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने का अभियान शुरू हुआ, जो रूस में कम्युनिस्ट सत्ता के समाप्त होने तथा चीन के पूंजीवाद की गोद में बैठने के बाद भी चल रहा है। इन प्रगतिशील आलोचकों ने तथा अमृतराय तक ने, प्रेमचंद के जीवन के तथ्यों को छिपाया, गांधी से मोह-भंग होने का झूठा प्रचार किया तथा यह स्थापित

किया कि प्रेमचंद अंतिम वर्षों में खूनी क्रांति द्वारा समाजवाद लाने के समर्थक हो गए थे। यह उसी साजिश का अंग था जो डॉ. रामविलास शर्मा ने शुरू की थी, लेकिन सत्य इसके विपरीत था। प्रेमचंद ने अंतिम वर्षों में स्टालिन के रूसी साम्राज्य पर लिखा था कि रूस भी विचार का साम्राज्य चाहता है और यह समाजवाद, पूंजीवाद से भी भयानक है। 'गोदान' तक में भारतीय कम्युनिस्टों की आलोचना की गई है। प्रेमचंद के आदर्शवाद को खंडित करने तथा उसे अतार्किक, अव्यावहारिक तथा भावुकतापूर्ण कल्पना बताने में भी इन प्रगतिशील आलोचकों की यही दृष्टि काम कर रही थी। इन्होंने प्रेमचंद को यथार्थवादी और समाजवादी यथार्थवादी सिद्ध करने का प्रयत्न किया और उनकी केवल पांच-छः रचनाओं के आधार पर उनका मूल्यांकन किया जो किसी भी कसौटी पर सही नहीं कहा जा सकता। प्रेमचंद की शक्ति उनके आदर्शवाद में है, जो मनुष्य का परिष्कार करता है, उसका उत्कर्ष करता है और उसे परिवार, समाज एवं देश के लिए उपयोगी तथा सार्थक बनाता है। प्रेमचंद की इस शक्ति को ये प्रगतिशील आलोचक, जड़ संवेदनशीलता के सम्मुख, निम्न कोटि का सिद्ध करते हैं, जबकि कोई भी संवेदनशील लेखक अपनी रचना को संवेदनाशून्य कैसे बना सकता है? 'कफन' कहानी में जो संवेदना है, उसे ये प्रगतिशील देखते ही नहीं हैं। ऐसी स्थिति में मैंने इसके विरुद्ध अपनी मान्यताएं रखीं और तथ्यों एवं प्रमाण के साथ रखी। प्रेमचंद के जीवन के अनेक नए तथ्य खोजे और 'प्रेमचंद विश्वकोश' में प्रस्तुत किए, उनकी आलोचना के लिए उनके समग्र साहित्य को आधार बनाया और लगभग 1400 पृष्ठों का नए साहित्य को खोज कर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया और प्रेमचंद को राजनीतिक पूर्वाग्रहों से मुक्त करके उन्हें भारतीयता के आधार पर विवेचित करके उनका एक राष्ट्रीय-बिंब प्रस्तुत किया। प्रेमचंद ने स्वराज्य, स्व-संस्कृति, स्वभाषा तथा भारतीय अस्मिता एवं भारतीय आत्मा के उत्थान के लिए ही साहित्य की रचना की और इसी भारतीयता से हम उनका जीवन-दर्शन तथा रचनाओं के रचना-सूत्र समझ सकते हैं।

प्रेमचंद साहित्य की सीमाओं के बारे में यदि कोई जानना चाहे तो आप उसे निःसंकोच कैसे व्याख्यायित कर सकते हैं?

संसार में प्रत्येक व्यक्ति की सीमाएं हैं, अतः प्रेमचंद भी सीमाओं में बंधे हैं। मैंने यद्यपि इस दृष्टि से सोचा नहीं था, क्योंकि मेरी दृष्टि उनकी उपलब्धियों तथा योगदान पर अधिक रही। प्रेमचंद अपने देशकाल में समाए हैं, लेकिन इसे मैं उनकी सीमा कैसे मानूं, क्योंकि इस समसामयिकता में से ही उनका कालजयी रूप निकलता है। प्रेमचंद के पास व्यापक मानवीय समाज है, विभिन्न एवं विविध रंगों एवं चरित्रों वाले हजारों पात्र हैं, तब कैसे कहूं, कि वे सीमा में आबद्ध हैं। उन्होंने हिंदू, इस्लाम और ईसाई धर्मों की समस्याओं तथा निम्न, मध्य एवं उच्च वर्ग के पात्रों को अपनी कथाओं के ताने-बाने में बुना है तो आप बताएं, मैं कैसे कहूं वे सीमाबद्ध थे। उनका जीवन-दर्शन भी किसी एक राजनीतिक दर्शन से जकड़ा हुआ नहीं था, अतः वे जीवन और समाज के लिए जिसे उपयोगी समझते थे, उसे अपनाने में विलंब नहीं करते थे। फिर भी यदि सीमा को देखना आवश्यक हो तो मुझे यह प्रतीत होता है कि वे जीवन के लिए

कोई समग्र दर्शन नहीं दे पाए तथा पूर्व और पश्चिम की समन्वयात्मक विचार-दृष्टि भी नहीं दे सके। लेकिन एक कथाकार से हम सब कुछ नहीं प्राप्त कर सकते।

मैंने कहीं पढ़ा है स्वयं प्रेमचंदजी कहते हैं कि हर रचनाकार प्रगतिशील होता है, उसे अलग से प्रगतिशील होने की आवश्यकता नहीं होती, फिर उन्होंने स्वयं कैसे 'प्रगतिशील लेखक संघ' के कर्ता-धर्ता का पद स्वीकार किया? क्या वह एक आम लेखक की कमजोरी थी? क्या वे सचमुच प्रगतिशील थे?

मैं इसे मानता हूं कि रचनाकार प्रगतिशील होता है। यह उसके स्वभाव में होता है, अतः हर रचनाकार को अलग से प्रगतिशील कहने की आवश्यकता नहीं है। प्रेमचंद ने अप्रैल, 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए यह बात कही थी, 'प्रगतिशील लेखक-संघ', यह नाम ही मेरे विचार में गलत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता।' प्रेमचंद को इसकी जानकारी नहीं थी कि 'प्रगतिशील लेखक संघ' के संस्थापकों (मुल्कराज आनंद, सज्जाद जहीर आदि) का कोई संबंध कम्युनिस्ट पार्टी से है। इसके सभी संस्थापक लंदन में थे और आभिजात्य वर्ग के थे तथा इनका कोई संबंध जनता से नहीं था। ये सभी लोग 22-25 वर्ष के थे तथा सन 1935 में इन्होंने पेरिस (फ्रांस) में आयोजित कम्युनिस्ट पार्टी की बैठक में भाग लिया था। इसी के परिणामस्वरूप इन्होंने लंदन में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' की स्थापना की और उसका उद्घाटन कर लखनऊ में प्रेमचंद से कराया। प्रेमचंद ने इन युवकों का साथ इसलिए दिया, क्योंकि इनके घोषणा-पत्र में प्रायः वही उद्देश्य रखे गए थे जिन पर प्रेमचंद स्वयं भी चल रहे थे। इस घोषणा-पत्र में न तो लेनिन-स्टालिन का उल्लेख था, न मार्क्सवाद का और न मार्क्सवादी प्रगतिशीलता का। असल में कम्युनिस्टों को भारत में पैर जमाने के लिए भारत के हृदय हिंदी प्रदेश में प्रवेश करना जरूरी थी और वे इसके लिए किसी राजनेता का सहारा नहीं ले सकते थे। उन्हें प्रेमचंद से अधिक उपयुक्त कोई साहित्यकार नहीं मिल सकता था, जिसकी लोकप्रियता हिंदी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में थी। यही कारण है कि प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील' शब्द को ही निरर्थक माना, क्योंकि वे इस शब्द को कम्युनिज्म से जोड़ने को तैयार नहीं थे, परंतु चालबाज वामपंथियों ने इसकी चिंता नहीं की और इस विडंबना को भी अचर्चित रहने दिया कि जो लेखक 'प्रगतिशील' शब्द को ही व्यर्थ मानता है, वह कैसे प्रगतिशील आंदोलन का उद्भावक एवं प्रसारक कहा जा सकता है? प्रेमचंद निश्चय ही प्रगतिशील थे, परंतु वे मार्क्सवादी परिभाषा में न थे, बल्कि उस भारतीय अर्थ में थे जिसमें 'चरैवेति-चरैवेति' को वे मानव-चेतना का अंग माना गया है। इसमें गति एवं गतिशीलता तथा प्रगति ही जीवन है, जड़ता एवं स्थिरता मृत्यु है। प्रेमचंद जीवन की गतिशीलता के साथ थे और यही उनकी प्रगतिशीलता थी।

आप प्रगतिशीलता और भारतीयता को किस दृष्टि से देखते हैं?

हिंदी आलोचना में 'प्रगतिशीलता' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है वह मार्क्सवादी दर्शन से निर्धारित होता है। हिंदी में वामपंथियों ने इस शब्द को साहित्य की कसौटी बना दिया, लेकिन इसके पीछे छिपे राजनीतिक उद्देश्यों को अब हिंदी साहित्य-संसार समझ चुका है। डॉ. रामविलास शर्मा ने सन् 1941 में 'प्रेमचंद' शीर्षक से पुस्तक लिखी थी और उन्होंने प्रेमचंद के मत का समर्थन करते हुए लिखा था, 'प्रगतिशील लेखकों का भी उन्होंने (प्रेमचंद) स्वागत किया था, लेकिन 'प्रगतिशील' नाम की तथ्यहीनता का उल्लेख उन्होंने प्रगतिशील लेखक सम्मेलन में ही किया था। प्रगतिशील लेखक संघ नाम गलत है, बताते हुए उन्होंने कहा था। साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता तो शायद वह साहित्यकार ही न होता।' प्रगतिशील लेखक साहित्य में कुछ ऐसा नहीं करने जा रहे थे जो नितांत नवीन हो और पूर्व में साहित्य उससे अपरिचित हो। केवल नाम का बिल्ला लगाने से कोई प्रगतिशील या अन्य रूप से महान साहित्यिक नहीं हो जाता। प्रेमचंद के लिए साहित्य का ही अर्थ प्रगति था। इस वास्तविक अर्थ की स्वीकृति के बावजूद प्रगतिशील आलोचकों-लेखकों ने प्रेमचंद के अर्थ को स्वीकार नहीं किया और अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इस शब्द का दुरुपयोग करते रहे। प्रेमचंद को अपनाने वाले ही उनके शत्रु हो गए।

भारतीयता एक व्यापक शब्द है तथा प्रगतिशील शब्द की तरह कृत्रिम अर्थ नहीं देता। भारत राष्ट्र, उसकी भूमि और जन, उसका इतिहास और संस्कृति, देशकाल के अनुरूप विकास और आधुनिकता, एकता एवं समन्वय तथा मानवीयता, ये सब भारतीयता के अंग हैं। जो लोग भारत को महाद्वीप मानते हैं तथा विभिन्न संस्कृतियों का देश कहते हैं, वे भारत की आत्मा को नहीं जानते। भारतीयता बहुलता में भी एकता का उद्देश्य है और यह एकता जीवन के प्रत्येक अंग में है जो भारत राष्ट्र के अंग-भंग करना चाहते हैं, वे ही इस भारतीयता को अस्वीकार करते हैं। जो देश एक हजार वर्ष की गुलामी से नहीं टूटा, उसे वे एक धर्मनिरपेक्षतावादी स्वार्थी लोग कभी नहीं तोड़ पाएंगे और भारतीयता अखंडित रहेगी।

आज साहित्य में प्रगतिशीलता कहां है? किस मुकाम पर है वह, दरअसल वह क्या है, क्या इस पर आपको कभी शंका हुई जबकि प्रगतिशील नारों को उछालने वाले विचारक, सिद्धांतकार एक-एक कर उसके विरुद्ध जाते नजर आ रहे हैं। प्रगतिशीलता का वास्तविक महत्व भारतीय परिप्रेक्ष्य में क्या होना चाहिए?

मुझे 'प्रगतिशीलता' पर सदैव संदेह क्या विश्वास रहा है कि यह राजनीतिक हथियार है जिसे वामपंथी आज तक इस्तेमाल कर रहे हैं। प्रेमचंद के साथ 'प्रगतिशील' और 'समाजवाद' शब्द जोड़कर इन लोगों ने स्टालिन और माओ के हिंसक दर्शन को भारत के उपयुक्त सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इन्होंने इस तथ्य को छिपाया कि इन्हीं तानाशाहों ने रूस और चीन में लाखों लोगों की हत्याएं की थीं और अब तो रूसी एवं चीनी समाजवाद समाप्त हो चुका है, और विश्व में उसकी असफलता एवं अवैज्ञानिकता सिद्ध हो गई है, किंतु राजेंद्र यादव, नामवर सिंह, ज्ञानरंजन जैसे प्रगतिशील लेखक इस मरी बंदरिया को छाती से लिपटाए हैं। समाजवादियों की यह प्रगतिशीलता संपूर्ण मनुष्य समाज को एक दर्शन तथा एक पुस्तक में बांधकर एकपंथी बनाने

की साजिश है। ये प्रगतिशील कितने दोगले हैं कि भारत की बहुलता को स्थापित करते हैं, परंतु दुनिया को एकमात्र अपने ही मार्ग पर चलाना चाहते हैं। इस प्रकार मार्क्सवाद, ईसाई एवं इस्लाम धर्म के समान है, जो विश्व को अपना अनुयायी बनाना चाहते हैं। भारत के संदर्भ में प्रगतिशीलता का अर्थ विकास, गतिमयता के साथ निरंतर आत्म-विश्लेषण करके आधुनिक होते रहना है। चरैवेति-चरैवेति का यही अर्थ है कि मनुष्य अतीत के साथ जुड़कर निरंतर आगे बढ़ता रहे, अर्थात आधुनिक होता रहे। मनुष्य आगे चलेगा तो नई दुनिया के संपर्क में आएगा। कुछ सीखेगा और कुछ सिखाएगा, और इस प्रवाह में वह सदैव प्रगतिशील बना रहेगा।

लघुकथा विधा को आप कैसे परिभाषित करेंगे?

मैंने अपनी पुस्तक 'लघुकथा का व्याकरण' (2002) में इसी परिभाषा 'जीवन की आलोचना या व्याख्या' के रूप में दी थी। मेरा आज भी यही मत है कि लघुकथा जीवन की आलोचना है। लघुकथाकार भी अन्य साहित्यकारों के समान जीवन के शुभ-अशुभ, मंगल-अमंगल, सत्य-असत्य, सुंदरता-कुरूपता पर गहराई से आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करता है और उसका लक्ष्य जीवन के शुभ, मंगल, सत्य तथा सुंदर का उद्घाटन करना होता है। इसके लिए कई बार अशुभ, अमंगल, असत्य एवं कुरूपता का चित्रण करके हट जाता है, किंतु वह अँधकार से प्रकाश की ओर ही ले जाना चाहता है। अतः जीवन की आलोचना मनुष्य के कल्याण के लिए ही होती है और लघुकथाकार भी इसी पथ का पथिक होता है।

आपने पहले छत्तीसगढ़ के माधवराव सप्रे को हिंदी का प्रथम लघुकथाकार नहीं माना था, परंतु जैसे ही आप आश्वस्त हो गए कि वे ही प्रथम लघुकथाकार हैं, इसे संशोधन के साथ स्वीकार किया था। क्या यह अब भी आपकी स्पष्ट मान्यता है या कोई नए तथ्य आपके सम्मुख आए हैं?

आप ठीक कहते हैं। मैं मूलतः शोधकर्ता हूं और तथ्य एवं साक्ष्य ही मेरे निष्कर्षों के आधार हैं। अतः नए तथ्य सामने आने पर शोधकर्ता को तत्काल अपने पूर्व मत का संशोधन कर लेना चाहिए। मैंने जैसे ही पाया कि माधवराव सप्रे की लघुकथा 'एक टोकरी भर मिट्टी' ही हिंदी की पहली लघुकथा है, मैंने अविलंब इसे लिखकर स्वीकार किया। आज भी यही मत मेरा है, क्योंकि इसे खंडित करने का कोई आधार मेरे पास नहीं है। मुझे प्रसन्नता है कि अब यह मत सर्वमान्य हो गया है। इस कहानी का महत्व यह भी है कि यह कहानी लघुकथा की नहीं कहानी की भी उद्भावक है। ऐसा महत्व किसी अन्य को नहीं मिला।

कहते हैं, और सुनते भी रहे कि वह सिर्फ एक तीखा कथन, चमत्कारिक वाक्य, संगुंफन है। वहां अनुभूतियां, जीवन-दर्शन, जीवंतता एक पाठक को समग्र रूप में बांधने की क्षमता है, यह किस हद तक सही है? ऐसे में क्या यह आधी-अधूरी विधा साबित नही होती?

लघुकथा अपने आप में एक पूर्ण विधा है, जैसे अन्य विधाएं हैं। साहित्य में इसी प्रकार दोहा आदि छंदों, गजल, हाइकु आदि की स्वतंत्र सत्ता है। लघुकथा यदि एक तीखा व्यंग्य, एक लघु अनुभूति तथा जीवन-दर्शन का एक लघुत्तम तत्व भी हृदय में उतार देती है तो मेरे विचार में वह एक सार्थक एवं सफल लघुकथा है। लघुकथा के लघु रूप में जितना समा सकता है, उतना

ही तो समाएगा। लघुकथा में महाकाव्य तो नहीं समा सकता, और न जीवन का व्यापक परिदृश्य। लघुकथा अपनी परिधि और सीमा में यदि जीवन के एक लघु क्षण को भी जीवंत तथा अनुभूतिमय बना देती है तो वह अपनी कसौटी पर खरी है। यदि वह आधी-अधूरी या परजीवी होती तो समाप्त हो गई होती।

लघुकथा और पाश्चात्य शॉर्ट स्टोरी में क्या अंतर है?

साहित्य में कथा का एक परिवार है। इसमें उपन्यास, कहानी, लघुकथा आदि सब शामिल हैं। पश्चिम में जिसे शॉर्ट स्टोरी कहा गया, उसे हिंदी में 'कहानी' के नाम से संबोधित किया गया। प्रेमचंद ने ऐसा ही किया है। लघुकथा इससे भिन्न है।

कहानी और लघुकथा के मध्य कोई-न-कोई विभाजक रेखा है, वह क्या है, कैसी है?

यह सही है कि कहानी एवं लघुकथा एक ही कुल की संतानें हैं, परंतु दोनों स्वतंत्र विधाएं हैं। यह भी ध्यान रहे कि लघुकथा कहानी का छोटा रूप नहीं है। वास्तव में, दोनों की रचना-प्रक्रिया भिन्न है, दोनों की अनुभूतियों के स्वरूप में अंतर है तथा शैल्पिक कौशल में भी अंतर है। वस्तु, जीवन-दर्शन, शिल्प सभी में अंतर है।

लघुकथा जैसी सूक्ष्मतम कथात्मक विधा की आवश्यकता कैसे हुई होगी? इसके उत्स और विकसित होने के पीछे कौन-सा दबाव रहा होगा?

लघुकथा आज के युग की आवश्यकता है। आज मीडिया और दूरदर्शन ने मुद्रित शब्दों का महत्व कम कर दिया है और जीवन की व्यस्तता एवं तनावों से भी लंबी साहित्यिक रचनाओं का माहौल कम हो गया है। अब जनता पढ़ना कम, देखना अधिक चाहती है, लेकिन जीवन के सत्यों तथा उसके दुष्कर्मों को जानने की उत्सुकता बनी हुई है। लघुकथा ने आकर जनता की इस मनोवृत्ति को संतुष्ट किया और उसने पाठक के सम्मुख जीवन की लघु रंग-बिरंगी छवियों तथा छोटे-छोटे महाभारतों के चित्रण से उसे संवेदनात्मक तृप्ति प्रदान की। इसके लिए मनुष्य का जीवन क्या संपूर्ण प्रकृति एवं परिवेश उसके दृष्टि-पथ में रहा और वह उसके दुःख-दर्द तथा संस्कारों, तनावों, विसंगतियों और आशा-बिंबों का चित्र खींचता रहा। लघुकथा का उत्स एवं विकास इन्हीं प्रमुख कारणों से हुआ जो अभी तक चल रहा है।

लघुकथा विधा के मूल में (खासकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में) वह कौन-सी परंपरा रही होगी जिससे वह आज (धीरे-धीरे) हिंदी की लगभग तमाम विधाओं में पाठकों के अधिक करीब जा पहुंची है?

भारत में लघुकथाएं प्राचीनकाल से चली आ रही हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' की छोटी-छोटी कथाएं तथा 'पंचतंत्र' एवं 'हितोपदेश' की लघुकथाएं हमारे लोकजीवन में सैकड़ों वर्षों से चली आ रही हैं। हमारे परिवारों में दादी-नानी भी राजा-रानी, राजकुमार-राजकुमारी, पशु-पक्षियों आदि की असंख्य कहानियां भी बच्चों को सुनाती रही हैं। इस प्रकार भारत में तो लोककथाओं, कहावतों आदि की लंबी परंपरा विद्यमान है और मुझे यह उचित प्रतीत होता कि आज की लघुकथाओं को इसी परंपरा में देखना चाहिए।

लघुकथा की प्रसिद्धि या पहुंच के पीछे कौन-सा रहस्य है?

लघुकथा एक-दो मिनट में ही जीवन के एक सत्य से हमारा साक्षात्कार कराती। यह संभव है कि हम उस सत्य को पहले से जानते हों, परंतु लघुकथा हमें साक्षात् घटित होता दिखाती है। यह उसकी प्रसिद्धि का मूल कारण है। मैं स्वयं पत्रिका में सबसे पहले लघुकथा पढ़ता हूं, क्योंकि मैं कम-से-कम समय में जीवन के सत्य को कलात्मकता के साथ जान सकता हूं। लघुकथा का संक्षेप में जीवन-सत्य से पर्दा उठाना उसकी प्रसिद्धि का मूल कारण है।

आप लघुकथा को किस तरह एक स्वतंत्र विधा के रूप में देखते हैं, जबकि उसका कोई अभिप्रमाणित या बहुमान्य शास्त्र ही आम साहित्यकारों तक नही पहुंच सका है?

साहित्य-शास्त्र के ज्ञान से रचनात्मकता उत्पन्न नहीं होती। वाल्मीकि के मुख से जब आदि कविता का जन्म हुआ था तब उन्हें क्या छंद-शास्त्र का ज्ञान था? अतः लघुकथाकारों को यदि लघुकथा का शास्त्र एवं उसके रचना नियम ज्ञात हो जाएं तब भी लघुकथा को कला-कृति बनाने के लिए ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा ही काम आएगी। रही लघुकथा के एक स्वतंत्र विधा होने की बात, तो पहले यह जानें कि यह कथा-कुल की एक सदस्य है, लेकिन उपन्यास, कहानी के समान यह भी अपने रचना-तंत्र में स्वतंत्र है और इसके रचना-उपकरणों का स्वरूप एवं सत्ता भिन्न प्रकार की है।

यह सवाल इसलिए पूछ रहा हूं क्योंकि मुझे नहीं लगता कि हमारे साहित्य के आलोचक उसकी पड़ताल उस तरह से करते हैं जिस तरह से अन्य विधाओं की ओर उनकी रूचि परिलक्षित होती है?

आपकी बात सच है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हिंदी के बड़े माने जाने वाले आलोचकों ने लघुकथा की उपेक्षा की है, लेकिन इससे यह न माना जाए कि लघुकथा कोई विधा नहीं है और उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। हिंदी में नए आंदोलनों तथा नई विधाओं के साथ ऐसा ही दुर्व्यवहार रहा है तथा लघु विधाओं को उनकी लघुता के कारण बहिष्कार तक किया गया है। हमारे आलोचक महान एवं महत्तम की आलोचना से स्वयं को महान बताते हैं और लघुत्तम के साथ तो केवल लघु आलोचक ही जुड़ता है, परंतु गांधी को देखो जो लघु मानव एवं साधारण देशवासी बनकर ही 'महात्मा' बनता है।

एक नया रचनाकार यदि लघुकथा के आकार की दृष्टि से ले, तो वह उसे किस रूप में सिद्ध कर सकता है?

लघुकथा हो या महाकाव्य, उसका आकार निर्धारित नहीं किया जा सकता। काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के नियम बनाए, पर वे बराबर टूटते रहे हैं। अतः यदि लघुकथा की शब्द-सीमा अथवा आकार को तय करना कठिन है। फिर भी सामान्य रूप से इसकी सीमा कितने शब्दों तक हो सकती है। कहानी की तुलना में लघुकथा में जो लघुता है, उसकी रक्षा होनी चाहिए, परंतु लघुकथा में जो 'कथा' है, उसकी विद्यमानता भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में चुटकुले, मुहावरे आदि जो कथाविहीन हों, लघुकथा नहीं कहला सकते।

लघुकथा की विषयवस्तु में मुझे विविधता नहीं दिखाई देती, बनिस्बत अन्य विधाओं के, आप इसे लघुकथा की सीमा मानते हैं या विशेषता?

मेरा अनुभव इसके विपरीत है। यह तो सच है कि लघुकथा में विषयवस्तु की बहुत आवृत्ति है, परंतु विषयों का एक व्यापक संसार उसके पास है। जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जो लघुकथा में न हो, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि नए-नए संदर्भों और संवेदनाओं की खोज नहीं करनी चाहिए। लघुकथा की जीवंतता तथा प्रासंगिकता के लिए आवश्यक है कि वह नित नवीन रहे।

कहानी आदि गद्यात्मक विधाओं में शिल्प की वैराइटी की विस्तृत संभावना के बरक्स लघुकथा की रचना-प्रक्रिया में शिल्प की सीमाओं की एक कमजोरी कम-से-कम मैं एक सामान्य साहित्य-सेवी/पाठक के रूप में महसूस करता हूं। क्या ऐसा महसूस करना मेरी अल्पज्ञता है या लघुकथा की सीमा है?

आपका यह कहना ठीक है कि कहानी में शैल्पिक वैविध्य है, परंतु मैं ऐसा नहीं मानता कि लघुकथा में शैल्पिक एकरसता है और उसमें कहानी जैसी विविधता नहीं है। लघुकथा कहानी की छोटी बहन है, एक ही कुल की संतानें हैं। अतः लघुकथा, कहानी की शिल्प-रचना के उपकरणों को अपना सकती है। कहानी की शिल्पगत प्रवृत्तियां एवं प्रणालियां लघुकथा भी अपना सकती है। यह तो लघुकथाकार पर है कि वह उनका प्रयोग करके उन्हें लघुकथा की शिल्प-रचना का अंग कैसे बना सकता है।

लघुकथा की भाषा-शैली को लेकर कई तरह की बातें की जाती हैं। आप एक आदर्श भाषा-शैली के बारे में क्या कहना चाहेंगे जबकि हम पहले ही जान चुके हैं कि लघुकथा के यहां शिल्प की विविधता के लिए बहुत ज्यादा स्पेस की गुंजाइश नहीं है?

साहित्य में 'आदर्श भाषा-शैली' का प्रश्न उठाना पूर्णतः अनावश्यक है, क्योंकि एक लेखक के लिए अपनी भाषा-शैली तो आदर्श हो सकती है, लेकिन सबके लिए नहीं। प्रेमचंद की भाषा हिंदी की आदर्श भाषा मानी गई, फिर भी हम दूसरा प्रेमचंद पैदा नहीं कर पाए। लेखक के लिए भाषा-शैली एकदम निजी मामला है, तभी 'स्टाइल' उसकी निजी पहचान बनती है, फिर भी भाषा-शैली ऐसी हो जो पाठक समझ सके तथा लघुकथा का बिंब उसके मन पर अंकित कर सके।

लघुकथा को हम और खासकर नई सदी की सबसे लोकप्रिय विधा के रूप में लेते हैं, उसे प्रतिष्ठित और सर्वमान्य विधा के रूप में लेते हैं, फिर भी लघुकथा की आलोचना की स्थिति बहुत दयनीय है, ऐसा क्यों? इसके प्रति आलोचकों की बेरुखी के पीछे कौन जिम्मेदार है, स्वयं लघुकथाकार, विधागत शिविरबाजी, विधा का वजन, आलोचकों की अभिरुचि या फिर कुछ और जबकि आज के पाठकों में इसके प्रति कहीं अधिक आकर्षण है?

मैं आलोचकों के संबंध में पहले बहुत कुछ कह चुका हूं। यह सच है कि आलोचक लघुकथा के प्रति उदासीन हैं। लेकिन मुझे लगता है कि लघुकथाकारों को इसकी चिंता छोड़ देनी चाहिए। आप ऐसी श्रेष्ठ लघुकथाएं लिखें कि आलोचक स्वतः ही चले आएं। इसके साथ देश

में प्रत्येक वर्ष लघुकथाकारों के सम्मेलन करें और आलोचकों को आमंत्रित करें, गुटबंदी कम करें, अच्छी पत्रिकाएं निकालें और बराबर संवाद करते रहें। इसे संघर्ष-काल समझें और स्वयं के स्थान पर लघुकथा की प्रतिष्ठा, पहचान और पठनीयता के लिए संगठित रूप से काम करें। आलोचक भागा हुआ आएगा।

ऐसे में, क्या मैं आपसे जान सकता हूं कि लघुकथा की प्रभावान्विति को आप कैसे सिद्ध करना चाहेंगे? पाठक के लिए वहां न तो कथा-नायक की छवि अंकित है, न ही वह कथा के संपूर्ण परिवेश, परिस्थिति, विडंबनाओं तक अपनी पहुंच कायम कर सकती है?

साहित्य में प्रभावान्विति अथवा रसास्वादन एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है और वह काव्यशास्त्रियों के अनुसार 'ब्रह्मानंद सहोदर' है। अतः इसे सिद्ध करने की प्रक्रिया शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। यह अनुभूति का विषय और लघुकथा में नायक, परिवेश आदि के अभाव में सहृदय पाठक उनकी कल्पना करके दृश्य तथा प्रसंग को पूर्ण कर लेता है। इस प्रकार प्रभावान्विति में पाठक की कल्पना तथा साहित्य-संस्कार का भी योगदान होता है।

साहित्य की दुनिया में एक वर्ग साहित्यकार के सरोकार की जमकर वकालत करता रहा है। लघुकथा में एक लघुकथाकार अपने समकालीन सरोकार को किस तरह रखता रहा है? उसे इस सीमा में कहां तक सफलता मिलेगी? क्या सरोकारविहीन लघुकथा लेखन की स्वतंत्रता संभव है? यदि हां, तो वह किस तरह? भविष्य में लघुकथा का सरोकार किस तरह चरितार्थ होगा?

हिंदी में प्रगतिशील वर्ग साहित्यकार के सरोकार का प्रश्न उठाता रहा है, परंतु इनके सरोकार साहित्यिक नहीं राजनीतिक हैं। दूसरे वे स्वयं अपने जीवन में उनका पालन नहीं करते। ये लोग साहित्य का उपयोग अपनी राजनीति के लिए करते हैं, जबकि प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्य, राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है। हमारे प्रगतिशील लेखक प्रेमचंद के ऐसे कथनों के सम्मुख आँखों पर पट्टी बांध लेते हैं। साहित्य का संबंध मनुष्य और उसके समाज से है और वह सदैव रहेगा। इसके लिए किसी घोषणा या प्रतिज्ञा की आवश्यकता नहीं है। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' चाहे स्वांतः सुखाय लिखी, किंतु वह सर्वजन हिताय ही लिखी गई थी। अतः लेखक अपने समय के साथ जीता है तो उस समय के सरोकार, चुनौतियां एवं संभावनाएं सभी उसके व्यक्तित्व में समाए रहते हैं। अतः मैं किसी सरोकारविहीन रचना की कल्पना नहीं कर सकता। भविष्य का लघुकथाकार कोई नया प्राणी नहीं होगा और वह समाज के बीच रहकर ही जीवन जीएगा। लघुकथाकार जब तक जीवन और प्रकृति से जुड़ा है, उनसे जुड़े सरोकार भी उसकी आत्मा में अंकित रहेंगे ही, चाहे वह उनसे मुक्त होने की घोषणा करे।

21वीं सदी की लघुकथाओं को आप पिछली सदी की तुलना में कैसे भिन्न प्रवृत्ति वाली सिद्ध करना चाहेंगे। मुझे तो यहां दोहराव ही नजर आता है, कथावस्तु में भी और शिल्प में भी?

सदियों के बदलने से साहित्य नहीं बदलता। मनुष्य के समाज में तथा प्रकृति में कोई अकल्पनीय घटना घटित होती है तो साहित्य पर उसका प्रभाव पड़ता है। इंदिरा गांधी ने जब इमर्जेंसी लगाई तो एक लाख से अधिक लोग जेल में बंद कर दिए गए। दिल्ली विश्वविद्यालय के लगभग तीन सौ प्रोफेसरों को एक ही रात में गिरफ्तार किया गया, जिनमें मैं भी शामिल

था। तब इमर्जेंसी पर साहित्य की रचना हुई और पाठकों को भिन्न प्रकृति की रचनाएं मिलीं। इसी प्रकार सुनामी लहरों ने जो विध्वंस किया, उस पर भी कविताएं, कहानी, लेख आदि लिखे गए। इक्कीसवीं सदी का आना कोई ऐसी घटना नहीं है जिसने मनुष्य के मनोभावों एवं विचारों को उद्वेलित किया हो। अतः लघुकथा की कथावस्तु तथा शिल्प में कोई परिवर्तन होना संभव नहीं है। अतः इस संबंध में आपका सोचना ठीक ही है।

नए समय के संभावनाशील रचनाकारों की यदि मैं आपसे एक सूची मांगू तो उस सूची में आप किन-किन का उल्लेख करना चाहेंगे और क्यों?

कृपया इस प्रश्न के उत्तर की अपेक्षा मुझसे न करें। एक बार मैंने ऐसे ही प्रश्न के उत्तर में कुछ लघुकथाकारों के नाम बताए थे तो कुछ लोग नाराज हो गए थे। इस संबंध में मैं केवल यह कहना चाहूंगा कि विगत आठ-दस वर्षों से जो नए लघुकथाकार सामने आए हैं, उन्हें अपनी पहचान बनाने के लिए अभी काफी परिश्रम करना होगा, उन्हें निरंतर लिखना और प्रकाशित करना होगा और लघुकथा में कुछ नई ऊर्जा भरनी होगी। नए रचनाकारों को कुछ तो नया करके दिखाना होगा। आप तो छत्तीसगढ़ में हैं, आप क्यों नहीं वनवासियों के जीवन को केंद्र बनाकर लघुकथाएं लिखते? इसी प्रकार साधुओं, वकीलों, डॉक्टरों, प्रोफेसरों, छात्रों आदि का क्षेत्र अछूता पड़ा है। आप इनके जीवन में उतरकर देखेंगे तो लघुकथाओं का भंडार मिलेगा।

आगामी वर्षो में लघुकथा का भविष्य क्या होगा? अति आधुनिकता या फिर उत्तर आधुनिक समय में (यदि वह कही सत्याश्रित अवधारणा है तो) लघुकथा के भी चूक जाने के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे? ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूं कि उत्तर आधुनिकता के पक्षधर चीखे जा रहे हैं कि उस दौर में साहित्य भी स्वयं एकदम हाशिए पर चला जाएगा?

यह उत्तर आधुनिकता क्या है? आपने इसे कहीं देखा है? जो लोग चीख-चीख कर मुनादी कर रहे हैं कि भारत में उत्तर आधुनिकता का आक्रमण हो गया है, क्या वे तथा उनका परिवार इस उत्तर आधुनिकता को अपने जीवन में अनुभव कर रहा है? भारत की बहुसंख्यक जनता, जो गांवों और छोटे कस्बों में रहती है, वह तो अभी तक आधुनिक भी नहीं हुई है। अतः उनके संदर्भ में उत्तर आधुनिकता एक मजाक ही नहीं उनमें हीनता-बोध को पैदा करना है। आधुनिकता एक निरंतर प्रवाहवान प्रक्रिया है, जो एकदम नया रूप ग्रहण नहीं करती। आधुनिकता कभी इतनी अति आधुनिक या उत्तर आधुनिक नहीं हो सकती कि परंपरा से पूर्णतः विच्छिन्न हो जाए और मनुष्य की विगत बौद्धिक उपलब्धियों और परंपरागत जीवन-मूल्यों से नाता तोड़ दे। यह तो तभी संभव होगा जब महाप्रलय के बाद धरती पर नया जीवन शुरू होगा। इन उत्तर आधुनिकतावादियों से पूछें कि यह उत्तर आधुनिकता का युग कितने वर्ष चलेगा, इसका युग कब समाप्त होगा और क्या उसके बाद उत्तर आधुनिकता का नया युग आएगा? अतः मेरे विचार में उत्तर आधुनिकता का विचार भ्रामक और मूर्खतापूर्ण है, इसलिए साहित्य के नष्ट होने का प्रश्न ही नहीं। ईश्वर तथा साहित्य की मृत्यु की घोषणा अनेक बार हो चुकी है, परंतु वे आज तक जीवित हैं। रूस में चर्चों के दरवाजे बंद कर दिए थे, लेकिन वे दरवाजे फिर खुल गए। मार्क्सवाद में धर्म को अफीम कहा गया था, और इस अफीम ने ही रूस

की धरती से मार्क्सवाद को नष्ट कर दिया। कोई भी काल हो, साहित्य जीवित रहेगा। मनुष्य में संवेदनाएं रहेंगी तो साहित्य भी रहेगा और लघुकथा भी रहेगी। आप उत्तर आधुनिकतावादियों को भौंकने दीजिए, लघुकथाएं लिखते रहिए, लेकिन यदि उनका भौंकना शांति भंग करे और काटने को दौड़े तो पागल कुत्ते के साथ जो व्यवहार किया जाता है, वही करिए।

भविष्य में नई विषयवस्तु की संभावना की दृष्टि से लघुकथा का विस्तार किस तरह संभव है, जबकि मानव जगत में घटनाओं, विडंबनाओं, विद्रूपताओं आदि की प्रवृत्ति तो वही है। आम मनुष्य की दिशा भी प्रकारांतर से जस की तस है?

यह ठीक है कि प्रकट में हमें आम आदमी का जीवन एक-सा दिखाई देता है, परंतु ऐसा तो तुलसीदास, बिहारी, भारतेंदु, प्रेमचंद, प्रसाद, रेणु आदि सभी रचनाकारों के समय में भी था। इस एकरस जीवन में भी ऐसी अनंत अदृश्य छवियां हैं जिन्हें रचनाकार पकड़ सकता है। मनुष्य के मन को हम आज भी कितना जानते हैं? वह असंख्य अज्ञात इच्छाओं, प्रतिक्रियाओं और दमित भावनाओं का भंडारक है। आप जरा इसमें कूदें तो आपको विषयवस्तु का ऐसा भंडार मिलेगा कि आप आश्चर्यचकित रह जाएंगे। अतः यह आवश्यक है कि हम नए अज्ञात प्रसंगों को खोजें, जो हमारी आँखों से ओझल हैं, उन्हें तलाश करें और मनुष्य के अचेतन मन के दरवाजे खोलें। अब लघुकथा को बाहरी यात्रा के साथ-साथ मनुष्य के अंतर्मन की यात्रा करनी पड़ेगी और आप पाएंगे कि इस यात्रा में अनंत विषय आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके साथ ही लघुकथाकारों को पुराने विषयों को भी नई दृष्टि से देखने और लिखने की आदत बनानी चाहिए। विषय चाहे पुराना हो, पर दृष्टि नवीन होनी चाहिए।

यह ठीक है कि आज हिंदी के बड़े-बड़े कथाकार स्वयं लघुकथा लिख रहे हैं, पत्र-पत्रिकाओं में भी उन्हें समादृत किया जा रहा है, पर उसमें उसके फिलर जैसी सुविधा या गुण का कितना रोल है?

यह शुभ लक्षण है यदि बड़े लेखक लघुकथा लिख रहे हैं। इसके लिए उन्हें और प्रेरित करना चाहिए। आप इसकी चिंता न करें कि लघुकथा फिलर के रूप में छपती है, परंतु सभी हिंदी पत्रिकाएं ऐसा नहीं करती हैं। हमारा हित इसमें है कि संपादक को उनकी आवश्यकता बनी रहे और वे छपती रहें। आप लघुकथा की पत्रिका निकालें और उन्हें शान से महत्वपूर्ण पृष्ठों पर छापें, आपको कौन रोक सकता है? आज पत्र-पत्रिकाओं की एक आवश्यकता है लघुकथा, तो आप बताएं क्या लघुकथा की विजय का द्योतक नहीं है? लघुकथा अब एक अपराजेय विधा है, उसका साम्राज्य बढ़ रहा है और इसके लेखक यदि उच्चकोटि की लघुकथाएं देते हैं और अपने लघुकथा-समाज को एकजुट बनाकर रख सकें तो लघुकथा की लोकप्रियता और आवश्यकता भविष्य में बनी रहेगी।

लघुकथा में विशेषज्ञता हासिल एक वरिष्ठ रचनाकार, आलोचक होने के नाते आप एक नए लघुकथाकार को क्या-क्या पाठ तथा क्या-क्या हिदायतें देना चाहेंगे?

मेरा नम्र निवेदन है कि पहले जीवन को देखें, भोगें और फिर अनुभूतियों को परिपक्व होने दें और जब उद्दाम आवेग उठे तब ही कलम उठाएं। साहित्य खूब पढ़ें, जो मिले उसी को

पढ़ें और जीवन-भर पढ़ते रहें, हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं का भी पढ़ें। पर लिखने पर नकल न करें। अपनी रचना-प्रक्रिया एवं जीवन-दृष्टि को विकसित करें और जो मनुष्य का, समाज और देश का शुभकारी हो, उसे आत्मा का अंग बनाएं। रचनाओं को प्रकाशित कराते रहें, उनके न छपने पर हतोत्साहित न हों, प्रयत्न फिर-फिर करते रहें। अपन समकालीन लेखकों से प्रेम संबंध बनाएं और संवाद कायम करें। किसी से कुछ लें, कुछ सीखें तो स्वयं भी नए लेखकों के साथ ऐसा ही व्यवहार करें और यह मानकर चलें कि सिद्धि और यश साधना से ही मिलता है। □

आँखिन-देखी

- विष्णुकांत शास्त्री
- विजयेंद्र स्नातक
- कुसुम गोयनका
- इंद्रनाथ चौधुरी
- विजय बहादुर सिंह
- प्रेमशंकर त्रिपाठी
- कृपाशंकर चौबे
- श्रीभगवान सिंह
- देवेंद्र दीपक
- रमेश दवे
- अर्चना पांडेय

शोध-साधना की अद्‌भुत उपलब्धि : प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य

विष्णुकांत शास्त्री

ऊंचे लक्ष्य को दृष्टि के सम्मुख रखकर निष्ठापूर्वक की गई शोध-साधना की उपलब्धि कितनी असाधारण, अद्‌भुत हो सकती है, इसका उज्ज्वल दृष्टांत है डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा दो खंडों में संपादित 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य'। सहसा विश्वास करना कठिन है कि प्रेमचंद की मृत्यु के बावन वर्षों के बाद उनकी या उनसे संबंधित छोटी-बड़ी 689 अज्ञात-अप्राप्य रचनाएं प्रकाशित की जा सकती हैं। संपादक के अनुसार इस विपुल सामग्री का 97 प्रतिशत तो बिलकुल विस्मृत हो चुका था और पहली बार आधुनिक पाठकों के समझ प्रस्तुत किया जा रहा है, केवल तीन प्रतिशत सामग्री (जैसे, अधूरा उपन्यास 'मंगलसूत्र' या प्रसिद्ध लेख 'महाजनी सभ्यता' आदि) इनमें ऐसी संकलित हैं, जिनके बारे में प्रबुद्ध पाठकों को जानकारी तो थी किंतु जो सहज सुलभ नहीं थीं। इस ऐतिहासिक महत्व की भेंट के लिए निश्चय ही संपूर्ण साहित्य जगत डॉ. गोयनका का चिर ऋणी रहेगा।

प्रेमचंद के अज्ञात-अप्राप्य साहित्य को प्रकाश में लाने का पहला बड़ा काम अमृतराय ने किया था। 1957 से 1962 तक की गई अपनी खोज के आधार पर अमृतराय ने प्रेमचंद का विपुल अज्ञात-साहित्य 'गुप्त-धन' (दो खंडों में संकलित 56 कहानियां), 'मंगलाचरण' (तीन आंरभिक उपन्यास), 'विविध प्रसंग' (तीन खंडों में संकलित सैकड़ों संपादकीय टिप्पणियां, समीक्षाएं, लेख आदि), 'चिट्ठीपत्री' (दो खंडों में प्रेमचंद के लिखे 516 पत्र) के नाम से प्रकाशित किया था। उस समय अमृतराय ने स्वीकार किया कि अब भी प्रेमचंद की 30-40 कहानियां तथा कुछ और रचनाएं पुरानी उर्दू-हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी रह गई होंगी। 1962 से ही डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अमृतराय के कार्य से प्रेरणा प्राप्त कर प्रेमचंद की अवशिष्ट अप्राप्य रचनाओं की तलाश का अपना भगीरथ प्रयास आरंभ किया। 25-26 वर्षों के निंरतर सजग शोधक्रम में आत्यंतिक लगन से प्रेमचंद से संबद्ध पुराने उर्दू-हिंदी पत्रों की, ग्रंथों की,

दस्तावेजों की छानबीन वे करते रहे और एक-एक कर जुटाते रहे वह अलभ्य सामग्री जो सफल शोधकर्ता के रूप में उन्हें अमर करने के लिए प्रर्याप्त है।

उनके इस कार्य का महत्वपूर्ण अंश है- प्रेमचंद की 30 विलुप्त कहानियों का पुनरुद्धार। इनमें 16 कहानियां 1911 से 1921 के बीच और 14 कहानियां 1928 से 1935 के बीच प्रकाशित हुई थीं। यदि पहले दौर की कुछ कहानियां शिल्प की दृष्टि से कमजोर होते हुए भी कथ्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं तो दूसरे दौर की अधिकांश कहानियां कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ रचनाएं हैं। इनमें मोटेरामजी शास्त्री के प्रतीक चरित्र से जुड़ी दो व्यंग्य कथाएं, दो बच्चों का ही ठीक से पालन न कर पाने वाले कथा-नायक द्वारा अपने तीसरे बच्चे को जन्म को उत्सव की जगह शोक का प्रसंग घोषित करने वाली कहानी 'गमी', खोमचे चाले, नकल उतारने वाले बालक की कहानी 'खेल', भारतीय सभ्यता को हीन समझने वाले पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगे आई.सी.एस. अफसर की दृष्टि में एक ग्रामीण स्त्री के चरित्रबल से आने वाले परिवर्तन को रेखांकित करने वाली कहानी 'रोशनी' जैसी प्रेमचंद की कुछ कहानियां अप्राप्त रह गई हैं।

इस संकलन के द्वारा पहली बार प्रेमचंद के भूमिका-लेखक रूप को उजागर किया गया है। इस तथ्य को करीब-करीब भुला ही दिया गया था कि प्रेमचंद ने अपनी 21 पुस्तकों की तथा अन्यों द्वारा लिखित 13 पुस्तकों की छोटी-बड़ी 34 भूमिकाएं लिखी थीं। इन भूमिकाओं में प्रेमचंद ने कहीं पुस्तकों की विषय-वस्तु का, कहीं कला-विधा का, कहीं कलाकार का विवेचन कभी संक्षेप में, कभी कुछ विस्तार में किया है। उन्होंने अपनी दृष्टि और रचना-प्रक्रिया के संबंध में भी महत्वपूर्ण संकेत इनमें दिए हैं। 'प्रेमप्रसून', 'गल्परत्न', प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियां, 'मानसरोवर' (1) आदि की भूमिकाओं में उन्होंने न केवल पुरानी और नवीन कहानियों के अंतर को रेखांकित कर नई कहानी विधा की विशेषताएं बताई हैं, बल्कि उन तत्वों का भी उल्लेख किया है, जिनके कारण उनकी मान्यता के अनुसार कहानी में श्रेष्ठता आती है। इस तरह 'अहंकार' की भूमिका में अनातोले फ्रांस और उनकी अमर कृति 'थायस' की 'आजाद-कथा' की भूमिका में पंडित रतननाथ धर सरशार लखनवी का एवं 'अन्ना' की भूमिका में टॉल्सटॉय और अन्ना का जो सहृदयतापूर्ण विवेचन उन्होंने किया है, वह उनकी साहित्यिक सूझ-बूझ और सुरुचि का द्योतक है। नए लेखकों की पुस्तकों की भूमिका लिखकर उनका मनोबल बढ़ाना प्रेमचंद के साहित्यिक उत्तरदायित्व-बोध का प्रमाण है। बच्चों के लिए लिखित पुस्तकों की भूमिकाओं से स्पष्ट है कि प्रेमचंद चाहते थे कि भारतीय बच्चे, श्रीराम, श्रीकृष्ण, दुर्गादास के उज्ज्वल चरित्रों से प्रेरणा लें, प्रेम और सेवा तथा साहस और सच्चाई से भरा जीवन जिएं।

प्रेमचंद के पूर्व प्रकाशित 516 पत्रों से भिन्न उनके 149 नए पत्रों की खोज निकालना भी डॉ. गोयनका की एक बड़ी उपलब्धि है। इन पत्रों में प्रेमचंद का सहज मानवीय रूप झलकता है। इनमें श्रमजीवी लेखक के रूप में यदि अपनी रॉयल्टी के प्रति वे सजग दृष्टिगोचर होते हैं तो ममतामय पिता के रूप में अपनी कन्या के वैवाहिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए

प्रयत्नशील भी दीखते हैं। इन प्रयासों के अंतर्गत एक ओर वे विवाह से पहले कन्या की कुंडली मिलाते हैं, वर पक्ष की दहेज की शर्तों को स्वीकारते हैं तो दूसरी ओर विवाहित अस्वस्थ कन्या के मंगल के लिए वे भूत-प्रेत विशेषज्ञ रामदास गौड़ की सहायता से याचना भी करते हैं। प्रवासीलाल वर्मा की अपने प्रेम के प्रबंधक के रूप में नियुक्त कर भी वे आश्वस्त नहीं हो पाते, प्रेस की हड़ताल से व्यथित होते हैं, प्रेस को अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल मानते हैं और बाद में गलतफहमी के कारण प्रवासीलाल वर्मा को प्रेस से अलग भी कर देते हैं। महाराज अलवर द्वारा प्रस्तावित नौकरी को अस्वीकार करना प्रेमचंद के लेखकीय स्वाभिमान का प्रमाण हे। इस तरह ये पत्र प्रेमचंद के सबल-दुर्बल मानवीय रूप को उजागर करने की दृष्टि को उजागर करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

प्रेमचंद की संपादकीय टिप्पणियों एवं लेखों से यदि अपने समय के जीवंत प्रश्नों के प्रति उनकी सजगता और प्रतिबद्धता झलकती है तो उनकी परिचयात्मक समीक्षाओं द्वारा नए साहित्य के प्रति उनके लगाव का और उनकी व्यक्तिगत रुचि का बोध होता है। यदि वे असहयोग, स्वराज्य, शिक्षा सुधार आदि के कट्टर समर्थक थे तो सांप्रदायिक विद्वेष, अंधविश्वास, अंधानुकरण आदि के जबर्दस्त विरोधी भी थे। यह आश्चर्यजनक लग, सकता है कि 1905 में 'खानदाने-मुश्तरका' (अर्थात् संयुक्त परिवार) का विरोध करने वाले प्रेमचंद 1910 में 'बड़े घर की बेटी' जैसी कहानी लिखकर संयुक्त परिवार को बरकरार रखना चाहते हैं। इसी तरह कौमी इत्तिहाद की दृष्टि से ढाक-ढोल पीटकर मलकाना राजपूतों की सामूहिक शुद्धि का विरोध करने के बावजूद व्यक्तिगत स्तर पर शुद्धि का समर्थन उन्होंने अपनी 'शुद्धि' नामक कहानी में किया है। उनकी लिखी आलोचना उनकी व्यक्तिगत रुचि को अधिक उजागर करती है, तटस्थ मूल्यांकन-क्षमता को कम। इसका प्रमाण है प्रसाद के नाटक 'स्कंदगुप्त' की समीक्षा करते हुए यह लिखना, 'प्रसादजी के और नाटकों की भांति यह नाटक भी संस्कृत का अनुवाद होकर रह गया है। चरित्र केवल नाम है, जिनमें जीवन की गंध तक नहीं। भाषा निर्जीव, जटिल है, मानो मिट्टी के बोझ से दबी हुई कोई लाश है।' (खंड-1 पृ.444) आदि-आदि। हम अदब के साथ यही कह सकते हैं कि हिंदी के प्रतिष्ठित नाट्य-समीक्षक के मत इसके विपरीत हैं। इस तरह 'हिंदी गल्प-कला का विकास' करने वाले नए गल्पकारों में पहला नाम प्रेमचंद के अनुसार था, भारतीय एम.ए. का और दूसरा वीरेश्वर सिंह का। उनके निर्धारित क्रम में भुवनेश्वर और अज्ञेय उन दोनों के बाद आते हैं। जनार्दन राय नागर और त्रिलोकीनाथ मिच्चू की कहानियों की प्रशंसा भी उन्होंने मुक्तकंठ से की है। (खंड 2, पृ.553-54) आज भुवनेश्वर और अज्ञेय के अतिरिक्त इन कहानीकारों का महत्व शोध की दृष्टि से ही रह गया है। प्रेमचंद को शुष्क उपदेशवादी लेखक मानने वालों को यह जानकर हैरत होगी कि उन्होंने बिहारी के दोहों और आलम के छंदों की भी प्रशंसा की है। उनका कहना था भले इनका 'विषय श्रृंगार रस है, पर निर्वीर्य वीर रस से अधिक जीवंत है।'

प्रेमचंद से संबद्ध दस्तावेज, उनकी स्थिति, विचारधारा और लेखन-प्रक्रिया के कुछ अल्पज्ञात पहलुओं को प्रकट करते हैं। उनके बैंकों की पासबुकों से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि

मृत्यु के पूर्व उनकी आर्थिक स्थिति मध्यवर्गीय थी। वे एकदम विपन्नावस्था में मरे, यह धारणा ठीक नहीं है। कट्टर राष्ट्र-भाषा प्रेमियों को इससे भी चोट लग सकती है कि प्रेमचंद ने केवल अपने उपन्यासों, कहानियों आदि की प्रारंभिक रूपरेखा अंग्रेजी में बनाते थे, बल्कि डायरी का निहायत घटनाक्रम विवरण भी कुछ लोगों को हताश कर सकता है। उनकी कृतियों की रूपरेखाएं प्रमाणित करती हैं, कि वे अपने चरित्र प्रायः अपने जाने-पहचाने व्यक्तियों के आधार पर गढ़ते थे। यह बात अलग है कि जिस प्रकार उनका सर्जन कलाकार अपनी बनाई रूपरेखाओं का अतिक्रमण किया करता था, उसी प्रकार उनके चरित्र अपने आधारभूत व्यक्तियों से बहुत पृथक हो जाया करते थे। इकबाल वर्मा सेहर को लिखे एक पत्र में प्रेमचंद ने बताया है कि 'रंगभूमि की सोफिया का असल मिसेज एनीबेसेंट हैं।' (खंड-2, पृ.10) अब इन दोनों के चरित्रों में समानता खोज पाना मुश्किल है। यह इस तथ्य का अच्छा उदाहरण है कि जीवन के वास्तविक व्यक्ति या प्रसंग उपन्यासों-कहानियों में कितने बदले रूपों में आ सकते हैं।

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपनी 74 पृष्ठों की प्रस्तावना में विस्तारपूर्वक बताया है कि उन्हें इस शोध कार्य में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, फिर भी किस प्रकार धैर्य और निष्ठा के साथ वे इस पर जुटे रहे और एक-एक कर दुर्लभ सामग्री संग्रहित करते रहे। इस कार्य में निरत रहते समय उन्हें लगा कि प्रेमचंद के वास्तविक रूप को लोग वैयक्तिक या सैद्धांतिक कारणों से इच्छित मोड़ देकर मुझे बदले हुए रूप में पेश करके सच्चाई को विकृत कर रहे हैं। फिर उन्हें यह बात भी अटपटी लगी कि प्रेमचंद के लगभग 70-80 प्रतिशत साहित्य को ही उनके संपूर्ण साहित्य की संज्ञा दी जा रही है। इन दोनों प्रवृत्तियों का प्रतिकार करते हुए डॉ. गोयनका ने बहुत ठीक लिखा है,- 'साहित्यकार की संपूर्ण शब्द-सृष्टि को आधार बनाए बिना उसकी पूर्ण पहचान-असंभव है। हमें इस सत्य को हृदयंगम करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए... मनुष्य को जानना है तो उसे संपूर्णता में पहचानें। उसके गुणों के साथ अवगुणों को उसकी शक्ति के साथ उसकी दुर्बलता को भी सम्मुख रखे तथा वास्तविक सत्य उद्‌घाटित होता है।' (खंड-1, प्रस्तावना पृ.-16) अपनी इस मान्यता को क्रियान्वित करने के लिए डॉ. गोयनका ने जो घोर तप किया है, वह प्रेमचंद के प्रति उनकी अपार श्रद्धा का प्रमाण है। प्रेमचंद के उपलब्ध अप्राप्य साहित्य को वर्गीकृत करने और उनकी विशेषताओं को रेखांकित करने की दृष्टि से भी यह प्रस्तावना महत्वपूर्ण है। डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की उर्दू रचनाओं का नागरी लिप्यंतरण करने की नीति अपनाकर उनकी शैली की अक्षुण्णता बरकरार रखी, साथ ही कठिन अरबी, फारसी शब्दों के हिंदी प्रति-शब्द कोष्ठकों में देकर हिंदी के पाठकों के लिए उनका अर्थ समझना सुगम कर दिया। इस सूझबूझ के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। सच कहा जाए तो अपने इस ऐतिहासिक महत्व के कार्य से डॉ. गोयनका के हिंदी-उर्दू के सबसे बड़े कथाकार प्रेमचंद के साहित्य को यथासंभव समग्र रूप में उपलब्ध कराने का श्रेय तो प्राप्त किया ही है, परवर्ती हिंदी शोधकर्ताओं के लिए एक आदर्श भी प्रस्तुत किया है। आशा की जानी चाहिए कि इस कार्य से प्रेरणा प्राप्त पर कुछ कर्मठ शोधकर्ता-मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत, दिनकर, अज्ञेय आदि के अप्राप्य साहित्य को प्रकाश में लाने का साहसपूर्ण प्रयास करेंगे।

यह देखकर सचमुच क्षोभ होता है कि कुछ अहम्मन्य आलोचकों को यह तपः साध्य कार्य 'छिद्रान्वेषण की त्रासदी' जैसा लगा है। उनकी मान्यता है कि डॉ. गोयनका प्रेमचंद की मूर्ति का भंजन करने का संकल्प लेकर चले हैं, जबकि सत्य यह है कि वे प्रेमचंद की वास्तविक मूर्ति को उजागर कर रहे हैं। इस विश्वास के साथ कि वह अपने आप में इतनी महान है, इतनी मानवीय है कि इसे उनके तथाकथित सेवादारों के द्वारा लगाए गए रंग-रोगन का प्रयोजन ही नहीं है। प्रेमचंद के जीवन के वास्तविक रूप को विकृत कर जो उन्हें हिंदू विद्वेषी या मार्क्सवादी साबित करने पर तुले हुए हैं, क्या वे प्रेमचंद के साथ न्याय कर रहे हैं? उनके अतिरेकों का निराकरण करने पर प्रेमचंद की मूर्ति धूमिल कैसे हो जाती है, यह समझना मुश्किल है।

कुछ आधुनिक तथाकथित प्रगतिवादियों या जनवादियों की तरह प्रेमचंद को हिंदू शब्द से न चिढ़ थी, न घृणा। डॉ. गोयनका ने यदि प्रेमचंद पर हिंदू जीवन-दर्शन का गहरा प्रभाव, देखा है तो क्या अनर्थ किया है? प्रेमचंद ने अनेकानेक स्थलों पर अपनी गौरवपूर्ण हिंदू विरासत को स्वीकार किया है। इन्हीं दोनों खंडों में प्रस्तुत है कुछ उदाहरणः परिपूर्णानंद वर्मा की पुस्तक 'हिंदू हित की हत्या अथवा प्रधानमंत्री का सांप्रदायिक निर्णय' की सहानुभूतिपूर्ण समीक्षा करते हुए प्रेमचंद ने लिखा था, 'यह एक छोटा सा 64 पृष्ठों का टेक्स्ट है, जिसकी इस समय बड़ी जरूरत थी।... पुस्तक सामयिक है और एक जटिल विषय पर अच्छा प्रकाश डालती है।' (खंड-2, पृ. 405)। महादेव प्रसाद सेठ को लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा है- 'खड्गबहादुर सिंहजी का चित्र' सेनापति में निकला है। यह भी मंगवा रहा हूं। इस वीरात्मा ने हिंदू मनुष्यत्व की लाज रख ली। काश! हममें ऐसे जीवट के युवक और होते। (खंड-2 पृ. 130) कर्बला की भूमिका में उन्होंने बताया है, 'हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य का एक कारण यह भी है कि हम हिंदुओं को मुस्लिम महापुरुषों' के सच्चरित्रों का ज्ञान नहीं। (खंड-2, पृ. 344) जनवरी 1936 में 'कौमी इत्तिहाद क्यों कर हो सकता है' जैसे विषय पर लिखते हुए उन्होंने निर्भयतापूर्वक स्वीकारा था,- 'मुझे हिंदू होने से तो इनकार नहीं और बहुत मुमकिन है कि हिंदू होने के बाइस मैंने मुसलमान भाइयों के साथ कुछ बेइंसाफी की हो, लेकिन मेरा ख्याल है मैं मुतअस्सिक हिंदू (तंग नजर हिंदू) नहीं हूं और बहुत जो कुछ मैंने लिखा है, वह सदाकत (सत्यता) के इजहार के ख्याल ही से लिखा है।' (खंड-2, पृ. 464)। हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रबल समर्थन करते हुए भी इसी लेख में उन्होंने यह भी लिखा था,- 'मुझे याद नहीं आता कि किसी इस्लामी मजहबी जुलूस पर किसी हिंदू जमाअत ने हमला किया हो या किसी मुसलमान लड़की या औरत की किसी हिंदू इस्मतदारी (बलात्कार, सतीत्वहरण) हो या मुलाजमत में मुसलमानों के हिस्सों पर किसी हिंदू लीडर ने ऐतराज किया हो, मगर इसके बरअक्स (प्रतिकूल) मुसलमानों की जानिब से इस किस्म की वारदातें और एतराजात बराबर होते रहते हैं।' (वही पृ. 461)। विजयदशमी का स्वागत करते हुए उन्होंने भाव-विह्वल शब्दों में लिखा, 'अभये', हममें वह निर्भयता भर दो जो असहाय और अपदस्थ प्राणियों के आगे घुटने टेकना सिखाती है और अत्याचारियों के आगे तनकर टूट गया। विजये! हमारे अहंकार का क्षय करके हमें वह विजय दो, जिसे पाकर हम अपने जीवन-संग्राम का गौरव बढ़ा सकें, अपनी स्नेहमयी जननी के सच्चे सपूत कहला सकें। आओ, मां, आओ!

हमें अपनी पूजा के पुष्प बना लो। (वही पृ. 471) हिंदू-मुस्लिम प्रश्न पर लिखते हुए जहां उन्होंने एक ओर सामूहिक शुद्धि का विरोध किया था, वहीं यह भी स्वीकारा था कि,- 'स्वराज्य का उद्देश्य है अपनी शिक्षा का, अपने धर्म का, अपनी सभ्यता पुनरुज्जीवन और पुनः संस्कार। इसके अतिरिक्त स्वराज्य और कुछ नहीं है। मुसलमानों की सभ्यता की रक्षा करने के लिए मिस्र, टर्की, काबुल मौजूद हैं, हिंदुओं की सभ्यता की रक्षा करने वाली कोई जाति नहीं।' (वही पृ. 497) अधिक उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं। यह सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि उदार, सहिष्णु, अच्छे हिंदू की तरह प्रेमचंद देश की स्वाधीनता के लिए हिंदू, मुस्लिम, ईसाई एकता को चाहते थे किंतु न तो वे अपने हिंदूपन से लजाते थे, न उसे नकारते थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि आर्यसमाज के कुछ अतिरेकों से असहमत होते हुए भी वे आजीवन उससे सहयोग करते रहे। मार्क्सवादी बंधुओं को यह सच्चाई भी बहुत कड़वी लगेगी कि 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता करने के बाद वे लखनऊ से सीधे लाहौर गए थे, आर्यसमाज के उत्सव में भाग लेने के लिए। प्रेमचंद पर हिंदू-जीवन-दर्शन का गहरा प्रभाव था, इस सत्य को वही नकार सकता है, जिसने अंधवादग्रस्तता का चश्मा चढ़ा रखा हो।

डॉ. गोयनका पर एक आरोप यह भी लगाया गया है कि 'वे प्रेमचंद की मार्क्सवादी छवि से टकराते हैं', सवाल यह है कि क्या सचमुच प्रेमचंद मार्क्सवादी थे? जिन्होंने जानबूझकर उनकी गलत छवि प्रचारित की है, उनके अतिरेकी का खंडन करना क्या अपराध है? ठीक है कि प्रेमचंद पूंजीवाद के कट्टर विरोधी थे। डॉ. गोयनका ने उनके प्रसिद्ध किंतु दुर्लभ निबंध 'महाजनी सभ्यता' को इस ग्रंथ के दूसरे खंड में संकलित कर उनकी पूंजीवाद की विरोधी छवि को अक्षुण्ण रखा है। यह भी ठीक है कि प्रेमचंद रूसी क्रांति के प्रति सहानुभूति संपन्न थे और उसकी सफलता की कामना करते थे। डॉ. गोयनका द्वारा इस संकलन के खंड-1 में संग्रहीत पं. जवाहरलाल नेहरू कृत 'रूस की सैर' की उनकी समीक्षा (खंड 2, 458-59) तथा अनेकानेक अन्य टिप्पणियां इस सत्य का समर्थन करती हैं। 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अध्यक्षीय भाषण के अतिरिक्त 'प्रगतिशील साहित्य और कला का व्रती हंस' जैसा लेख भी प्रेमचंद ने प्रगतिशील साहित्य के पक्ष में सितंबर, 1936 में लिखा था, यह तथ्य प्रगतिशील विद्वान भी भूल चुके थे। डॉ. गोयनका ने ईमानदारी के साथ उसे खंड-दो में संकलित किया है। अतः उन पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि मार्क्सवाद से सहानुभूति प्रकट करने वाली प्रेमचंद की रचनाओं को उन्होंने दबा दिया। हां, यह अपराध (?) उन्होंने जरूर किया है कि इनमें प्रेमचंद की ऐसी रचनाओं को भी संकलित किया है जो उन्हें मार्क्सवाद के हठाग्रहों के प्रति संदेहशील सिद्ध करती है।

रा. टिकेकर को दिसंबर, 1934 में दिए इंटरव्यू में प्रेमचंद ने कहा था,-'मैं कम्युनिस्ट हूं, मगर मेरा कम्युनिज्म बिलकुल भिन्न प्रकार का है... हमारे समाज में जमींदार, साहूकार यह किसान शोषण करने वाला समाज बिलकुल रहेगा ही नहीं'। (खंड 1, पृ. 314)। टिकेकर ने इसी में आगे लिखा है,-'वकीलों को प्रेमचंद के संसार में रहने के लिए जगह नहीं, ब्राह्मण भी उन्हें निरुपयोगी लगते हैं, परंतु डॉक्टर समाज में आवश्यक है।' इस पर तुर्रा यह कि ऐसे समाज

के निर्माण के लिए प्रेमचंद हृदय-परिवर्तन पर जोर देते हैं। उन्हीं के शब्दों में,-'महात्माजी जिस प्रकार कहते हैं उस प्रकार 'चैंज ऑफ हार्ट' पर मेरा जोर है। यह मेरा मत है कि जबरदस्ती से किसी भी प्रकार का परिवर्तन लाने के बजाय प्रेम से ही यह परिवर्तन होना चाहिए (वही पृ. 313) अपनी इस दृष्टि को और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुए 26 दिसंबर, 1934 को डॉ. इंद्रनाथ मदान के प्रश्नों का लिखित उत्तर देते हुए प्रेमचंद ने कहा था, 'मैं सामाजिक क्रम विकास में विश्वास करता हूं, हमारा उद्देश्य है जनमत को प्रशिक्षित करना, क्रांति तो संतुलित पद्धतियों की विफलता मात्र है। मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबों के लिए समान अवसर होंगे। क्रम-विकास के बिना इस स्तर तक कैसे पहुंचा जा सकता है? निर्णयात्मक कारण तो जनता का चरित्र है। जब तक हमारा व्यक्ति के स्तर पर विकास नहीं होगा तब तक कोई भी समाज-व्यवस्था कारगर नहीं हो सकती। यह संदिग्ध ही है कि क्रांति हमें कहां ले जाएगी। इसके परिणामस्वरूप ऐसी निकृष्ट तानाशाही भी स्थापित हो सकती है, जिसमें सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का निषेध हो। मैं पूरी तरह से पुनर्विन्यास करना चाहता हूं, तोड़ना नहीं चाहता, फिर भी यदि मुझे इसका निश्चित पूर्वबोध हो जाए कि ध्वंस से हमारा वांछित स्वर्ग मिल जाएगा तो मैं ध्वंस पर भी आपत्ति नहीं करूंगा।' (अंग्रेजी से अनूदित, वही पृ. 307) अब इन घोषणाओं से यदि प्रेमचंद की मार्क्सवादी छवि बिगड़ती है तो उसके लिए दोषी डॉ. गोयनका हैं या कि वे मार्क्सवादी प्रचारक जो अर्धसत्यों के सहारे प्रेमचंद को मार्क्सवादी के रूप में पेश करते रहे हैं?

हमारा तो विश्वास है कि विश्व भर के प्रेमचंद-प्रेमी प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व के इतने विस्तृत, अज्ञात, विस्मृत पक्षों को इस तप साध्य संकलन के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिए डॉ. गोयनका एवं भारतीय ज्ञानपीठ के प्रति आंतरिक कृतज्ञता का अनुभव करेंगे। प्रेमचंद के किसी भी गंभीर अध्येता के लिए ये दोनों खंड अनिवार्य रूप से पठनीय हैं। इनके लिए डॉ. गोयनका का हार्दिक अभिनंदन।

□

अप्राप्य और अज्ञात का साक्षात्कार

विजयेंद्र स्नातक

'प्रेमचंद जन्मशती वर्ष' (1980-91) में प्रेमचंद का यशोगान कालजयी साहित्यकार के रूप में भारत और भारत के बाहर भी बड़े उल्लासपूर्वक किया गया। अकेले भारत में ही सौ से अधिक स्थानों पर संगोष्ठियों और सम्मेलनों का आयोजन हुआ। इन समारोहों से प्रेमचंद को अखिल भारतीय स्तर का लेखक तो अवश्य माना गया, किंतु उनके साथ समस्त साहित्य के प्रकाशन और पारायण के लिए कोई ठोस आधार न बन सका। यदि हम किसी साहित्यकार को पूरे परिवेश में, उसकी और सीमा में देखना-परखना चाहते हैं तो आवश्यक है कि उसके संपूर्ण साहित्य का मनोयोग-पूर्वक आकलन हो।

प्रेमचंद का कथा-साहित्य लगभग 80 प्रतिशत प्रकाशित हो चुका है। उस प्रकाशित सुलभ साहित्य के आधार पर उनकी समीक्षा और मीमांसा होती आ रही है, लेकिन इस अपूर्ण साहित्य के आधार पर उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का विवेचन-विश्लेषण करना संभव नहीं है। वास्तव में, किसी लेखक के सामाजिक एवं राजनीतिक सरोकारों को समझने के लिए उसकी रुचि, रुझान; आर्थिक एवं राजनीतिक चरित्र को समझना भी अनिवार्य है। यह तभी संभव है, जब पाठक को लेखक की सभी कोटि की रचनाएं उपलब्ध हों। प्रेमचंद को इस पार्थिव जगत से गए लगभग तिरपन वर्ष होने आए, किंतु कमल किशोर गोयनका से पहले किसी लेखक, पारिवारिक-जन या शोधकर्ता ने इस महत्वपूर्ण पक्ष पर ध्यान नहीं दिया। इसमें संदेह नहीं कि अप्राप्य एवं अज्ञात सामग्री को एकत्र करना, उर्दू से हिंदी लिप्यंतर करना, उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना एक अत्यंत दुष्कर कार्य था। डॉ. गोयनका पिछले पच्चीस वर्ष से निष्ठा और लगन के साथ प्रेमचंद के जीवन और साहित्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन में संलग्न हैं। प्रेमचंद-साहित्य के विविध पक्षों पर उनकी एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रेमचंद विश्वकोश (पांच-खंड) उनकी सुविख्यात कृति है। वे दो बार प्रेमचंद संबंधी पुस्तकों के लिए पुरस्कृत भी हो चुके हैं। प्रेमचंद-साहित्य पर अपने शोध से उन्होंने अनेक अज्ञात तथ्यों का उद्घाटन किया है। इसी प्रक्रिया में उन्होंने पाया कि प्रेमचंद का विपुल साहित्य अप्राप्य एवं अप्रकाशित है। यदि वह सुलभ हो सके तो प्रेमचंद की सही प्रतिमा खड़ी की जा सकती है। पिछले 15 वर्षों में इस दुर्लभ सामग्री के संकलन के लिए डॉ. गोयनका भारत के अनेक स्थानों की यात्रा कर अप्राप्य को प्राप्य, अज्ञात को ज्ञात और दुर्लभ का सुलभ बनाने में संलग्न रहे हैं और जीवन के सैकड़ों घंटे उर्दू सामग्री को देवनागरी लिपि में करने तथा कठिन उर्दू शब्दों के हिंदी पर्याय

देने में व्यतीत किए हैं। उनकी इस कठिन साधना का सुखद परिणाम है दो भागों में संपादित-संकलित दुर्लभ सामग्रीपूर्ण ग्रंथ-'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य'।

'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' दो भागों में संग्रहीत है। पहले भाग में कुल 568 तथा दूसरे में 748 पृष्ठ हैं। इसके पहले भाग में 32 कहानियां, शीर्षकों से विभिन्न दस्तावेज तथा 121 पुस्तक-समीक्षाएं हैं तथा दूसरे भाग में प्रेमचंद के पत्र, प्रेमचंद के नाम पत्र, भूमिकाएं, लेख एवं संपादकीय टिप्पणियां संकलित हैं। इस प्रकार 1316 पृष्ठों में इस महान ग्रंथ का प्रणयन कर डॉ. गोयनका ने भारत के एक महान साहित्यकार का सर्वांग चित्र प्रस्तुत किया है। साठ पृष्ठों की सारग्राही प्रस्तावना में लेखक ने उस सामग्री पर प्रकाश डाला है, जो इस ग्रंथ में एकत्र की गई है। प्रेमचंद की प्रारंभिक रचनाओं के लोप के कारणों का उल्लेख करते हुए यह लिखा गया है कि संभवतः वे कहानियां जो 'मानसरोवर' तथा 'प्रेमचंद रचनावली' में स्थान नहीं पा सकीं, शायद उन्हें प्रेमचंद कलाहीन रचना मानते रहे होंगे। अप्राप्य कहानियों का वर्गीकरण करते समय यह स्पष्ट किया गया है कि संपादक स्वयं इन कहानियों को सारहीन नहीं समझता, किंतु उनके अप्राप्य होने के दीगर कारणों को संकेत करता है।

यह सामग्री हमें प्रेमचंद के अनेक नए पक्षों से भी अवगत कराती है। 'गमी' कहानी परिवार-नियोजन पर लिखी गई है। प्रेमचंद ने इस समस्या पर सोचा था, इस कहानी से ही ज्ञात होता है। उनकी पुस्तक समीक्षाएं भी अनेक प्रवृत्तियों को उद्घाटित करती हैं। सांप्रदायिक वैमनस्य फैलाने वाली पुस्तक की समीक्षा में वे लिखते हैं, 'मेरी राय में ऐसी पुस्तकों को दियासलाई दिखानी चाहिए।' प्रसाद के नाटक 'स्कंदगुप्त' की समीक्षा में भी उन्होंने मित्रता का लिहाज नहीं किया। इस ग्रंथ में दुर्लभ एवं अप्राप्य भूमिकाओं, लेख तथा टिप्पणियों का ऐसा संग्रह है जिसकी हमें आशा भी नहीं थी।

प्रेमचंद के व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक परिवेश को समझने के लिए जो प्रामाणिक कागज-पुर्जे-डायरी, बैंक खाता, प्रमाणपत्र, सेवा-पुस्तिका आदि इस ग्रंथ में जुटाए गए हैं, वे तो विस्मयजनक हैं। प्रेमचंद के विविध इंटरव्यू, पर्सनल डायरियां, प्रकाशकों और उनसे रॉयल्टी आदि का पत्राचार कहां से किया गया, कैसे किया गया और उसे व्यवस्थित रूप में कैसे प्रस्तुत किया गया, यह सब पाठक की आँखें खोलने वाला है। अपने उपन्यासों की रूपरेखा प्रेमचंद कैसे अंग्रेजी में तैयार करते थे और उसका निर्वाह जिस शैली में होता था, यह लेखक के रचना-कौशल के मूल को उजागर करता है। मैं उन शोधार्थियों से अनुरोध करता हूं कि शोध के क्षेत्र में पदार्पण करने से पूर्व डॉ. गोयनका की शोध-साधना पर दृष्टिपात करें और अपना भावी निर्दिष्ट करें। अप्राप्य और अज्ञात के साक्षात्कार के बिना शोध तो अधूरा ही रहता है, कलाकार का व्यक्तित्व भी मनगढ़ंत रहता है।

□

कुछ उनकी, कुछ अपनी

कुसुम गोयनका

गोयनकाजी अस्सी वर्ष के हो गए हैं। हम छप्पन वर्ष के साथी हैं। इस छप्पन वर्ष की सहयात्रा के कुछ पलों को मैं आपसे साझा करना चाहती हूं। मैं अपने जीवन से बहुत संतुष्ट हूं। खुशनसीब भी हूं कि गोयनकाजी जैसा जीवन-साथी मिला, हालांकि गोयनकाजी के साथ मेरा विवाह मेरे सपने के अनुरूप नहीं था, क्योंकि मैं एक ऐसे व्यक्ति को अपना जीवन साथी बनाना चाहती थी जो गांव के एक जमींदार परिवार से ताल्लुक रखता हो। जो अंग्रेजियत से दूर, देसी लिबास में रहता हो और प्रातः अपनी पूरी जमींदारी आन-बान-शान के साथ घोड़े पर बैठकर कारिंदों के साथ अपनी काश्त का मुआइना करने जाता हो। सायंकाल दरबार लगाकर अपने सभी मुलाजिमों से जवाबदेही लेता हो। विवाह तो मेरा एक बड़े जमींदार परिवार में ही हुआ किंतु वह मेरे सपनों का आधा सत्य था, क्योंकि गोयनकाजी का जमींदार परिवार गांव में नहीं शहर में रहता था। घर-परिवार में कुछ जमींदार प्रथाएं निभाई जाती थीं, जैसे पर्दा प्रथा, आस-पास की स्त्रियों से बातचीत न करना, कुलीनता का सदैव अहसास रखना आदि। बाबूजी (ससुर साहब) महीने में एक-दो बार गांव की अपनी जमींदारी का निरीक्षण करने जाते रहते थे। गांव में जो कारिंदे जमींदारी की देखभाल करते थे, वे भी जब तब सलाम ठोकने आते रहते थे। गोयनकाजी मेरे पतिदेव को इन सब मामलों में कोई रुचि नहीं थी। इनका ध्यान सिर्फ पढ़ाई और पढ़ाई की ओर था। शहर बुलंदशहर में हमारा एक बहुत बड़ा मंदिर है और उसमें एक बड़ी लाइब्रेरी हमारे ससुरजी ने स्थापित की थी। विवाह के पश्चात् जितने दिन बुलंदशहर में रहे, मैंने पतिदेव गोयनकाजी को लाइब्रेरी में बैठकर नोट्स बनाते देखा-नहीं-नहीं, सुना, क्योंकि मंदिर जाने की अनुमति हमको नहीं थी। फिर मैं तो नई-नई दुलहिन थी।

विवाह के पश्चात् शीघ्र ही हम दिल्ली आ गए। फिर तो मेरे सपने ने साहित्यिक अभिरुचि की ओर करवट लेनी प्रारंभ कर दी। इस बदलाव से मुझको परेशानी नहीं हुई, बल्कि यह बदलाव आनंददायक ही सिद्ध हुआ, क्योंकि साहित्य में मेरी रुचि बचपन से रही है। पिता के घर में बहुत पत्र-पत्रिकाएं आती रहती थीं और बी.ए. में मेरे पास हिंदी और अंग्रेजी लिटरेचर दोनों विषय थे। गोयनकाजी दिल्ली के जाकिर हुसैन सांकालीन कॉलेज में लेक्चरर थे। दिन-भर घर में रहकर अपने पढ़ने-लिखने में लगे रहते। एक पल भी नष्ट करना उन्हें दुःखदाई लगता।

वे बहुत कर्मठ, दृढ़संकल्पी और बहुत ही परिश्रमी हैं। मैंने कभी भी उन्हें दो बजे से पहले सोते नहीं देखा। वे निरंतर अपने अध्ययन में रत रहते हैं। वे स्वयं तो पढ़ाई में लगे ही रहते हैं, दूसरों को भी सदैव प्रेरणा देते रहते हैं कि कुछ पढ़ो, कुछ लिखो। उन्हें नए विषय बताते रहते हैं और उन विषयों के बारे में जानकारी भी देते रहते हैं। लोगों के लिखे लेखों को या उनकी पुस्तकों को छपवाने का दायित्व भी अपने ऊपर लेते रहते हैं। उनकी भूमिकाएं लिखने की जिम्मेदारी भी ले लेते हैं। यहां तक कि लेखों की या पुस्तकों की अशुद्धियां सुधारने का दायित्व भी उठा लेते हैं। वे हर दशा में चाहते हैं कि साहित्य सृजन होता रहे और नई पीढ़ी सामने आती रहे। मुझसे भी बार-बार लिखने को कहते रहते हैं। इसके लिए मुझसे झगड़ा भी कर लेते हैं, किंतु लिखने में मेरी बहुत रुचि नहीं है। कुछ कविताएं लिखी हैं। कुछ बाल कहानियां भी लिखी हैं जो 'धर्मयुग', 'हिंदुस्तान', 'नंदन', 'पराग' तथा अन्य बाल-पत्रिकाओं में आती रही हैं। पीतांबर पब्लिशिंग हाउस से बच्चों की एक कहानी पुस्तक भी प्रकाशित हुई है।

घर में बहुत पत्रिकाएं तथा पुस्तकें आती रहती हैं। गोयनकाजी से उनके बारे में समीक्षात्मक रूप से वाद-विवाद भी करती रहती हूं। उनके सभी साहित्यिक मित्रों से परिचित हूं। उनके साहित्य को पढ़ती भी रहती हूं और कभी-कभी फोन पर उनको अपनी प्रतिक्रिया से अवगत भी कराती हूं। मैं एक बात बताना चाहती हूं। गोयनकाजी बहुत ही सरल व्यक्ति हैं। उनको आदमी की पहचान नहीं है। अपने जैसा ही सबको समझ लेते हैं और उनसे वे बातें भी कर लेते हैं जो उन्हें नहीं करनी चाहिए। हमारे समझाने का उन पर कोई असर नहीं होता। भोजन कर रहे हों, कोई फोन आ जाए, खाना छोड़कर बातें करने लगते हैं। कोई सज्जन मिलने आ जाएं तो थाली में खाना अधूरा छोड़कर बात करने ड्राइंगरूम में चले जाते हैं। हम उन्हें आश्वासन देते हैं कि हम तुम्हारे मित्र का उचित सत्कार करते हैं तब तक आप भोजन कर लीजिए पर वे इस बात के लिए कभी राजी नहीं होते। थाली छोड़कर चले जाते हैं और भूखे रह जाते हैं। अपने मित्रों का, अपने परिजनों का बहुत ध्यान रखते हैं, किंतु घर के प्रति बहुत उदासीन रहते हैं। उनको नहीं पता कि उनके बच्चों की परवरिश कैसे हुई। इसका एक बड़ा उदाहरण है- 'हमारा छोटा बेटा आठ साल का था। वह मोंटफोर्ट स्कूल में तीसरी कक्षा में पढ़ता था। एक दिन वह परीक्षा देने गया तो घर पर पैंसिल बॉक्स छोड़ गया। मैं घबरा गई। मैंने कहा आप जाकर दे आओ। गोयनकाजी पूछने लगे बेटा कौन सी कक्षा में पढ़ता है और कौन-से सेक्शन में है इसीलिए मुझे लेखन से अरुचि हो गई।' मैं अपने पति की सुविधा तथा अपने बच्चों का करिअर बनाने के लिए समर्पित हो गई। आज मेरे दोनों बेटे 'सोलीटियर' हीरे हैं। मेरे पति भी देश में और परदेश में सम्मान पा रहे हैं। यह मेरा भी सम्मान है। मैं अपने को बहुत गौरवान्वित अनुभव करती हूं। मैं अपने पति के साथ कभी किसी सभा या सोसाइटी में नहीं जाती। मैं बहुत अंतर्मुखी हूं। मेरा घर एक मंदिर जैसा है जहां मैं सुख पाती हूं। अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझती हूं। इमरजेंसी के दौरान मेरे पतिदेव दो महीने तिहाड़ जेल में रहे। उन पर यह चार्ज लगाकर कि वे दीप सिनेमा के आगे कुछ लोगों को इकट्ठा करके श्रीमती इंदिरा गांधी के मर्डर की साजिश रच रहे थे। उन्हें आधी रात को पुलिस घर से पकड़कर ले गई।

गोयनकाजी ने पुलिस के साथ जाने से पहले कुछ चैकों पर साइन किए और मुझसे कहा कि हो सकता है कि मैं कभी न लौटूं। किसी अज्ञात स्थान पर ले जाकर गोली भी मार सकते हैं। तुम यह मकान बेचकर या तो अपनी ससुराल चली जाना या अपने मायके। मेरे बच्चे उसे समय बहुत छोटे थे। छोटा बेटा राहुल एक वर्ष का था। मैं घर में अकेली थी। घर में बच्चों को एक नौकर के सहारे छोड़कर दिन-दिन भर कोर्ट-कचहरी और जेल के चक्कर लगाया करती थी। आसपास के लोगों ने हमसे बात करना बंद कर दिया था। वे घबराते थे कि वे भी न धर लिए जाएं। ऐसे में हमारे ब्लॉक के दीपचंद बंधु नाम के कांग्रेसी नेता ने एक सज्जन को मेरे पास भेजा कि यदि गोयनकाजी यह लिखकर दे दें कि 'मैं माफी मांगता हूं, न मैं आर.एस.एस. का मेंबर रहूंगा न संघ से कोई मतलब रखूंगा' तो मैं उनको जेल से निकलवाने में मदद कर सकता हूं। मैंने उन सज्जन से कहा कि 'बंधुजी से मेरी तरफ से धन्यवाद कह देना, क्योंकि मैंने तो बंधुजी के पास सिफारिश के लिए भेजा नहीं। हम आर.एस.एस के स्वयंसेवक हैं और संघ से हमारा पुराना नाता है। आप नेताजी से कह देना कि 'हम सिर कटा सकते हैं सिर झुका नहीं सकते।' कुछ पलों के बाद वे सज्जन पुनः घर पर आए और बोले कि बंधुजी आपसे मिलना चाहते हैं। मैंने कहा, 'ठीक है। जरूर मेरे घर आएं। मैं उनका स्वागत करूंगी।' अंत में, मैं अपने मुंह से गोयनकाजी की अधिक सराहना नहीं करना चाहती। उनके गुण-अवगुण बहुत कुछ गिना दिए हैं जो प्रायः सभी मनुष्यों में होते हैं। वे बहुत कर्मशील है, बुद्धिमान हैं, दृढ़संकल्पी हैं, मन के इतने सरल हैं कि 'सरल' शब्द भी उनके सामने लज्जान्वित हो जाएगा। मेरे प्रति वे इतने उदार, शुभ-चिंतक तथा प्रेमी हैं कि एक-दूसरे के बिना हम कुछ भी नहीं।

□

प्रेमचंद, 'क्रिकेट मैच' तथा राष्ट्रप्रेम

इंद्रनाथ चौधुरी

डॉ. नंद किशोर पांडेय, निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान की आज्ञा है कि मेरे बहुत पुराने मित्र डॉ. कमल किशोर गोयनका के जीवन या कृतित्व पर एक लेख लिखकर प्रकाशन के लिए उन्हें भेज दूं।

कमल किशोर गोयनका मेरे बहुत ही पुराने मित्रों में से हैं, कभी-कभी हँसी मजाक में कहता हूं कि गोयनका, 5000 वर्षों से मेरे मित्र हैं। मुंशी प्रेमचंद के सर्वाधिक प्रसिद्ध आधिकारिक विद्वान के रूप में उनकी ख्याति देश-विदेश में फैली हुई है। शोध की क्षमता उनमें असाधारण है। मित्र होने के नाते भी मैं उनकी विद्वता का कायल हूं और यह लेख लिखते हुए मुझे बार-बार लग रहा है कि उनकी प्रशंसा के अतिरिक्त मेरे पास और कुछ लिखने को नहीं है। मुझे लग रहा है कि यह लेख मुझे कुछ और ढंग से लिखना चाहिए क्योंकि मुझे डर है कि केवल प्रशंसा करने पर लेख एक तरफा कह के कहीं लोग इसकी अवहेलना न कर दें।

अचानक मुझे याद आया कि बहुत साल पहले गोयनका के साथ चाय पीते हुए एक शाम को मैंने उनसे सवाल पूछा था कि क्या हिंदी के किसी लेखक ने कभी क्रिकेट को लेकर कुछ लिखा है। दरअसल उन दिनों Indian Premier Leauge नया-नया शुरु हुआ था, सारे हिंदुस्तान में यह चर्चा का विषय बना हुआ था। खेल का पूरा ढांचा बदल गया था। 20-20 क्रिकेट का नया सिलसिला शुरु हुआ था। केवल क्रिकेट का खेल ही नहीं, दर्शकों के लिए खान-पान की व्यापक व्यवस्था की गई थी- सब कुछ उत्सवमय हो चुका था। क्रिकेट की चर्चा चारों ओर फैली हुई थी। लोग यहां राष्ट्र के समर्थन में नहीं थे, राज्यों के समर्थन में थे क्योंकि राज्यों के नाम टीमें बनाई गई थीं- नहीं तो भारत किसी और देश की टीम से क्रिकेट खेलने पर सारा देश भारत के पक्ष में खड़ा हो जाता है- ऐक्य का एक अद्‌भुत नजारा तब दिखाई देता है। क्रिकेट भारत की एकता का एक बहुत बड़ा आधार है। लोगों का कहना है कि यह देशभक्ति क्षणिक और सतही ही होती है। मगर वह भी कुछ कम है। देशभक्ति का वह नजारा बच्चों के मन में हमेशा के लिए अंकित हो जाता है, जो चिरस्थायी भावदृष्टि बन जाती है।

इसी सिलसिले में डॉ. गोयनका को प्रश्न पूछा था और साथ में यह भी कहा कि बांग्ला में 60-65 साल पहले मैंने क्रिकेट पर एक कहानी पढ़ी थी, लेखक का नाम और पूरी कहानी

तो याद नहीं है, सिर्फ उसका प्रारंभ याद है- कहानी शुरु होती है कि कलकत्ते के क्रिकेट मैदान में हिंदुस्तान की टीम अंग्रेजों के विरुद्ध उतरी है, खाली पैर। टॉस के समय अंग्रेज कप्तान ने पूछा,

'Who is the Caption?'

इंडिया की तरफ से एक ने कहा,

'I is the Caption'

अंग्रेज थोड़ा हँसा और जवाब दिया,

'Oh! You are the Caption.'

भारतीय का उत्तर था,

'Yes, I are the Caption.'

अंग्रेज काफी जोर से हँस पड़ा। भारतीय कप्तान ने टीम की तरफ देखते हुए कहा, बदमाश, मेरी अंग्रेजी की गलती पकड़ रहा है, खेल की गलती पकड़े, तब जानू। इसके बाद और कुछ याद नहीं है।

गोयनका ने जवाब में कहा, हां, प्रेमचंद की ही कहानी है। 8 अक्टूबर, 1936 में मृत्यु से कुछ महीने पहले उन्होंने 'क्रिकेट मैच' के नाम से यह कहानी लिखी थी। प्रेमचंद के देहांत के बाद पहली दफा दया नारायण निगम के उर्दू रिसाले 'जमाना', जुलाई, 1937 में यह प्रकाशित हुई। बाद में अमृतराय द्वारा प्रेमचंद की संपादित हिंदी की गुमशुदा अप्रकाशित कहानी के रूप में 'गुप्तधन-2' में सन् 1962 में यह प्रकाशित हुई। यह शोध का विषय है कि प्रेमचंद की अंतिम कहानी 'कफन' है या 'क्रिकेट मैच'। साहित्य अकादेमी द्वारा 6 खंडो में कमल किशोर गोयनका संपादित 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली' के छठे खंड के परिशिष्ट 'प्रेमचंद की कहानियों की कालक्रमानुसार सूची' की टिप्पणी में गोयनका ने लिखा है कि 'कफन' का प्रथम प्रकाशन अज्ञात है, बाद में सन् 1937 में 'कफन' और शेष रचनाएं' प्रकाशित हुई और 'क्रिकेट मैच' उसी वर्ष 'जमाना' प्रकाशित हुई। खैर।

मेरे पूछने पर गोयनका ने कहा, हां, मैं बी.ए. के छात्र के रूप में क्रिकेट खेलता था और अंतर में कॉलेजीय मैचों में अपने कॉलेज का प्रतिनिधित्व भी करता रहा। हॉकी भी खेलता था मगर एक बार ठुड्डी में हॉकी की चोट लगते मैं बाल-बाल बचा। उसके बाद मैंने हॉकी खेलना छोड़ दिया। आजकल क्रिकेट मैच, विशेष रूप से भारत-पाकिस्तान मैच में अवश्य देखता हूं। प्रेमचंद की कहानी 'क्रिकेट मैच' के बारे में पूछने पर उत्तर में गोयनका ने कहा, कहानी की पहली पंक्ति में ही 'हमारी टीम दुश्मनों से कहीं ज्यादा मजबूत थी मगर नेतृत्व के अभाव में हम हार गए और अंग्रेज टीम जीत का डंका बजाते हुए ट्राफी उड़ा ले गए' से पता लगता है कि राष्ट्रप्रेम का जज्बा उन दिनों इसी तरह मौजूद था जैसे आज। 'दुश्मन' शब्द में ही इसका रहस्य छिपा है।

मेरे लिए यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि प्रौढ़ अवस्था में पहुंचते-पहुंचते प्रेमचंद को क्रिकेट प्रबंधन की बारीकियों का पता कैसे लगा। 'सुजान भगत', ईदगाह','दो बैल', 'पंच परमेश्वर'? 'गुल्ली-डंडा' आदि का लेखक कैसे क्रिकेट के बारे में सब कुछ जान सका।

यह प्रतिभा का अपूर्व स्फुरण था, नहीं तो हिंदुस्तान की टीत के हारने के कारण गिनवाते हुए प्रेमचंद यह नहीं कहते कि- 'हमारे यहां नेतृत्व के लिए गोग्यता शर्म नहीं। हम नेतृत्व के लिए धन-दौलत जरूरी समझते हैं, हिज हाइनेस कप्तान चुने गए। क्रिकेट बोर्ड का फैसला... हुक्मे हाकिम समझकर माना गया और वह सिर्फ मुंह देखी थी, उमंग कहां, जोश कहां, संकल्प कहां, खून की आखिरी बूंद गिरा देने का उत्साह कहां।' आजकल जिसे 'किलिंग फिलिंग' कहते हैं वह तभी आती है जब ग्यारह के ग्यारह खिलाड़ी एक होकर खेलते हैं। मरने-मिटने के लिए तैयार रहते हैं।

प्रेमचंद के 'हिज हाइनेस' शब्द में एक गहरा कटाक्ष है। हिंदुस्तान की टीम जिसे उस समय 'ऑल इंडिया' कहा जाता रहा मगर कहानी में हिंदुस्तान की टीम कहा गया है उसकी कप्तानी या उप-कप्तानी हमेशा राजा-महराजाओं के पास रहती थी। प्रारंभ में महाराजा पटियाला, फिर महाराजा पोरबंदर, महाराजा लिमड़ी और सन् 1936 में महाराजा कुमार विजयनगरम इंग्लैंड के दौरे के कप्तान थे। उससे पहले सन् 1932, इंग्लैंड के स्टेट क्रिकेट के दौरे के कप्तान महाराजा पटियाला थे। बीमार पड़ जाने पर उनकी जगह महाराजा पोरबंदर की कप्तानी में टीम का दौरा हुआ। इन सब राजा-महराजाओं के नेतृत्व में खेलते हुए 1932 से 1952 तक हिंदुस्तान कोई भी टेस्ट मैच जीत नहीं सका। पहली जीत 1952 में लोकतंत्र के चलते हासिल की। सन् 1970 से टेस्ट क्रिकेट का रंग बदल गया और आम लोगों गावस्कर, कपिलदेव आदि के नेतृत्व में जीत हासिल होने लगी।

प्रेमचंद का कहना है कि जिसके पास धन है, उसे ही चीज का अधिकार है। अंग्रेजी रहन-सहन में ढले अमीर घराने के नौजवान ही उन दिनों क्रिकेट खेलते हुए दिखते थे। कहानी का मूल पात्र जफर मगर इनके मुकाबले में गरीब था, तीसरे दर्जे का टिकट लेने की फिक्र में था, तब अचानक उसका परिचय हेलेन मुखर्जी से हुआ जो इस कहानी में छाई हुई है। दरअसल हेलेन एक प्रतीक है, अंग्रेजियत की पूरी प्रतिमूर्ति उसे सिगरेट, शराब पीने, आदमियों से निःसंकोच मिलने, उनके साथ हँसी-मजाक करने और उनको अपने सौंदर्य का जलवा दिखाना बड़ा भाता था। प्रेमचंद के शब्दों में सारे खिलाड़ी उसके कैद में थे। फिर भी वह एकनिष्ठ संकल्प के आधार पर टीम के ग्यारह खिलाड़ी चुनने में जुट गई थी जिसका परिणाम यह कि आस्ट्रेलियन टीम पर हिंदुस्तान की टीम ने बड़ी जीत हासिल की मगर इसके पीछे रुपए पानी की तरह बहाया गया। बहाने वाली हेलेन मुखर्जी थी। प्रतीकात्मक हेलेन के द्वारा प्रेमचंद इसे रुपए का खेल कहना चाहते थे। उसके ब्याज से प्रेमचंद अंग्रेज, अंग्रेजी और अंग्रेजियत के विरुद्ध अपनी बात रखना चाहते थे हालांकि आज का कोई भारतीय खिलाड़ी टेस्ट मैच खेलते ही करोड़पति बन जाता है। टेस्ट मैच जीतने पर प्रधानमंत्री तक बधाई का संदेश भेजते हैं, सारा देश झूम उठता है।

हमारे पास कहां पैसे थे, हम तो गुल्ली-डंडा खलते थे। हँसते हुए गोयनका को मैंने यह बात कही। गुल्ली-डंडे के सिवाय कंचा, खो-खो, कबड्डी भी खेला करते थे। चाय के दौर को फिर से चलाने पर गोयनका ने बौंडा खाते हुए कहा, यह सब हम भी खेला करते थे। साथ में

यू.पी. के बच्चों का खास खेल, गेंद तड़ी भी चलता था- एक दूसरे को गेंद का निशाना बनाकर खेल से आउट किया जाता है। उस समय हम क्रिकेट खेल नहीं पाते थे, मगर आज तो माहौल बदला हुआ है- गली-गली में बच्चे क्रिकेट खेलते हैं। हां, सही है गोयनका ने कहा। चूंकि हम अब स्वाधीन हैं, इसलिए हर खेल में तरक्की हो रही है। नहीं तो खुद प्रेमचंद ने कहा था कि पराधीन देश के नागरिक होने पर- 'इस राजनैतिक पस्ती के कारण हमारे सभी गुणों को कुचल डाला जाता है। क्रिकेट में बुरा खेलने में भी इसका योगदान है।'

प्रौढ़ अवस्था में प्रेमचंद में काफी निडरता आ गई थी- ब्रिटिश सरकार किस तरह विरोधी आवाज को कुचल डालती है, इसकी भी उन्हें कहने में परवाह नहीं थी। जफर के द्वारा प्रेमचंद ने उस समय की बड़ी घटना इटली का एबीसीनिया पर आक्रमण का जिक्र करवाया है। साम्राज्यवादी मंशा से यह आक्रमण हुआ था। इस समय इस आक्रमण का उल्लेख कर रवींद्रनाथ की एक प्रसिद्ध कविता है जिसके अंतिम वाक्यों में उन्होंने लिखा था जब एबीसीनिया के रास्तों पर मारे हुए लोगों के सैकड़ों शव बिखरे हुए थे, उस समय इटली के गिरजाघरों में घंटानाद हो रहा था, मां के गोद में बच्चे किलकारी मार रहे थे।

जफर ने कहा कि इंग्लैंड और फ्रांस ने जब इटली पर जोर डाला तब एबीसीनिया पर आक्रमण बंद हुआ। हेलेन ने तपाक से उत्तर दिया, 'जोर डालने के पीछे कारण था, इंग्लैंड को अपने व्यापार के लिए बाजारों की जरूरत है, अपनी बढ़ी हुई आबादी के लिए जमीन के टुकड़ों की जरूरत है, अपने शिक्षितों के लिए ऊंचे पदों की जरूरत है तो इटली को क्यों न हो। इटली जो कुछ कर रहा है ईमानदारी के साथ एलानिया कर रहा है...इंग्लैंड ने हमेशा धोखेबाजी से काम लिया है... मैं तो चाहती हूं दुनिया में इटली, जापान और जर्मनी खूब तरक्की करें और इंग्लैंड का आधिपत्य टूटे। तभी दुनिया में असली जनतंत्र और शांति पैदा होगी। वर्तमान सभ्यता जब तक मिट न जाएगी, दुनिया में शांति का राज्य नहीं होगा।'

इसी कहानी में एक व्यक्ति का कथन है और वह हेलेन का और बाकी सब उसके ताबेदार हैं, उसके कैदी हैं, उसकी एक नजर की तमन्ना लिए उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहते हैं। बहुत से इस एक पात्र के कथन को प्रेमचंद का कथन मानना उचित नहीं मानते हैं। डॉ. गंगाधर गाडगिल की एक मराठी कहानी है जिसमें एक वृद्ध व्यक्ति तीन सुंदर स्त्रियों के साथ इकट्ठे प्रेम करते हुए दिखाया गया है। कहानी जब अश्लीलता की ओर बढ़ने लगी तब कहानीकार चिल्ला उठा, यह क्या, ऐसा तो मैंने चाहा नहीं। अंदर से आवाज आई, चिल्ला क्यों रहे हो, तुम कौन होते हो कहानी लिखने वाले, कहानी तो मैं लिखता हूं, अंतरात्मा की आवाज थी। लेखक ने कहा क्या मतलब? बदनाम हो जाऊंगा। वह तुम्हारी समस्या है, मेरी नहीं। लेखक बेबस होकर देखने लगा और कहानी आगे बढ़ती गई।

मैंने गोयनका से पूछा क्या आप भी ऐसा ही मानते हैं? उनका सीधा जवाब था, भई, यह कोई महाकाव्य नहीं जहां लेखक की उपस्थिति नजर नहीं आती (हालांकि रामायण और महाभारत दोनों ही अपवाद हैं) यह कहानी है, प्रेमचंद के स्व की वह ही यहां सब कुछ बोल रहा है, इसे प्रेमचंद की जुबानी नहीं मानना गलत होगा। आगे चलकर इस क्रिकेट की कहानी

को प्रेमचंद के प्रिय 'आदर्शोंमुख यथार्थ' की ओर बढ़ते दिखाया गया है। यही इस कहानी का उद्देश्य बन गया है और कहानी का यही परिणाम है- कहानी ओपन एंडेड तो है नहीं। उसका एक निश्चित उद्देश्य और परिणति है। चलिए इस आगे बात करेंगे कहके मैंने बात घूमा दी। यह पूरे तौर से प्रौढ़ प्रेमचंद की प्रतिभा का अनूठा नमूना है।

फिर गोयनका को कहा, कइयों का तो यहां तक कहना है कि प्रेमचंद हेलेन की जुबानी सन् 1936 में इटली, जर्मनी, जापान की प्रशंसा करके फासीवाद और नाजीवाद का पक्ष ले रहे हैं। अरे यार, क्या हो गया आपको? गोयनका ने छूटते ही कहा। जहर-जहर को काटता है, यह तो सभी जानते हैं। उस समय साम्राज्यवादी ताकतों से लड़ने के लिए नेताजी सुभाष चंद्र बोस हिटलर के पास गए थे और बाद में जापान से भी सहायता मांगी थी। 'हिंद स्वराज' में स्वयं गांधी ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ आवाज उठाई थी। मगर कांग्रेस पार्टी हमेशा नेताजी को अपना शत्रु मानती रही। जब.आई.एन.के. वीर सिपाहियों, अफसरों पर लालकिले में मुकदमा चल रहा था तब कांग्रेस को यह अहसास हुआ कि नेताजी को भारतीय चरित्र या प्रकृति (इथास) की गहरी समझ थी और लोकतंत्रीय विचारधारा उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। यह कहानी अलग है कि नेताजी की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि नेहरू परिवार को खतरा महसूस होने लगा और परिणामस्वरूप नेताजी को अलग-थलग कर दिया गया।

मैंने कहा, गोयनका आप भटक रहे हैं। गोयनका ने कहा, हां, आवेश में थोड़ा भटक गया था। प्रेमचंद की यह कहानी मुझे आश्चर्य में डालती है, कहां से उन्हें क्रिकेट का इतना ज्ञान प्राप्त हुआ। अपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति हुए बिना यह संभव नहीं था। मगर, गोयनका, कहीं-कहीं उन्होंने गलत सूचनाएं भी तो दी हैं। मसलन? गोयनका ने पूछा। यही कि उनका यह कथन कि हिंदुस्तान की टीम ने सन् 1935 की मैच में आस्ट्रेलिया को करारी हार दी। वह कैसे? गोयनका का सवाल था। 1935 में दरअसल आस्ट्रेलिया ने हिंदुस्तान के साथ चार मैच खेले थे जिसमें बंबई और कलकत्ते में उनकी जीत हुई थी और लाहौर और मद्रास में हिंदुस्तान की टीम जीती थी।

गोयनका हँस पड़े, अरे भई, प्रेमचंद कोई मिहिर बोस या रामचंद्र गुहा या सुजीत मुखर्जी तो थे नहीं जिन्हें हिंदुस्तान के क्रिकेट इतिहास का मुकम्मल ज्ञान था। ऐसी थोड़ी-बहुत गलतियां हिंदी साहित्य के इतिहास का पूरा ज्ञान रहते हुए भी कभी-कभी हम भी तो कर बैठते हैं।

गोयनका के यहां दही के कटलेट मिलते हैं- मसाला चाय के साथ खाने में बड़ा मजा आएगा। आर्डर दें? चलिए खाते हैं। पहली दफा दही का कटलेट नाम सुन रहा हूं। आज गोयनका अच्छे मूड़ में थे। दही का कटलेट खाते हुए मैंने पूछा, एक बात तो बताइए जिसका उल्लेख तो आपने पहले किया भी है। प्रेमचंद कहानी को अंत तक पहुंचाते हुए उस पर अपना प्रिय सिद्धांत 'आदर्शोंमुख यथार्थवाद' का जामा पहनाकर ही उसका समापन करते हैं। ऐसा क्यों?

गोयनका ने तपाक से कहा, जीवन क्या मात्र यथार्थ का दुःख-दर्द है? उसमें क्या कोई सुख नहीं है? क्या हमारा जीवन केवल काले-काले बादलों का अंधकार ही है, वहां क्या कभी

चाँद उगता नहीं है- चांदनी हमारे जीवन में छाती नहीं है? प्रेमचंद यथार्थ को भूलते तो हैं नहीं मगर उन्हें केवल 'कफन', 'पूस की रात', 'सद्गति' या' ठाकुर का कुआँ' का ही लेखक नहीं मानना चाहिए। उन्होंने 'सुजान भगत', 'पंच परमेश्वर','ईदगाह' जैसी कहानी भी तो लिखी हैं। उनका सिद्धांत है यथार्थ को झेलते हुए भी अंततः एक आदर्श की स्थापना मनुष्य का ध्येय होना चाहिए। हेलेन एक प्रतीकात्मक चरित्र है मगर सिम्बोलिक होते हुए भी उसके जीवन का एक अर्थ है। प्रेमचंद उसे मात्र ऐशो-अय्याशी की जिंदगी जीने वाली नहीं दिखाना चाहते थे। एक निष्ठ लक्ष्य को सामने रखकर जो व्यक्ति सफलता के रास्ते आगे बढ़ता है वह मात्र पुतला हो नहीं सकता। स्वयं हेलेन कहती हैं, 'नौजवानों की आँखों को खुश करने और उनके दिल में मस्ती पैदा करने के लिए जीना मैं शर्मनाक समझती हूं। जीवन का लक्ष्य इससे कहीं ऊंचा है। सच्ची जिंदगी वही है, जहां हम अपने लिए नहीं सबके लिए जीते हैं।'

यह हेलेन की ट्रांसफारमेशन नहीं थी, उसके जीवन की हमेशा की सच्चाई थी। वह कहती है, 'किसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए जो काम किया जाता है, उसी का नाम जिंदगी है और फिर हेलेन एक नायिका (नायक) की तरह अंतर्ध्यान हो जाती है। उसका फिर किसी को पता नहीं लगता। क्या यह मात्र आदर्श है, यथार्थ भी तो नहीं- इनसे परे जीवन की सच्चाई है।

गोयनका चुप हो गए। हँसी-मजाक, खेल, क्रिकेट, गुल्ली-डंडे का माहौल अचानक गंभीर हो गया।

बाहर हम जब निकले रात हो चुकी थी। उस दिन दिल्ली के आसमान में प्रदूषण कम था, आसमान तारों से छिटका हुआ था। दूर सप्तर्षी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। ऐसा नजारा तो दिल्ली में बहुत कम दिखाई देता है। गोयनका ने मुस्कुराते हुए कहा, हां। फिर दोनों अलग-अलग रास्ते से निकल गए।

गोयनका से जुड़ी कुछ और बातें

साहित्य अकादेमी में जब मैं सचिव था गोयनका उस दौरान प्रेमचंद के बहुत ही सुप्रसिद्ध आलोचक के रूप में उभर चुके थे। प्रेमचंद पर शोधकर्ता के रूप में उनकी अनन्यता सारे भारत में फैल चुकी थी। ऐसी स्थिति में भारत की एकमात्र साहित्य की राष्ट्रीय अकादेमी से उन्हें नहीं जोड़ना बहुत ही अनुचित होता लेकिन भारतप्रेमी राष्ट्रवादी गोयनका उस समय के वामपंथी हिंदी लेखकों को स्वीकार्य नहीं थे। ये वामपंथी विद्वान, साहित्य को गहराई से जानने वाले होने के बावजूद किसी और विचारधारा के विद्वान, शोधकर्ता और सुप्रसिद्ध आलोचक को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते थे और साहित्य अकादेमी के हिंदी बोर्ड पर इन्हीं लोगों का अधिकार था। फिर भी मैंने निडर हो के गोयनका को प्रेमचंद की चुनी हुई कहानियों का एक संग्रह तैयार करने को कहा। सचिव होने के नाते, अपने कर्त्तव्यों का निष्पक्ष और तटस्थ हो के पालन करना ही मैं अपना परम उत्तरदायित्व मानता था और इसीलिए मैंने गोयनका को आमंत्रित करना उचित समझा। गोयनका ने संग्रह तैयार कर डाला, पुस्तक छप गई। हिंदी बोर्ड के सदस्यों को पता चला और भयानक विरोध शुरू हुआ। बात कार्यकारी बोर्ड तक पहुंच गई

और बोर्ड के अध्यक्ष डॉ. गोयनका के सामने हिंदी बोर्ड के वामपंथी धुरंधर विद्वान सदस्यों ने गोयनका की कटु आलोचना शुरू कर दी। गनीमत थी कि हिंदी बोर्ड के अध्यक्ष विष्णु प्रभाकर निष्पक्षता के पुरजोर पक्षधर थे, उन्होंने मेरा साथ दिया और प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय का हवाला देते हुए यह सूचना दी कि अमृतराय की दृष्टि में उनके पिता पर गोयनका के अतिरिक्त और कोई बड़ा शोधकर्ता भारत में नहीं है। डॉ. गोयनका ने मेरे पक्ष पर निर्णय लिया और बात खतम हो गई। आज गोयनका की चयनित प्रेमचंद की कहानियों की पुस्तक का दसवां संस्करण बिक रहा है और पुस्तक की लोकप्रिता को देखकर साहित्य अकादेमी ने गोयनका के द्वारा संपादित छह खंड़ों में प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियों के संग्रह को प्रकाशित कर डाला है।

गोयनका से जुड़ी हुई दूसरी घटना का उल्लेख कर मैं अपनी बात समाप्त करूंगा। हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक, डॉ. शंभुनाथ जब केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक थे, वे वाम विचारधारा के पक्षधर होते हुए भी निष्पक्ष दृष्टि संपन्न विद्वान थे और दूसरे स्वतंत्र विचारधारा वाले व्यक्तियों का सम्मान करते थे। 2008 में उनकी तीन खंडों में 'लघु हिंदी विश्वकोश' की परियोजना का मुझे प्रधान संपादक नियुक्त किया था। उनके रहते हुए काम द्रुत गति से चलता रहा परंतु उनके जाने के बाद काम रुक गया, पहले चार साल काम नहीं हुआ, फिर दो वर्षों के लिए प्रथम टैगोर प्रोफेसर के रूप में मैं एडिनबर्ग चला गया। वापस आने के बाद लगा कि यह परियोजना बंद होने वाली है। मैं भी असहाय सा महसूस कर रहा था, ऐसे समय डॉ. कमल किशोर गोयनका संस्थान के उपाध्यक्ष नियुक्त हुए और इस परियोजना को प्राथमिकता देते हुए काम को आगे बढ़ाने में मुझे पूरा सहयोग दिया। सरकारी बाधाओं को दूर किया और सबसे बड़ी बात 'लघु हिंदी विश्वकोश' का नाम बदलकर 'हिंदी विश्वकोश' रख दिया। इस बीच डॉ. नंद किशोर पांडेय ने निदेशक के रूप में पदभार ग्रहण किया और दूरदर्शितापूर्ण दोनों विद्वानों के सहयोग से परियोजना द्रुत गति से आगे बढ़ने लगी। सोलह खंडों में विश्वकोश प्रकाशित करने की योजना बनी और भूगोल और पृथ्वी तथा गणित खंड प्रकाशित हो गए। तीसरा विज्ञान खंड तैयार हो चुका है, प्रकाशन के लिए भेजना है। यह तीनों खंड कठिन थे और अब बहुत ही शीघ्रता से दो वर्षों में बाकी खंडों को प्रकाशित करने की योजना में डॉ. गोयनका और डॉ. पांडेय का भरपूर सहयोग मिल रहा है।

गोयनका मुझसे शायद दो साल छोटे हैं, मैं 83 वर्ष का हूं परंतु काम में मुझसे कहीं अधिक उनमे नवयुवकों जैसी स्फूर्ति है, कपड़े जूतों के मामले में काफी स्टाइलिस्ट हैं। दो जेबों वाले शर्ट पहनते हैं, रेडीमेड नहीं, दर्जी से सिलवाते हैं। एक दिन मैंने उनके विदेशी जूते देखे, मुझे उसकी कीमत का पता था। कहा, क्या बात है गोयनकाजी 11000/ रुपए वाले जूते पहन रहे हैं। गोयनका ने कहा, क्या करूं, मेरे अमरीका रहने वाले वाले लड़के ने जबरदस्ती खरीद दिया है। उनका सुखी परिवार है। गोयनका ऐसे ही बने रहें, यही कामना है।

□

अनन्य प्रेमचंद का असाधारण संपादन

विजय बहादुर सिंह

कोई एक आलोचक शोधकर्ता या संपादक अपना समूचा जीवन किसी एक लेखक को नए-नए ढंग से खोजने- पहचानने और इस तरह उसके दिग्विजयी महत्व को प्रतिपादित करने में लगा दे तो निश्चय ही किसी भाषा के लिए यह गौरव की बात है। रामविलास शर्मा ने निराला को लेकर भी अरसे तक कुछ ऐसी ही समर्पित साधना की और कवि की विवादपूर्ण उपस्थिति को सार्वभौमिक स्वीकृति में बदल दिया। प्रेमचंद को लेकर भी कोई कम विवाद नहीं है पर उनकी स्वीकृति इससे भी कई गुना अधिक है। निराला तो शायद उर्दू वालों के काम के न हों और मुस्लिम समाज में भी पढ़े समझें और माने न जाएं पर प्रेमचंद की व्याप्ति नजीर अकबराबादी की तरह दोनों ही समाजों में है। इसका एक कारण प्रेमचंद का उर्दू में लिखना भी है। शुरुआत ही उन्होंने उर्दू में की और बाद में वे दोनों की भाषा-शैलियों में लिखते रहे। उर्दू तो उनकी एक प्रकार से पहली जबान थी जो उन दिनों कायस्थों के लिए आफिसियल अनिवार्यता जैसी थी पर बाद में या कहें जल्दी ही प्रेमचंद को यह समझ में आ गया कि आगे का समय हिंदी का है और जो लोग आज उर्दू पढ़-लिख रहे हैं, कल वे भी हिंदी का ही उपयोग करने वाले हें।

प्रेमचंद उर्दू से हिंदी में कैसे-कैसे आए, क्योंकि हिंदी में उन्हें सर्वतोभद्र प्रतिष्ठा और लोकप्रियता मिलने लगी- इस किस्से को कमल किशोर गोयनका ने बहुत विस्तार के साथ प्रेमचंद रचनावली के पहले खंड में दिया है। प्रेमचंद कहानी रचनावली के कुछ छह खंडों में उनकी दो सौ अट्ठानवे कहानियों का वैज्ञानिक ढंग से संपादन करते हुए उन्होंने उन तीन कहानियों का उल्लेख भी किया है जो नहीं मिल सकीं। अनेक शोधकर्ताओं, आलोचकों, जीवनीकारों और अन्य स्रोतों और साधनों का उपयोग करते और पत्र-पत्रिकाओं का संदर्भ देते हुए गोयनका ने जैसा कठिन श्रम, दुर्लभ कर्तव्य, परायणता और असाधारण समर्पण का प्रमाण दिया है, वह श्लाघ्य ही नहीं, अनुकरणीय भी है। ऐसा करते हुए भी उन्होंने अपनी वह दृष्टि नहीं छोड़ी है जिसे कोई लेखक जीवन-मूल्य के रूप में अपने बौद्धिक जीवन की सक्रियता में प्राप्त करता है। इस तरह यह रचनावली न तो दृष्टिहविहीन लेखन है, न तर्कशून्य और अवैज्ञानिक। कदम-कदम पर इसमें अपनी बात को कहने का स्रोत और आधार ढूंढा गया है और प्रत्येक मुद्दे को

इतने तर्कपूर्ण ढंग से रखा गया है कि प्रेमचंद की ऐसी तस्वीर बनाते हैं, जो न तो देवता की है, न एक औसत आदमी की बल्कि एक ऐसे लेखक की है जो कठिन ऐतिहासिक बदलावों, सांस्कृतिक उलझावों और भीतर-बाहर के घातों-आघातों के बीच अपनी मूल्य-दृढ़ता, जीवन-आस्था, उत्कट देशप्रेम और जुझारू राष्ट्रीयता के चलते बनती है।

रचनावली के छहों खंड की लंबी भूमिकाओं से गुजरकर ही यह समझा जा सकता है कि प्रेमचंद होने के लिए जैसा कठिन जीवन-तप और जैसी असाधारण संवेदनशीलता को साधना पड़ता है। संपादक कमल किशोर गोयनका को इस संवेदनशीलता से गुजरते हुए कितने विवेक, कैसी अंतर्दृष्टि और तटस्थता या फिर भाव तादात्म्य से काम लेना पड़ा होगा, कितने आग्रहों-दुराग्रहों और पूर्वाग्रहों से जूझना पड़ा होगा, इसका अनुमान भी भूमिकाएं पढ़ते हुए हो ही जाता है। रचनावली में यद्यपि सिर्फ कहानियां हैं फिर भी लेखक प्रेमचंद का समग्र विकास यहां रेखांकित है जिसमें उनकी उर्दू-हिंदी कहानियों के अलावा, नाटक-उपन्यास संपादकीय, वैचारिक आलेख और कतिपय महत्वपूर्ण पत्रों के संदर्भ भी शामिल हैं। किसी लेखक की रचनावली तैयार करते समय किन-किन संदर्भों-स्रोतों तक जाना पड़ता है, कितनी परिस्थितियों में लेखक के तात्कालिक अंतर्द्वंद्वों की पहचान करनी पड़ती है, उस संदर्भ में निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए कैसी ईमानदारी और आत्मसंयम से काम लेना पड़ता है, इसे यहां कोई चाहे तो समझ सकता है।

रचनावली की भूमिका में सबसे पहला सवाल उर्दू-हिंदी का उठाया गया है। हमेशा की तरह यह सवाल यहां भी विवादास्पद ही रहा है। उर्दू-हिंदी अपनी व्याकरणिक संरचना में एक होकर भी क्यों जाति या धर्म की पहचानें बनाई जाती रही हैं, उसका प्रमुख कारण उनके पीछे काम करने वाली वह सांस्कृतिक चेतना है जिसके चलते यह झगड़ा हल होते दिखता नहीं। अगर यह निपट गया होता तो जो हिंदी या हिंदुस्तानी सामाजिकता बनती वह कुछ और ही होती। प्रेमचंद ने खुद भी दोनों समाजों को एक करने की खूब कोशिशें कीं, जिंदगी भर कीं, प्रगतिशील लेखक संघ भी बना किंतु स्थितियों में कोई खास बदलाव नहीं आया। परिणाम बस इतना जरूर हुआ कि अच्छा भला हिंदुस्तानी मनुष्य वर्गीय ढांचे में बंटकर आर्थिक मनुष्य भर बचा जबकि ऐसा होकर भी वह न अपनी जाति से मुक्त हो पाया न धर्म से। हिंदुओं-मुसलमानों के झगड़े होते ही रहे। प्रेमचंद निर्विवाद रूप से उर्दू वालों के बीच भी अपनाए गए किंतु उनकी हिंदू-पहचान के साथ क्या इसका कारण यह हो सकता है कि प्रेमचंद नास्तिक थे जबकि हिंदुत्व से कई गुना आस्तिक इस्लाम है? तब प्रेमचंद को लेकर क्यों कर सहृदयता दिखाई जा सकती थी? बाद में तो उर्दू-हिंदी लगभग दो धर्मों की ही भाषाएं मानी जाने लगी। आजादी के बाद कई प्रदेशों में उर्दू को दूसरी राजभाषा का भी दर्जा दे दिया गया और इस तरह दोनों समाजों की दूरियां बढ़ाई जाने लगीं। रचनावली में भाषाओं की राजनीति का झगड़ा तो नहीं उठाया गया है फिर भी यह तो कहा ही गया है कि प्रेमचंद के उर्दू लेखन में हिंदू मान्यताएं स्वाभाविक रूप से व्यक्त होती थीं। अतः उन्हें वह मान्यता वहां मिल भी कैसे सकती थी जो इस्लामी मान्यताओं वाले लेखक को सहज ही मिल जाती थी। प्रेमचंद उर्दू लिखते-लिखते हिंदी में क्यों कुछ

अधिक ही सक्रिय हुए इसका कारण उनकी वह व्यापक स्वीकृति थी जो हिंदी समाज उन्हें दे रहा था। एक कारण आर्थिक भी था कि हिंदी का पाठक समाज अधिक विशाल था।

उर्दू से हिंदी में आने की दिक्कतें कुछ कम नहीं थीं। प्रेमचंद की ग्राम बोली तो वही थी, कबीर ने जिसे पुरबिया कहा है। कुछ लोग इसे भोजपुरी कहते रहते हैं पर बनारस और जौनपुर आदि की बोली अवधी और बुंदेलखंडी के बीच ग्वालियरी को समझना पड़ेगा। जहां भी दो बोलियां मिलतीं और अलग होती हैं, वहां यह स्थिति बनती ही है। यानी कि ग्वालियरी की तरह बनारसी पर उनकी स्कूल भाषा तो उर्दू थी इसलिए उर्दू में लिखना आसान था। गोयनका ठीक लिखते हैं कि उर्दू में महारत के चलते वे सहजता महसूस करते थे और जैसा कि प्रेमचंद ने स्वयं मंजूर किया और लिखा है कि हिंदी में तो बस एक कोशिश भर है। अपने मित्र दयानारायण निगम को पत्र लिखा-'हिंदी लिखनी तो आती नहीं मगर कलम कुछ तोड़-मोड़ दिया है।' पर बाद में वे हिंदी में भी महारत हासिल करके सहज होते चले गए।

प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'परीक्षा' कानपुर के 'प्रताप' में अक्टूबर, 1914 में छपी जबकि उनका लेखन उर्दू में 1908 से ही शुरू हो चुका था। गोयनकाजी के अनुसार प्रेमचंद को हिंदी आती थी पर कौन-सी? बोलचाल वाली, रोजमर्रा वाली। रचनात्मक और सर्जनात्मक हिंदी के लिए तो उन्हें कुछेक साल साधना करनी ही पड़ी। लोगों से मदद भी लेनी पड़ी। गोयनकाजी इस पड़ताल में नहीं गए।

रचनावली में दूसरा सवाल हिंदी की आधुनिक कहानी को लेकर उठाया गया है। मुझे भी लगता है कि यह एक जायज सवाल है और इसका उत्तर भी संपादक ने यह लिखकर ठीक ही दे दिया है कि प्रेमचंद के सामने सबसे बड़े सवाल स्वाधीनता और राष्ट्रीय चेतना के थे। उन बुनियादी इनसानी मूल्यों के थे जिनकी जड़ें इस देश की परंपराओं में गहरी थीं और जिनके बल पर ही स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी जा सकती थी। प्रेमचंद इस रूप में एक साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी विरोधी लेखक के रूप में अपना विकास जता रहे थे और इसी के चलते वे सत्ता की निगाह में आ भी चुके थे। यह सोचा जा सकता है कि क्यों उन्हीं की कहानियों से ब्रिटिश राज्य को तकलीफें महसूस हुई?

आज इस सवाल पर कुछ ज्यादा ही ठहरकर सोचने की जरूरत है कि लेखक की उपस्थिति सत्ता और समाज के लिए क्यों कोई मायने नहीं रख पा रही है? लिखना भी जैसे लेखक का कर्मकांड भर क्यों बचा है? प्रेमचंद में आखिर वह कौन-सी आग थी जिसकी धधक से न केवल सत्ता, बल्कि इस देश के पंडे-पुजारियों की भौंहें भी तन जाती थीं। क्यों प्रेमचंद ऐसे लोगों के हमलों के निशाने में आते थे? क्यों 'हंस' को जमानतें देनी पड़ती थीं? यह भी सोचने की बात है कि क्यों मुक्तिबोध यह लिख रहे थे कि अब अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे। क्या वे यह समझ रहे थे कि सब लेखक सिर्फ सुविधाजनक सच लिख रहे हैं? मुक्तिबोध क्या प्रेमचंद वाली राह के समर्थक थे और तमाम तरह के संघर्षों को लेखक की पहचान मान रहे थे, क्या यह उन्होंने प्रेमचंद से ही तो नहीं सीखा था? प्रेमचंद क्यों किसी भी तरह के समझौता के लिए

तैयार नहीं थे? क्यों उन्हें अपने देश और लोगों पर अपार भरोसा था? क्यों वे दोनों ही समाजों के बीच बराबरी की अपनी उपस्थिति जताते रहे थे?

इसी से जुड़ा एक सवाल यह भी है कि प्रेमचंद क्यों पश्चिमी ढंग की जीवन-शैली और आधुनिकता के तीखे विरोधी और आलोचक थे। क्या वे भी गांधी की तरह यह मानते थे कि पश्चिमी सभ्यता शैतानी है और अपने से कमजोर समूहों को दबाकर उनके श्रम की चोरी कर स्वयं का महल खड़ी करती हुई दूसरों का सर्वनाश करके ही दम लेती हे। उस सभ्यता में उदात्त और करुणा से ओत-प्रोत मनुष्यता के लिए कोई जगह नहीं है। वह हिंसा, अविरत भोग और अन्यों के विनाश में ही विश्वास करती है। उसमें भारत की तरह दया, क्षमा और करुणा के तत्व नहीं हैं?

रचनावली में यह भी सवाल उठाया गया है कि क्या प्रेमचंद भारतीय समाज की तात्कालिक संरचना से संतुष्ट थे। उत्तर में कहा गया है कि ऐसा बिलकुल नहीं है। वे स्त्रियों, दलितों की स्थिति को लेकर बेहद संवेदनशील थे और उनकी कहानियों में इसके ढेरों प्रमाण मौजूद भी हैं। वर्ण-व्यवस्था, जाति-पांत ब्राह्मण-शूद्र और अस्पृश्य के यथार्थ को लेकर भी प्रेमचंद की विवेक-बुद्धि की छटपटाहट और व्याकुलता देखी जा सकती है। वे मनुष्य की समानता और सामाजिक न्याय में विश्वास रखने वाले लेखक थे। ऐसा न होता तो वे तमाम ऐसे शास्त्रीय साहित्यिक निर्देशों का ही पालन करके रह जाते जिसमें कथा-नायक कोई अज्ञात कुलशील वाला बन ही नहीं सकता। रंगभूमि में सूरदास और गोदान में होरी को कथा-नायक बनाकर या मंत्र कहानी में डॉ. चड्ढा के मुकाबले भगत को नायक बना प्रेमचंद ने अपनी उस क्रांतिकारी ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय दे दिया जो समूचे जमाने के लिए अवश्यंभावी थी।

आजकल क्लासिक की बहुत बात की जाती है। पर प्रेमचंद का लेखन या तो ऐंटी क्लासिक माना जाएगा या फिर नए जमाने का नया क्लासिक। झख मारकर हमें मंजूर करना होगा कि प्रेमचंद नए क्लासिक की मर्यादाएं रच रहे थे, जिसमें उच्च कुलीन राजवंशों के विरुद्ध अज्ञात किंतु बेहद मानवीय वह लोक समाज नायक होगा जिसमें हल्कू, हादिम, घीसू, माधव आते हैं।

यहीं गल्प और कहानी को लेकर भी प्रेमचंद की दृष्टि और सोच पर विचार करने की जरूरत है। रचनावली खंड चार के पृष्ठ ग्यारह पर प्रेमचंद के हवाले से यह दर्ज किया गया है कि 'प्राचीन साहित्य में दृष्टांतों और रूपकों से उपेदश का काम लिया गया जाता था और वे ही उस समय की गल्पें थीं, परंतु वर्तमान आख्यायिका का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रसास्वादन कराना है और उसका आधार कोई-न-कोई दार्शनिक तत्व या सामाजिक विवचेना अवश्य होता है। प्रेमचंद ने आधुनिक कहानी के स्वरूप को उद्घाटित करते हुए लिखा कि ऐसी कहानी जिसमें जीवन के किसी अंग पर प्रकाश न पड़ता हो, जो सामाजिक रूढ़ियों को दृढ़ न करे, या जो मनुष्य में कुतूहल का भाव न जागृत करे कहानी नहीं है। भारत और यूरोप की जीवन एवं साहित्य दृष्टि के अंतर को भी स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि यूरोप की दृष्टि सुंदर पर और भारत की सत्य पर है। हम योरोप के समान मनोरंजन के लिए गल्प नहीं लिखते, नीति और धर्म हमारे

जीवन के प्राण हैं। हम पराधीन हैं, लेकिन हमारी सभ्यता पाश्चात्य सभ्यता से कहीं ऊंची है। इसके आगे वे एक यह बात भी लिखना नहीं भूलते कि साहित्य में भी हमें अपनी आत्मा की रक्षा करनी होगी।

आज यह कहने की जरूरत नहीं कि स्वयं प्रेमचंद ने इस आत्मा की रक्षा की या नहीं। विश्व-लेखक वे शायद न भी माने जाएं पर उनसे बड़ा भारतीय लेखक भला कौन माना जाएगा। 'वागर्थ' के अपने एक संपादकीय में मैंने लिखा था कि वे हमारे आधुनिक साहित्य के गांधी हैं। अब तो यह भी कहना चाहता हूं कि उनके लेखन में नवजागरण की अंगड़ाई थी, भगत सिंह, आजाद जैसे अनेक क्रांतिकारियों का बलबला था तो गांधी जैसी करुणा और उदारता थी। इसमें भी क्या शक कि वे एक चिंतनशील गतिशील स्वप्नदर्शी थे और वही सपने देखा और संजोया करते थे जिसे लोकतांत्रिक भारत देख रहा था। वे कोरे हवाई सपने नहीं थे। उनका साहित्यिक आदर्शवाद यही था-ठीक कवि पॉश की तरह।

वे कितने यथार्थवादी थे, कितने प्रगतिशील या वादी रचनावली की भूमिका में यह सवाल भी उठाया गया है। खंड पांच के पृष्ठ नौ पर प्रेमचंद का लिखा 17 दिसंबर 1930 का एक पत्र है जैनेंद्र के नाम। उसकी पंक्तियां हैं- 'रियलिस्ट हममें से कोई एक भी नहीं है। हममें से कोई भी जीवन को उसके यथार्थ रूप में नहीं दिखाता, बल्कि उसके वांछित रूप में दिखाता है?

इसी पृष्ठ पर वे जैनेंद्र से बात करते हुए कहते हैं कि 'रवींद्र और शरत् दोनों महान हैं, पर हिंदी के लिए क्या यही रास्ता है। शायद नहीं हिंदी राष्ट्रभाषा है, काठिन्य भी चाहिए। मेरे लिए तो यह राह नहीं ही है।'

प्रेमचंद का यह 'काठिन्य' क्या था और है, इसे गहरे जाकर समझने की जरूरत है। कहीं इसका अर्थ मानव-सत्य के लिए कठिन संघर्ष और तप तो नहीं। परिश्रम और पसीने की मांग तो नहीं। या फिर इसका अर्थ किसी एक 'वाद' या 'विचारधारा' का गुलाम बनकर उसकी अंधपूजा करना और अन्य उपस्थित सत्यों को नकारना और उन्हें मिथ्या साबित करना है।

संपादक ने रचनावली की भूमिका में बार-बार 'भारतीयता' शब्द का प्रयोग किया है और 'भारतीय आत्मा' जैसे मुहावरों का भी स्वभावतः यह सब प्रेमचंद के संदर्भ में ही है। किसी भी विचारशील और संवेदनशील लेखक के लिए यह एक ऐसा सवाल है जिससे मुंह नहीं चुरा सकता। इतना आसान भी नहीं है जिसका वह रटा-रटाया या सधा-बंधा कोई उत्तर दे सके। एक ओर वह कट्टरवाद है जिसे हम जड़तावाद भी कह सकते हैं, दूसरी ओर वह अंध पश्चिमवाद है प्रेमचंद जिसके कठोर आलोचक थे। तब भी हम यह नहीं भूल सकते कि प्रेमचंद ने रूसी क्रांति को लेकर अपनी उत्फुल्लता प्रदर्शित की थी, तथापि हिंसा में उनका विश्वास नहीं था। उस हिंदू अंधविश्वासवाद में भी बिहार के भूकंप के समय जैसा गांधी ने किया था। गांधी ने कहा था, यह हमारे पापों का परिणाम है। प्रेमचंद ने कहा यह भूगर्भ की वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम है। स्पष्टतः वे गांधी को आधुनिक भारत का रहनुमा मानते हुए भी उनके अंधभक्त नहीं हैं। सच्चा लेखक कभी किसी एक व्यक्ति, वाद या विचारधारा का भक्त हो कैसे सकता है? प्रेमचंद,

निराला, नागार्जुन, भवानी प्रसाद मिश्र का लेखन इसका गवाह हे। यह सवाल उसकी उस उदात्त मानवीय दृष्टि से हल होगा कि लोक में वह कैसी व्यवस्था और कैसे चरित्रों की वांक्षा करता है। प्रगतिशीलता, आधुनिकता और भारतीय के प्रश्न उसकी इसी व्यवस्था कल्पना और मानवीय दृष्टि से हल होंगे न कि किसी एक प्रायोजित विचारधारा और उसके राजनीतिक आरोपण से। भारत जैसे अति प्राचीन देश की भारतीयता केवल हिंदू भारतीयता इसलिए नहीं हो सकती कि यहां हमेशा से विश्वास बहुलता और बहुजातीयता रही है। राष्ट्रीय एकता और उदात्त मानवीय चेतना के वे कौन से ऐसे सामूहिक विश्वास और आधार होंगे, नए-पुराने के कौन से सम्मिलन बिंदु होंगे, किन विचारों या बातों से विघटन और हिंसा उपजेगी, किन सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक उद्यमों से आधुनिक भारतीय समाज अधिकाधिक पास आएगा-प्रेमचंद जीवन भर अपनी कहानियों में यही कोशिशें करते रहे। यह ध्यान रखना होगा कि माफ उन्होंने किसी एक को भी नहीं किया, वह चाहे गांधी हों या लेनिन, पर मानवता को अन्यायमुक्त और उदात्त बनाने वाली किसी भी शक्ति चाहे वह विचार हो या व्यक्ति के प्रति प्रेमचंद दिल, दिमाग और आँखें खोले खड़े हैं। प्रश्न विचार और व्यक्ति का नहीं, इनसानी' मूल्यों का है। वे ही मूल्य जिन्हें गालिब आदि ने 'इंसा' होना कहा है। प्रेमचंद इस संदर्भ में न हिंदू को माफ करते हैं, न मुसलमान या ईसाई को। उनकी भारतीयता के मूल में इन सबों की उदात्त मानवीय इच्छाएं और स्वप्न तो शामिल हैं पर इनकी अपनी सांप्रदायिकताएं, स्वार्थ और सत्ता या व्यवस्था राजनीति तो कदापि नहीं। याद करें तो ठीक वही कबीर वाला 'रास्ता' चौराहे पर लुकाठी लिए खड़ा, अपने मठ और मंदिर को दरकिनार करता हुआ। प्रेमचंद के लेखक को इससे कम तो कुछ मंजूर ही नहीं।

संपादक गोयनकाजी ने प्रेमचंद की भारतीयता के संदर्भ में यह रेखांकित किया है कि 'गांधी भी विवेकानंद का ही भारत चाहते हैं' यानी कि भारत का ग्राम-जीवन और उसकी बुनावट वाला भारत। यू.आर. अनंतमूर्ति जैसे लेखकों को इसके समर्थन में उद्धृत करते हुए गोयनकाजी लिखते हैं प्रेमचंद स्वयं इसी मत के हैं, इसलिए वे भारतीय जीवन के केंद्र गांवों के जीवन का पाठकों को जीवंत साक्षात्कार कराते हैं और भारतीय आत्मा की रक्षा करते हैं। गोयनका का यह मत मेरी समझ से अतिवादी है। हममें से कोई भी यहां तक कि प्रेमचंद, अनंतमूर्ति, स्वयं विवेकानंद और गांधी-सभी शहरों में रहते आए, यह अलग बात है कि शहरों में रहते हुए, मनुष्यता की तलाश के दौरान हमें उस ग्रामीण जीवन-प्रणाली की तरफ जाना पड़ा जिसका शहरों में अभाव दिख रहा था। पर शहर एकदम खाली थे, इनसानी मूल्यों से ऐसा भी कैसे कहा जा सकता है? सवाल यह भी कि होरी का बेटा गोबर किन जरूरतों के चलते शहर की ओर मुंह करता है?

मुझे लगता है, चाहे अयोध्या हो, चाहे लंका, हस्तिनापुर हो या इंद्रप्रस्थ भारतीय चिंतन और जीवन-स्वप्न तपोवनों, गांवों से होकर शहरों तक के जीवन में निरंतर विकसित होते और संवरते रहे हैं। रामायण-महाभारत शहरी जीवन कथाएं हैं इसलिए प्रश्न भौगोलिक नहीं, सांस्कृतिक है। आज सांस्कृतिक जीवन आर्थिक और राजनीतिक मूल्यों की चपेट में आकर

कमतर हो चला है। प्रेमचंद का समूचा प्रयास अपने लेखन में इसी मूल्यपरक और मानवीय जीवन-मर्यादाओं की तलाश में साथ ही रचना में जुटा है। उनके लिए प्रश्न गांधी, मुहम्मद साहब, विवेकानंद, राम और कृष्ण का नहीं है, मार्क्स और लेनिन का भी नहीं। किसी सचेत और संवेदनशील सर्जक का हो भी नहीं सकता मधुमक्खी की तरह या फिर महासागर की तरह वह जीवन के हर सच को एकत्र करता रहता है और फिर अपना एक ऐसा मधुकोश बनाता है जो किसी एक के भी लिए नुकसानदेह नहीं होता, उसका स्वाद सबके लिए एक जैसा होता है। यहां संकरे और कठमुल्ले विभाजन बेमानी साबित होते हैं। विचार करने की बात है कि विवेकानंद और एक हद तक गांधी भी हिंदुओं के आदमी मान लिए गए, कठमुल्ले मुसलमानों ने भी प्रेमचंद को अपना मानने से इनकार कर दिया। प्रेमचंद को इसका कोई कम दुःख भी नहीं था। फिर भी वे आहत होकर भी राष्ट्रीय समरसता के रास्ते चलते रहे। क्या मीर-गालिब या मंटो के प्रति हिंदुओं का आकर्षण कम है? इसीलिए समझ लेना चाहिए कि साहित्य के वे बंटवारे कभी भी संभव न हो सकेंगे। प्रेमचंद दोनों समाजों के लेखक अगर न होते तो उर्दू-हिंदी में बराबरी से संप्रेषित करने की व्याकुलता में क्यों रहते। काश! प्रेमचंद के बाद भी ये कोशिशें जारी रहतीं तो संभव था, आजादी बाद की परिस्थितियों में थोड़ा बदलाव जरूर आता। गांव यदि इतने स्वर्ग थे तो सद्गति, पूस की रात और कफन का सच क्या है?

बहरहाल प्रेमचंद की समग्र कहानियों का सिर्फ तीन को छोड़कर छह खंड़ों में कालक्रमानुसार संपादन कर गोयनका ने स्वतंत्र रूप से अपनी समूची प्रक्रिया पर एक पृथक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। इन दोनों कामों को देख लेने पर प्रेमचंद की ऐतिहासिक कथा-साधना और उनके संपादक कमल किशोर गोयनका के काम के महत्व को समझा जा सकता है। निश्चय ही यह एक ठोस वस्तुपरक, अकादमिक काम नहीं है। इसमें संपादक की आलोचक-मेधा भी साथ-साथ लगी हुई है इसलिए तथ्यों और तारीखों के बावजूद यहां विचारों और आलोचकीय दृष्टि की सक्रियता को नजरंदाज करना कठिन होगा। गोयनका जाने-अनजाने हमें प्रेमचंद के कथा-देश में आने के लिए प्रेरित भी करते हैं साथ ही वैचारिक दृष्टि से उत्तेजित और आंदोलित भी करते चलते हैं। अपने तर्कों और विश्वासों को रखते हुए वे हमारे लिए कतिपय चुनौतियां भी पेश करते चलते हैं। इस दृष्टि से उनका यह काम कहीं से भी नजरंदाज किया जाने लायक नहीं है। कोई लेखक अगर ऐसे किन्हीं गंभीर मुद्दों पर हमें आंदोलित और बहस के लिए आमंत्रित करता है तो यह उस लेखक के लिए ही नहीं, हमारे लिए भी महत्वपूर्ण है। इस अर्थ में संपादक गोयनका बधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

इसमें क्या शक कि अब इस आधार पर प्रेमचंद के बहाने, ढेर सारी बहसें नए सिरे से उठ खड़ी होंगी। कैसे कोई प्रेमचंद बनता है, समाज, धर्म, राजनीति को लेकर किसी लेखक की दृष्टि बनती है, क्या कोई लेखक किसी एक स्थापित या प्रचारित वाद या सत्य को पकड़कर अनुभवों के विभिन्न बदलावों के साथ न्याय कर सकता है, क्या भारतीय समाज एक जातीय एकधर्मी, एक विश्वासी समाज है या उसमें विश्वासों और धर्मों की बहुलता है और इस विविधता के बीच लेखक के रूप में बने रहने के लिए कैसी व्यापक संवेदनशीलता, कितना गहन

मानवबोध, कैसी गतिशीलता और उदारता अपेक्षित है, इसे बखूबी यहां कई-कई ढंग से समझा जा सकता है। यह भी कि किसी लेखक की प्रगतिशीलता का ठीक-ठीक मतलब क्या होता है। क्या उसकी प्रगतिशीलता बुनियादी मानव मूल्यों को झुठलाती हुई चलेगी? क्या उसकी पक्षधरता का अर्थ सिर्फ राजनीतिक या आर्थिक होगा या फिर सामाजिक और सांस्कृतिक आधारों पर भी उसे अपने साहित्य-विवेक को जांचना तौलना पड़ेगा आदि-आदि।

संपादक गोयनका ने कठिन मेहनत, तन्मयकारी लगन और साधारण निष्ठा के बल पर उर्दू-हिंदी दोनों की भाषाओं की कहानियों को छह खंड़ों में कालक्रमानुसार प्रस्तुत करते हुए जिस संपादक धर्म का उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह अनुकरणीय है। कहा जा सकता है कि उनका जीवन प्रेमचंद में डूबा हुआ है और खुद प्रेमचंदमय हो गए हैं। ऐसी अनन्यता अपूर्व है।

□

साधक-समीक्षक डॉ. गोयनका

प्रेमशंकर त्रिपाठी

मुंशी प्रेमचंद के वृहत् रचनात्मक संसार का अनुसंधान, विश्लेषण-विवेचन तथा मंथन करने वाले डॉ. कमल किशोर गोयनका सही अर्थों में शोध-साधक हैं। उन्होंने अपने जीवन के लगभग 50 वर्षों का समय कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद को समर्पित कर उनके जीवन और साहित्य के अनछुए पक्षों एवं नवीन गवाक्षों का उद्घाटन किया है। डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद के अज्ञात-अप्राप्य साहित्य की खोज कर उसे प्रकशित करने की भी महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किया है- इस अप्रतिम अवदान उन्हें देश-विदेश में 'प्रेमचंद विशेषज्ञ' के रूप में जाना-पहचाना जाता है।

प्रेमचंद साहित्य के अन्वेषण, संरक्षण और प्रकाशन को जीवन का ध्येय बनाकर डॉ. गोयनका ने आलोचनात्मक विवेक एवं शोध-समन्वित वैज्ञानिक दृष्टि से प्रेमचंद की वास्तविक मूर्ति का उद्घाटन किया है। उन्होंने मार्क्सवादी एकांगी दृष्टि से किए विश्लेषण एवं भ्रामक निष्कर्षों को तर्क के साथ खंडित किया है। वे देश के ऐसे शोधकर्त्ता विद्वान के रूप में परिगणित किए जाते हैं, जिन्होंने प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को कालक्रमानुसार हमारे सामने प्रस्तुत कर हिंदी एवं भाषा साहित्य को समृद्ध किया है। वे सही अर्थों में साधक-समीक्षक हैं।

कमल किशोरजी ने प्रेमचंद को वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, और टैगोर की परंपरा का साहित्यकार मानते हुए यह निष्कर्ष प्रदान किया है कि वे भारतीयता, भारतीय विवेक और राष्ट्रीय अस्मिता के रक्षक मानवीयता के संस्थापक, लोकमंगल के गायक भारतीय साहित्यकार हैं।

डॉ. गोयनका को प्रेमचंद पर पी-एच.डी. एवं डी.लिट् मर्मज्ञ के साथ 'प्रेमचंद के बॉसवेल' के रूप में भी ख्याति मिली है। अंग्रेजी साहित्य के प्रख्यात रचनाकार डॉ. सैमुअल जॉनसन की जीवनी-लेखक के रूप में जेम्स बॉसवेल की सारे विश्व में प्रतिष्ठा है। जॉनसन की जीवनी अंग्रेजी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट जीवनी मानी जाती है। कमल किशोरजी प्रेमचंद केंद्रित व्यापक अवदान को ध्यान में रखते हुए हिंदी के प्रतिष्ठित कथा-समीक्षक डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर ने उन्हें 'प्रेमचंद का बॉसवेल' कहकर सम्मानित किया। रोचक तथ्य यह भी है कि मूर्द्धन्य साहित्यकार विष्णु प्रभाकर ने इसमें संशोधन प्रस्तुत करते हुए डॉ. गोयनका को 'प्रेमचंद का

गोयनका' कहने का परामर्श दिया। कुछ विद्वान उन्हें प्रेमचंद का चलता-फिरता कोश कहते हैं, तो कुछ उनकी निष्ठा को देखते हुए उन्हें 'प्रेमचंद गोयनका' कहना उपयुक्त समझते हैं।

अपनी अदम्य क्षमता तथा समर्पित साधना के बल पर कई व्यक्ति किसी संस्था-विशेष का पर्याय बन जाया करते हैं, परंतु किसी मूर्द्धन्य रचनाकार के पर्याय बन जाने का उदाहरण कम ही मिलता है। डॉ. गोयनका ने अनथक परिश्रम, दीर्घ-साधना तथा निष्पक्ष समीक्षा-पद्धति के द्वारा प्रेमचंद का पर्याय बनने का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में रेखांकित करने योग्य है, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की टिप्पणी-'प्रेमचंद विश्वकोश' बिना किसी सरकारी अनुदान और सहायता के एक अकेले आदमी के नौ-दस वर्षों के घनघोर श्रम और लगन का परिणाम है, जिसका नाम है कमल किशोर गोयनका। जिन पर प्रेमचंद को दक्षिणपंथी दृष्टि से प्रस्तुत करने का आरोप प्रेमचंद के वामपंथी समर्थक लगाते रहे हैं, पर इस सबसे अलग हटकर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कोश जानने, न जानने योग्य ब्यौरों से भरपूर एक महत्वपूर्ण कार्य है, जिससे प्रेमचंद पर अपनी-अपनी दृष्टि से काम करने वालों को भरपूर सहायता मिल सकती है।'

सर्वेश्वर आगे लिखते हैं- 'गोयनका ने बड़ी खोजबीन के साथ दुर्लभ तथ्य, दस्तावेज आदि एकत्र किए हैं और उन्हें तबीयत से लगा दिया है। ऐसा काम किसी लेखक पर हिंदी में पहली बार हुआ है। इस तरह यह ईंट, रोड़े से हटाकर सख्त मिट्टी को तोड़कर समतल भुरभुरी कर एक खेत बनाने के काम जैसा महत्वपूर्ण है, जिसमें प्रेमचंद के आज के और आगे आने वाले अध्येता अपनी-अपनी नजर के बीज डालकर अपनी वंछित फसल उगा सकते हैं और फल-फूल बांट सकते हैं। गोयनका ने प्रेमचंद जैसे देहाती लेखक के लिए ठेठ देहाती काम किया है, खेत तैयार करने का; और उसके लिए जो कड़ी धूप सही है, मेहनत की है और पसीना बहाया है, उसका मूल्य आगे फसल उगाने वाले ज्यादा आसानी से पहचान सकेंगे।

डॉ. गोयनका के शोधकार्य तथा उनके अवदान पर यह परिपूर्ण टिप्पणी है। गोयनका के शोध निष्कर्षों ने शिविरबद्ध आलोचना के घटाटोप को तिरोहित करने का बहुमूल्य कार्य किया है। प्रेमचंद को 'यथार्थवादी कला-सम्राट' सिद्ध करने के प्रगतिशील मार्क्सवादी खेमे के सुनियोजित प्रयासों को चुनौती देते हुए गोयनकाजी ने प्रेमचंद का सांगोपांग विवेचन किया और प्रगतिशीलता के नाम पर एक खेमे-खूंटे एवं घेरे में बंधे-घिरे प्रेमचंद को उन्मुक्तता प्रदान की। तथाकथित तरक्कीपसंद (प्रगतिशील) लोगों पर व्यंग्य करते हुए कवि डॉ. उर्मिला ने लिखा है-

अपने घेरे में बंद है साहेब,
वो तरक्की पसंद है साहेब
गांव से उसको सख्त नफरत है
फिर भी वो प्रेमचंद है साहेब।

यों तो कलकता विश्वविद्यालय में हिंदी (एम.ए.) के विद्यार्थी के रूप में प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन क्रम में डॉ. गोयनका के नाम से मैं परिचित था, परंतु उनके अनुसंधान-कौशल तथा उनकी शोध-निष्ठा की प्रतीति तब हुई, जब मैंने कथाकार अमृतलाल नागर के उपन्यासों पर

पी-एच.डी. उपाधि के लिए काम करना शुरु किया। मेरे शोध-निर्देशक गुरुवर विष्णुकांत शास्त्री यदा-कदा कमल किशोर गोयनकाजी के कार्य तथा उनके अनुसंधानपरक श्रम की चर्चा किया करते थे। डॉ. गोयनका की कृतियों को देखने का मौका तो तब तक मिला था, परंतु उनसे मिलने का अवसर नहीं मिल सका था। यह सुयोग सुलभ हुआ 1995 के जून-जुलाई महीने में जब वे किसी आयोजन के सिलसिले में कलकत्ता पधारे। आदरणीय विष्णुकांतजी के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने के बाद मैं जुगलकिशोर जैथलिया के साथ उनमें मिलने गया था। प्रेमचंद पर उनके द्वारा किए गए कार्यों तथा निष्कर्षों को लेकर मेरे मन में कुछ प्रश्न थे। मैंने सहज भाव से कुछ प्रश्न पूछे, तो कुछ प्रश्नों में मैंने अपने संदेहात्मक लहजे को भी प्रकट किया। डॉ. साहब ने बड़ी साफगोई से तर्कपूर्ण उत्तर देकर मेरी जिज्ञासा शांत की। व्यक्तित्व की आत्मीयता- सहजता के साथ विषय की सम्यक् जानकारी तथा आत्मविश्वास ने मुझे पहली ही मुलाकात में प्रभावित कर लिया। यह साहित्यिक बातचीत 'एक साक्षात्कार' के रूप में अगले हफ्ते कलकत्ते के विशिष्ट दैनिक 'जनसत्ता' में प्रकाशित-प्रशंसित हुई। मेरा एक सीधा प्रश्न था- 'प्रेमचंद का मार्क्सवादी मूल्यांकन इस महान कथाकार के बारे में हमारे ज्ञान की परिधि को विस्तृत करता है। आपको यह मूलयांकन स्वीकार क्यों नहीं है?'

गोयनकाजी का जवाब यथावत् प्रस्तुत है- 'कटघरे में, मार्क्सवाद जैसे वाद में सीमित करके प्रेमचंद की समग्र साहित्यिक चेतना और उनकी संपूर्ण भारतीयता को खंड-खंड कर दिया गया है। साहित्य का मूलभूत सिद्धांत है कि रचनाकार ही पहचान समग्रता में ही हो सकती है; इसे टुकड़ों में और राजनीतिक वादों या स्वार्थों में बांटकर नहीं देखा जा सकता।'

उन्होंने आगे कहा- 'मैं प्रेमचंद के मार्क्सवादी मूल्यांकन का विरोधी नहीं हूं, लेकिन यह भी स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हूं, कि केवल वही मूलयांकन सत्य है। जो भारतीय चिंतन के बारे में थोड़ा-बहुत भी जानते हैं, वे सत्य के विविध रूपों और कोणों पर विचार करते हैं, पर दुर्भाग्य यह है कि मार्क्सवाद को सर्वसत्य मानने वाले उपासक इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते और कूप-मंडूक बने रहते हैं।'

डॉ. कमल किशोर गोयनका का जन्म 11 अक्टूबर, 1938 को बुलंदशहर (उ.प्र.) में हुआ। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिंदी) एवं पी-एच.डी. तथा रांची विश्वविद्यालय से डी. लिट् की उपाधि प्राप्त की। डॉ. गोयनका दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतर्गत डॉ. जाकिर हुसैन स्नातकोत्तर (सांध्य) महाविद्यालय के हिंदी विभाग के सेवानिवृत्त प्राध्यापक हैं। संप्रति केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के उपाध्यक्ष के रूप में वे उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। उनकी विद्वता एवं असाधारण क्षमता से विभिन्न साहित्यिक सांस्कृतिक संस्थान लाभान्वित हो रहे हैं।

प्रेमचंद के अतिरिक्त अभिमन्यु अनत, बच्चन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, मन्मथनाथ गुप्त, प्रभाकर माचवे, महात्मा गांधी, यशपाल, मंजुल भगत, विष्णु प्रभाकर, बालशौरि रेड्डी पर भी गोयनका ने पुस्तकें लिखी हैं। प्रवासी साहित्य पर उनके द्वारा किया गया कार्य रेखांकित करने योग्य है। अदम्य निष्ठा तथा साहित्य के प्रति अनन्य अनुराग उनके साहित्यिक-सामाजिक व्यक्तित्व के अंग हैं।

मुंशी प्रेमचंद पर 3 दर्जन से अधिक पुस्तकों तथा लगभग 350 शोधपूर्ण आलेखों के कारण उनकी सर्वाधिक कीर्ति है। प्रेमचंद के लुप्त एवं अज्ञात साहित्य का अनुसंधान एवं उनका प्रकाशन हो या प्रेमचंद की कालक्रमानुसार जीवनी का लेखन- उनकी प्रतिभा एवं गवेष्णात्मक तत्परता की सभी ने सभी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। मार्क्सवादी आलोचक रमेश कुंतल मेघ लिखते हैं 'आपने जो कार्य किया है, उससे प्रेमचंद के आकाईव्ज पीढ़ियों के लिए सुरक्षित हो गए हैं। मैं आपकी मेहनत, लगन और शोध-साधना का सदैव से कद्रदान रहा हूं, बाावजूद इसके कि हमारी विचारधारा परस्पर विरुद्ध है।'

प्रेमचंद केंद्रित उनकी प्रमुख कृतियां हैं- प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान, प्रेमचंद कुछ संस्मरण, प्रेमचंद अध्ययन की नई दिशाएं, प्रेमचंद विश्वकोश (खंड-1,2) प्रेमचंद का अप्राप्य सहित्य, प्रेमचंद के नाम पत्र, प्रेमचंद पत्र-कोश, प्रेमचंद-संपूर्ण दलित कहानियां, प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन, नया मानसरोवर (8 खंड), प्रेमचंद-अध्ययन की नई दिशाएं। 1974 से लेकर आज तक उनका लेखन प्रकाशन का क्रम अनवरत जारी है। प्रेमचंद विश्वकोश के 3 खंड प्रकाशनाधीन हैं। कथा सम्राट पर केंद्रित हुई कृतियां शीघ्र ही पूर्ण होकर प्रकाशित होने के क्रम में है, जिनमें 'प्रेमचंद और भारतीयता' शीर्षक महत्वपूर्ण पुस्तक भी है। प्रेमचंद पर गोयनकाजी के कार्य पर 'हंस' संपादक राजेंद्र यादव ने लिखा-'गोयनका ने सचमुच बड़ी मेहनत और परेशानियां उठाकर उनकी (प्रेमचंद की) रचनाओं को खोजा और सुलभ कराया है। हजारों पृष्ठों की अब तक अनुपलब्ध सामग्री को समाने लाने में निश्चय ही उन्हें ऐसी भी चीजें मिली हैं, जो प्रेमचंद की स्थापित तस्वीर का समर्थन नहीं करतीं।'

वे आगे कहते हैं- 'भारतीय साहित्यकारों की जीवनी पर बहुत ही कम काम हुआ है। गोयनका ने भी प्रेमचंद की जीवनी ही नहीं, साहित्य और साहित्यिक व्यक्तित्व की भी अनदेखी सामग्री का अनुसंधान किया है। जितने परिश्रम, निष्ठा, लगन और साधना के साथ विदेशों में साहित्यकारों पर शोध-कार्य होता है, वह तो हमारे लिए अकल्पनीय है, मगर हिंदी साहित्य या विशेष रूप से प्रेमचंद साहित्य के शोधर्थियों को उसी तरह की शोध की एक झलक देने के लिए हमें गोयनका का कृतज्ञ होना चाहिए।'

2014 ई. में के.के. बिरला फाउंडेशन का व्यास सम्मान कमल किशोरजी की कृति 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' पर प्रदान किया गया था। यह कृति प्रेमचंद की कहानियों को उनके रचनाकाल के संदर्भ से जोड़कर प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से यह अध्ययन अभूतपूर्व एवं नवीन दिशाओं का सूचक है। यह पुस्तक इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्पष्ट करती है कि मुंशी प्रेमचंद 'एक ऐसे भारतीय कथाकार थे,। जिन्होंने साहित्य में भारतीयता के जीवंत मूल्यों की समर्थ अभिव्यक्ति की है। यह पुस्तक प्रेचमंद की एक ऐसी भारतीय मूर्ति की रचना करती है, जो उनकी कहानियों से ही निःसृत है।'

और अंत में मेरे उस प्रश्न का उत्तर जिसे प्रायः सभी लोग उनसे पूछते रहते हैं। प्रश्न है- 'आप प्रेमचंद को किस जीवन-दृष्टि के करीब मानते हैं?' गोयनका का उत्तर-'मैं प्रेमचंद को भारतीयता का लेखक मानता हूं। प्रेमचंद ने अपने एक कहानी संग्रह की भूमिका में लिखा है

कि मैंने अपने साहित्य के जरिए भारतीय आत्मा की रक्षा की है। यह भारतीय आत्मा और भारतीयता; न मार्क्सवाद की पर्याय है, न गांधीवाद की। यह तो उस कालखंड के भारतीय जीवन से निर्मित भारतीयता है। प्रेमचंद अपने जमाने में अपने समय के भारत को वाणी दे रहे थे- अपने समय के व्यक्ति के अंतर्मन, समाज और राष्ट्र के अंतर्द्वंद्व व अस्तित्व के संकट को वाणी दे रहे थे। वे परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को पात्रों और कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे थे; शोषण और दमन से मुक्त भारतीय स्वराज्य की कल्पना कर रहे थे। प्रेमचंद ऐसे मनुष्य की तलाश कर रहे थे, तो स्वतंत्र भारत को पारंपरिक जीवन-मूल्यों के साथ आधुनिक चेतना से संपन्न कर समतामूलक समाज की ओर विकासमान कर सकें।'

डॉ. कमल किशोर गोयनका सजग-सर्जक तथा अनुपम साहित्य-साधक हैं। उनके स्वस्थ, सक्रिय, सुदीर्घ, रचनाशील जीवन हेतु मंगलकामनाएं।

□

गांधी की पत्रकारिता में प्रतिमानों का संधान

कृपाशंकर चौबे

'गांधीः पत्रकारिता के प्रतिमान' पुस्तक प्रो. कमल किशोर गोयनका के गंभीर अध्ययन-अनुशीलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। गोयनकाजी ने अपने जीवन के पांच दशक प्रेमचंद के जीवन, विचार और साहित्य पर शोध करने में लगा दिए और देश-विदेश में प्रेमचंद-अध्येता के रूप में ख्यात हुए। 'गांधीः पत्रकारिता के प्रतिमान' पुस्तक की भूमिका में अच्युतानंद मिश्र ने ठीक लिखा है कि प्रेमचंद-अध्येता का महात्मा गांधी की ओर उम्मुख होना तथा गांधी की पत्रकारिता की परिस्थितियों, उसके उद्‌भव और विकास के साथ उसके प्रतिमानों का शोधपरक विवेचन करना अत्यंत स्वाभाविक था। प्रेमचंद को जानने और समझने के लिए भी महात्मा गांधी के कार्यों तथा जीवन-दर्शन के गंभीर अध्ययन से बचना भी संभव न था। 'गांधीः पत्रकारिता के प्रतिमान' पुस्तक कुल 18 अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय से लेकर आखिरी अध्याय तक पत्रकार गांधी की विविध कोणों से विवेचना की गई है। विवेचना का आधार प्रामाणिक तथ्य हैं। पहले अध्याय 'गांधी की पत्रकारिताः आरंभिक पृष्ठभूमि' में गोयनकाजी उस तथ्य की जानकारी देते हैं कि गांधीजी इंग्लैंड में जब बैरिस्टरी की पढ़ाई कर रहे थे, उसी समय वे अन्नाहार आंदोलन के समर्थक तथा 'वेजेटेरियन' समाचार पत्र के संपादक जोसिया ओल्डफील्ड के संपर्क में आए। उस समाचार पत्र में गांधी के शाकाहार पर छह लेख छपे। गांधीजी अपनी माता से शाकाहारी रहने की प्रतिज्ञा करके इंग्लैंड गए थे और वे उसका वहां पालन कर रहे थे। गांधीजी जब बैरिस्टर बनकर भारत आने लगे तो 11 जून 1891 को हालबर्न में उन्होंने अपने विदाई भोज में जो भाषण दिया, वह 'वेजेटेरियन' के 13 जून 1891 के अंक में छपा और उस समाचार पत्र के प्रतिनिधि द्वारा गांधी से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर भी प्रकाशित हुए। गोयनकाजी लिखते हैं, ''इस प्रकार गांधी 22 वर्ष की आयु में ही इंग्लैंड के समाचार पत्र के लिए महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए थे और समाचार पत्र उनसे इंटरव्यू ले रहे थे। गांधी ने इंग्लैंड में समाचार पत्र के महत्व और शक्ति को पहचान लिया था। उन्होंने समाचार पत्रों के संपादकों को पत्र लिखकर तथा उनसे मिलकर अपनी बात कहने की प्रवृत्ति बना ली थी। दक्षिण अफ्रीका के आरंभिक दौर में ही गांधी ने नेटाल एडवर्टाइजर, नेटाल विटनेस, नेटाल मर्क्यूरी आदि अंग्रेजी अखबारों प्रवासी भारतीयों की समस्याओं तथा अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए पत्र लिखे और वे प्रकाशित हुए।''

'गांधीः पत्रकारिता के प्रतिमान' पुस्तक के दूसरे अध्याय में कमल किशोर गोयनका बताते हैं कि 4 जून 1903 को 'इंडियन ओपिनियन' का पहला अंक निकला (गांधी ने अपनी आत्मकथा में इसका प्रकाशन वर्ष 1904 बताया है जो गलत है)। प्रवेशांक का अग्रलेख अपनी बात शीर्षक से गांधी ने लिखा जो अंग्रेजी, गुजराती, हिंदी एवं तमिल में प्रकाशित हुआ। प्रवेशांक के पहले पृष्ठ के पहले कालम में छपा है कि यह साप्ताहिक पत्र अंग्रेजी, गुजराती, हिंदी एवं तमिल चार भाषाओं में प्रकाशित है जो दक्षिण अफ्रीका के ब्रिटिश भारतीयों के हित के लिए निकाला गया है। 'इंडियन ओपिनियन' के संपादक मनसुखलाल नजर थे पर संपादकीय गांधीजी ने लिखी थी। उसमें कहा गया था, 'हमें अपनी उपस्थिति के लिए किसी प्रकार की क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं है। दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिक जीवन में भारतीय समुदाय की अपनी पहचान है। इसलिए उसकी भावनाओं को व्यक्त करने वाली और विशेष तौर पर उसके मकसद को समर्पित समाचार पत्र को गैर जरूरी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में हम मानते हैं कि इसकी तो लंबे समय से जरूरत थी।'' वे लिखते हैं ''हम न तो तमिल हैं और न ही कलकत्ता वाले हैं, न ही मुसलमान, हिंदू या ब्राह्मण और बनिया हैं। हमें ऐसा बनना भी नहीं चाहिए बल्कि सीधे तरीके से सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी भारतीय बनना है।'

गांधीजी ने 1905 के चार महीनों में 'इंडियन ओपिनियन' में दस पवित्र स्त्री-पुरुषों के जीवन चरित्र प्रकाशित किए- इलिजाबेथ फ्राइ, अब्राहम लिंकन, काउंट तालस्ताय, फ्लोरेंस नाइटिगल, स्वर्गीय कुमारी मैनिग, डाक्टर बरनार्डो, सर हेनरी लारेंस, सर टामस मनरो, लार्ड मेटकाफ, माउंट स्टुअर्ट एलफिटस। जेल सुधार की प्रणेता इलिजाबेथ फ्राइ पर लिखी गई टिप्पणी में वे कहते हैं, ''अंग्रेज हम पर शासन कर रहे हैं इसके कई कारण हैं। इसका एक कारण यह भी है कि आधुनिक युग में अंग्रेजों ने हमसे ज्यादा बहादुर और पवित्र स्त्री-पुरुष पैदा किए हैं जिनके उच्च आदर्श हैं। हमें ऐसे समर्पित स्त्री-पुरुषों के जीवन संबंधी ज्ञान से लाभ मिलना ही है। इसलिए हम समय समय पर उनके जीवन की कथाएं देते रहेंगे और उम्मीद है कि हमारे पाठक उन्हें आचरण में उतारेंगे और हमें प्रोत्साहित करेंगे।''

गुजराती में उनका लेखन मुख्यतः सूचनाप्रद होता था जबकि अंग्रेजी में प्रकाशित उनकी टिप्पणियों में विषयों की विपुल विविधता थी। 'इंडियन ओपिनियन' में गांधी को लिखे गए तालस्ताय के पत्र लेटर टू ए हिंदू का प्रकाशन 25 दिसंबर 1909, एक जनवरी 1910 और 8 जनवरी 1910 के अंकों में हुआ। गांधी ने 1909 में हिंद स्वराज पुस्तक लिखी थी। वह पहली बार इंडियन ओपिनियन के 11 दिसंबर 1909 और 18 दिसंबर 1909 के अंकों में छपा। पुस्तक मूल रूप से गुजराती में लिखी गई थी। दूसरे गुजराती संस्करण की भूमिका जब गांधी ने मई 1914 में लिखी तो उसे भी 'इंडियन ओपिनियन' के 29 अप्रैल 1914 के अंक में प्रकाशित किया। जब यह पुस्तक भारत में प्रतिबंधित की गई तो गांधी ने इसे अंग्रेजी में अनूदित किया। अंग्रेजी संस्करण की प्रस्तावना में गांधी ने लिखा- 'हिंद स्वराज' में व्यक्त विचार मेरे हैं लेकिन मैंने विनम्रता पूर्वक इसे तैयार करने में भारतीय दार्शनिकों के अलावा तालस्ताय, रस्किन, थोरो,

इनरसन और अन्य लेखकों को शामिल करने का प्रयास किया है। गांधी ने जान रस्किन की प्रसिद्ध पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' का गुजराती अनुवाद 'सर्वोदय' शीर्षक से 'इंडियन ओपिनियन' में प्रकाशित किया। 'इंडियन ओपिनियन' में ही संवाद करते हुए गांधी ने सत्याग्रह शब्द का संधान किया। उन्होंने पैसिव रेजिस्टेंस के लिए समानार्थी गुजराती शब्द के लिए पाठकों से प्रस्ताव आमंत्रित किए। जोहॉनसबर्ग लेटर नामक कालम में 11 जनवरी 1908 को यह मांग की गई कि पाठक पैसिव रेजिसटेंस के समानार्थी शब्द सुझाएं। सात मार्च 1908 को जानकारी दी गई कि केवल चार व्यक्तियों ने नाम भेजने की जहमत उठाई है। इसमें से हमें सिर्फ एक नाम मौजूदा स्थितियों के लिए उपयुक्त लगता है। वह है सत्याग्रह। जिस व्यक्ति ने यह नाम सुझाया है वह नहीं चाहता कि उसका नाम बताया जाए और वह इसके लिए कोई पुरस्कार भी नहीं चाहता।'' पहले सदाग्रह नाम का सुझाव आया था जिसे बदलकर सत्याग्रह किया गया और उसे ज्यादा उपयुक्त पाया गया। उस नाम का सुझाव देने वाले मगनलाल गांधी थे।

गांधीजी ने 'इंडियन ओपिनियन' अपनी आत्मकथा सत्य के प्रयोग और दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में भी लिखा है। गांधीजी लिखते हैं, 'दक्षिण अफ्रीका में सर्वप्रथम हिंदुस्तानी प्रेस खोलने का श्रेय श्री मदनजीत व्यावहारिक नामक एक गुजराती सज्जन को है। उस प्रेस को कुछ समय तक मुसीबतों के साथ चलाने के बाद उन्होंने एक अखबार निकालने का भी सोचा। इस संबंध में उन्होंने स्वर्गीय मनसुखलाल नजर और मेरी सलाह ली। अखबार डरबन से निकाला गया। श्री मनसुखलाल नजर उसके अवैतनिक संपादक बने। अखबार में पहले से ही घाटा आने लगा। अंत में उसमें काम करने वाले लोगों को साझेदार या साझेदार जैसा बनाकर और एक खेत खरीदकर उसमें सबको बसाकर वहां से अखबार निकालने का निश्चय किया गया। वह खेत डरबन से 13 मील दूर एक पहाड़ी पर है। उससे निकट का रेलवे स्टेशन 3 मील दूर है और उसका नाम फिनिक्स है। एक समय यह अखबार अंग्रेजी, गुजराती, तमिल और हिंदी में प्रकाशित होता था। बाद में तमिल और हिंदी के विभाग बंद कर दिए गए और अंग्रेजी और गुजराती विभाग जारी रखे गए। सत्याग्रह की लड़ाई शुरू हुई तब यह अखबार इन दो भाषाओं में निकलता था। खेत पर बसकर संस्था में काम करने वालों में गुजराती, हिंदी भाषी, तमिल और अंग्रेज सभी थे। मनसुखलाल नजर की असामयिक मृत्यु के कारण एक अंग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन इंडियन ओपिनियन के संपादक रहे। इसके संपादक पद पर श्री हेनरी पोलाक महोदय ने लंबे समय तक काम किया। मेरे और पोलाक के जेल निवास के दिनों में पादरी स्वर्गीय जोसफ डोक भी अखबार के संपादक रहे।''

गांधीजी मानते थे अखबार ग्राहकी से चलने चाहिए न कि विज्ञापन से। गांधीजी ने लिखा है, ''पहले उस साप्ताहिक (इंडियन ओपिनियम) में विज्ञापन लिए जाते थे। प्रेस में बाहर का फुटकर काम (जाब वर्क) भी छापने के लिए स्वीकार किया जाता था। मैंने देखा कि इन दोनों कामों में हमारे अच्छे से अच्छे लोगों को लगाना पड़ता था। विज्ञापन लेने ही हों तो कौन से विज्ञापन लिए जाएं और कौन से न लिए जाएं इसका निर्णय करने में हमेशा ही धर्मसंकट हमेशा

खड़े होते थे। इस बीच विज्ञापन दाताओं की खुशामद करनी पड़ती थी सो अलग। इसके साथ यह विचार आया कि यदि अखबार पैसा कमाने के लिए नहीं बल्कि कौम की सेवा के लिए ही चलाना हो तो वह सेवा जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिए। कौम चाहे तभी उसकी सेवा हमें करनी चाहिए। कौम की इच्छा का स्पष्ट प्रमाण यही माना जाएगा कि कौम के लोग काफी बड़ी संख्या में साप्ताहिक के ग्राहक बनकर उसका खर्च उठा लें। इस तरह इंडियन ओपिनियन की आंतरिक शक्ति में परिवर्तन हुआ और वह एक महाशक्ति बन गया। उसकी ग्राहक संख्या जो सामान्यतः 1200 से 1500 रहती थी वह दिनोंदिन बढ़ने लगी। उसका वार्षिक चंदा हमें बढ़ाना पड़ा। फिर भी जिस समय सत्याग्रह की लड़ाई ने उग्र रूप धारण किया उस समय उसके ग्राहकों की संख्या 3500 तक पहुंच गई थी। 'इंडियन ओपिनियन' के पाठकों की संख्या अधिकतम 20,000 तक मानी जा सकती है। अगर उसकी प्रतियां जोहॉनसबर्ग न पहुंचती थीं तो शिकायतों की झड़ी लग जाती थी। अखबार रविवार को जोहॉनसबर्ग पहुंचता था। मैं जानता हूं बहुत से हिंदुस्तानी अखबार पहुंचने पर सबसे पहला काम उसके गुजराती विभाग को आदि से अंत तक पढ़ जाने का करते थे। एक आदमी पढ़ता था और दस से पंद्रह आदमी उसके आसपास बैठकर सुनते थे।'

गांधीजी ने लिखा है, ''जेल के समयों को छोड़कर दस वर्षों के अर्थात सन् 1914 तक के 'इंडियन ओपिनियन' के शायद ही कोई अंक होंगे जिसमें मैंने कुछ न लिखा हो। इसमें एक भी शब्द बिना विचारे, बिना तौले लिखा हो या किसी को केवल खुश करने के लिए लिखा हो अथवा जानबूझकर अतिश्योक्ति की हो ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मेरे लिए यह अखबार संयम की तालीम सिद्ध हुआ था।'' 'महात्मा गांधी ने लिखा है, इंडियन ओपिनियन के पहले महीने के कामकाज से ही मैं इस नतीजे पर पहुंच गया था कि समाचार पत्र सेवाभाव से ही चलाने चाहिए। समाचार पत्र एक जबरदस्त शक्ति है। किंतु जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रवाह गांव के गांव डुबो देता है उसी प्रकार कलम का निरंकुश प्रवाह भी नाश की सृष्टि करता है। यदि यह अंकुश बाहर से आता है तो वह निरंकुशता से भी विषैला सिद्ध होता है। अंकुश अंदर का ही लाभदायक हो सकता है।''

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से जब भारत लौटे तो बांबे क्रानिकल समाचार पत्र से जुड़े। उस समय बांबे क्रानिकल के संपादक बेंजामिन हानिमैन थे। हानिमैन अंग्रेज होते हुए भी भारत की आजादी के समर्थक थे। गांधी ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, इतने में हानिमैन को, जिन्होंने क्रानिकल को एक प्रचंड शक्ति बना दिया था, सरकार चुरा ले गई और जनता को इसका पता चल चलने नहीं दिया। इस चोरी में जो गंदगी थी उसकी बदबू मुझे अभी तक आया करती है। मैं जानता हूं कि मि. हानिमैन अराजकता नहीं चाहते थे। मैंने सत्याग्रह समिति की सलाह के बिना पंजाब सरकार का हुक्म तोड़ा था, यह उन्हें अच्छा नहीं लगा था। अतएव उनके देश निकाले जाने से मुझे जितना आश्चर्य हुआ उतना ही दुख भी हुआ। इस घटना के बाद क्रानिकल के व्यवस्थापकों ने उसे चलाने का बोझ मुझ पर डाला। किंतु मुझे यह जिम्मेदारी अधिक दिनों तक नहीं उठानी पड़ी। सरकार की मेहरबानी से क्रानिकल बंद हो गया।

क्रानिकल के बंद होने से जो अभाव पैदा हुआ उसी की पूर्ति के लिए 'यंग इंडिया' को खड़ा करने का फैसला लिया गया। इसके व्यवस्थापक वही उमर सोबानी और शंकरलाल बैंकर थे जो क्रानिकल को संभालते थे। लेकिन 'यंग इंडिया' को संभालते हुए गांधीजी को लगा कि अंग्रेजी माध्यम से जनता को सत्याग्रह की शिक्षा नहीं दी जा सकती। इसलिए गांधी ने गुजरात में प्रभाव रखने वाले मासिक अखबार नवजीवन के कर्ताधर्ता भाई इंदुलाल याज्ञिक से संपर्क किया। वे सोबानी और बैंकर से मित्र थे। उन्होंने सहज ही अपने पत्र का नेतृत्व गांधी को सौंप दिया। उस पत्र को मासिक से साप्ताहिक बनाया गया। गांधीजी के नेतृत्व में 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का प्रकाशन 1919 में शुरू हुआ। गांधी ने इन पत्रों में सत्याग्रह की शिक्षा देना शुरू किया और उनकी प्रसार संख्या 40 हजार तक पहुंच गई। जब वे जेल गए तो उनकी प्रसार संख्या घटकर 8000 तक आ गई।

'नवजीवन' को गांधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' और 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' छापने का गौरव प्राप्त हुआ। वह भी इस अखबार के प्रसार बढ़ने का एक कारण था।

गांधीजी ने लिखा है, ''इन पत्रों में विज्ञापन न लेने का मेरा आग्रह शुरू से था। मैं मानता था कि इससे कोई हानि नहीं हुई और इस प्रथा के कारण पत्रों के विचार स्वातंत्रय की रक्षा करने में बहुत मदद मिली। इन पत्रों द्वारा मैं अपनी शांति प्राप्त कर सका क्योंकि यद्यपि मैं सविनय कानून भंग तुरंत नहीं कर सका, फिर भी अपने विचार स्वतंत्रता पूर्वक प्रकट कर सका, जो लोग सलाह और सुझाव के लिए मेरी ओर देख रहे थे, उन्हें मैं आश्वासन दे सका। मेरा ख्याल है कि उन पत्रों ने उस कठिन समय में जनता की अच्छी सेवा की और फौजी कानून के जुल्म को हल्का करने में हाथ बंटाया।

जलियांवाला बाग और चौरी चौरा की घटनाओं पर गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में टिप्पणियां लिखीं तो उसे आधार बनाते हुए उन्हें अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से 10 मार्च 1922 को गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर भारतीय दंड संहिता में बाद में जोड़ी गई राजद्रोह की धारा 124 ए के तहत मुकदमा चलाया गया। इस मामले की सुनवाई एक दिन में संपन्न हुई। गांधी ने अपराध स्वीकार करते हुए कहा, ''मैं या तो उस शासन के समक्ष समर्पण कर दूं जिसने देश को बर्बाद किया है या अपनी जनता को पागल हो जाने दूं। इसलिए मैं सबसे ज्यादा दंड स्वीकार करने को तैयार हूं।' गांधीजी को राजद्रोह के अपराध के तहत छह साल की सजा सुनाई गई।

गांधीजी हरिजनों का उद्धार चाहते थे, इस तथ्य से कोई भी इंकार नहीं कर सकता। हरिजन सेवक संघ की स्थापना और उसके बैनर तले सेवा कार्यों से लेकर 'हरिजन' का प्रकाशन इसका प्रमाण है। यह इतिहास स्वीकृत तथ्य है कि 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के बंद होने के उपरांत गांधीजी ने हरिजनों के उद्धार के लिए ही 4 फरवरी 1932 को 'हरिजन' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक समाचार पत्र निकाला। गांधीजी की प्रेरणा से 'हरिजन' कतिपय भारतीय भाषाओं में भी निकला। हिंदी में वह 'हरिजन सेवक', गुजराती में 'हरिजन वंधु' और मराठी में 'मराठी हरिजन' नाम से निकला। इसके अलावा देशभर में गांधीजी ने हरिजन सेवक संघ की शाखाएं

बनाई। संघ की अछूतोद्धार संबंधी साप्ताहिक गतिविधियों की जानकारी 'हरिजन' के हर अंक में दी जाती थी। 11 फरवरी 1933 को निकले 'हरिजन' के प्रवेशांक की संपादकीय में ही गांधीजी ने 'अस्पृश्यता' शीर्षक संपादकीय लिखी और उसमें स्पष्ट कहा कि जातीय छूआछूत शास्त्रों के खिलाफ है। प्रवेशांक में ही गांधी ने सात पंडितों के हस्ताक्षर का एक पत्र प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था कि चारों वर्णों में जो समान अधिकार हैं, उनका अधिकार हरिजन को मिलना चाहिए। ये अधिकार हैं-मंदिर प्रवेश, शालाओं में शिक्षा, सार्वजनिक कुंओं, घाटों, तालाबों और नदियों में निस्तार सुविधा। गांधीजी ने 'हरिजन' के प्रवेशांक के लिए बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर से संदेश भेजने को कहा तो उत्तर में अंबेडकर ने सात फरवरी 1933 को लिखे पत्र के रूप में संदेश की जगह टिप्पणी भेजी। उसमें उन्होंने कहा, ''दलित वर्ग वर्ण व्यवस्था का प्रति उत्पाद है और जब तक वर्ण व्यवस्था रहेगी, दलित वर्ग बने रहेंगे। इसलिए जाति प्रथा की समाप्ति ही दलितों के लिए एकमेव स्वीकार्य बात है और आनेवाले संघर्ष में यही तत्व हिंदुओं की रक्षा करेगा और उनके अस्तित्व को सुनिश्चित करेगा।'' 'हरिजन' में सभी राज्यों में हरिजन उत्थान के लिए किए गए कार्यों का विवरण छपता था। 'हरिजन' के आरंभिक अंकों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रथम हरिजन दिवस 18 दिसंबर 1932 को मनाया गया था किंतु उस दिन किए गए कार्यों से गांधीजी संतुष्ट नहीं थे। द्वितीय हरिजन दिवस अप्रैल 1933 के अंतिम रविवार को मनाया गया। उसके लिए उन्होंने छह कार्यक्रम घोषित किए थेः 1. हरिजन दिवस प्रातः पांच बजे प्रार्थनाओं से प्रारंभ हो और हरिजनों के लिए कुछ राशि, कपड़े और अनाज अलग निकालकर जरूरतमंदों को दिया जाए। जो गरीब हैं और ऐसा करने में असमर्थ हैं, उन्हें उपवास रखना चाहिए चाहे एक समय का ही क्यों न हो। 2. भंगियों का काम स्वयं किया जाए या उनके कार्य में हाथ बंटाया जाए। 3. घर-घर जाकर राशि या सामग्री दान स्वरूप प्राप्त की जाए। इसके बाद हरिजन बस्तियों में जाकर उनके घरों की सफाई की जाए। 4. हरिजनों की बैठक लेकर उनकी जरूरतों की जानकारी प्राप्त की जाए। 5. हरिजनों और सवर्णों की संयुक्त बैठकें आयोजित कर अछूतोद्धार के कार्यों संबंधी प्रस्ताव भी पारित किए जाएं। 6. जहां जनमत का समर्थन हो, वहां हरिजनों को सार्वजनिक कुंओं से पानी लेने दिया जाए और निजी मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिए जाएं। इन सबके बाद इस दिन किए गए सभी कार्यों की रिपोर्ट प्रकाशनार्थ 'हरिजन' को भेजी जाए। द्वितीय हरिजन दिवस देशभर में मनाए जाने की रिपोर्ट 'हरिजन' के अंकों में छापी गई। द्वितीय हरिजन दिवस मनाने के बाद भी गांधीजी इस बात को लेकर दुःखी थे कि उस दिवस को सभी देशवासियों का समर्थन नहीं मिला। इसी सवाल पर उन्होंने 8 मई से 29 मई 1933 तक 21 दिनों का अनशन किया। अपने अनशन के नतीजों पर संतोष जताते हुए गांधीजी ने 8 जुलाई 1933 के 'हरिजन' की संपादकीय में लिखा, ''अपने पाठकों को मुझे यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि मेरे अनशन से हरिजन भी उद्वेलित हुए हैं।''

गांधीजी हरिजन के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ''मुझे आशा है कि इसके विरोधी भी इसे स्वीकार करेंगे। मैं अत्यंत आशावादी हूं और अपने विरोधियों के प्रति दुर्भावना नहीं रखता। यह पत्र मेरे विरोधियों के लिए है और सुधारवादियों के लिए भी। 'हरिजन' की आत्मा

सत्य पर आधारित है तथा यदि सुधारक कुछ धैर्य से काम लेंगे तब विरोधी भी भविष्य में सुधार पर विश्वास करने लगेंगे। प्रवेशांक में डॉ आंबेडकर का संदेश दलित वर्ण व्यवस्था का प्रति उत्पाद है और जब तक वर्ण व्यवस्था रहेगी दलित वर्ग बने रहेंगे इसमें छपा था। उसमें उन्होंने लिखा था- जाति व्यवस्था की समाप्ति ही दलितों के लिए एकमेव स्वीकार्य बात है। आने वाले संघर्ष में यही तत्व हिंदुओं की रक्षा करेगा और उनके अस्तित्व को सुरक्षित करेगा।

कमल किशोर गोयनका की इस किताब का महत्व इस दृष्टि से भी बढ़ जाता है कि यह महात्मा गांधी की पत्रकारिता के उस सबल पक्ष को उभारती है कि गांधी के पत्रकारीय लेखन से आज के विमर्शों को सही दिशा मिल सकती है। आज के दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के लिए कई उपयोगी बिंदु गांधीजी के पत्रकारीय लेखन में बिखरे पड़े हैं।

आधी शताब्दी की शोध यात्राः हिंदी के आधुनिक गद्यशिल्पियों में जितने शोध प्रेमचंद पर हुए, उतने किसी पर नहीं। वैसे प्रेमचंद के जीवन और साहित्य पर जिस तरह का शोध डॉ. कमल किशोर गोयनका ने किया, उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती। प्रेमचंद के वृहद रचना संसार के अनुसंधान, विवेचन और चिंतन में गोयनकाजी ने अपने जीवन की आधी शताब्दी लगा दी। उन्होंने प्रेमचंद के अज्ञात और अप्राप्त साहित्य की भी खोज की। गोयनकाजी प्रेमचंद पर पी-एच.डी. और डी.लिट्. करने वाले भारत के एक मात्र शोधार्थी हैं। देश-विदेश में वे प्रेमचंद के सबसे प्रामाणिक विशेषज्ञ माने जाते हैं। गोयनकाजी ने प्रेमचंद पर गहरी संलग्नता और समर्पण के साथ शोध कर हमारे सामने एक दृष्टांत रखा है कि किसी लेखक के जीवन, विचार और साहित्य पर अनुशीलन कैसे किया जाना चाहिए। गोयनकाजी के अनवरत अनुशीलन की स्वाभाविक परिणति 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान', 'प्रेमचंद-कुछ संस्मरण', 'प्रेमचंद' (पॉकेट बुक), 'प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी', 'प्रेमचंद-अध्ययन की नई दिशाएं, 'रंगभूमि-नए आयाम', 'प्रेमचंद विश्वकोश' (5 खंड), 'प्रेमचंद-चित्रात्मक जीवनी', 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (2 खंड), 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियां', 'प्रेमचंद-रचना संकलन' (साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित), 'प्रेमचंद के नाम पत्र', 'प्रेमचंद- देश-प्रेम की कहानियां', 'प्रेमचंद बाल साहित्य समग्र', 'प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियां', 'प्रेमचंद पत्र-कोश', 'प्रेमचंद-कहानी रचनावली' (6 खंड), 'प्रेमचंद-अनछुए प्रसंग', 'प्रेमचंद-वाद, प्रतिवाद और संवाद', 'प्रेमचंद' (मोनोग्राफ), 'प्रेमचंद-प्रतिनिधि संचयन', 'प्रेमचंद- संपूर्ण दलित कहानियां', 'प्रेमचंद- कालजयी कहानियां', 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन', 'गोदान-प्रथम संस्करण' और 'उर्दू गऊदान हिंदी लिप्यांतरण' जैसी महत्वपूर्ण किताबों के प्रकाशन के रूप में हुई। इस विरल, विपुल और विलक्षण शोध कार्य के बारे में गोयनकाजी कहते हैं, ''प्रेमचंद पर कार्य करके मेरा जीवन सार्थक हो गया। जीवन में ज्ञान की प्राप्ति, ज्ञान की गवेषणा और ज्ञान के विकास से बड़ी सार्थकता और क्या हो सकती है?''

तात्पर्यपूर्ण यह है कि गोयनकाजी के शोध में प्रेमचंद की भारतीयता से परिपूर्ण एक छवि निर्मित हुई है। गोयनकाजी लगातार इस पर बल देते रहे हैं कि प्रेमचंद अपने साहित्य से स्वराज्य की प्राप्ति और भारतीय आत्मा की रक्षा करना चाहते थे। प्रेमचंद ने स्वयं ही लिखा था कि वे

साहित्य में भारतीयता की छाप लगाना चाहते हैं। प्रेमचंद ने साहित्य के प्रयोजन में भारत के प्राचीन मूल्यों, सत्यं शिवम् सुंदरम्, परिष्कार और मन को संस्कारित करने का बार-बार उल्लेख किया। गोयनकाजी ने अपने शोध में ऐसे अनेक तथ्यों को प्रकाशित किया जो बहु प्रचारित तथ्यों के विपरीत थे। ऐसा बहुत प्रचार किया जाता रहा है कि प्रेमचंद गरीबी में पैदा हुए, गरीबी में जिंदा रहे और गरीबी में ही मर गए। यहां तक कि उनके पास कफन के लिए भी पैसे नहीं थे। गोयनकाजी इसे गलत ठहराते हुए कहते हैं कि उपलब्ध दस्तावेजों से यह सिद्ध नहीं होता कि प्रेमचंद गरीबी में जिंदा रहे। 1920 में उनका वेतन सौ रुपए मासिक था। 1925 में 'रंगभूमि' उपन्यास पर उन्हें अग्रिम अठारह सौ रुपए की रॉयल्टी मिली थी। 1934 में जब वे फिल्म कंपनी में काम करने गए तो उनका वेतन आठ सौ रुपए मासिक था। गोयनका जी ने इस प्रचारित तथ्य का भी खंडन किया कि प्रेमचंद की शव यात्रा में कोई लेखक शामिल नहीं हुआ था। गोयनकाजी कहते हैं कि जैनेंद्र कुमार, जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, परिपूर्णानंद वर्मा और वाचस्पति पाठक उनकी शव यात्रा में शामिल हुए थे। प्रसाद का तो प्रेमचंद की पत्नी से बहुत ही भावुक संवाद भी हुआ था।

गोयनकाजी के शोध कार्य को विद्या जगत ने मौलिक तथा ज्ञान को विकसित करने वाले कार्य के रूप में स्वीकृति दी। कोलकाता के श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय का प्रतिष्ठित हेडगेवार प्रज्ञा पुरस्कार डा. कमल किशोर गोयनकाजी को दिया गया। कोलकाता द्वारा गोयनकाजी की सारस्वत साधना का वह तीसरा सम्मान था। उसके पहले भारतीय भाषा परिषद ने अपने नथमल भुवालका पुरस्कार और अखिल भारतीय मारवाड़ी युवा मंच, कोलकाता ने भंवरमल सिंधी सम्मान से गोयनकाजी को सम्मानित किया था। साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिए गोयनकाजी को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, हिंदी अकादमी, दिल्ली, साहित्य अकादेमी, भोपाल समेत देश-विदेश से कई पुरस्कार मिले हैं। चार वर्ष पूर्व गोयनकाजी को उनके शोध ग्रंथ 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' पर व्यास सम्मान मिला था। मैं कह सकता हूं कि आज भी गोयनकाजी सृजनरत हैं, उनका लेखन यों ही चलता रहे।

□

कहानियों में प्रेमचंद

श्रीभगवान सिंह

हिंदी के कथा-सम्राट के रूप में मान्य प्रेमचंद का रचना-संसार उनके द्वारा लिखित तीन सौ एक कहानियों (प्रेमचंद विशेषज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका के अनुसार) एवं सत्रह उपन्यासों के साथ-साथ विविध विषयों पर लिखे अनेक निबंधों तक फैला हुआ है किंतु हिंदी आलोचना की तंगनजरी यह रही है कि उसने उनकी मात्र पांच -छह कहानियों एवं एकाध उपन्यासों को उनके मूल्यांकन का आधार बना लिया। प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने का दम भरने वाली प्रगतिवादी आलोचना ने उन्हें यथार्थवादी सिद्ध करने के लिए 'पूस की रात', ' सवा सेर गेहूं', 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'कफन', जैसी पांच-छह कहानियों पर, तो उन्हें मार्क्सवादी सिद्ध करने के लिए केवल अंतिम उपन्यास 'गोदान' पर सारा ध्यान केंद्रित कर दिया। अब दलित-विमर्श के नाम पर उभरी आलोचना उनके उपन्यास 'रंगभूमि' और 'कफन' कहानी को केंद्र में रखकर उन्हें दलित विरोधी सिद्ध करने की मुहिम में पिल पड़ी है। स्पष्टतः प्रगतिवाद और दलितवाद दोनों की कोख से उत्पन्न आलोचना ने प्रेमचंद की यथार्थवादी, मार्क्सवादी या फिर दलित विरोधी छवि गढ़ने का जो सिलसिला चला रखा है, उसे एक रचनाकार के समस्त कृतित्व में रूपायित सत्य को छिपाने, विकृत करने वाला दुष्कर्म ही कहा जा सकता है।

वस्तुतः किसी भी रचनाकार को सही-सही समझने के लिए उसके समग्र रचना-संसार से गुजरना आवश्यक होता है। एक दो-रचनाओं या कुछेक पंक्तियों के आधार पर किया गया मूल्यांकन उस कहानी को चरितार्थ करता है जिसमें छह अँधे व्यक्ति हाथी के अलग-अलग अंगों का स्पर्श कर उसे रस्सी, सर्प, खंभा जैसा होने की संज्ञा देते हैं। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने के लिए विख्यात रहे फ्रांसीसी विचारक लूँसिए गोल्डमान ने इसलिए साहित्यिक कृति के सम्यक मूल्यांकन के लिए 'समग्रता' की अवधारणा का प्रतिपादन किया। 'समग्रता' की अवहेलना करने वाला आलोचक कृति के संबंध में वैसा ही मंतव्य देता है जैसा अँधे व्यक्तियों ने हाथी के एक-एक अंग के आधार पर मंतव्य दिया। हिंदी में कवि तुलसीदास और कथाकार प्रेमचंद के साथ आलोचकों का ऐसा ही बर्ताव रहा है। सौभाग्य से प्रेमचंद को डॉ. कमल किशोर गोयनका के रूप में एक ऐसे समर्थ आलोचक मिल गए हैं जो विगत कई वर्षों से प्रेमचंद के

समग्र साहित्य का मंथन करते हुए उनके विराट रचना-संसार में रूपायित विविध सत्यों एवं तथ्यों को सामने लाने के अनवरत प्रयास में लगे हुए हैं। आलोचना के लिए आधी शताब्दी अर्पित करने वाले डॉ. गोयनका अब तक 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान', 'प्रेमचंद-विश्वकोश' खंड-1, 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खंड-2', 'प्रेमचंदः वाद, प्रतिवाद और संवाद', जैसी पुस्तकें लिख एवं संपादित कर 'प्रेमचंद-विशेषज्ञ' होने की पात्रता प्राप्त कर चुके हैं।

प्रेमचंद संबंधी लेखन की एक शानदार लड़ी के रूप में आई है डॉ, गोयनका की सद्यः प्रकाशित कृति प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन। (नटराज प्रकाशन, दिल्ली) पुस्तक का कलेवर 760 पृष्ठों का है जो अपने आप में विशद गहन अध्ययन-विश्लेषण का प्रमाण है। गोयनका ने प्रेमचंद द्वारा लिखी 298 कहानियों की सूची दी है और विषयवस्तु के धरातल पर हरेक कहानी का विवेचन किया है। निस्संदेह यह अत्यंत श्रमसाध्य कार्य रहा होगा जिसका परिणाम है कि समस्त कहानियों से परिचित होने के बाद प्रेमचंद के संबंध में स्थापित कई भ्रांत धारणाओं से पाठक को छुटकारा मिलता है। इस तरह के कठिन श्रमसाध्य कार्य के लिए गोयनका को हिंदी आलोचना के जिस परिदृश्य ने विवश किया वह उन्हीं के शब्दों में देखने लायक है- 'प्रेमचंद की कहानियों के किसी प्रकार के अध्ययन और विवेचन का आधार उनकी संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानियों को कालक्रमानुसार रखकर ही हो सकता है। हम इसी वैज्ञानिक सिद्धांत से प्रेमचंद की कहानियों के प्रकाशन-काल के क्रम के बिना किए गए अध्ययन और उससे उत्पन्न अवैज्ञानिक निष्कर्षों से पूर्ण आलोचना की परंपरा को रोक सकते हैं। इस अवैज्ञानिक आलोचनात्मक प्रवृत्ति ने प्रेमचंद की कहानियों की तीन-तेरह वाली आलोचना को जन्म दिया, जिसके अंतर्गत उनकी चर्चित,बहुचर्चित एवं चुनी हुई कहानियों को ही आलोचना-कर्म का आधार बनाया गया। इस आलोचना-पद्धति को हिंदी के मार्क्सवादी आलोचकों ने शुरू किया और अपने राजनीतिक दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिए उसका खुलकर दुरूपयोग किया। मार्क्सवादियों की इस तीन-तेरह वाली आलोचना ने प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने में मदद तो की, परंतु वे उनके कहानीकार की पूरी तस्वीर प्रस्तुत नहीं कर सके। इस तीन-तेरह वाली आलोचना पद्धति ने एक बड़ी हानि यह भी की उनकी बहुसंख्यक कहानियों में मनुष्य के उत्कर्ष एवं उदात्तीकरण की जो संजीवनी शक्ति थी, उससे भी पाठकों को वंचित कर दिया गया। प्रेमचंद की कहानियों की इस दमनकारी आलोचना ने बहुत सीमित रूप में उनकी कहानियों के संसार को रखा और सुधी पाठकों को इसके लिए विवश किया कि प्रेमचंद के बारे में उतना ही जानें, जितना वे ठीक समझते हैं।' (पृ.46-47)

उपरोक्त वक्तव्य से साफ है कि प्रेमचंद के विस्तृत कहानी-संसार को चंद कहानियों तक सीमित करने वाली चयनवादी आलोचना ने कहानीकार प्रेमचंद के संबंध में उत्पन्न संकीर्णता एवं इकहरापन को दुरुस्त करने के ध्येय से डॉ. गोयनका ने उनकी समस्त कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन आवश्यक समझा जो इस पुस्तक के रूप में हमारे सामने है। यह पुस्तक कुल आठ अध्यायों में विन्यस्त है। अध्याय एक है 'प्रेमचंदः कहानीकार का इतिहास' जिसके अंतर्गत प्रेमचंद-पूर्व की कहानी की स्थिति का विवेचन है। अध्याय दो में उनकी तीन सौ एक

कहानियों की कालक्रमानुसार सूची है, तो अध्याय तीन में प्रेमचंद के कहानी-दर्शन का विशद विवेचन है। अध्याय चार-पांच ,छह तथा सात में प्रेमचंद की 1908 से लेकर 1936 तक लिखी कहानियों की विषयवस्तु, भाव, विचार संवेदना आदि का पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय-परिप्रेक्ष्य में विस्तार से विवेचन किया गया है।

कहानियों का विवेचन करने के पूर्व डॉ. गोयनका पूर्व पीठिका के रूप में अध्याय तीन में प्रेमचंद के कहानी- दर्शन, जिसके अंतर्गत उनका समग्र जीवन-दर्शन समाहित है, का बहुत विस्तार एवं सूक्ष्मता से विश्लेषण करते हुए उनके संबंध में स्थापित कई भ्रामक, सतही, धारणाओं को निर्मूल करते हैं। मसलन प्रेमचंद के संबंध के यथार्थवाद की खूब चर्चा की जाती है, लेकिन यह नहीं बताया जाता कि यथार्थवाद से प्रेमचंद का आशय क्या था? केवल विद्रूपता, भूख शोषण, विषमता आदि को यथार्थपरक जीवन-दृष्टि को इसी के आसपास सीमित कर दिया गया। गोयनका प्रेमचंद के लेखों से उनके मंतव्यों का हवाला देते प्रेमचंद के यथार्थवाद के स्वरूप को स्पष्ट कर देते हैं। वे इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या 209 पर बताते हैं- 'प्रेमचंद ने यथार्थवाद की सीमाएं खींचकर उसे नग्नता एवं वीभत्सता से दूर रखते हुए भारत की पुरातन आदर्शवादी चेतना से मंडित किया। उन्होंने न तो नग्न यथार्थवाद का समर्थन किया और न एकमात्र यथार्थ को ही कहानी, उपन्यास का आधारभूत तत्व माना। उन्होंने वैसे यह स्वीकार किया कि नवयुवक लेखक बुराइयों का नग्न चित्र खींचने में कला की कृतकार्यता समझते हैं और सुधार के जोश में विध्वंस भी करने लगते हैं, लेकिन ऐसा यथार्थवाद उन्हें प्रिय नहीं है क्योंकि उनका मत है कि कहानी (साहित्य) वही है जो मर्यादाओं का पालन और मानव-चरित्र की उज्ज्वलताएं दिखाए। प्रेमचंद यथार्थवाद को जीवन के अँधकार तक सीमित नहीं करते। अतः वे कहानी और उपन्यास के लिए अंधकार रूपी यथार्थ से प्रकाश रूपी आदर्शवाद की ओर चलने का आह्वान करते हैं।'

प्रेमचंद की जीवन-दृष्टि के संबंध में यह प्रवाद भी प्रचलित कर रखा गया है कि आरंभिक लेखन में तो वे स्नेह, सहानुभूति, दया, सच्चाई, सौजन्य जैसे आदर्शवादी मूल्यों के प्रति आस्थावान रहे, लेकिन बाद में लेखन में उनका इन मूल्यों से मोहभंग होता गया। इसके सत्यापन में ये लोग प्रेमचंद द्वारा लिखे 'महाजनी सभ्यता' वाले लेख की बहुत चर्चा करते हैं लेकिन इसी लेख के आधार पर गोयनका प्रेमचंद की यह तसवीर प्रस्तुत करते हैं- 'महाजनी सभ्यता लेख में से विस्तार से पश्चिम की महाजनी सभ्यता की बुराइयों की चर्चा करते हैं, इसमें भी वे 'मनुष्यता, मित्रता, स्नेह-सहानुभूति, मानवीय-आध्यात्मिक और सामाजिक नेह-नाते', 'मनुष्यता-आध्यात्मिकता-उच्चता सौंदर्यबोध' तथा दया और स्नेह, सच्चाई और सौजन्य' जैसे उच्च मानवीय गुणों की चिंता करते हैं और मानते हैं कि महाजनी सभ्यता इन्हें नष्ट कर रही है, जबकि इनकी रक्षा करना चाहते हैं।' (पृष्ठ-200) इसी क्रम में डॉ. गोयनका यह भी साफ कर देते हैं कि प्रेमचंद द्वारा रूस की शासन-व्यवस्था का समर्थन करने का मतलब यह हर्गिज नहीं कि उन्होंने कम्युनिज्म को स्वीकार कर लिया था, क्योंकि 'वे कम्युनिस्टों के हिंसावाद, राज्य-सत्ता, व्यक्ति की स्वतंत्रता के दमन, वर्ग-संघर्ष इत्यादि को साहित्य एवं साहित्यकार के प्रयोजनों में

शामिल नहीं करते और न कोई कहानी या उपन्यास तथा किसी एक पात्र को वे इन कम्युनिस्ट नीतियों का अनुयायी बनाते तथा उनके लिए संघर्षशील नहीं दिखाते।' ऐसे ही तथ्यों के आलोक में गोयनका प्रेमचंद की जीवन-दृष्टि में भारतीय मनुष्य और भारतीय समाज को भारत के परंपरागत मानवीय मूल्यों से संपन्न करने वाले प्रयत्नों की प्रधानता रेखांकित करते हैं।

प्रेमचंद की जीवन-दृष्टि के संबंध में ऐसे ही अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर करने के बाद डॉ. गोयनका बाद के अध्यायों में उनकी हिंदी-उर्दू में लिखित तमाम 301 कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। यह विश्लेषण इतना विस्तार और गहराई लिए हुए है कि उसकी समस्त खूबियों को इस छोटे से लेख में टांक पाना मुमकिन नहीं, फिर भी संक्षेप में इस कालक्रमानुसार अध्ययन की कुछ खास उपलब्धियों को रेखांकित करना मार्क्सवादी सांचे में प्रेमचंद की छवि गढ़ने वाले आलोचकों के ज्ञानवर्धक के लिए आवश्यक है।

डॉ. गोयनका ने पुस्तक के चार, पांच, छह और सात यानी चार अध्यायों में प्रेमचंद के कहानी-संग्रह 'सोजेवतन' (1908) के प्रकाशन से लेकर 1936 में 'कफन' कहानी के प्रकाशन तक की समग्र कहानियों का अध्ययन-विश्लेषण प्रस्तुत किया है, उससे कहानीकार प्रेमचंद के संबंध में मार्क्सवादी आलोचना द्वारा स्थापित कई भ्रांत धारणाओं का खंडन होता है। मसलन, आलोचना की वर्चस्ववादी धारा (प्रगतिवाद) ने यह धारणा प्रचलित कर रखी है कि प्रेमचंद ने पहले 'सोजेवतन' (1908) की कहानियों में देशप्रेम, राष्ट्रीय भावना को प्रमुखता दी, किंतु बाद में वे सामाजिक यथार्थ की ओर ऐसे मुड़े कि राष्ट्रवादी चेतना उनकी परवर्ती कहानियों में गौण हो गई। डॉ. गोयनका 1920 से महात्मा गांधी के नेतृत्व में शुरू हुए स्वाधीनता आंदोलन से संबद्ध कई कहानियों का विश्लेषण करते हुए साबित करते हैं कि भारत की स्वाधीनता, स्वराज्य की चिंता प्रेमचंद में हमेशा बनी रही जो उनकी उस दौर में लिखीं कई कहानियों में प्रकट है। इस संदर्भ में वे प्रेमचंद द्वारा लिखित सत्याग्रह (1923) 'मैकू' (1930), 'आहुति' (1930), 'आखिरी तोहफा' (1931), 'होली का उपहार (1931), 'तावान' (1931) जैसी कहानियों का विश्लेषण करते हुए बताते हैं कि कैसे प्रेमचंद उन दिनों गांधी द्वारा राष्ट्रीय चेतना के प्रसार एवं मजबूती हेतु चलाए जा रहे असहयोग, विदेशी सामानों का बहिष्कार, शराबबंदी जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों को इन कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे थे। इन कहानियों ने स्पष्टतः प्रेमचंद के राष्ट्रप्रेम के साथ-साथ भारत की स्वाधीनता के लिए व्याकुलता तथा गांधीजी के नेतृत्व में गहरा विश्वास परिलक्षित होता है। मतलब कि प्रेमचंद का देश-प्रेम 1908 में प्रकाशित सोजेवतन की कहानियों तक ही सीमित नहीं रह गया, बल्कि गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन के समानांतर वह उनकी कहानियों में परवान चढ़ता गया। प्रगतिवादी आलोचना ने इन कहानियों का नोटिस तक लेना आवश्यक नहीं समझा, क्योंकि इससे प्रेमचंद की गांधी से वैचारिक समीपता सिद्ध होती। इस बेईमानी का खुलासा करते हुए डॉ. गोयनका दो टूक शब्दों में लिखते हैं- 'वामपंथी आलोचना ने सदैव यही चाहा है कि प्रेमचंद की वे कहानियां पाठ्यक्रम-आलोचना तथा लोकस्मृति से हटा दी जाएं, जो भारत के परंपरागत पारिवारिक जीवन और उसके मूल्यों की स्थापना करती हों, जो देशप्रेम एवं सांस्कृतिक-

सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक सुधार की प्रवृत्ति को जागृत करने वाली हों, जो पाठक का उत्कर्ष करती हों और जो हमारी भारतीय आत्मरक्षा के लिए लिखीं गई हों। महात्मा गांधी के स्वाधीनता आंदोलन और उनके नैतिक मूल्यों पर लिखीं गई कहानियों का तो ये नाम भी नहीं लेना चाहते, क्योंकि लेनिन-स्टालिन के कम्युनिस्ट रूस ने गांधी की सदैव भर्त्सना की।'(पृष्ठ-47)

इधर कुछेक वर्षों से वामपंथी आलोचना की एक उग्र धारा ने यह अँधेर मचा रखा है कि प्रेमचंद की गांधी के बजाय भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी से अधिक वैचारिक निकटता थी और वे भगत सिंह के लगभग अनुयायी जैसे बन गए थे। अब इन्हें कौन बताए कि जिस वर्ष 1907 में प्रेमचंद ने देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले देशभक्त के लहू को अनमोल मानते हुए 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' नाम से कहानी लिखी उस वर्ष भगत सिंह का जन्म ही हुआ। फिर युवा भगत सिंह का संबंध जिस 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक आर्मी' से रहा, उस संगठन से प्रेमचंद का कोई रिश्ता नहीं रहा। डॉ. गोयनका द्वारा इस पुस्तक में प्रस्तुत उनकी समस्त कहानियों को देखने से साफ पता चलता है कि उनकी लिखी 301 कहानियों में एक कहानी भी ऐसी नहीं जिसमें भगत सिंह की विचारधारा का कोई प्रतिनिधि पात्र हो जिसे प्रेमचंद ने महिमामंडित किया हो। निस्संदेह गोयनका का यह तथ्यगत विश्लेषण कहानीकार प्रेमचंद के संबंध में वामपंथी आलोचकों द्वारा निरंतर फैलाई जा रही गई मनगढ़ंत बातों को निर्मूल करता है।

कहानीकार प्रेमचंद के साथ वामपंथी आलोचना ने एक और बड़ा घपला यह किया कि 1920 के पूर्व उनके द्वारा लिखी गई 'बड़े घर की बेटी' (1910), 'नमक का दरोगा' (1914), 'पंचपरमेश्वर' (1916) जैसी कहानियों को हृदय परिवर्तन के आदर्शवादी खाते में खतिया कर उनकी परवर्ती कहानियों को हृदय-परिवर्तन का निषेध करने वाली यथार्थवादी श्रेणी में रखने का एक सपाट, सरलीकृत फार्मूला चला दिया। डॉ. गोयनका अपने विस्तृत अध्ययन से यह तथ्य उजागर करते हैं कि 1920 के बाद प्रेमचंद ने ऐसी कई कहानियों की रचना की है जिसमें हृदय-परिवर्तन की घटनाएं विद्यमान हैं।' 'मंत्र' (1928), 'मुक्तिमार्ग'(1924), 'अलग्योझा' (1924), 'घर जमाई' (1929), 'घासवाली' (1929), ऐसी उल्लेखनीय कहानियां हैं जिसमें पात्रों का अंततः हृदय-परिवर्तन होता है। 'मंत्र' कहानी में डॉ. चड्ढा बूढ़े भगत के बेटे का इलाज करने से इनकार कर देता है क्योंकि वह समय उसके टेनिस खेलने का है। नजीजतन भगत का बेटा इलाज के अभाव में मर जाता है और वह डॉ. चड़ढा के प्रति घृणा, क्रोध का भाव लेकर लौट आता है। जब कुछ दिनों बाद चड्ढा के बेटे को सर्प डस लेता है, तो उसकी खबर सुनकर विष उतारने का इल्म जानने वाले भगत में द्वंद्वों का तूफान उठा खड़ा होता है। कभी प्रतिशोध के वशीभूत हो वह चड्ढा के बेटे को मर जाते हुए देखना चाहता है, लेकिन अंततः उसके अंदर मनुष्यता की अमृतधारा वेगवती हो उठती है और वह रात में चुपके से घर से निकलकर चड्ढा के यहां जाता है और मंत्र से उसके बेटे के शरीर को विष-मुक्त कर नया जीवन प्रदान करता है। इसी तरह 'अलग्योझा' में रघु, उसकी विमाता-पन्ना और उसकी पत्नी मूलिया में अच्छे, बुरे, स्वार्थ-परमार्थ का खूब द्वंद्व चलता है, लेकिन अंततः पन्ना रघु की विधवा-बहू

मूलिया से अपने बेटे केदार का विवाह कर एक नया घर बसाने में कामयाब होती है। 'मुक्तिमार्ग' में भी झींगुर और बुद्ध दोनों एक-दूसरे का अहित करने के बाद अंततः एक-दूसरे के सुख-दुख के साथी बन जाते हैं। 'घासवाली' में निम्न वर्ण की मूलिया ठाकुर चैन सिंह की रूप-लंपटता को अपनी चारित्रिक दृढ़ता से सदाचार में परिवर्तित कर देती है। इस प्रकार डॉ. गोयनका ऐसी कहानियों के हवाले से बखूबी यह सिद्ध कर जाते हैं कि मानव-हृदय में अच्छे-बुरे के द्वंद्व के प्रति सजगता और उसमें अच्छे की विजय के प्रति गहरा विश्वास प्रेमचंद में कभी खत्म नहीं लेकिन अब नाली-सफाई कर्मी की तरह आलोचकगण केवल बुरे को ही अपनी टोकरी में बटोरने लगे, तो इसमें बेचारे प्रेमचंद का क्या दोष? गोयनका की दृष्टि कचड़े में मिले होरे-मोती की तलाश करती है और यही एक मर्मी आलोचक का काम होना भी चाहिए।

प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक यथार्थ के कहानीकार के रूप में भी प्रेमचंद की इकहरी एकांगी छवि बना दी गई। 'सवा सेर गेहूं' (1924), 'पूस की रात' (1930), 'सद्गति' (1931), 'ठाकुर का कुआं' (1932), 'दूध का दाम' (1934), 'कफन' (1936), जैसी चंद कहानियों का चयन कर उनके आधार पर प्रेमचंद की यह छवि बना दी गई कि उन्होंने समाज में व्याप्त सूदखोरी, शोषण, छुआछूत, जाति-पांति आधारित घृणा आदि को ही सामाजिक यथार्थ के रूप में अभिव्यक्ति दी। उल्लेखनीय है कि सच्चाई उनकी अन्य कहानियों के अध्ययन से, जैसा कि डॉ. गोयनका दिखाते हैं, यह उभरती है कि प्रेमचंद ने भारत के गांवों, किसानों के बीच सदियों से पलते आ रहे परस्पर प्रेम, सहयोग, सौहार्द आदि का सामाजिक, पारिवारिक संरचना को बनाए रखने में जो भूमिका रही, उसके महत्व को भी कम उजागर नहीं किया है। पूर्वोक्त कहानियों में सामाजिक-पारिवारिक जीवन की ऐसी ही सच्चाई की मनोरम झांकी मिलती है। यही नहीं, प्रेमचंद ने 'दो कब्रें' (1930) जैसी भी कहानी लिखी जिसमें वे जुहरा नाम की वेश्या से कुलीन वर्गीय रनवीर सिंह का प्रेम एवं परिणय दोनों ही दिखाते हैं जो स्पष्टतः उस समय गांधीजी द्वारा 'पतिताओं' के उद्धार के लिए चलाई जा रही मुहिम का प्रभाव दर्शाती है।

यों तो इस पुस्तक में प्रस्तुत अध्ययन-विश्लेषण की और भी बहुत सारी विशिष्टताएं हैं उन सब का उल्लेख इस लघुकाय आलेख में संभव नहीं, फिर भी हमने जिन बातों की तरफ यहां संकेत किया उनसे साफ है कि कहानीकार के रूप में प्रेमचंद को एक खास किस्म के वैचारिक सांचे या एक रंग के सामाजिक यथार्थ के दायरे में सीमित करके नहीं रखा जा सकता है। डॉ. गोयनका द्वारा प्रस्तुत विवेचन पर दृष्टिपात करने पर प्रेमचंद की जो मुकम्मल तसवीर उभरकर सामने आती है, वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है- 'वे विराट भारतीय जीवन के महान गाथाकार हैं तथा उनकी कथा-सृष्टि में महाकाव्यीय चेतना है। वे भारत राष्ट्र एवं स्वराज्य, भारतीय विवेक एवं अस्मिता, भारतीय चेतना तथा भारतीयता के कथाकार हैं। प्रेमचंद कथाकार के रूप में वाल्मीकि, व्यास, तुलसीदास, कबीर, भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी की परंपरा में आते हैं। ये देश के ऐसे राष्ट्रीय साहित्यकार हैं जिन्होंने उच्च कोटि के

मानवीय जीवन मूल्यों, आत्मबोध, स्वत्व तथा स्वरूप प्रदान करके उसे भारत की आत्मा के रूप में सदैव के लिए प्रतिष्ठित कर दिया। प्रेमचंद का कहानीकार इसी भारतीयता का अन्वेषक, उद्घोषक तथा प्रस्थापक है। प्रेमचंद की कहानी-यात्रा में प्रमुखतः राष्ट्रीय-सांस्कृतिक नवजागरण गांधीवाद, कभी-कभी मार्क्स का साम्यवाद, भारत का अद्वैत-दर्शन इत्यादि उनकी इस यात्रा को अपनी-अपनी दर्शन-दृष्टि के अनुसार आलोकित करते हैं; परंतु प्रेमचंद सभी को अपने भारतीय भाव एवं विवेक से देखते और ग्रहण करते हैं और देश-संस्कृति-मानवता के अनुकूल तत्वों को ग्रहण करके अपनी भारतीयता में संग्रथित-संश्लिष्ट करके पराधीनता भारत को मुक्ति का एक संदेश तथा एक स्वप्न देते हैं।' (इस पुस्तक की भूमिका से)।

निस्संदेह डॉ. गोयनका की यह पुस्तक कहानीकार प्रेमचंद की इकहरी, सपाट, सतही तस्वीर को विस्थापित करते हुए उनके विविध राजनीतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक आयामों से निर्मित रचनाकार-व्यक्तित्व का अभिज्ञान कराती है जिससे उन्हें मार्क्सवादी या फिर दलित विरोधी सिद्ध करने की तल से हमारे आलोचक-प्रवर उबर सकेंगे। बावजूद इसके वे अपने हठाग्रह पर टिके रहें, तो उनके सम्मान में तुलसीदास का यही कथन पेश किया जा सकता है।

'फूलइ फरइ न बेंत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मुरुख हृदय न चेत जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सम।'

□

गोयनका काजल भी, किरकिरी भी

देवेंद्र दीपक

मुंशी प्रेमचंद का नाम हिंदी साहित्य में दर्ज है। डॉ. कमल किशोर गोयनका का नाम प्रेमचंद के नाम के साथ नत्थी है। प्रेमचंद याद किए जाएंगे तो प्रेमचंद के समीक्षक और शोधकर्ता के रूप में उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। यों कमल किशोर का नाम भी प्रेमचंद के साथ जुड़कर इतिहास में दर्ज होता है। कमल किशोर गोयनका प्रेमचंद का परिशिष्ट हैं।

एक बार भोपाल के भारत भवन में कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद से जुड़ी सामग्री की प्रदर्शनी लगाई। उसमें प्रदर्शित पांडुलिपियों और वस्तुओं को देखकर लोग बड़े विस्मित हुए। यह बात मैं जोर देकर कहना चाहता हूं कि कमल किशोर गोयनका ने अकेले अपने दम पर जो काम प्रेमचंद को लेकर किया है वह कई संस्थाएं भी मिलकर नहीं कर सकतीं। अगर प्रेमचंद समाज जीवन का कोना-कोना झांक आए हैं अपने आधार पर गोयनका का कहना है- प्रेमचंद और उनका साहित्य सबका है। यह प्रगतिशीलों का है, अप्रगतिशीलों का है, गांधीवादियों का है, राष्ट्रवादियों का और विश्व की सभी भाषाओं का है। प्रेमचंद एक वैश्विक कथाकार हैं। उनके साहित्य का लोकतंत्र सबके लिए खुला है।' इसमें कोई भी प्रवेश कर सकता है, अध्ययन विवेचन कर सकता है तथा कोई भी आलोचक अपना मूल्यांकन कर सकता है। प्रेमचंद को ऐसा खुला मंच देकर ही हम उन्हें बहुलतावादी मानवीय समाज का तथा आने वाली पीढ़ियों का प्रिय कथाकार बनाए रख सकते हैं।'

जनसत्ता में गाहे-बगाहे प्रेमचंद पर संवाद छपता रहता है। इस वाद-विवाद में कमल किशोर गोयनका रहता ही है।

मुर्दा करवट नहीं बदलता-जीवित व्यक्ति बिना करवट बदले रह नहीं सकता। हर जेनुइन लेखक और उसकी कलम करवट बदलती है। उसकी कलम जब-जब करवट बदलती है तो उसका एक मकसद होता है। प्रेमचंद की कलम भी करवट बदलती है। वह 'कफन' भी लिखते हैं और 'नमक का दरोगा' भी। हमारे लिए प्रेमचंद की कलम की करवट प्रेमचंद की करवट है लेकिन वामपंथी समीक्षक और उनके संगठन गोलबंदी के साथ प्रेमचंद को प्रस्तुत करते हैं। वह इस तथ्य की अनदेखी करते हैं, कभी अनजाने में भी कोई भी बड़ा लेखक अपनी निजता का सर्वांश किसी एक विचारधारा, व्यक्ति या दल के पास गिरवी रख सकता। खूंटी और खूंटा!

खूंटी पर टंगता है, कोट और खूंटे से बंधता है पशु। लेखक को हम नाहक ही कभी खूंटी पर टांगते हैं कभी खूंटे से बांधते हैं। लेखक के साथ अकसर ऐसा निहित तत्व करते रहते हैं। डॉ. गोयनका ऐसे तत्वों को चुनौती देते रहते हैं।

गोयनका को यह कतई स्वीकार नहीं। किसी एक खूंटी या किसी एक खूंटे से प्रेमचंद को बांधा जाना गोयनका को पसंद नहीं इसलिए गोयनका वामपंथियों की आँख की किरकिरी हैं, लेकिन यह सम्यक और समग्रता से विचार करने वाले मनीषियों की आँख का काजल भी हैं।

गोयनका ने प्रेमचंद को लेकर प्रचलित अनेक मिथकों को ध्वस्त किया। उनकी खूबियों और खामियों दोनों को उजागर किया। प्रेमचंद के रचनाकार पर समय और स्थितियों के पड़ने वाले दबावों को वह बराबर खुलासा करते हैं। एक बार भोपाल में हिंदी भवन में प्रेमचंद पर गोष्ठी हुई। गोयनका मुख्य वक्ता थे। संयोग से मैं संचालन कर रहा था। प्रेमचंद पर अपने तर्कों और उदाहरणों से अपना पक्ष और वामपंथियों की इजारेदारी को ललकारा। वामपंथी समाज के कुछ श्रोता कहने लगे, प्रेमचंद के साथ खींचा-तानी नहीं करनी चाहिए, तभी एक ने कहा- आप जब अपहरण कर प्रेमचंद को गोष्ठी में उठाकर अपने पाले में ले गए, तब क्या वह खेंचा-खेंची नहीं थी। गोयनका ने कहा- 'मैं किसी भी तरह की खेंचा-तानी में विश्वास नहीं करता। इतना चाहता हूं कि प्रेमचंद को समग्रता में देखो।'

वामपंथियों को सम्यक सोच से चिढ़ है। हिंदू-संस्कृति से उन्हें एलर्जी है। एक अद्‌भुत दोगलापन। हिंदू समाज में कुछ अच्छाइयां हैं, और कुछ बुराइयां। हर समाज में होती हैं? कौन-सा व्यक्ति है, कौन-सा समाज है जो पूरी तरह निरापद है लेकिन प्रगतिशील मित्र हिंदू-संस्कृति को, मूल्य-चेतना को, उसकी सहिष्णुता को, उसकी वैश्विक दृष्टि को 'हिंदू' शब्द से संबोधित नहीं करेंगे, उसे 'हिंदू' की जगह 'भारतीय' कहकर संबोधित करेंगे, लेकिन हिंदू समाज की कोई कुप्रथा 'भारतीय' नहीं रह जाती, वह 'हिंदू' बनी रहती है। ठीक इसके बरक्स प्रगतिशील बंधु इस्लाम के भाई-चारे की तो तारीफ करेंगे लेकिन उनके वैचारिक कठोर आग्रहों की अनदेखी करेंगे।

गोयनका लुका-छिपी का खेल नहीं खेलता। वह जहां है, वहीं है। पाला नहीं बदलता जो कहता है कि उसके आगे 'किंतु-परंतु' नहीं लगाता, साफ-साफ कहता है। प्रेमचंद ही नहीं उन्होंने विष्णु 'प्रभाकर', डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बालशौरि रेड्डी, प्रभाकर माचवे, जगदीश चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, मन्मथनाथ गुप्त, रवींद्रनाथ त्यागी, मंजुल भगत के लिखे को भी संजाने-सजाने का काम डॉ. गोयनका ने किया। कमल किशोर गोयनका का एक दूसरा पक्ष भी है, वह पक्ष है प्रवासी लेखन से उनका गहरा जुड़ाव। डॉ. कमल किशोर गोयनका उन लेखकों में विरले हैं, जिन्हें भारतेतर देशों में हो रहे, हिंदी लेखन की व्यापक और गहरी जानकारी है, वहां के रचनाकारों से उनका व्यक्तिगत परिचय है और वह अनेक प्रवासी रचनाकारों के सुख-दुःख के सहभागी रहे हैं। डॉ. गोयनका पांच बार मॉरीशस गए। 2002 में गोयनका मॉरीशस की साहित्य संस्था 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने उन्हें सम्मानित किया। अभिमन्यु अनंत ने गोयनका को 'मॉरीशस बंधु' की उपाधि से अलंकृत किया।

हिंदी प्रवासी लेखकों से डॉ. गोयनका का परिचय 1980 में तब हुआ जब भारत सरकार ने उन्हें प्रतिनिधि बनाकर मॉरीशस भेजा और वह वहां सोमदत्त बखोरी, अभिमन्यु अनत, राजेंद्र अरुण के संपर्क में आए तभी उन्होंने प्रवासी हिंदी लेखन पर काम करने का निर्णय लिया। प्रवासी लेखन पर उनकी पांच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में यह बात जोर देकर उठाई गई कि भारत से बाहर जो भारतवंशी हिंदी लेखन कर रहे हैं उनका भी नोटिस लिया जाना चाहिए। उस सम्मेलन में मेरा प्रस्तुत किया एक प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ था। उस प्रस्ताव के अनुमोदक थे बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्कालीन निदेशक डॉ. अमर कुमार सिंह। मेरे उस प्रस्ताव में कहा गया था-'सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग ले रहे प्रतिभागी सर्वसम्मति से भारत के विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से और उसके माध्यम से भारत के विश्वविद्यालयों तथा स्वशासी महाविद्यालयों और संस्थानों से अनुरोध करते हैं कि वे अपने यहां एम.ए. हिंदी के पाठ्यक्रम में विदेशों में रचित हिंदी लेखन को एक प्रश्न-पत्र के रूप में सम्मिलित करें।'

इस प्रस्ताव को लेकर कोई उल्लेखनीय पहल की जानकारी मेरे पास नहीं है। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए मेरे पास एक जिम्मेदारी थी। यह जिम्मेदारी स्वयं मेरी अपनी ओढ़ी हुई थी कि प्रवासी भारतीय हिंदी लेखन की विशद जानकारी हिंदी जगत के सामने आए।

मैं उस समय मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का निदेशक था। मैंने प्रवासी लेखन से संबंधित 'साक्षात्कार' का एक विशेषांक निकालने की योजना बनाई। इस अंक संपादन हेतु अतिथि संपादक के रूप में मैंने डॉ. गोयनका से अनुरोध किया। डॉ. गोयनका ने विशेषांक का संपादन किया। 368 पृष्ठों के इस अंक में 13 देशों के 42 कवियों, 20 कहानीकारों, 26 निबंधकारों तथा 4 अन्य विधाओं के लेखकों की रचनाएं संकलित हैं। न्यूयार्क में 14 जुलाई, 2007 को इस विशेषांक का लोकार्पण हुआ। इस अवसर पर मेरे और गोयनका के साथ बालकवि बैरागी तथा हरि जोशी भी उपस्थित थे।

कमल किशोर जहां खड़ा है, वहां खड़ा होने और खड़ा रहने की कीमत भी उसने चुकाई। आपातकाल लगा तो एक दिन अचानक रात में वह गिरफ्तार कर लिए गए। उस समय उनका छोटा पुत्र एक वर्ष का था। डॉ. गोयनका का एक कथन यहां उद्धृत है-'पत्नी ने जिस साहस-दृढ़ता से इसे झेला, उसका प्रमाण यह है कि उसने एक स्थानीय कांग्रेसी नेता का माफी मांगकर रिहा कराने का प्रस्ताव ठुकरा दिया। मुझे उस पर गर्व है, लेकिन ऐसी हजारों स्त्रियों की दर्द भरी भयानक कहानी क्या कभी इतिहास में लिखी जाएगी?'

आपातकाल में गोयनका की गिरफ्तारी उनके कैरिअर के लिए घातक सिद्ध हुई। उनका मानना और शायद सही है कि प्रगतिशीलों ने आपातकाल में उनकी गिरफ्तारी को ढाल बनाया, उन्हें प्रोफेसर नहीं बनने दिया। डॉ. गोयनका को प्रोफेसर न बन पाने का मलाल है। यह मलाल तब और दिखता है जब उनके अपनों ने भी उन्हें न्याय दिलाने में न सक्रियता दिखाई, न सन्नद्धता। इससे क्या फर्क पड़ता है कि गोयनका प्रोफेसर नहीं बन पाए। साहित्य में प्रेमचंद को लेकर उन्होंने जो कार्य किया, वह निश्चय ही महत्वपूर्ण है। डॉ. गोयनका ने गांधी दर्शन

और साहित्य का भी गहन अध्ययन किया है। डॉ. गोयनका कदाचित् पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने गांधी की पत्रकारिता की इतनी विशद् विवेचना की है। एक पूरी पुस्तक ही उन्होंने रची। मुझे प्रसन्नता है कि इस पुस्तक पर डॉ. गोयनका को मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

गांधी साहित्य के अध्ययन से डॉ. गोयनका को विवचेना का एक और क्षेत्र मिला और वह था ईसाई धर्मांतरण। गांधीजी योजनापूर्वक लोभ-लाभ के टुकड़े डालकर किए गए धर्मांतरण को अनुचित मानते थे। सावरकर ने यों ही तो नहीं कह दिया था कि धर्मांतरण राष्ट्रांतरण है।

प्रारंभ में मैंने कहा था डॉ. गोयनका कुछ लोगों के लिए आँख का काजल है और कुछ के लिए आँखों की किरकिरी। 'काजल' हो या 'किरकिरी' संबंध तो आखिर आँख से ही है और जयशंकर प्रसाद सही कहते हैं- 'है खेल आँख का मन का।'

□

कमल किशोर उर्फ प्रेमचंद गोयनका

रमेश दवे

प्रेमचंद मनुष्य और मनुष्यता के कथाकार थे। उनका मनुष्य किसान था, मजदूर था, वह साधारण-सामान्य व्यक्ति था जो नौकरी करता हो, जानवरों की लाश उठाता हो या सामंती निरंकुशता से दबा-कुचला वाणीविहीन दास हो, महाजनों का कर्जदार हो। एक ऐसा-जन संवेदनाव्यापी कथाकार जिसने जो जीवन जिया, वह लेखक से बड़े मनुष्य का जीवन था, कथा की मनुष्यता का जीवन था, समाज की विसंगतियों और व्यथाओं के बीच कसमसाते एक संवेदनशील सर्जक का जीवन था।

अपनी छप्पन वर्ष की अवृद्ध आयु में वे जितनी कहानियां, उपन्यास, नाटक, निबंध, अखबारी-आलेख आदि लिख गए, वह कम नहीं था, ज्यादा होता तो ज्यादा अच्छा होता। हिंदी कथा-साहित्य ने आज तक जो उत्कर्ष किया, उसका मापक मानक न जैनेंद्र हैं, न फणीश्वरनाथ रेणु, न यशपाल, सुदर्शन से लेकर अज्ञेय और निर्मल वर्मा तक। आज भी कथा में जो प्रेमचंद तत्व है, प्रेमचंद का व्यापक सामाजिक-संवेदनाबोध है, दो भाषाओं की जन-जीवित संयुक्तता है, वह नए से नए कथाकार की आकांक्षा में प्रेमचंदीय होना है। इसलिए अज्ञेय, निर्मल वर्मा, यहां तक कि कभी-कभी डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह ने भी कोशिश की, प्रेमचंद को उनकी समग्रता में अस्वीकार करने की, लेकिन जब उन्हें भी प्रेमचंद के आगे की पीढ़ी में वह कशिश, वह मनुष्यगत-जीवंतता नजर आई तो उनके लिए भी प्रेमचंद मूर्धन्य हो गए, अलंघ्य हो गए।

एक ऐसा कथाकार जो उन्नीसवीं शताब्दी में उस समय जन्मा जब भारत अपने सांस्कृतिक जागरण की राजनीतिक चेतना से स्फुरित हो रहा था, विवेकानंद, अरविंद, गांधी जैसे दिग्गजों की भारतीय मनीषा पश्चिम को ललकार रही थी। प्रेमचंद बीसवीं सदी के चौथे दशक के अंत तक भारतीय कथा-साहित्य के सम्राट हो गए, सम्राट शब्द अगर ठीक नहीं तो नायक या महानायक हो गए और यदि ये भी अभिजातवर्गी शब्द हो तो हिंदी कथा-साहित्य के लोकव्यापी, लोकसंवेदी कथा-मनुष्य हो गए। अपने सामान्य मनुष्यपन में कथा-मनुष्य लेकिन एक साधारण-असामान्य कथा-मनुष्य।

डॉ. कमल किशोर गोयनका को यदि 'प्रेमचंद गोयनका' कह दिया जाए या 'कमल किशोर प्रेमचंद' कह दिया जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। किसी कथाकार की कथाभूमि का उत्खनन जिस

ऐतिहासिक-संलग्नता से कमल किशोर गोयनका करते रहे हैं, वह समर्पण की अनाविल कीर्तिरेखा है। शोध एक प्रयोजन है लेकिन कमल किशोर ने शोध को तीन प्रकार से साधा- एक तो उसे जीवन-परक बनाकर, दूसरे उसे सृजन-परक बनाकर तीसरे उसे जन-संवेदी बनाकर। प्रेमचंद उनके लिए शोध की एक ऐसी मानक इकाई बने जिसकी कोई दुहाई नहीं। अप्रकाशित कहानियां, अप्रकाशित लेख, अप्रकाशित पत्र, संस्मरण जिस तल्लीनता से और तन्मय भाव धारा में कमल किशोर ने खोजे, परिजन से हासिल किए, संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं, प्रेमचंद संपादित 'हंस' और अन्य पत्रिकाओं से बटोरे, वे उदाहरण हैं इस बात का कि शोध एक ऐसी प्रक्रिया है, जो जटिलताओं से भरी चुनौती है, कई बार ऊब और चिढ़ पैदा करती है, थकान से अधमरा कर देती है, लेकिन कमल किशोर की तरह का शोधार्थी ऊब, चिढ़, थकान को मात देता हुआ जब प्रेमचंद को हर बार स्मृति-नव्य कर देता हो, तो शोध भी सार्थक हो जाता है। ऐसे कितने जेन्युइन शोधार्थी हैं जिन्होंने कमल किशोर गोयनका की तरह हिंदी में ऐसा शोध किया हो जो विश्व-स्तर का हो?

कमल किशोर गोयनका हिंदी के प्राध्यापक रहे। पढ़ते-पढ़ाते रहे, अध्ययन-अन्वेषण का जो क्षेत्र चुना, वह था तो कथा-साहित्य, लेकिन कथा-साहित्य में किसी एक कथाकार की स्थापना इस प्रकार कर देना कि शोध के तमाम प्रचलित मानक या प्रलंब टूट जाएंगे। यह गोयनकाजी का ही कमाल है।

कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद पर एकल एकाग्र होकर जो काम किया वैसे काम के लिए पश्चिम के किसी भी विश्वविद्यालय में कम से कम सौ-पचास सह-अन्वेषक होते, तब जाकर शोध संपन्न होता है। वहां के शोध का, यहां तक कि सर्जनात्मक लेखन का अनुशासन ही यह है। नॉम चाम्सकी अपने भाषा वैज्ञानिक शोध के लिए लगभग पांच सौ सह-शोधार्थी साथ रखते रहे हैं। ग्राहम ग्रीन, हेमिंग्वे, सॉल बेलों तक के पास उपन्यास-वस्तु की खोज के लिए अनेक सहलेखक और विश्वकोश हुआ करते थे। भारत जैसे साधन-विपन्न और सहयोग-विमुख विश्वविद्यालय समाज के ईर्ष्याग्रस्त और फतवेबाज वातावरण में यदि कमल किशोर गोयनका ऐसा काम करते हैं, जो यह उनकी अजस्र-अकूत ऊर्जा और अपने शोध के प्रति-निर्भावुक निष्ठा का ही प्रमाण है।

जहां तक शोध का प्रश्न है, हमारे देश में एम.फिल. पी-एच.डी. और डी.लिट्. तक ही शोध की सीमा मान लेने वाले अनेक विद्वान हैं। जिसे उत्तर-डाक्टरेट या पोस्ट-डाक्टरेट शोध कहा जाता है, वैसी शोध-प्रणाली और परंपरा अभी हमारे यहां ठीक से बनी नहीं है। ऐसे में प्रेमचंद-विशेषज्ञ की तरह अनवरत शोध, सर्जनात्मक-आलोचना, संचयन, संकलन आदि कार्यों का निष्पादन कर गोयनका ने यह भी सिद्ध किया है कि प्रेमचंद जैसे एक ही कथाकार का शोध-फलक कितना व्यापक है, विराट है और शोध की संभावनाएं कितनी चुनौतीपूर्ण और विचारात्मक है। अकेले प्रेमचंद पर पच्चीस पुस्तकों का प्रणयन और प्रेमचंद को लेकर इनके शिल्प-विधान का आकलन करना मामूली काम इसलिए नहीं है कि जरा भी चूक या असहमति विचारधारागत विवाद पैदा कर सकती है। प्रेमचंद- विश्वकोश, प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी,

प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, प्रेमचंद रचना संचयन आदि लिख चुकने के पश्चात् जब उन्होंने 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन जैसी पुस्तक लिखी तो ऐसा लगा जैसे यह पी-एच.डी या डी.लिट्. का काम हो, मगर उन्होंने अपनी भूमिका में यह कहा है कि प्रेमचंद की उपलब्ध 298 कहानियों का कालक्रमानुसार उनकी रचना-प्रक्रिया के साथ यह साक्ष्य सिद्ध पहला प्रामाणिक अध्ययन है। भले ही यह पोस्ट- डाक्टरेट कार्य हो, इससे प्रमाणित यही होता है कि कमल किशोर शोध विश्वविद्यालयीन उपाधियों के पार ले जाकर शोध का नया अस्तित्व, नई अस्मिता और एक निर्बाध निंरतरता या परंपरा रचते हैं।

कमल किशोर ने 'प्रेमचंद रचना संचयन' के पुरोवाक् पृष्ठ (ब्लर्ब) पर प्रेमचंद का एक उद्धरण दिया है जो कथा में चिंतन और कथा के स्वरूप को स्पष्ट करता है। प्रेमचंद कहते हैं- 'हमारी कसौटी पर वह साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाशन हो- जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।'

इस एक उद्धरण से गोयनका ने प्रेमचंद के कथा-चिंतन कथा-प्रक्रिया और लेखकीय संकल्प को एक साथ प्रस्तुत कर दिया है। उच्च चिंतन, स्वाधीनता सौंदर्य, सृजन (मौलिकता), जीवन की सच्चाइयां (यथार्थ) मनुष्य की गति, उसका संघर्ष और विसंगतियों के विरुद्ध बेचैनी यदि प्रेमचंद की कथा का शिल्प है, तो ऐसा कथाकार जीवन भर सो कैसे सकता है, वह तो इन सब तत्वों को मृत्यु के विरुद्ध अपना संकल्प या अपनी घोषणा मानता है। जब एक कथाकार या कोई भी सर्जक इतना चेतनाशील होगा, तभी तो वह किसी कौम या राष्ट्र के मानस को उद्वेलित कर सकता है। यहां प्रकारांतर से प्रेमचंद के स्वाधीनता संबंधी विचार को देखें तो कहा जा सकता है कि उनके समय में गांधी जिस स्वाधीनता की आंदोलन-भूमि रच रहे थे, उसका प्रभाव प्रेमचंद पर था।

गोयनका प्रेमचंद के प्रशंसक या समीक्षक-अन्वेषक या अध्येता तक ही सीमित नहीं हैं। किसी एक बड़े कथाकार, जैसे प्रेमचंद हों या जैनेंद्र, अज्ञेय हों या मुक्तिबोध, को पढ़ना मात्र पढ़ना नहीं है बल्कि लेखक की आत्मा में उतरकर रचना तक पहुंचना है। गोयनका ने प्रेमचंद में अपना काया-प्रवेश किया है, उनकी आत्मा में अवगाहन किया है और यदि बाह्य-रूप से देखा जाए तो उनके शब्द-शब्द, परिवेश, पात्र, कथानक आदि के साथ-साथ प्रेमचंद की हर रचना को जीवन-दृश्य की तरह प्रकट किया है। ठीक प्रेमचंदीय कल्पना और विचार के साथ और आंतरिक रूप से उन्होंने हर रचना की अंतर्यात्रा की है। फ्रेंच सुररियेलिस्ट पेंटर सेल्वेडोर डेली ने अपनी जीवनी 'डायरी ऑफ अ जीनियस' लिखी है, जो काव्य, कथा और कला तीनों का एक साथ आनंद देती है। डेली कहता है 'मैं अंतर में सतत ऐसी चेतना कायम रखता हूं कि जो भी वस्तु मेरे व्यक्तित्व और जीवन का स्पर्श करे वह अद्भुत हो और जो अत्यंत विशिष्टता के साथ पूर्ण भी हो और उद्वेलनकारी भी।' डेली यह भी कहता है कि जो रचना हमारे सामने है, उसे सीधे-सीधे देखने या पढ़ने के बजाए, उलटा-पुलटा कर भी देखें और इस उलट-पुलट

के बावजूद यदि उसमें कलात्मक यथार्थ उत्पन्न हो तो कहना होगा कि रचना को भी देखने की एक कला होती है।

यहां यह कहना होगा कि कमल किशोर गोयनका किसी विचारधारा विशेष के आग्रह से बंधकर प्रेमचंद के यथार्थ की या आदर्श की खोज नहीं करते, बल्कि वे तो प्रेमचंद जैसे महान कथाकार के उस कलात्मक यथार्थ को उद्घाटित करते हैं जो मनुष्य में मनुष्य होने का संवेदन भी है, सौंदर्य भी, उत्पीड़न, शोषण और निर्धनता में भी जहां जीने की उदास ही सही मगर वांछित ललक है। यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि हिंदी आलोचना हमारे महान् यहां तक कि कालजयी रचनाकारों का विचारधारा के कभी वामपंथी, कभी दक्षिणपंथी, कभी कलावादी, कभी यथार्थवादी आग्रहों के आधार पर उन्हें बांटकर देखती हैं या उन्हें साहित्य के धरातल से बेदखल कर राजनीतिक धरातल से जोड़ देती है। कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद को लेकर ऐसा कोई दुराग्रह नहीं अपनाया और न अधिक रेटरिक के साथ विचारधारागत प्रेमचंदीय आलोचना को निरस्त किया और यह भी सच है कि उसके प्रति आकर्षण या कोई प्रतिबद्धता भी नहीं दिखाई।

कमल किशोर गोयनका का प्रेमचंद-फलक है तो व्यापक, पूरी तरह प्रेमचंद-केंद्रित, लेकिन नामवर सिंह जिस प्रकार अपनी पुस्तक 'कहानी : नई कहानी (मार्च, 1966)' में कहानी को लेकर तीन खंड लिखते हैं- प्रस्थान, प्रक्रिया और प्रतिपात्र, वैसा कमल किशोर प्रेमचंद को लेकर यदि करते तो कहानी की आधुनिकता से लेकर उत्तर-आधुनिकता तक के समूचे विकास क्रम में प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों के शिल्प की शैलीगत और भाषिक नवीनता, भाषा की संरचना, वस्तु की प्रयोगशीलता, विचार की बुनावट और कहानी के कहानीपन की अनिवार्यता को प्रस्तुत किया जा सकता था, यह कार्य कमल किशोर गोयनका के लिए संभव था। कुछ हद तो यह काम उन्होंने किया अवश्य है लेकिन जैसा कि नामवर सिंह मानते हैं कि 'हिंदी कविता की अपेक्षा कहानी में स्वस्थ सामाजिक शक्ति अधिक है', उसी तरह गोयनका भी इस स्वस्थ-सामाजिक शक्ति पर अधिक केंद्रित रहे। नामवरजी यह मानते हैं कि कहानी मनोरंजन के रूप में अधिक पढ़ी जाती है लेकिन आलोचित तो शिल्प के रूप में ही होती है, मनोरंजन कहानी की सफलता है मगर शिल्प सार्थकता। गोयनका को चाहिए था कि वे मनोरंजन और शिल्प के बीच प्रेमचंद को रखकर उनकी कहानियों का काल-क्रमानुसार अध्ययन करने के साथ यह भी स्पष्ट कर देते (कुछ हद तक ऐसा किया भी है) कि प्रेमचंद मात्र मनोरंजन के ही कथाकार नहीं हैं, बल्कि वे तो संवेदना के भी शिल्पकार हैं। विचार उनका मनुष्य में निहित है, फिर चाहे वह मनुष्य स्वयं प्रेमचंद हो, कहानी या उपन्यास का पात्र हो या कहानी का पूरा कथा-फलक और विषय हो। प्रेमचंद के पास किसान, मजदूर, दास, कामगार, ग्रामीण, महाजन, आमजन सब विचार-सृष्टि की तरह हैं तभी तो वे पात्र की भूमिका के यथार्थ रचते हैं और यथार्थ ही उनका विचार है, पात्र की ही भूमिका में किसी आदर्श में विलीन होते हैं और यह आदर्श भी उनका विचार रहा है। प्रेमचंद को विचार के स्तर पर व्याख्यायित करने के लिए गोयनका के पास अध्ययन, अनुसंधान के साथ व्यापक समीक्षा दृष्टि तो है लेकिन हम किसी

भी लेखक को आइकन की हैसियत में देखते-देखते, उसके ही भावलोक में विलीन हो जाते हैं, इसलिए उसका वस्तुलोक, मनुष्यलोक और विचार लोक केवल भौतिक यथार्थ ही बनकर रह जाता है।

कमल किशोर गोयनका ने जितना और जैसा गूढ़ कार्य प्रेमचंद पर एकाग्र होकर किया, वैसा काम हिंदी में शायद ही अपने किसी आधुनिक कथाकार पर हुआ हो। कहा जाता है कि शेक्सपीयर, फ्रांस की राज्य-क्रांति और नेपोलियन पर यूरोप में सर्वाधिक लिखा गया लेकिन किसी एक ही लेखक ने इनमें से किसी पर लगातार छब्बीस पुस्तकें लिख दी हों, ऐसा उदाहरण संभवतया शायद ही कहीं हो।

प्रेमचंद पर विशद कार्य करने के साथ गोयनकाजी ने अन्य साहित्यकारों पर भी अत्यंत गंभीर कार्य किया। उनकी ऊर्जा और लेखन की यह अबाध निरंतरता देखकर लगता है कि मनुष्य अपनी उम्र को अक्षर से मात दे सकता है। अक्षर का जिस प्रकार क्षरण नहीं होता, वैसे ही लेखन यदि उसकी अक्षरात्मा से किया गया है तो वह भी क्षरित या लुप्त नहीं होता। उन्होंने अन्य सत्रह पुस्तकें लिखीं, वे इस प्रकार हैं- 1. प्रभाकर माचवे -प्रतिनिधि रचनाएं 2. जगदीश चतुर्वेदी : एक विवादास्पद रचनाकार 3. मन्मथनाथ गुप्त -प्रतिनिधि कहानियां 4. जिज्ञासाएं मेरी : समाधान बच्चन के 5. रवींद्रनाथ त्यागी-प्रतिनिधि रचना 6. हजारी प्रसाद द्विवेदी- कुछ संस्मरण 7. विष्णु प्रभाकर- प्रतिनिधि रचनाएं 8. यशपाल कुछ संस्मरण 9. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली-3 खंड 10. लघुकथा का व्याकरण 11. दिनेशनंदिनी डालमिया से बातचीत 12 मंजुल भगत- समग्र कथा-साहित्य (दो खंड) 13. गरीब होने के फायदे और अन्य व्यंग्य रचनाएं 14. आपातकाल की प्रतिनिधि कविताएं 15. गांधी-पत्रकारिता के प्रतिमान 16. बालशौरि रेड्डी : कथा-रचनावली 17. रवींद्रनाथ त्यागी रचनावली। इनके अतिरिक्त हिंदी के प्रवासी साहित्य पर भी चिंतन करते हुए गोयनका ने लिखा है अभिमन्यु अनत, मॉरीशस की हिंदी कहानियां, अभिमन्यु-प्रतिनिधि रचनाएं, समग्र कविताएं, मॉरीशस के राष्ट्रकवि बृजेंद्र कुमार भगत-मधुकर काव्य रचनावली और हिंदी का प्रवासी साहित्य पर और यह भी प्रयत्न किया है कि मॉरीशस जैसा एक छोटा हिंदी, फ्रेंच, अंग्रेजी और क्रियोल-भोजपुरी भाषी देश-हिंदी साहित्य की सर्जना के प्रति कितना समर्पित है।

कमल किशोर गोयनका ने कोई मौलिक साहित्य तो नहीं लिखा- जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि लेकिन जो निबंध लिखे या लेखकों पर काम किया, वह न केवल उत्कृष्ट शोध-कार्य है, बल्कि शोध में भी उनके मौलिक सोच की अभिव्यक्ति है। आलोचना या समालोचना एक दुष्कर कर्म है। एक सर्जक की आत्मा में उतरकर और अध्ययन की सीमाओं को असीमित करके ही ऐसा कार्य संभव है। यह भी सच है कि हर कोई लेखक तो सूर, जायसी, तुलसी, कबीर, प्रसाद निराला या अज्ञेय, मुक्तिबोध, प्रेमचंद नहीं हो सकता। यहां तक कि इन बड़े सर्जकों की एक महानता तो वे स्वयं रचते हैं, महानता के इस क्षितिज को विश्वव्यापी महान बनाते हैं अध्येता, आलोचक, चिंतक ही। गोयनका ने कोई प्रेमचंद संबंधी सैद्धांतिकी भी नहीं रची। उनका अध्ययन और शोध एक प्रकार का नारमेटिव अर्थात् स्टेटस शोध है जिसमें रचना

और रचनाकार को ज्यों का त्यों स्थिति, परिवेश और सर्जन के साथ प्रामाणिकता से प्रस्तुत कर दिया जाता है। कहानी-साहित्य पर भी उनका वैसा काम नहीं है जैसा भारत भूषण अग्रवाल ने हिंदी उपन्यासकार पर पाश्चात्य प्रभाव में किया अथवा भीष्म साहनी और नामवर सिंहजी ने उपन्यासों की आलोचना का आलेख संचयन-संकलन कर संपादन किया। गोपाल राय एवं पुष्पपाल सिंह जैसा इतिहासबद्ध कहानी की विकास यात्रा का भी काम गोयनका ने इसलिए नहीं किया कि यदि वे यह सब करते तो प्रेमचंद से भटक जाते और जो कीर्ति उन्हें प्रेमचंद-एकाग्र से मिली और वे प्रेमचंद के एक अधिकृत अध्येता मान्य हुए, वैसा संभव नहीं हो पाता।

कहा जाता है कि कहानी कोई सैद्धांतिक रचनाशास्त्र नहीं है। भारतीय साहित्य में साहित्य को काव्य ही कहा गया है। आधुनिक कथा-साहित्य की तरह भारत में कथा का सही उद्‌भव तो एक संपूर्ण आधुनिक सामाजिक कहानी के रूप में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' से ही हुआ था। उसके पूर्व का कहानी लेखन केवल ऐतिहासिक स्मृति के लिए है, कथा साहित्य की वास्तविकता के लिए नहीं, गोयनकाजी इस पचड़े में ज्यादा नहीं पड़े गोकि इस दिशा में उन्होंने इशारे अवश्य किए हैं।

कहानी आलोचना का क्षेत्र आज कहानी-उपन्यास के अनेक आलोचक होने के बावजूद पुस्तक-समीक्षाओं तक ही सीमित है। यह जरूर है कि जो काम कहानी की मौलिक आलोचना को लेकर स्व. देवीशंकर अवस्थी ने प्रारंभ किया था, उसे धनंजय वर्मा ने अपने सर्जनात्मक और गहन आलोचक-मनोभाव से करते हुए कहानी समीक्षा को उत्कर्ष दिया, मौलिकता में भी हिंदी-उर्दू-अंग्रेजी के संयुक्त भाषा-शिल्प में भी और आगे चलकर कहानी का रचनाशास्त्र लिखकर भी। विजय मोहन सिंह ने भी कथा-साहित्य के मूल्यांकन में काम तो किया लेकिन कोई शास्त्र रचना नहीं की। इसलिए यदि गोयनकाजी ने प्रेमचंद कथा-साहित्य को उसकी स्थिति में व्यावहारिक-आलोचना में देखा तो यह काम इसलिए बड़ा है कि एक बड़े लेखक के रूप में बड़े काम को व्यवस्थित ढंग से पेश करना कम चुनौतीपूर्ण नहीं रहा होगा।

भारत भूषण अग्रवाल ने अपनी शोध-पुस्तक 'हिंदी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव' में प्रेमचंद को 'युग-प्रतिनिधि कथाकार' कहते हुए लिखा है जब उनका (प्रेमचंद का) पहला विख्यात उपन्यास 'सेवासदन' प्रकट हुआ था तब उसने साहित्य जगत में एक सनसनी उत्पन्न कर दी थी। दूर-दूर तक उसकी अनुगूंज फैली थी, अपरिचित अनजाने लोग भी 'सेवासदन' के लेखक के दर्शन के लिए उत्सुक हो गए थे। इसके बाद दो दशकों में प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन, 'कर्मभूमि' जैसी उत्कृष्ट रचनाएं दी। भारत भूषण ने प्रेमचंद को गांधीयुग का सशक्त स्वर माना है। जहां एक ओर प्रेमचंद गांधीयुग में प्रेमचंद युग रच रहे थे, वहीं वे भारत के मध्यवर्ग की संवेदना के कथाकार भी बने। गोयनकाजी ने 'प्रेमचंद रचना संचयन की भूमिका' में ठीक ही कहा है वे हिंदी के पहले साहित्यकार थे जिन्होंने पश्चिमी पूंजीवाद एवं औद्योगिक सभ्यता के संकट को पहचाना और देश की मूल कृषि संस्कृति तथा भारतीय जीवन-दृष्टि की रक्षा की और देशवासियों का ध्यान आकर्षित किया। 'प्रेमचंद-रचना

संचयन' में गोयनकाजी ने प्रेमचंद की कथा-उपन्यास रचनाओं के अतिरिक्त उनके वैचारिक आलेख, पत्र, साक्षात्कार आदि देकर प्रेमचंद के अनेक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किए हैं।

कमल किशोर गोयनका ने एक और महत्वपूर्ण कार्य यह किया (जो हिंदी में अब तक हुआ नहीं था) कि प्रेमचंद की कहानियों को कालक्रमानुसार अध्ययन के रूप में प्रस्तुत कर दिया। यह प्रेमचंद को केवल उनके व्यक्तित्व की बनावट और कथाकार के रूप में उनके प्रकट होने तक का ही दस्तावेज नहीं है, बल्कि कहानीकार का इतिहास, स्थिति, उनकी कहानियों की संख्या, उनका कालक्रम में संयोजन, उनका कथा-दर्शन, और चार दशकों में प्रेमचंद के कथाकार का कथा सर्जन और विकास भी इस पुस्तक में समाहित किया है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद की कहानी 'सौदा' की मूल पांडुलिपि स्वयं प्रेमचंद के हाथों में लिखी, छाप दी गई और कुछ कहानियों की अंग्रेजी रूपरेखा भी दी गई है। यह काम करके गोयनका ने प्रेमचंद की हिंदी लिखावट से भी परिचित कराया है। मूल रूप से प्रेमचंद उर्दू कथाकार थे, उर्दू लिपि की केलीग्राफी बहुत सुंदर होती है, अगर कोई कहानी उर्दू लिपि में प्रेमचंद की लिखावट के साथ दे दी गई होती तो प्रेमचंद की लिखावट से उनके लिखने का कौशल और सौंदर्य भी प्रकट होता। जहां तक अंग्रेजी रूपरेखा का प्रश्न है, प्रेमचंद ऐसे कथाकार थे जिन्होंने विश्व का सर्वश्रेष्ठ साहित्य पढ़ रखा था और 'ताइस' जैसी महत्वपूर्ण, फ्रेंच रचना का अंग्रेजी से अनुवाद भी किया था जिसका हिंदी में उपन्यासीकरण भगवतीचरण वर्मा ने भारतीय परिवेश और पात्र के साथ 'चित्रलेखा' में किया। यह पुस्तक इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि कालक्रमानुसार कथा का विकासक्रम जान लेने से एक लेखक के समस्त उतार-चढ़ाव, वैचारिक उद्वेलन परिवर्तन, समकालीनता से परिवर्तनकामी आदि को जाना जा सकता है।

प्रेमचंद के अध्येता तो कमल किशोर रहे ही हैं और जो काम वे प्रेमचंद पर कर गए, वह काम अब आगामी शोधार्थी दो प्रकार से करेंगे- एक तो प्रेमचंद को उनकी समग्रता में एक साथ संदर्भ सहित जान सकेंगे दूसरे कमल किशोरजी के शोध पर शोध कर उनके काम का भी आकलन कर सकेंगे। जब नाम चाम्सकी जैसे भाषा वैज्ञानिक ने ट्रांसफर्ममेशनल ग्रामर का सिद्धांत रचा तो उनके अनेक सिद्धांतों को उनके ही शिष्यों ने उनके ही सामने चुनौती देकर अमान्य कर दिया व संशोधित कर दिया। कमल किशोर के उत्तर-शोधार्थी भी जहां कहीं प्रेमचंद के मूल्यांकन से या साक्ष्यों से असहमत होंगे वे कमल किशोर को प्रमाण-पुष्ट साक्ष्य के साथ चुनौती भी दे सकते हैं।

कमल किशोर गोयनका के अपने जीवन का तीन चौथाई समय प्रेमचंद को देकर यह तो प्रमाणित कर ही दिया कि हिंदी-गद्य और हिंदी-गद्य में भी कथा-गद्य का आज तक कोई मूर्धन्य कथाकार बना हुआ है तो वह प्रेमचंद ही है जिनके अंदर से हिंदी के अनेक समकालीन और परवर्ती कथाकारों का उद्‌भव हुआ है। उनका अन्य आलोचनात्मक काम देखकर भी यह लगा कि एक अध्येता की शोध-निष्ठा और वैचारिक दृष्टि क्या होती है। राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, डॉ. रघुवीर, डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. रवींद्र श्रीवास्तव, महेंद्र राजा जैन जैसे लोगों के बीच प्रेमचंद को अपनी एकनिष्ठ साधना से कालजयी कर देने का जो काम

गोयनकाजी ने किया है वह हमारे समय का और आगामी समय का सर्जनात्मक भूगोल भी है और स्मृति में जीवित रहने वाला इतिहास भी। इस दृष्टि से कमल किशोर गोयनकाजी का जो प्रेमचंदीकरण हुआ है। वह तो हिंदी साहित्य की एक अभूतपूर्व घटना है। भले ही अन्य बहुत सा महत्वपूर्ण काम गोयनका ने किया है लेकिन जब तक प्रेमचंद रहेंगे तब तक उनके सहगामी बनकर कमल किशोर भी साहित्य के फलक पर कायम रहेंगे।

□

सारस्वत साधना की प्रतिमूर्ति : डॉ. गोयनका

अर्चना पाण्डेय

डॉ. कमल किशोर गोयनका से मेरा परिचय प्रथम बार उनके पत्र से हुआ। दरअसल सन् 2014 में मेरे सह-संपादकत्व में एक पत्रिका 'अभिव्यंजना'-त्रैमासिक का प्रकाशन हुआ। दो अंकों के पश्चात् इस पत्रिका का नाम परिवर्तित हो गया 'मुक्तांचल' के रूप में और वर्तमान समय तक पत्रिका इसी नाम से प्रकाशित हो रही है। तो प्रसंग गोयनकाजी से परिचय का है। पत्रिका के प्रकाशन के उपरांत, 'वागर्थ' आदि पत्रिकाओं में मैंने विद्वत-जनों का संपर्क प्राप्त कर उसे भिजवाना प्रारंभ किया। अभिव्यंजना' पत्रिका के संदर्भ में गोयनकाजी ने एक लंबा पत्र उसकी अनुशंसा में भेजा, जिसकी निम्न पंक्तिया मुझे प्रोत्साहित एवं आंदोलित कर गईं- 'मुझे अच्छा लगा कि आपके साथ अर्चनाजी हैं। यह स्त्री सशक्तिकरण का ज्वलंत प्रमाण है।' इसके पश्चात् निरंतर मेरा संपर्क गोयनकाजी से बना रहा और अनेक-प्रकार की प्रेरणाएं प्राप्त होती रही।

उनके सहृदयता, आत्मीयता, कर्मनिष्ठा तथा सत्य के मार्ग के अनुगामी होने का प्रमाण तब मिला जब वह 'केंद्रीय-हिंदी संस्थान' आगरा के उपाध्यक्ष नियुक्त हुए। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि संस्थान की योजना है, लघु-पत्रिका को अनुदानित करने की। गोयनकाजी ने रात्रि 10 बजे स्वयं फोन करके बताया और आवेदन करने के लिए कहा तथा आवेदन के उपरांत हमारी पत्रिका की स्तरीयता के आधार पर उसे अनुदान के लिए चयनित भा किया गया।

पत्रिका के माध्यम से निर्मित गोयनकाजी से मेरा संबंध उसके प्रत्येक अंक के साथ सुदृढ़ होता गया। मेरी कर्मनिष्ठा एवं पत्रिका के प्रति समर्पण को देखकर प्रत्येक अंक के लिए उनके सुझाव आदि प्राप्त होते रहे तथा पत्रिका उनकी सदाशयता के कारण वर्धित भी होती रही, उन्हें प्रतीत हुआ कि एक अच्छा कार्य पूर्ण निष्ठा के साथ हो रहा है। पत्रिका के प्रति उनकी शुभेच्छाएं सदैव प्रकट होती रहीं।

गोयनकाजी के सारस्वतता, सदाशयता, कर्त्तव्य-परायणता तथा व्यामोह रहित व्यक्तित्व का परिचय 11वें विश्व-हिंदी सम्मेलन 2018 जो कि मॉरीशस में प्राप्त होता है।

जुलाई, 2018 के अंतिम-सप्ताह में सुबह करीब 11 बजे का समय था और मैं पढ़ रही थी, तभी मेरा मोबाइल बजा और मैंने देखा कि सर का (गोयनकाजी को मैं सर ही कहती हूं)

फोन है। गोयनकाजी ने पूछा 'अर्चनाजी आपका पासपोर्ट है' मैंने कहा 'नहीं सर' उनका कथन था मैं आपका नाम 'सरकारी-प्रतिनिधि-मंडल' के लिए प्रस्तावित करने जा रहा हूं', कैसे होगा? उस समय वे भारत सरकार के 11वें विश्व-हिंदी सम्मेलन के परामर्शदाता-मंडल सदस्य होने के कारण कार्यकारिणी की बैठक में थे। उनसे किसी सदस्य ने कहा कि पासपोर्ट बन जाएगा, तब उन्होंने मेरा नाम प्रस्तावित किया। इसके पश्चात पासपोर्ट बनवाने का सिलसिला शुरू हुआ और उसमें अनेक असुविधाएं आईं, किंतु उनके सतत् प्रयत्न के कारण पासपोर्ट बन सका और मेरा विश्व हिंदी सम्मेलन में जा पाना संभव हुआ।

मॉरीशस में गोयनकाजी के व्यक्तित्व के एक अन्य पक्ष से मेरा परिचय हुआ कि महान् व्यक्ति की असाधारणता में किस प्रकार सहजता छिपी होती है, प्रसंग है-आयोजन में सहभागियों के लिए अलग। किंतु, विशिष्ट होते हुए भी गोयनकाजी जिसके साथ (सामान्य से सामान्य व्यक्ति) होते थे, उसी के साथ सामान्य शिविर में भी सहजता-पूर्वक मैंने उन्हें भोजन करते हुए देखा। सत-साहित्य किस प्रकार मनुष्य को मनुष्यता के चरम सोपान पर आवेष्टित कर देता है- 'प्रेमचंद-विशेषज्ञ' के रूप में निर्विवादतः प्रतिष्ठित डॉ. गोयनका केवल प्रेमचंद के अध्येता ही नहीं बने, अपितु प्रेमचंद उनके आचारण में विद्यमान हैं यह प्रमाणित हुआ।

गोयनकाजी कोलकाता स्थित राजा राममोहन राय पुस्तकालय के केंद्रीय समिति के सदस्य भी हैं। अतः उनका कोलकाता आना-जाना निरंतर लगा रहा है, इस कारण सौभाग्यवश अनेक बार उनसे मिलना-जुलना भी होता रहता है। अभी-हाल-फिलहाल 1 नवंबर, 2018 को सर से मेरी मुलाकात हुई। प्रसंगवश वार्तालाप के दौरान उन्होंने 'रंगभूमि' उपन्यास के एक पात्र के संवाद को बताया वह है -सूरदास से उसके पौत्र का संवाद-सूरदास से उसका पौत्र पूछता है- 'दादा ये लोग हमारी झोपड़ी को जला देंगे' तो सूरदास कहता है- 'हम फिर बना लेंगे।' पौत्र पुनः कहता है 'सौ बार जला देंगे' तब फिर सूरदास कहता है- 'सौ बार बना लेंगे।' यह सिलसिला लाख बार तक चलता है। इस उदाहरण के द्वारा गोयनकाजी ने बताया कि किसी भी कार्य को करने के लिए धैर्यपूर्वक प्रयत्न करना आपका लक्ष्य होना चाहिए, जो कि धर्म के दस गुणों में एक महत्वपूर्ण गुण है। यह उनके कर्त्तव्य-निष्ठ होने का प्रमाण है।

गोयनकाजी के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का उद्घाटन हो चुका है, किंतु यदि प्रेमचंद पर किए गए उनके कार्यों की चर्चा न हो तो उनका व्यक्तित्व अधूरा-सा लगता है। गोयनकाजी के संपूर्ण-साहित्य से मेरा परिचय नहीं है, किंतु एक दो आलेखों एवं साक्षात्कारों के माध्यम से ज्ञात हुआ कि वे प्रेमचंद के साहित्य में भारतीयता के पक्षधर हैं। प्रेमचंद के साहित्य में 'संस्कृति-विमर्श' को केंद्र में लाने वाले आलोचकों में डॉ. गोयनका का नाम शीर्ष पर है। इसका प्रमाण 26 अगस्त, 2018 को 'जनसत्ता दैनिक' में प्रकाशित उनके साक्षात्कार द्वारा मिलता है, जिसका शीर्षक है- 'मनुष्यता की रक्षा के लिए है प्रेमचंद का साहित्य' उक्त साक्षात्कार में उन्होंने एक प्रश्नकर्त्ता का उत्तर देते हुए कहा है- 'यह सत्य है कि प्रेमचंद सांप्रदायिकता के विरोध में थे, चाहे वे हिंदू सांप्रदायिकता हो, मुस्लिम या फिर ईसाई। सबके बारे में उन्होंने लिखा है। मंदिरों में पंडितों और

पुरोहितों के पाखंड पर उन्होंने बहुत विस्तार से लिखा। हिंदू कुरीतियों पर उन्होंने बहुत कठोरता से लिखा है। पर हिंदू परंपरा के जो मूल्य हैं, उसके बिना उनका साहित्य चल ही नहीं सकता। वे उन परंपराओं के पक्ष पर खड़े हैं।' इस संदर्भ में प्रेमचंद की अनेक कहानियों-'शाप', 'मर्यादा की बेदी', 'पाप का अग्निकुंड', 'जुगनू की चमक', 'धोखा', आदि का नाम लिया जा सकता है, जिसमें 'शाप' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन कहानियों में गोयनकाजी की उक्त वाणी ध्वनित होती है; जिसे गोयनकाजी ने पहली बार रेखांकित किया है। 'शाप' कहानी का 'देशकाल-वातावरण' प्रेमचंद का समकालीन है, किंतु उसका कथानक पौराणिक मान्यताओं के निकट का है। कहानी में भारतीय मूल्य 'पवित्रत-धर्म' की महिमा का वर्णन प्रेमचंद ने किया है, वह भी एक विदेशी के वक्तव्य के द्वारा। जीवन और लेखन दोनों में ही सारस्वतता के प्रतिमूर्ति-डॉ. गोयनकाजी से मैं निरंतर प्रेरणा ग्रहण करती रहूं। अस्तु।

□

कमल किशोर गोयनका के आलोचनात्मक कर्म पर हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित

लेखकों की प्रतिक्रियाएं

'प्रेमचंद विश्वकोश' एक अपूर्व उपलब्धि

जैनेंद्र कुमार

प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक वृहद योजना प्रकाश में आई है। इसके अंतर्गत पांच खंड होंगे जो प्रेमचंद के जीवन, साहित्य, पात्र, विचार तथा उनकी समीक्षा से संबद्ध हैं। इनमें से आरंभिक दो खंडों का प्रकाशन हो गया है। शेष खंड क्रमशः प्रकाशन एवं मुद्रण की प्रक्रिया में हैं। इस 'प्रेमचंद विश्वकोश' के लेखक तथा संपादक कमल किशोर गोयनका हैं, जिन्होंने इस काम में अपने दस बारह वर्ष लगा दिए। प्रत्येक खंड में डबल डिमाई के लगभग 500 पृष्ठ हैं। प्रेमचंद के संबंध में अभी तक जितनी जानकारी उपलब्ध है तथा गोयनका ने अपने शोध के दौरान जो नई सामग्री खोजी है, वह सभी वर्गीकृत रूप में 'प्रेमचंद विश्वकोश' में यथास्थान संकलित है। आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति इतना काम कैसे कर सका है? अमित अध्यवसाय और परिश्रम की इसमें आवश्यकता हुई होगी। निश्चय ही यह एक अपूर्व उपलब्धि है। प्रेमचंद के विषय में इतनी सामग्री एवं प्रामाणिक जानकारी देने के कारण एक संदर्भ ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य सदा बना रहेगा। मुझे नहीं मालूम यदि किसी और भाषा में किसी एक लेखक पर इतना अविकल और सांगोपांग कार्य हुआ है। भारतीय भाषाओं में तो इसकी संभावना कम है। अंग्रेजी यदि भाषाओं में भी हो सका हो तो पता नहीं। बॉसबेल ने जॉनसन का चरित्र लिखा है। वृहद्काय वह अवश्य है, लेकिन लेखक के जीवन तथा कृतियों के संबंध में प्रामाणिक सूचनाएं इस प्रकार वर्गीकृत और यथानुक्रम वहां नहीं मिलतीं।

'प्रेमचंद विश्वकोश' का पहला खंड प्रेमचंद के जीवन के संबंध में है। इसमें प्रेमचंद के जीवन को कालक्रमानुसार दिया गया है तथा उनके जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रथम खंड में प्रेमचंद के संबंध में अनेक ऐसी जानकारियां और दस्तावेज हैं, जो अज्ञात एवं दुर्लभ हैं और पहली बार यहीं एकत्र किए गए हैं।

प्रेमचंद का कृतित्व बहुत विस्मृत रहा है। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में पूरे अधिकार और दक्षता के साथ जीवन-भर वे लिखते रहे थे और यदि कहीं उस सबका संपूर्ण ब्यौरेवार

विवरण मिल सकता है तो वह इसी 'प्रेमचंद विश्वकोश' में। विश्वकोश का दूसरा खंड उनके साहित्य से संबंधित है, जिसमें प्रेमचंद के हिंदी तथा उर्दू साहित्य की पूरी जानकारी उपलब्ध है।

'प्रेमचंद विश्वकोश' के प्रकाशित दो खंडों को देखकर मैं कह सकता हूं कि यह सर्वथा मौलिक एवं ऐतिहासिक महत्व का कार्य है। इस भगीरथ प्रयास के लिए गोयनका को बधाई देता हूं और मानता हूं कि उनका यह अनुपम कार्य हिंदी संसार के लिए मान्य और अभिनंदनीय होगा।

प्रेमचंद साहित्य-सम्राट माने गए, इसीलिए हो सकता है कि उन्हें अतिमानव के रूप में देखने का सहज मोह उत्पन्न हो। इस रूप में जहां-तहां उन्हें देखा-बखाना भी गया है। 'प्रेमचंद विश्वकोश' प्रकट करता है कि प्रेमचंद मानव थे और साहित्यकार की विशेषता ही यह है कि वह मानवोत्तम होने के फेर में नहीं रहता, अपितु निपट मानव बने रहने में ही संतुष्ट रहता है। इसी विशेषता से वह प्रत्येक चरित्र को अपनी सहानुभूति देने में समर्थ होता है और उपदेशक बनने के दोष से बचा रह जाता है। 'प्रेमचंद विश्वकोश' द्वारा प्रेमचंद को मानव के रूप में प्रस्तुत करने के कारण भी मैं इसे उसकी सफलता का एक प्रमाण मानता हूं।

□

खोजी मन में सच पाने की जिद

कृष्णदत्त पालीवाल

रचना और आलोचना की सबसे बड़ी सार्थकता इस बात से मानी जा सकती है कि वह हमारे वैचारिक संवेदनों का विस्तार करती है। इस पर सवाल उठता है कि हमें क्या पड़ी है हम अपने वैचारिक संवेदन का विस्तार करें। रचना और आलोचना, की अंतः क्रिया से सरोकार स्थापित करे। 'सृजन' और 'विजय' के बीच जो तालमेल होता है, उसे खोजते फिरें। इसका एक रास्ता तो यही हो सकता है कि हम रचना के संपूर्ण तथ्य को ही नकार दें और रचनाकार, रचना-कर्म और परिवेश तीनों की जानकारी के लिए अनुसंधान करें क्योंकि ऐसा अनुसंधान हमारी साहित्यिक संस्कृति का जाने-अनजाने परिष्कार करता है। कहना न होगा कि इन दो मार्गों में से कमल किशोर गोयनका ने दूसरा रास्ता अपनाना ही श्रेयस्कर समझा। प्रेमचंद की ऊबड़-खाबड़ जिंदगी और रचनाओं की प्रकृति में धंसे बिना उनकी कार्य न चला। वे पहले प्रेमचंद के जीवन-अनुसंधान में प्रवृत्त हुए और एक विश्वसनीय जीवनी का ढांचा तैयार किया।

कमल किशोर गोयनका के इस कार्य से पूर्व प्रेमचंद पर खुली आँख से बहस तो उठाई गई थी लेकिन उसमें उन्हें 'यथार्थवादी कला का सम्राट' सिद्ध करने पर बल अधिक था। कुछ मार्क्सवादियों को प्रेमचंद अपनी बपौती लगते थे। कोई गैर-मार्क्सवादी आलोचक या पाठक उन पर कोई अलग ढंग से बात उठाया था तो उसे गुर्राहट, गाली-गलौच और ललकार सहनी पड़ती थी। फलतः प्रेमचंद का झंडा जब गोयनका ने उठाया तो सोते हुए सांप का फन तानकर खड़े हो गए। जिनमें रेंगने की ताकत नहीं थी, वे कमल किशोर नामक व्यक्ति की आलोचना में डट गए। उन्हें गोयनकाजी ने प्रेमचंद साहित्य की छानबीन के बाद जो साक्षी रूप तैयार किया है वह काफी नहीं लगा। जो लोग प्रेमचंद की मार्क्सवादी छवि के अतिरिक्त उनकी अन्य कोई छवि देखना ही नहीं चाहते थे, उनके लिए धैर्य रख पाना कठिन था। हिंदी में बहुत से भोले बुद्धिजीवी केवल इसी विश्वास में जीते रहे कि प्रगतिशील परंपरा का अर्थ है-प्रेमचंद और व्यक्तिवादी-प्रतिक्रियावादी परंपरा का अर्थ है-जयशंकर प्रसाद। दोनों महान रचनाकार एक ही लोक-जागरण की परंपरा के सांस्कृतिक तत्वों को मथकर लिखते-यह बात सोची तक न गई। अचानक कमल किशोर गोयनका को अनुसंधान कार्य के दौरान प्रेमचंद से संबंधित नए तथ्य मिले जिन्हें उन्होंने उजागर किया। गोयनका का मूल संकल्प यही था कि वे प्रेमचंद के मानव पक्ष का उद्घाटन करें। प्रेमचंद की प्रतिगामी या प्रगतिशील की अवधारणा में घेरना गोयनकाजी का उद्देश्य ही न था। ('समीचीन'-13 डॉ.गोयनका 'अंक' में इसी शीर्षक से प्रकाशित लेख)

'प्रेमचंद विश्वकोश' : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

'प्रेमचंद विश्वकोश' बिना किसी सरकारी अनुदान और सहायता के एक अकेले आदमी के नौ-दस वर्षों की घनघोर श्रम-साधना और लगन का परिणाम है, जिसका नाम है- कमल किशोर गोयनका जिन पर प्रेमचंद को दक्षिणपंथी दृष्टि से प्रस्तुत करने का आरोप प्रेमचंद के वामपंथी समर्थक लगाते रहे हैं, पर इन सबसे अलग हटकर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कोश जानने, न जानने योग्य ब्यौरों से भरपूर एक महत्वपूर्ण कार्य है जिससे प्रेमचंद पर अपनी-अपनी दृष्टि से काम करने वालों को भरपूर सहायता मिल सकती है। गोयनका ने बड़ी खोजबीन के साथ दुर्लभ तथ्य, दस्तावेज आदि एकत्र किए हैं और उन्हें तरतीब से लगा दिया है। ऐसा काम किसी लेखक पर हिंदी में पहली बार हुआ है। इस तरह यह ईंट, रोड़े हटाकर सख्त मिट्टी को तोड़कर समतल भुरभुरी कर एक खेत बनाने के काम जैसा महत्वपूर्ण है जिसमें प्रेमचंद के आज के और आगे आने वाले अध्येता अपनी-अपनी नजर के बीज डालकर अपनी वांछित फसल उगा सकते हैं और फल-फूल बांट सकते हैं। गोयनका ने प्रेमचंद जैसे देहाती लेखक के लिए ठेठ देहाती काम किया है। खेत तैयार करने का और उसके लिए जो कड़ी धूप सही है, मेहनत की है और पसीना बहाया है, उसका मूल्य आगे फसल उगाने वाले ज्यादा आसानी से पहचान सकेंगे।

('दिनमान',1-7 अगस्त, 1982 में प्रकाशित लेख 'प्रेमचंद विश्वकोश' से)

गोयनका 'हिंदी के बॉसवेल' : डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर

जॉनसन के चरित्रकार बॉसवेल का नाम अंग्रेजी साहित्य में अमर हो गया, क्योंकि अपनी साधारण बौद्धिक क्षमता को बॉसवेल ने एक असाधारण लेखक की हर सांस का इतिहास लिखने में निष्ठापूर्वक लगा दिया था। अगर यह कहा जाए कि डॉ. गोयनका के रूप में प्रेमचंद को मरणोपरांत ही क्यों न हो, एक बॉसवेल मिला तो अत्युक्ति नहीं होगी। यह बात दूसरी है कि डॉ. गोयनका को प्रेरणा मिली 'गांधी वाङ्मय' से जो कि कलात्मक नहीं संकलनात्मक ग्रंथ है।

('धर्मयुग', 11 अक्टूबर, 1981 में प्रकाशित लेख 'अज्ञात तथ्यों को उपलब्ध कराने का प्रयत्न' से)

डॉ. गोपाल राय

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'प्रेमचंद-विश्वकोश' के प्रथम खंड के जीवन और साहित्य के संबंध में इतनी प्रभूत सामग्री है कि उसके आधार पर प्रेमचंद की एक आलोचनात्मक जीवनी लिखी जा सकती है। डॉ. गोयनका ने इस सामग्री की प्रमाणिकता का पूरा ध्यान रखा है और सर्वथा वैज्ञानिक रीति से इसका संकलन, वर्गीकरण आदि किया है। कोई भी प्रेमचंद साहित्य का अध्येता डॉ. गोयनका के इस कठिन श्रमसाध्य प्रयास के प्रति कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह सकता, यह मेरी सुनिश्चित धारणा है।

('आलोचना', अक्टूबर-दिसंबर, 1982 में प्रकाशित लेख 'प्रेमचंद विश्वकोश' से)

प्रेमचंद साहित्य पर शोध की झलक देने के लिए गोयनका का कृतज्ञ हूं: राजेंद्र यादव

गोयनका ने सचमुच बड़ी मेहनत और परेशानियां उठाकर प्रेमचंद की रचनाओं को खोजा और सुलभ कराया है। हजारों पृष्ठों की अब तक अनुपलब्ध सामग्री को सामने लाने में निश्चय ही उन्हें ऐसी भी चीज मिली हैं जो प्रेमचंद की स्थापित तस्वीर का समर्थन नहीं करतीं। सचमुच मेरी समझ में नहीं आता कि अगर गोयनका अपनी शोध से कुछ ऐसी बातें सामने ला रहे हैं जो मूर्ति-पूजक, अंध-श्रद्धालुओं के गले नहीं उतरती तो बुरा क्या है? निर्मल कुमार बोस अगर गांधीजी के संकट प्रयोगों पर कुछ बताते हैं तो वे उन्हें अधिक मानवीय ही बनाते हैं। हमें शुक्रगुजार होना चाहिए कि वे जीते-जागते आदमी को भगवान बनाए जाने से रोक रहे हैं। भगवान होते ही व्यक्ति ऐसा अशरीरी और निराकार 'नाम' रह जाता है जिसकी सिर्फ पूजा की जाती है। हमारे लिए वह प्रेरणा और आदर्श तभी तक है, जब तक हमारे जैसा 'काम-क्रोध', लोभ-मोह' का पुतला और इनसे लड़ता हुआ मनुष्य है। इस दृष्टि से मैं समझता हूं कि भारतीय साहित्यकारों की जीवनी पर बहुत ही कम काम हुआ है। गोयनका ने भी प्रेमचंद की जीवनी नहीं, साहित्य और साहित्यिक व्यक्तित्व की ही अनदेखी सामग्री का अनुसंधान किया है। जितने परिश्रम, निष्ठा, लगन और साधना के साथ विदेशों में साहित्यकारों पर शोध होती है वह तो हमारे लिए अकल्पनीय है, मगर हिंदी साहित्य या विशेष रूप से प्रेमचंद साहित्य के शोधार्थियों को उसी तरह की शोध की एक झलक देने के लिए हमें गोयनका का कतृज्ञ होना चाहिए।

('हंस', अगस्त, 1989 में प्रकाशित लेख 'सिर्फ आधार-सामग्री' से)

उच्च स्तरीय शोध-कर्म : प्रो. तारकनाथ बाली

'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान'(शोध-प्रबंध) में डॉ. कमल किशोर गोयनका ने शोध के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न किया है और न सिर्फ शोध की दृष्टि से वरन् आलोचना की दृष्टि से भी प्रेमचंद को समझने के लिए यह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद के उपन्यासों के शिल्प से संबंद्ध सभी सवालों को लेखक ने उठाया है, उन पर प्रामाणिक ढंग से विचार किया है तथा पूर्वाग्रह एवं अतिवादी दृष्टिकोण से बचकर अपने मतों की प्रतिष्ठा की है। मेरा सुझाव है कि लेखक को शोध-सीमाओं से मुक्त होकर भी प्रेमचंद-साहित्य का अध्ययन करना चाहिए और उसकी सभी समस्याओं की समीक्षा करनी चाहिए।

('कहानी' पत्रिका तथा 'समीचीन'-13 'डॉ. कमल किशोर गोयनका अंक' में प्रकाशित लेख 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान' से)

डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

'प्रेमचंद विश्वकोश' के छपने और 'भारतीय भाषा परिषद्' कलकत्ता द्वारा पुरस्कृत होने के बाद डॉ. कमल किशोर गोयनका की स्टार-वेल्यू बढ़ गई। कारण यह था कि प्रेमचंद-साहित्य पर तब तक जितना लिखा गया था, वह पुराना पड़ गया था। डॉ. गोयनका के पास एकदम नई सामग्री थी। शीघ्र ही प्रेमचंद की जन्म-शताब्दी आई तो प्रेमचंद की स्मृति का विस्फोट होने

लगा। गोयनका ने स्वयं दिल्ली में 'प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति' बनाई और श्रीमती इंदिरा गांधी उसकी मुख्य संरक्षक तथा जैनेंद्र कुमार अध्यक्ष थे। इस राष्ट्रीय समिति से प्रेमचंद पर कई कार्यक्रम किए। एक कार्यक्रम तो फिक्की, नई दिल्ली में हुआ, जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन उपराष्ट्रपति हिदायतुल्ला ने की। इस कार्यक्रम में ही प्रेमचंद के छोटे पुत्र अमृतराय ने गोयनका के वृहद् ग्रंथ 'प्रेमचंद विश्वकोश' का विमोचन किया। इसके बाद देश-विदेश में प्रेमचंद पर अनेक कार्यक्रम हुए, जिनमें डॉ. गोयनका का योगदान सर्वाधिक रहा। उन्हें भारत सरकार ने मॉरीशस में आयोजित प्रेमचंद-शताब्दी समारोह में जैनेंद्र के साथ अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। उन्होंने दिल्ली दूरदर्शन के लिए प्रेमचंद पर वृत्त चित्र बनाया और डी. ए.वी.पी. के लिए 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' आयोजित की जिसका उद्घाटन केंद्रीय मंत्री वसंत साठे ने किया। गोयनका ने देश के कई नगरों में प्रेमचंद प्रदर्शनी लगाई और सम्मेलनों, गोष्ठियों में अध्यक्ष तथा प्रमुख वक्ता के रूप में व्याख्यान दिए। 'हिंदी साहित्य सम्मेलन', इलाहाबाद ने भी गोयनका को प्रेमचंद शताब्दी कार्यक्रम में प्रमुख वक्ता के रूप में आमंत्रित किया, जिसकी अध्यक्षता महदेवी वर्मा ने की। इसी प्रकार उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं के प्रेमचंद विशेषांक निकलवाए और उन्हें प्रेमचंद की अज्ञात एवं दुर्लभ सामग्री एवं दस्तावेज दिए। इस प्रकार उनकी प्रेमचंद संबंधी खोज के पूरे देश को लाभ हुआ।

गिरिराज किशोर

गोयनका इससे पहले प्रेमचंद की भारी-भरकम जीवनी ('प्रेमचंद विश्वकोश', खंड-एक, जीवनी) लिख चुके हैं, भले वह 'आवारा मसीहा' के स्तर की न हो, परंतु इतना तो है ही कि उसमें विस्तार भी है और लेखक ने पूरे इमकान के साथ उसके प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न भी किया है। अगर मैं कहूं कि उनके पूर्ववर्ती जीवनीकारों से ज्यादा ही, तो मुजायका न होगा। मैंने उसे पलटा भर ही है, लेकिन इन दोनों खंडों को ('प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, खंड-एक व दो) देखकर मुझे लगा कि हिंदी साहित्य के क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्ययन की शुरुआत की जा सकती है। *('दिनमान', 15 सितंबर, 1989 में प्रकाशित लेख 'पुनर्मूल्यांकन अभी बाकी है' से)*

गौरवपूर्ण अप्रतिम कार्य : सत्यपाल चुघ

'रविवार्ता' के 28 मई, 1989 के अंक में सुधीश पचौरी की समीक्षा पढ़ी। वे कई स्थानों पर डॉ. गोयनका की साधना, शोध-दृष्टि तथा परिश्रम एवं योगदान की प्रशंसा करते हैं, किंतु कुछ स्थलों पर उनकी तथाकथित मार्क्सवादी दृष्टि छिद्रान्वेषण करने लगती है और मिथ्या आरोप लगाने लगती है। सुधीश पचौरी इस बात से पीड़ित हैं कि डॉ. गोयनका ने मार्क्सवादियों द्वारा निर्मित प्रेमचंद की मूर्ति को ध्वस्त कर दिया है। यदि डॉ. गोयनका का शोध-कार्य ऐसा करता भी है और वह वैज्ञानिकता से किया गया है, तो इस शोध-कार्य से उन्हें आहत होने की जगह मार्क्सवादियों की खबर लेनी चाहिए थी कि उन्होंने कई दशकों तक समाज को भ्रम में रखा। दूसरे, पचौरी का डॉ. गोयनका पर हिंदूपन के समर्थन का आरोप भी भारतीय

मार्क्सवादियों का पुराना हथियार है, जो अपने विपक्षियों पर चलाते रहे हैं। सुधीश पचौरी ने अपनी समीक्षा में जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, वह कहीं-कहीं निम्न स्तरीय हो गई है। क्या आपसी मतभेदों को शिष्ट शब्दावली में व्यक्त नहीं किया जा सकता है? कुल मिलाकर इस समीक्षा लेख का शीर्षक 'छिद्रान्वेषण की त्रासदी' समीक्षक सुधीश पचौरी की अपनी है, डॉ. गोयनका की नहीं। डॉ. गोयनका ने अपनी तथ्यनिष्ठ एवं तर्कपुष्ट साफगोई की वस्तुमत्ता से प्रेमचंद के अध्ययन को आगे बढ़ाने में गौरवपूर्ण अप्रतिम कार्य ही किया है।

('नवभारत टाइम्स', रविवार्ता के संपादक कन्हैयालाल नंदन को 3 जून, 1989 को लिखा पत्र)

प्रेमचंद पर अभिनव कार्य : चित्रा मुद्गल

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'कल्पान्त' पत्रिका आपके ऊपर एक अंक प्रकाशित कर रही है। यह कार्य तो बहुत पहले होना चाहिए था, 'देर आए दुरुस्त आए'। मैं कई दशकों से आपके कार्य को देख रही हूं और मैं कह सकती हूं कि आपने जो प्रेमचंद पर कार्य किया है, वह प्रेमचंद पर क्या, किसी दूसरे लेखक पर भी कोई नहीं कर पाया है। आपने प्रेमचंद को संपूर्ण रूप से उपलब्ध कराकर तथा उन पर विश्वकोश जैसे अभिनव काम करके हिंदी साहित्य में स्थायी स्थान बना लिया है। हमारे कुछ प्रगतिशील मठाधीशों और उनके चेले-चपाटों ने आपका खूब-विरोध किया, परंतु आपने डटकर उन्हें उत्तर देते हुए अपनी स्थापनाएं कीं और वे आपकी ख्याति को अवरुद्ध नहीं कर पाए। आपने प्रगतिशीलों को अधिकांश स्थापनाओं पर चुनौती दी और वे आपके पास चूंकि उनके साक्ष्य थे, दस्तावेज थे, इस कारण वे आमने-सामने के संवाद से सदैव बचते रहे। सच, प्रेमचंद के साथ आप सदैव याद किए जाएंगे और आने वाला समय आपके कृतित्व के योगदान को हृदय से स्वीकार करेगा। प्रेमचंद को पढ़ने और समझने के लिए प्रेमचंद पर आपके कार्य को देखना परमावश्यक होगा।

डॉ. सुधीश पचौरी

इतना निश्चित कहा जा सकता है कि ऐसा श्रमसाध्य कर्म (प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्यः भाग-एक व दो) हिंदी में अब विरला हो चला है। कमल किशोर गोयनका इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं, मगर यह ग्रंथ सिर्फ इतना ही नहीं है और न सिर्फ इतने भर के लिए लिखा गया है। संपादक ने जहां-तहां अपनी व्याख्याएं एवं टिप्पणियां की हैं (जो 70 पृष्ठ लंबी भूमिका में है), जिन्हें देखकर अनेक लोग गोयनका को प्रेमचंद-विरोधी तक कह सकते हैं। 'प्रेमचंद-विश्वकोश' के प्रकाशन के वक्त भी लोगों ने ऐसा कहा था। यह दिलचस्प अंतर्विरोध है कि जिस व्यक्ति ने प्रेमचंद की रचनाओं को मेहनत करके ढूंढा है, वह प्रेमचंद की मूर्ति का भंजन करने का संकल्प लेकर चला है, जबकि जो प्रेमचंद की परंपरा के बड़बोले सेवादार रहे उन्हें प्रेमचंद पर खोजने, कार्य करने को न कभी समय मिला, न प्रेरणा हुई। नतीजा यह है कि गोयनका प्रेमचंद की स्थापित मूर्ति से टकराने का मौका नहीं चूकते और इस क्रम में हर बार प्रेमचंद की छवि और

भी मनोरम होकर निखरती है। प्रेमचंद के सेवादार गोयनका को अपनी पंक्ति से बाहर फेंक देने पर उतारू रहते हैं, क्योंकि गोयनका ने प्रेमचंद की 'कलम का सिपाही' वाली मूर्ति एवं रामविलास शर्मा द्वारा बनाई गई मूर्ति के इर्द-गिर्द बन गए प्रभामंडल के जेनरेटर पर कई जगह उंगली रखी है, जबकि जेनरेटर के अँधे चौकीदार उन्हें सिर्फ 'चोर-चोर' कहते रहते हैं। पिछले दस वर्षों में गोयनका ने प्रेमचंद भक्तों के आगे परेशानी के पहाड़ खड़े कर दिए हैं। इस दूषण को एवं उनकी दृष्टि बाधा को क्षमादान न भी दें तो भी उनके श्रम, लगन और खोजी दृष्टि की तारीफ करनी होगी। इस काम में गोयनका को जितना आदर मिलना चाहिए उतना नहीं मिला है। यही काम अगर यूरोप के किसी लेखक के बारे मे होता तो करने वाला व्यक्ति पूरा संस्थान बन गया होता। मगर ऐसा नहीं हुआ तो इसमें हिंदी के अपने अगंभीर माहौल के अलावा प्रगतिशीलों की मूर्खतापूर्ण 'मूर्तिपूजा' और गोयनका के अंध हिंदूवादिता भी बराबर की जिम्मेदार कही जा सकती है।

('नवभारत टाइम्स' रविवार्ता, 28 मई, 1989 में प्रकाशित लेख 'प्रेमचंद के पुजारियों का चौंका देगी प्रेमचंद की मुकम्मल तस्वीर-छिद्रान्वेषण की त्रासदी' से)

डॉ. प्रभाकर माचवे

'प्रेमचदं विश्वकोश' का प्रकाशन भारतीय भाषाओं के इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना है। हिंदी-उर्दू के विश्व-विख्यात साहित्यकार प्रेमचंद के जीवन एवं साहित्य पर पांच खंडों की इस योजना के अंतर्गत प्रथम दो खंड प्रकाशित हुए हैं जिन्हें प्रेमचंद के पाठकों को बार-बार पढ़ना चाहिए। 'प्रेमचंद विश्वकोश' के लेखक एवं संपादक डॉ. कमल किशोर गोयनका ने विगत एक दशक तक निरंतर कठिन एवं सतर्क परिश्रम करके इन दो खंडों के लगभग एक हजार पृष्ठों में ज्ञात तथा अज्ञात तथ्यों एवं विवरणों का अंबार लगा दिया है। प्रेमचंद के जीवन एवं साहित्य से संबंधित असंख्य तथ्य ऐसे हैं जो न केवल पहली बार इस विश्वकोश में प्रस्तुत किए गए हैं, 'प्रेमचंदः विश्वकोश' : लेखकों-आलोचकों की राय में बल्कि पहली बार एक स्थान पर एकत्र किए गए हैं। भारत एवं विदेशों के पुस्तकालयों को, जो हिंदी-उर्दू के आधुनिक गद्य-साहित्य में रुचि रखते हैं, इसे अपने यहां अवश्य ही रखना चाहिए। इसे प्रत्येक शिक्षा संस्थान को भी अपने पुस्तकालय में रखना चाहिए, क्योंकि यह विश्वकोश प्रेमचंद के जीवन एवं साहित्य का सर्वांगीण एवं प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करता है और यह प्रेमचंद-शताब्दी की सर्वोत्तम उपलब्धि भी है। 'प्रेमचंद-विश्वकोश' अकेले व्यक्ति को अग्रगामी, ऐतिहासिक एवं चिरस्थायी श्रद्धांजलि के रूप में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा।

('प्रेमचंद विश्वकोश' : प्रेमचंद शताब्दी की सर्वोत्तम उपलब्धि लेख से)

प्रेमचंद विश्वकोश : मील का पत्थर

'प्रेमचंद विश्वकोश' से लगता है कि गोयनका इस योजना के संपादक मात्र हैं, परंतु विश्वकोश के प्रथम खंड 'जीवनी' के वे लेखक हैं और वह उनकी मौलिक रचनाकार है। प्रेमचंद

के जीवन को नई पद्धति एवं नए ढंग से लिखा गया है और यह हिंदी में एक नई पद्धति की शुरुआत है। यह जीवनी एक कलात्मक रचना भी है और इतिहासकार का इतिहास लेखन भी है- ये दोनों की विधाएं इसमें संग्रथित हो गई हैं।

'प्रेमचंद विश्वकोश', निस्संदेह हिंदी साहित्य की एक उपलब्धि है। यदि विदेशों में किसी व्यक्ति ने ऐसा कार्य किया होता है, तो वह राष्ट्रीय सम्मान तथा पुरस्कार से अलंकृत किया जाता। कोई भी विश्वविख्यात उसे मानद उपाधि से विभूषित करता, पर यह भारत है और वह भी हिंदी के लेखक का कार्य है। इस पुस्तक को वान-गॉग की जीवनी, हेमिंग्वे की पुत्री द्वारा लिखित ग्रंथ 'पापा हेमिंग्वे', शरतचंद्र की जीवनी 'आवारा मसीहा', आंद्रे मोरां की पुस्तक 'एरियल' के समकक्ष रखा जा सकता है। कुछ अंशों में यह कार्य उससे भी आगे का है। मैं यह मानता हूं कि यह हिंदी में एक अनूठे ढंग का प्रयास है और भविष्य में मील का पत्थर माना जाएगा और इससे प्रेरणा लेकर कुछ अन्य अन्वेषणकर्ता इस प्रकार के कार्य प्रारंभ करेंगे और हिंदी के अन्य यशस्वी कवि-लेखकों के विश्वकोश के निर्माण-कार्य से संलग्न होंगे। यह विश्वकोश प्रेमचंद की जीवनी भी है और उनके साहित्य का पुनर्मूल्यांकन भी। यह प्रेमचंद के समकालीन साहित्यकारों और परिवेश का एक जीवंत दस्तावेज है। इसकी प्रामाणिकता से निश्चय ही सुविज्ञ विद्वान लाभान्वित होंगे।

(जगदीश चतुर्वेदी, 'नया शिक्षक', जनवरी-मार्च, 1982 में प्रकाशित लेख 'प्रेमचंद विश्वकोश' तथा मेरे दोस्तः मेरे अभिन्न गोयनका' लेख से)

□

'प्रेमचंद-चित्रात्मक जीवनी' : कुछ मत-सम्मत

बालशौरि रेड्डी

यह प्रेमचंद पर लिखी गई जीवनियों में अनुपम तथा विस्मरणीय उपलब्धि के रूप में सहमति होगी। जीवनी के क्षेत्र में डॉ. गोयनका का यह नया प्रयोग है, जो जीवनी-साहित्य को नई दिशा की ओर मोड़ता है। इसकी विशेषता यह है कि यह बच्चों, किशोरों, युवकों तथा वृद्धों के लिए समान रूप से उपयोगी एवं संग्रहणीय है। यह चित्रात्मक जीवनी एक मास्टरपीस रचना है, जिसका अनुवाद समस्त भारतीय भाषाओं में होना चाहिए।

डॉ. अश्विनी पाराशर

'प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी' अपनी सीमाओं के बावजूद प्रेमचंद की एक नए कलेवर यानी छोटे पर्दे पर प्रस्तुत कर पाने का एक रचनात्मक उपक्रम है। वे पाठक, जो प्रेमचंद को जानते हैं, एक बार फिर नए सिरे से प्रेमचंद को समझेंगे। यह चित्रात्मक जीवनी की पठनीयता को निश्चय ही एक नया आयाम देती है।

डॉ. भगवानदास वर्मा

डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद पर बहुत पायेदार काम किए हैं। 'प्रेमचंद विश्वकोश' की रचना उन्हें प्रेमचंद के ईमानदार शोधार्थी के रूप में प्रतिष्ठित करती है। मेरे सामने उनकी 'प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी' है। इस तरह की पुस्तक, जिसमें जीवनी के सारे मुख्य पड़ाव दर्ज किए गए हों, और साथ-साथ चित्र दिए गए हो, हिंदी में पहली मिसाल है। वैसे चित्रात्मक जीवनी यह अपने आप में एक नई संकल्पना है। उधर पश्चिम में ऐसे प्रयोग भी हुए हैं। भारत में हमारे देखे यह पहला प्रयोग होना चाहिए। इसमें शब्दों की कला को छाया-प्रकाश की ताजगी मिल गई है जिसके कारण कल्पना का तनाव कम हो गया है और अक्षरों का अनुभव ठोस।

प्रो. सत्यभूषण वर्मा

डॉ. कमल किशोर गोयनका प्रेमचंद-साहित्य के जाने-माने समीक्षक, शोधार्थी और जीवनीकार हैं। उन्होंने प्रेमचंद के जीवन तथा साहित्य को पूर्ण प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने में एक शोधकर्ता के रूप में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया और देश-विदेश के

विद्वानों ने उनके कार्य की मौलिकता को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। 'प्रेमचंद विश्वकोश' के सामने प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी भी एक अभिनव प्रयोग है। इसमें जीवनवृत्त और चित्रों का संतुलन है और यह प्रेमचंद पर एक 'इन्स्टैंट संदर्भ ग्रंथ' है जो हिंदी के जीवनी साहित्य में एक उपलब्धि है।

डॉ. वेद व्यथित

मैंने वर्ष 87-88 में सांप्रदायिक समस्या पर एक उपन्यास लिखा। उसकी कथावस्तु पर डॉ. गोयनकाजी से विचार-विमर्श किया तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की। मेरे निवेदन पर उसकी भूमिका लिखने के लिए वे प्रसन्नतापूर्वक तैयार हो गए। किन्ही परिस्थितियोंवश इस उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 2008 में हो पाया। मैंने उन्हें जब उसकी प्रति भेजी तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और फोन पर कहा कि यह कृति सांप्रदायिकता की जड़ पर प्रहार करती है। वास्तव में, उनकी लिखी भूमिका मात्र भूमिका नहीं है, अपितु झूठी सांप्रदायिकता के विरुद्ध एक अनूठा दस्तावेज है। इसी से मुझे मालूम हुआ कि एक सच्चे आलोचक व शोधार्थी के लिए साहित्यिक अध्येता होना कितना जरूरी है। मैं तो उन्हें मुंशी प्रेमचंद का मर्मज्ञ विद्वान और चलता-फिरता विश्वकोश मानता था, परंतु उनकी लिखी इस भूमिका से उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का प्रमाण मिला। उनका व्यक्तित्व भी सहृदयता, सरल स्वाभाविकता, साहित्य के प्रति अनुराग और श्रद्धा तथा मित्रों की प्रगति की चेष्टा और उनकी प्रशंसा और प्रोत्साहन से परिपूर्ण है। 'कल्पान्त' के संपादक तथा लेखक मुरारीलाल त्यागी ने इस बार इस आबदार मोती को चुना है। ईश्वर दोनों को शतायु करें।

('एक आबदार मोती : डॉ. कमल किशोर गोयनका' से अप्रकाशित लेख से)

डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद

जब मैंने 'ऐतिहासिक उपन्यासों में कालबोध एवं संस्कृति' नामक पुस्तक की प्रति एक मार्क्सवादी आलोचक बंधु को स्नेहपूर्ण संबंध के आधार पर भेजी तो उन्होंने विनम्रतापूर्ण उत्तर दिया कि यह डॉ. कमल किशोर गोयनका को समर्पित है, इस कारण इस पर कुछ नहीं लिख सकूंगा। लोग दूसरा अर्थ लगाएंगे। इससे संकेत मिलता है कि वामपंथी साहित्यकारों तथा संपादकों का कितना अमानवीय दबाव और राजनीति आग्रह भारतीयवादी विद्वानों तथा साहित्यकारों के विरुद्ध होता है। फलतः मेरे आत्मीय आलोचक चाहकर भी नहीं लिख सके। जब मैंने 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' के कार्यालय में डॉ. गोयनका तथा नरेंद्र कोहली का नाम लिया- पुरस्कार योजना के लिए तो इन दोनों नामों का विरोध हुआ। डॉ. गोयनका ने लिखा भी है कि वे दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नहीं हो पाए, क्योंकि एक मार्क्सवादी प्रोफेसर ने इंटरव्यू में कुलपति को धमकी दी थी कि अगर गोयनका को प्रोफेसर बनाया गया तो हम प्रेस में जाएंगे, पार्लियामेंट में जाएंगे, क्योंकि गोयनका आपातकाल में जेल में था। तात्पर्य यह

है कि भारत के एक विश्वविद्यालय में, इंटरव्यू में प्रथम स्थान पर आने पर भी, एक हिंदूवादी विद्वान प्रोफेसर बनने का अधिकारी नहीं है। यह तो गंभीर चिंता का विषय है, परंतु डॉ. गोयनका ने इस उपेक्षा की चिंता नहीं की। वे निरंतर प्रेमचंद के शोधाध्ययन एवं लेखन में समर्पित रहे और उन्हें अपने अभिनव एवं अद्‌भुत शोध-कार्य से विश्व में मान्यता मिली। (डॉ. गोयनका : शोधाध्ययन का संघर्ष-पुरुष' अप्रकाशित लेख से)

□

रमेशचंद्र शाह का पत्र

एम-4, निराला नगर
भदभदा रोड़
भोपाल-462003
17 जुलाई, 2013

प्रिय गोयनका जी,

'अभिनव इमरोज' की काफी कुछ सामग्री पढ़ गया हूं। 'खेल' कहानी का तो मुझे पता ही नहीं था। आपने ही इसे उर्दू पत्रिका 'चंदन' से खोजा और उपलब्ध कराया। मैं तो इसे पढ़कर चकित रह गया। आपका कहना सही है कि 'बालक के अभिनय तथा खेल में इतनी वास्तविकता है कि वह खेल नहीं, जीवन का वास्तविक चित्र प्रतीत होता है। इस तरह प्रेमचंद अभिनय को जीवन में परिवर्तित कर देते हैं। यह प्रेमचंद की कहानी-कला की नई उपलब्धि है।' यह कहानी आपने पढ़वाई इसके लिए कृतज्ञ हूं। और भी कुछ कहानियां हैं जो मैंने नहीं पढ़ी थीं पहले और यहीं पढ़ीं। 'कैदी' कहानी और उसका पाठ मुझे युक्तियुक्त लगा। 'कफन' कहानी का विश्लेषण भी विचारोत्तेजक लगा हालांकि इसमें आपने जयशंकर प्रसाद के उस प्रसिद्ध कथन का जहां जिस तरह उपयोग अपनी स्थापना को पुष्ट करने के लिए किया है, वह पूरी तरह जंचता नहीं, अतिव्याप्ति दोष लगता है। याद आता है कि बरसों पूर्व प्रेमचंद पर एक लेख मैंने लिखा था जो मेरी आलोचना-पुस्तक 'वागर्थ' में होना चाहिए। वह मुझे मिला नहीं रहा है- मिला तो भेजूंगा। उसमें मैंने भी इस कहानी पर कुछ सोच-विचार किया था, किंतु 'प्रेमचंद के समाजवाद का सच' शीर्षक लेखक आपका मुझे बड़ा युक्तियुक्त लगा। विवेकानन्द और गांधी के रचना-पक्ष में कहीं अधिक निर्णायक प्रमाण की बात सही है। यह भी, कि यद्यपि बोल्शेविक उसूलों के कायल होने की बात प्रेमचंद ने लिखी है और इसके बाद उनकी कहानियों-उपन्यासों में इसका तथा गांधीजी का दोनों का असर दिखाई देने लगता है, किंतु जहां गांधीजी का प्रभाव निरंतर बढ़ता जाता है और समाधान के लिए भी वे गांधी की ही ओर रह जाते हैं, वहीं वे समाधान के लिए मार्क्स या लेनिन की ओर नहीं देखते। यही कारण है कि उनके संपूर्ण साहित्य में एक भी ऐसा चरित्र नहीं, जो मार्क्सवादी दर्शन का समग्र प्रतिनिधित्व करता हो-जबकि 'रंगभूमि' (1925) का नायक सूरदास ऐसा चरित्र है जो गांधी दर्शन का प्रतिरूप है और उसे अपने जीवन में उतारता है। यह एक प्रकार से मार्क्सवाद पर गांधीवाद की विजय का प्रतीक है।

बाई दि वे, इस पर मुझे अपने जीवन से एक बहुत मर्म की घटना स्मरण हो आई जिसका जिक्र आपसे करने की इच्छा हो आई। यह प्रकरण 'हिंदी साहित्य सम्मेलन', प्रयाग की

'आधुनिक कवि-माला के अंतर्गत प्रकाशित मेरे 'आधुनिक कवि-रमेशचंद्र शाह' नाम के संकलन की लंबी भूमिका में सविस्तार आया है, किंतु उसका एक संक्षिप्त रूप 'आत्मकथ्य' के रूप में अभी संयोगवश हाथ लगा, जिसे मैं इस पत्र के साथ नत्थी कर रहा हूं। प्रेमचंद के साथ मेरे संबंध की-या...है कि कच्ची उम्र में जबरदस्त प्रभाव की यह सबसे सुदृढ़... है जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता।

आशा है आप स्वस्थ-सानंद हैं। मेरा पूर्व-पत्र भी मिला होगा। शुभकामनाओं के साथ।

आपका

रमेशचंद्र शाह

कलानाथ शास्त्री का पत्र

आदरणीय डॉ. साहेब,

'कला-प्रयोजन' 41 में 'प्रेमचंद का कहानी-दर्शन' लेख का प्रभाव उतरा भी नहीं था कि 'दस्तावेज'- 108 में आपने जो डॉ. रामविलास शर्मा की खबर ली है, उसकी छायाप्रति मिली। पढ़कर आँखें भी खुलीं और इस बात की पुष्टि हुई कि रामविलासजी भी उस एकांगी दृष्टि से अंत तक मुक्त नहीं हुए थे। इस विवेचन ने (दस्तावेज में छपा लेख 'प्रेमचंद, रामविलास शर्मा और मैं') यह तो स्पष्ट कर ही दिया है कि प्रेमचंद की जीवन-दृष्टि को आपने जिन अंतरंग तथ्यों के प्रकाश में परखा है, वह संपूर्ण आकलन है, 'कम्युनिष्टी आलोचना' के लाल चश्मे से देखकर सूरदास से लेकर होरी तक को अपने रंग में देखने वाली एकांगी खींचतान नहीं। इस आलेख में आपने जो संदर्भ और प्रमाण देकर वस्तुस्थिति स्पष्ट की है, वह पूर्णतः प्रत्यायक है, निष्पक्ष है। डॉ. शिवकुमार मिश्र ही क्या, सारा हिंदी जगत जानता है कि आपने प्रेमचंद को अमर कर दिया है, उन्हें उस 'कालपात्र' की कालजयी विभूति बना दिया है जो सदियां बीतने पर भी खोला जाए तो पूरा प्रेमचंद उसमें ज्यों का त्यों प्रतिफलित दिखे। 'कला-प्रयोजन', के 'प्रेमचंद का कहानी-दर्शन' को मैंने विश्वकोश बताते हुए हेमंत शेष को पत्र लिखा था, छापने के लिए, पर उसकी मुक्तकंठ प्रशंसा 'विश्वकोश' कहकर ही डॉ. दिनेशचंद्र शर्मा ने भी की है। अतः वह शर्माजी का पत्र 'कला-प्रयोजन'-43 में छपा है, आपको मिल जाएगा, यथासमय। आपका लेख 'प्रेमचंद, रामविलास शर्मा और मैं' मैं यहां हिंदी प्रोफेसरों को भी पढ़ा रहा हूं। पुनः लिखूंगा।

साभिवादन,

स्नेहाधीन

दे. कलानाथ शास्त्री

जयपुर, 24.12.05

कमलेश्वर का पत्र

भाई गोयनका जी,

आपका 30.03.04 का पत्र साथ में 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' योजना की रूपरेखा। यह आपकी सदाशयता है कि इस योजना पर आपने सम्मति मांगी है। मैं आभारी हूं।

इसका 'अध्याय : दो' निश्चय की श्रमसाध्य, महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक होगा। आपकी इस मौलिक सोच के लिए हिंदी संसार आपको हमेशा याद करेगा। वैसे भी यह पूरी योजना अप्रतिम है।

अपने स्वतंत्रता संग्राम के उन्मेष का भी यही समय है। गांधीजी के हिंसाहीन सत्याग्रह-दर्शन में मुझे गूंज-अनुगूंज की प्रतीति होती है। साथ ही उनकी कहानियों के परिपार्श्व में मौजूद स्वतंत्रता संग्राम का अनुशीलन भी कहानियों के अध्ययन से पहले आ जाए तो शायद ठीक रहेगा। यह मात्र एक सुझाव है। नवजागरण का सारा श्रेय एक जगह सिमटकर रह गया है। यदि विनम्र ईमानदारी से देखा जाए तो ग्रामीण अस्मिता के जागरण के प्रेरक और प्रणेता प्रेमचंद हैं। प्रेमचंद का जागरण ग्रामीण और दलित अस्मिता का जागरण था। अभी तक प्रेमचंद को अंबेडकर के साथ खड़ा करके नहीं देखा गया है... इस पर भी आप गौर करें।

वैसे प्रेमचंद का विचार पक्ष ही इस शोध का निकष होगा। आपके इस साहित्यिक महामंथन से जो अमृतकलश निकलेगा उसे आप यदि देव-दानवों की छीना-झपटी में छलकने नहीं देंगे तो बेहतर होगा। यही आपकी साहित्यिक और बौद्धिक शुचिता का प्रमाण होगा। मेरी समस्त शुभकामनाएं।

सस्नेह,
कमलेश्वर

20.4.04

अमृतलाल नागर का पत्र

प्रिय गोयनकाजी,

'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के प्रेमचंद अंक में निरालाजी का लेख पढ़कर मैं आपकी खोज पर बहुत खुश हुआ था और आपको बधाई भी देना चाहता था। 'कलम का सिपाही' पुस्तक लिखने से पहले मैंने भाई अमृतराय से भी उस लेख के विषय में कहा था, पर वे उसे खोज न सके। जहां तक मुझे स्मरण है मैंने उसे कानपुर से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'वर्तमान' में पढ़ा था। बहरहाल, आप मेरी बधाई के खरे और उपयुक्त पात्र हैं।

स्व. यशपालजी पर मैंने दो संस्मरण लिखे थे। एक 'जिनके साथ जिया' पुस्तक में संकलित है, दूसरा उनकी मृत्यु के बाद 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में लिखा था। तीसरा संस्मरण लिखने के लिए मेरे मन में फिलहाल कोई उत्साह नहीं है। संस्मरण एक खास मनमौज में ही लिखे जाते हैं, फरमाइश पर 'जर्नलिस्टिक' हो जाते हैं। इन दिनों मन थका हुआ भी है, कुछ लिखना नहीं चाहता। अभी 23 अक्टूबर को ही डेढ़ वर्षों के श्रम-यज्ञ की पूर्णाहुति दी है। सूरदासजी ने मेरी आदत के अनुसार मुझे 'खंजन नयन' लिखने नहीं दिया, बल्कि स्वयं ही लिखने को बाध्य किया। इसके अतिरिक्त उसके निमित पढ़ाई का काम भी बारीक जासूसी खोज की तरह करना पड़ा। यह 65 की आयु कुछ महीनों तक आराम किए बगैर मुझे नई जान नहीं दे पाएगी इसलिए आपसे क्षमा मांगता हूं।

भगवान करें आप यों ही मेहनत करते रहें, कलम ईमानदारी से चलती रहे और अक्षय यश के भागी बनें।

शुभाकांक्षी

लखनऊ-8.12.80 अमृतलाल नागर

डॉ. रमेश कुंतल मेघ का पत्र

प्रियवर,

आपका मार्मिक पत्र मिला। सभी विचारक तथा विचारधारक लोग सभी प्रकार की विचार-धारा तथा दलों की ऐसी परिस्थितियों से गुजरते रहे हैं। चाहे वे गोविंदाचार्य हों या रामविलास शर्मा। तथापि आपने जो कार्य किया है उससे प्रेमचंद के आर्काइव्ज पीढ़ियों के लिए संरक्षित एवं सुरक्षित हो गए हैं।

प्रेमचंद हमारे आर्केटाइपल गल्पकार रहे हैं जिनकी बराबरी गोर्की से की जाती है। वस्तुतः टॉल्सटाय ज्यादा उपयुक्त तुलना होती तथापि ठाकुर श्रीनाथ सिंह, नंददुलारे वाजपेयी, शैलेश जैदी, तथा कमल किशोर गोयनका अर्थात् आपमें विपरीत वाले दृष्टिकोण रहे हैं किंतु बिना मतभेद, बिना वाद-विवाद तथा संवाद के न तो सही, यथार्थ ज्ञान दीप्तिमान होता है और न ही वह ज्ञान आगे बढ़ता है। आपने प्रेमचंदायन को व्यापक गति दी है। दृष्टिकोण अपने-अपने हैं। वे सुरक्षित रहेंगे। मैं आपकी मेहनत, लगन और शोध-साधना का सदैव से कद्रदान रहा हूं बावजूद इसके कि हमारी विचारधाराएं परस्पर विरुद्ध हैं।

भोपाल के भारत-भवन से हटें नहीं डटें। खिड़कियां चारों दिशाओं में खुलवाएं।

आपने जो कार्य किया है प्रेमचंद पर, वह एक संस्था भी नहीं कर सकती है। आपने कवि बच्चन का भी एक व्यापक साक्षात्कार किया था। क्या वह पुस्तक मुझे मिल सकेगी?

आपका प्रशंसक,

रमेश कुंतल मेघ

26.8.07

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' का पत्र

प्रिय गोयनकाजी,

आपके लगभग आधा दर्जन पत्र अभी तक अनुत्तरित पड़े हैं। मेरे अक्षम्य प्रमाद के बावजूद आपके सौहार्द में रत्ती-भर भी अंतर न पड़ना इस तथ्य का परिचायक है कि आप परम सह्यदय, सहिष्णु और संवेदनशील व्यक्ति हैं। ऐसे स्फटिक निर्मल, उदार और समर्पित साधक अब दुर्लभ होते जा रहे हैं। आपके स्नेहादेश के पालनस्वरूप ससंकोच अपना आंशिक अभिमत प्रेषित कर रहा हूं, आलोचक होने का मेरा कभी दावा नहीं रहा, अतएव इसे एक सामान्य पाठक की प्रतिक्रिया के ही रूप में ग्रहण करें।

'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' के प्रथम खंड के पारायण का सुयोग पाकर मैं विस्मय-विमुग्ध रह गया। जिस निष्ठा और अध्यवसाय से आपने प्रेमचंद वाङ्मय के बिखरे सूत्रों का संचयन, संयोजन और विवेचन किया है उसे सच्चे अर्थ में भगीरथ प्रयास कहा जा सकता है। जहां तक मेरी जानकारी है किसी सर्जक के व्यक्तित्व और कृतित्व का ऐसा सम्यक अन्वेषण और आकलन अभी तक किसी शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सका। कम-से-कम हिंदी साहित्य में तो यह प्रयास सर्वथा मौलिक है, इसके लिए आपकी अप्रतिहत साधना को जितना भी साधुवाद दिया जाय कम है, यों आपकी यह उपलब्धि विश्व के किसी शोधग्रंथ के समकक्ष रखी जा सकती है। आपकी विस्तृत भूमिका पढ़कर इस कार्य की गुरुता का कुछ अनुमान हो सका। इसके बिना प्रेमचंद का समग्र आकलन अधूरा रह जाता। आपने इन अप्राप्य तथ्यों और घटनाओं के उद्घाटन द्वारा प्रेमचंद जैसे स्वाभिमानी और संघर्षशील व्यक्ति के गौरव की रक्षा का भी साधु प्रयास किया है, अन्यथा कफन के लिए पैसा न होने आदि की निरीहता दिखाकर उन्हें दया का पात्र बना दिया गया था जो उनकी उत्सर्गशीलता और आन का अपमान ही कहा जा सकता है। कुछ तथ्य तो ऐतिहासिक होने के साथ-साथ प्रतीक रूप में तत्कालीन परिवेश की भावभूमि उजागर करते प्रतीत होते हैं। यथा-भारत की स्वतंत्रता के प्रति पूर्ण सद्भावना से समर्पित एनी बेसेंट जैसी संवेदनशील विदेशी महिला का एक उपन्यास में सोफिया के रूप में रेखांकन। छोटी-छोटी घटनाओं के उल्लेख द्वारा लेखक की प्रवृत्तियों का यथास्थापन निरूपण नितांत सहज बन पड़ा है। 'कायाकल्प' के मूल्यांकन में विलंब होने पर महादेव प्रसाद सेठ को लिखे 25 फरवरी, 1927 के पत्र की व्यंग्योक्ति-'शायद अब आलोचना कयामत में निकलेगी और मेरी रूह पढ़ेगी' में उनकी व्यग्रता देखी जा सकती है। इसी प्रकार प्रतिष्ठित सहधर्मियों से रचनाएं मंगाने के उनके प्रयोग भी कम मनोरंजक नहीं हैं। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को 31 अगस्त, 1935 के पत्र में माखनलालजी के प्रमाद पर उनकी व्यंग्योक्ति, 'खंडवा वाले पीर भी बेपीर हो रहे हैं' के रूप में प्रकटतर से प्रेमचंदजी की आत्मीयता को भी आपने बड़े कौशल से संवारा है। कहीं-कहीं तो आपकी लेखनी बिना जुंबिश खाए निर्व्याज सत्य के उद्घाटन का साहस जुटा सकी है, तथ्य-निरूपण की इसी निरपेक्षता से इसके कई अंश ऐतिहासिक दस्तावेज बन गए हैं। हमारी सामाजिक रुढ़ियों और परंपराओं का यह विद्रूप भी दर्शनीय है कि रुढ़ियों

को तोड़कर विधवा से विवाह करने वाले प्रेमचंदजी जैसे विद्रोही व्यक्तित्व को अपनी पुत्री कमला की शादी में दहेज देने को विवश होना पड़ा। ऐसा ही कुछ नाजुक मसला प्रवासीलाल वर्मा मालवीय के पारिश्रमिक के प्रश्न का भी है, जिसका अमृतरायजी जैसे जागरूक लेखक अपने 'गुप्तधन' जैसे अन्वेषणपरक ग्रंथ में उल्लेख करना भूल गए।

प्रेमचंद के क्रांतिदर्शी स्वरूप जिसमें गांधीजी के आविर्भाव से भी पूर्व अछूतोद्धार और आरक्षण के मूल बीज 'दोनों तरफ से', परिवार नियोजन के 'गमी' और तिलक के होमरूल को 'वियोग और मिलाप' जैसी कहानियों में चर्चित कर आपने युगद्रष्टा रूप को चरितार्थ कर दिया है। वस्तुतः प्रेमचंद का विराटत्व इसी अणुत्व के अन्वीक्षण में देखा जा सकता है। आपकी यह स्थापना, किसी सर्जक कलाकार के नगण्य-से- नगण्य स्वरूप को महत्वहीन कहकर नहीं छोड़ देना चाहिए, आपने तो जैसे आचार्य तुलसी के अणुव्रत का मर्म इस ग्रंथ में उद्‌भाषित कर दिया है। उनके कथाकार के स्वरूपों के अतिरिक्त जीवन-व्यापार की प्रत्येक धड़कन में उनके कृतित्व को देखा जा सकता है। यथा (1) रायल्टी के संबंध में सुदर्शन से उनका पत्र व्यवहार, (2) लाहौर से उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों का चंद्रगुप्त विद्यालंकार द्वारा प्रकाशन, (3) मन्नन द्विवेदी गजपुरी द्वारा प्रेमचंद के प्रथम कहानी-संग्रह 'सप्तसरोज' की भूमिका-1917, (4) उनके अनुवादों के थायस (अहंकार), इलियट आदि का भावबोध, (5) उनके द्वारा लिखित भूमिकाएं-यथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के प्रसिद्ध नाटक 'महात्मा ईसा' की भूमिका-1922 तथा (6) प्रसिद्ध क्रांतिकारी जापान प्रवासी केशोराम सब्बरवाल द्वारा जापानी में उनके साहित्य का अनुवाद, 1928 तथा ताराचंद्र राय द्वारा जर्मन में अनुवाद की पेशकश। इसके अतिरिक्त पुस्तक-समीक्षा, अनुबंध-पत्र, इंटरव्यू, डायरी के अंश, प्रमाण-पत्र, नियुक्ति-पत्र, मुकदमों के दस्तावेज, रचनाओं की रूपरेखा, सर्विस बुक आदि के परिवेश को कभी आपने साकार कर दिया है। एक-आध स्थान पर प्रेमचंद के काव्यात्मक गद्य की छटा दिखाकर उनके संभावित प्रच्छन्न कविरूप को उद्‌बुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। इसके द्वारा प्रेमचंद के युगांतकारी स्वरूप को समझाने के व्याज से आपने-भावी शोधोत्सुकों का पथ भी प्रशस्त कर दिया है। अपने इस विराट संयोजन में आत्मीयता के किसी दुर्बल क्षण में अन्य कृतिकारों की रचनावलियों के उद्‌बोधन में मेरा भी नाम जोड़कर आपने मुझे विचित्र संकोच में डाल दिया है।

हिंदी साहित्य की शोधयात्रा में डॉ. रामविलास शर्मा की 'निराला की साहित्य साधना' तथा अमृतराय की 'कलम का सिपाही' के पश्चात् यह दूसरा मील का पत्थर है। विष्णु प्रभाकरजी ने भी 'आवारा मसीहा' के सर्जन में अद्‌भुत अध्यवसाय का परिचय दिया है पर उसका आयाम भिन्न है। मैं तो आपके इस महत प्रयास की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मूल्यांकन की संभावनाओं के प्रति विशेष आशान्वित हूं।

8.9.1990

सस्नेह,

शिवमंगल सिंह 'सुमन'
उपाध्यक्ष, कालिदास अकादमी,
विश्वविद्यालय मार्ग, उज्जैन, मध्यप्रदेश

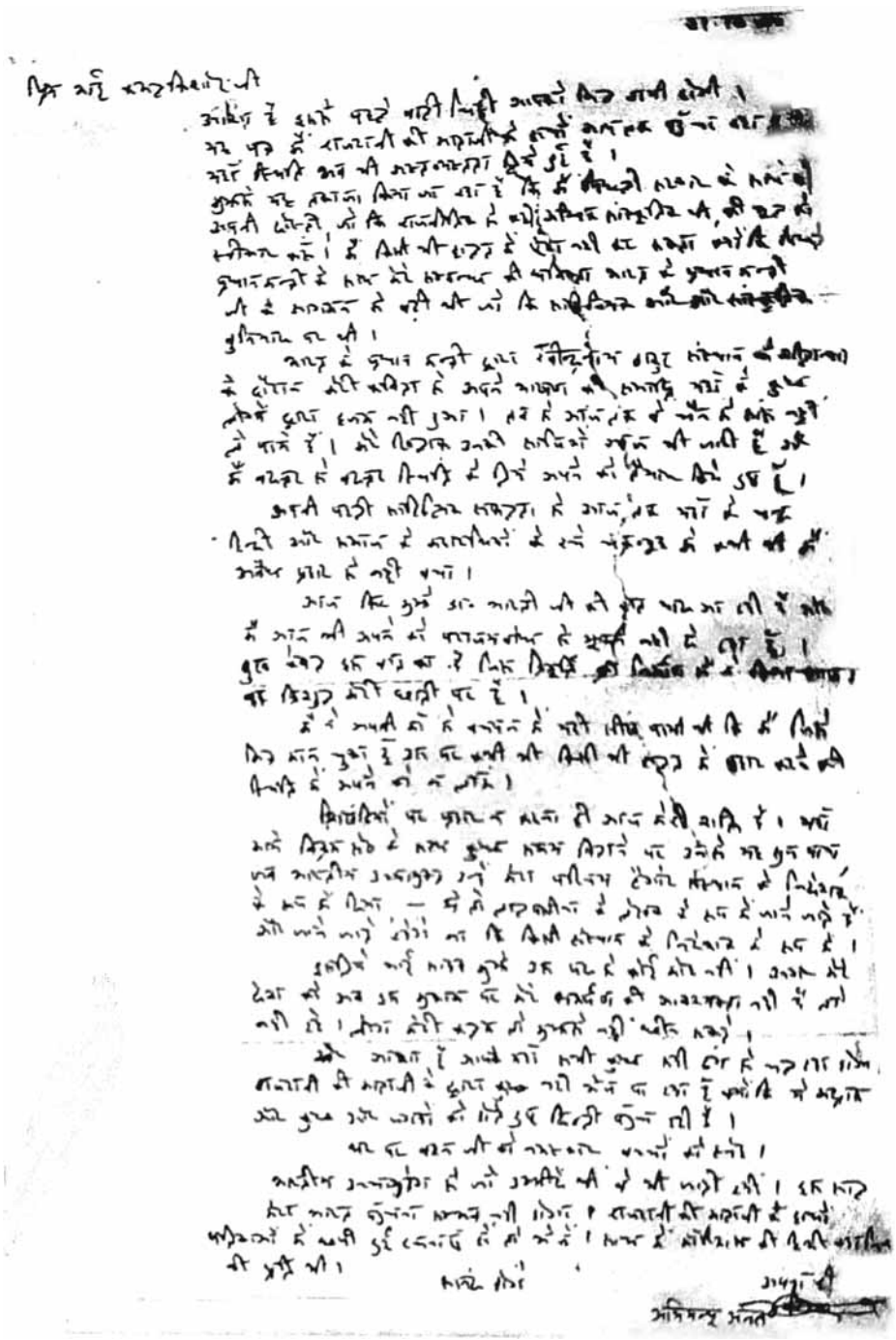



नई कहानियाँ

हंस प्रकाशन / १८ हेस्टिंग्स रोड / इलाहाबाद-१ / फ़ोन : ३०७७

१३।१२।

बन्धुवर,

आपका २८ अक्तूबर का पत्र मिला । मैं इधर बहुत व्यस्त रहा इससे जवाब देने में कुछ देर हुई । क्षमा करेंगे ।

सूचनार्थ निवेदन है कि विविध प्रसंग-- एक-दो-तीन में प्रेमचन्द का ऐसा कोई निबन्ध संकलित नहीं किया गया है जो अन्यत्र किसी संकलन में पुस्तक-रूपेण प्रकाशित है । इसी से 'महाजनी सभ्यता' नामक लेख को भी उसमें जगह न दी जा सकी । वह निबन्ध 'प्रेमचन्द-स्मृति' में बहुत पहले से मौजूद है। विविध प्रसंग में एक-दम नयी सामग्री है ।

उपरोक्त कारण से ही 'साहित्य का उद्देश्य' के निबन्धों को भी 'विविध प्रसंगों' के साहित्यदर्शन खंड के अन्तर्गत नहीं लिया जा सका । आपने जिन निबन्धों की छोटी सी तालिका भेजी है उनके रचना काल आदि के संबंध में इस समय मैं कुछ भी कहने में असमर्थ हूं ।

प्रेमचन्द की वे कौनसी भूमिकाएं हैं जो अबतक संकलित नहीं हो पाईं ? क्या आपके पास उनकी प्रतिलिपि है ? अगर और उनके लिखे किन्हीं भाषणों की भी ? निश्चय ही बहुत ही अच्छा होता अगर यह सब सामग्री 'विविध प्रसंग' में आजाती या अलग एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में लाई जा सके ।

शेष सूचनाएं आपकी बहुत नयी नहीं हैं । 'रूठीरानी' की प्रति मेरे पास भी है और 'मंगलाचरण' नामक पुस्तक में मैंने मुन्शी जी के दूसरे आरम्भिक उपन्यासों के साथ उसको छाप भी दिया है । हां, 'किशना' अभी तक कहीं नहीं मिल सका । 'वरदान' तो बहुत दिनों से छप रहा है ।

आशा है आप स्वस्थ और सानन्द हैं ।

आपका
अमृतराय

बेतियाहाता, गोरखपुर
18-6-2005

बंधुवर,

आपका पत्र मिला। प्रेमचन्द संबंधी लेख भी मिला। इसे पूरा पढ़ गया। इसे 'दस्तावेज़' में छापने के लिए रख रहा हूँ। यदि कहीं अन्यत्र छपने वाला हो तो लिख दीजिएगा। हमारे यहाँ एक दो अंक बाद ही छपेगा। 'प्रेमचन्द और हामिद...' शीर्षक प्रकाशित टिप्पणी भी पढ़ने को मिली। आप दो टूक सही [illegible] लिखते रहें। परिणाम की चिन्ता न करें। पाठक स्वयं ही निर्णय लेंगे। हाँ में हाँ मिलाने से अच्छा है कि जो सच लगे लिखा जाय। इसी में व्यक्ति की चरितार्थता है। आपने 'साक्षात्कार' में संभवतः गोरखी में पढ़ा गया मेरा लेख भेजा होगा। पर मेरे पास 'साक्षात्कार' से कोई पत्र नहीं आया। आयेगा तो अपनी स्वीकृति दे दूँगा। आशा है आप स्वस्थ प्रसन्न हैं।

आपका
विश्वनाथप्रसाद तिवारी

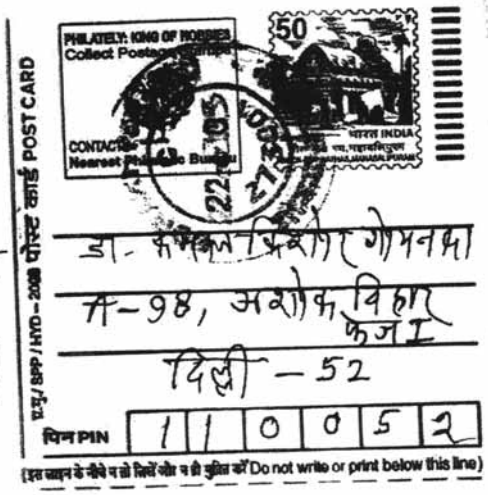



टेलीफोन { निवास—५४३२४
कार्यालय—६४१६४/१२
पी बी एक्स

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

विद्यानिवास मिश्र
निदेशक

आगरा-४ (पिन-२८२००४)
दिनांक ... १९८१ ई.

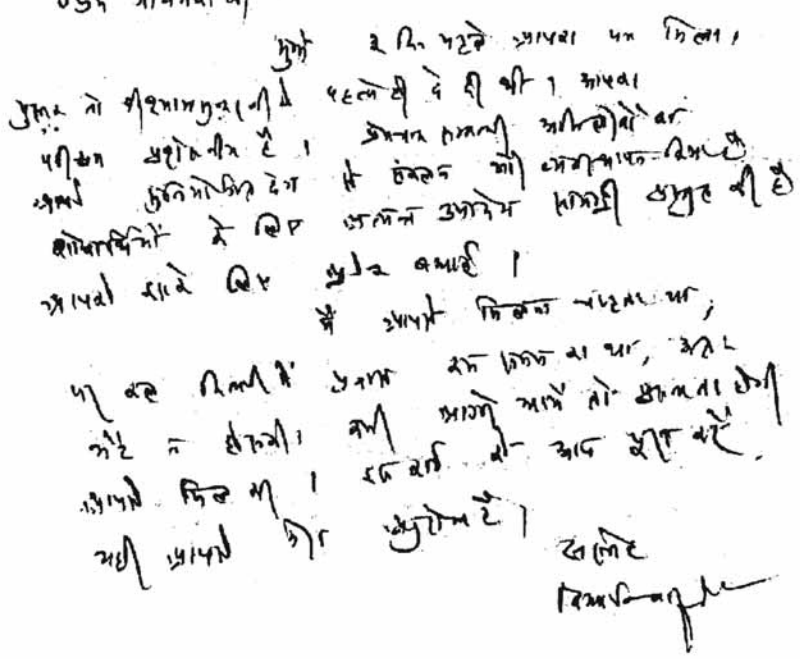

Bhimtal, 22-4-1980

Dear Dr. Goyanka,

I thank you so much for your letter of 17-4-1980, from which I learn that you have been duly informed about the state of affairs as far as my contributions to our book are concerned. Mr. Bidani must also have given you by now the two cheques on Rs. 3,500/- each, from which my account number with the American Express, New Delhi, may be noted for future repayments.

I am also happy that you seem to agree that quality in our book is more important by far than its early publication, even if it had made a public release before my departure possible.

I agree with your Table of Contents; anyway, the final decision should be yours, as the major contributor. Perhaps No. 4 (jīvan-rekhā) should come immediately after your vaktavya (No. 2) and before my essay, which ends with a critical evaluation of the story itself: after this, I feel no more general material should follow, and the sooner the 3 pāṭh the better. But, as I said, the decision is yours.

With kind regards and best wishes to you and your family,
I remain,
Yours,

Lothar Lutze.

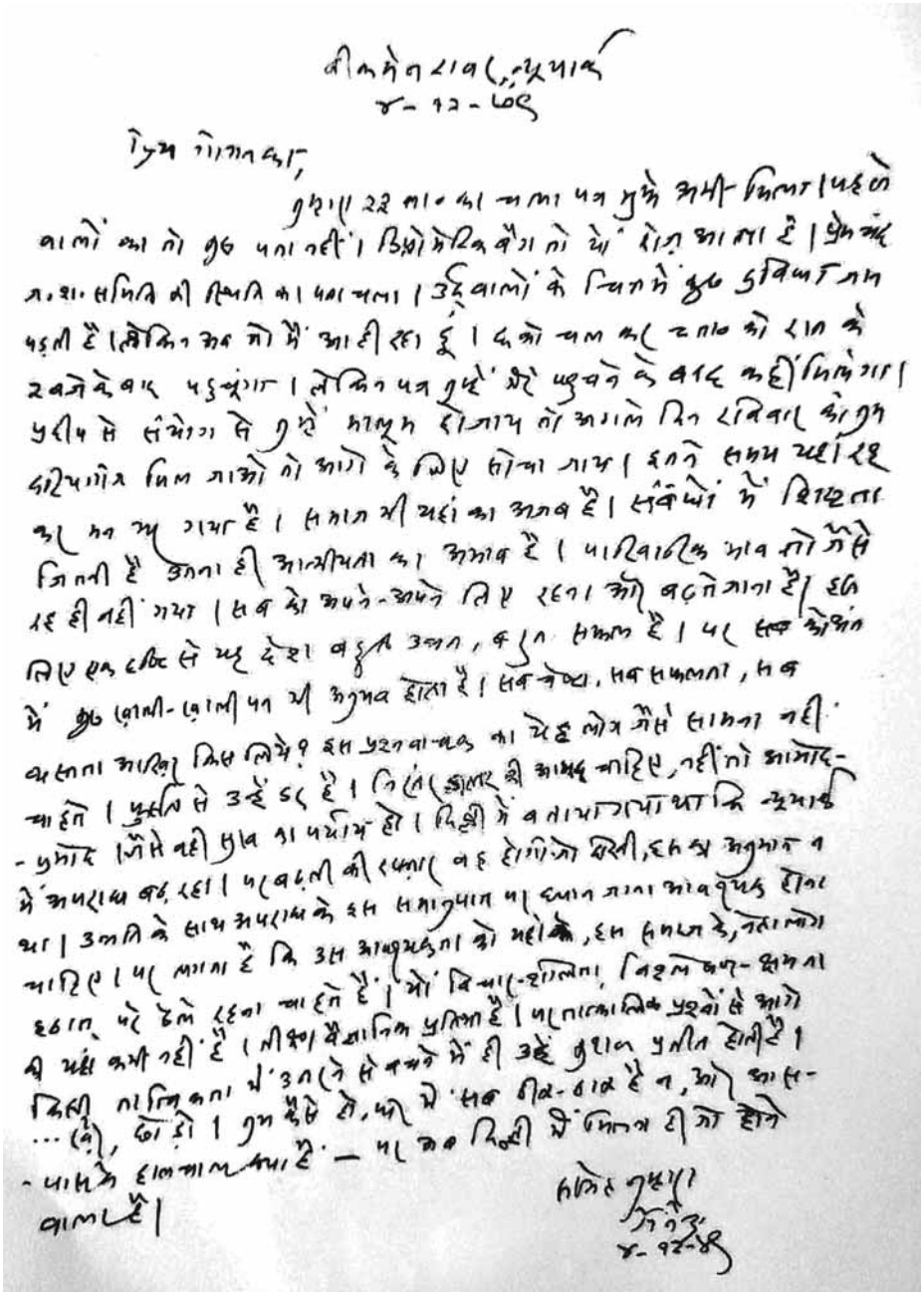

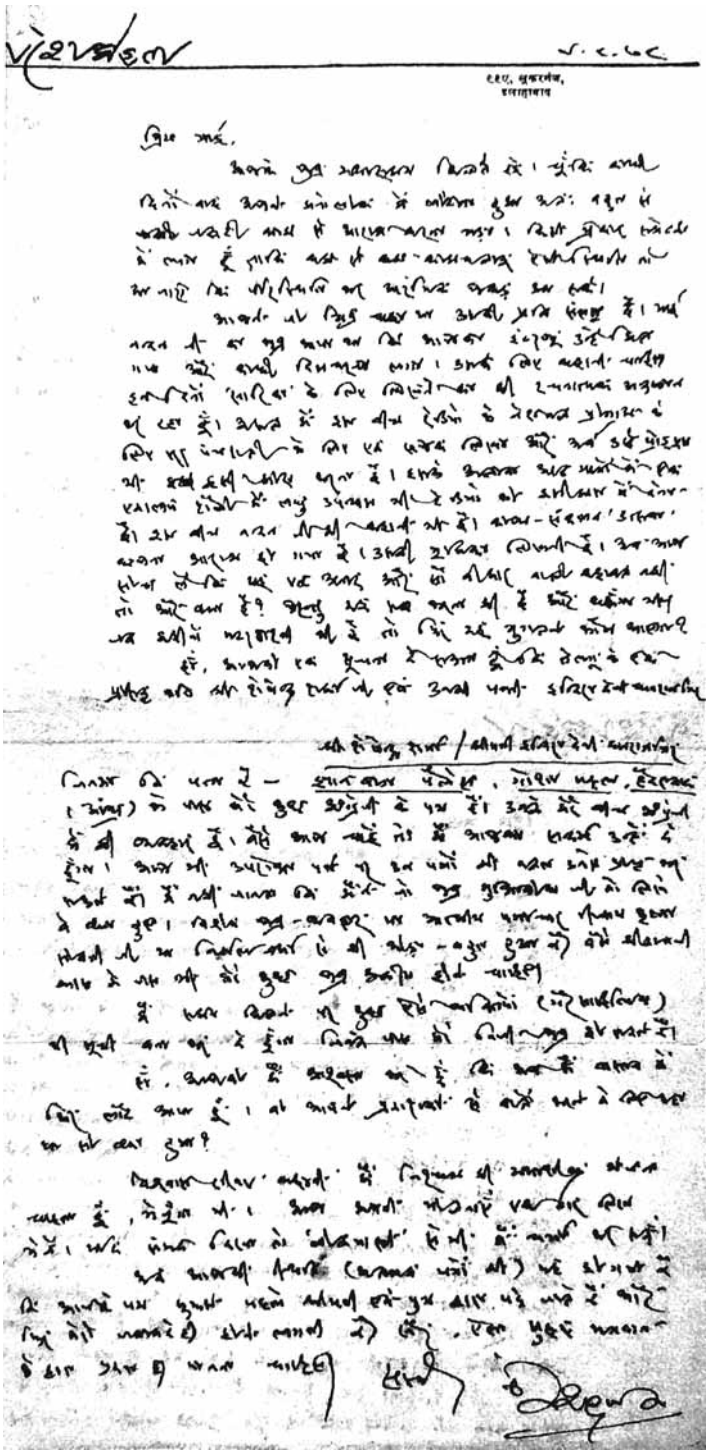

छायाचित्रों में गोयनका



कवि एवं पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से अभिवादन करते हुए

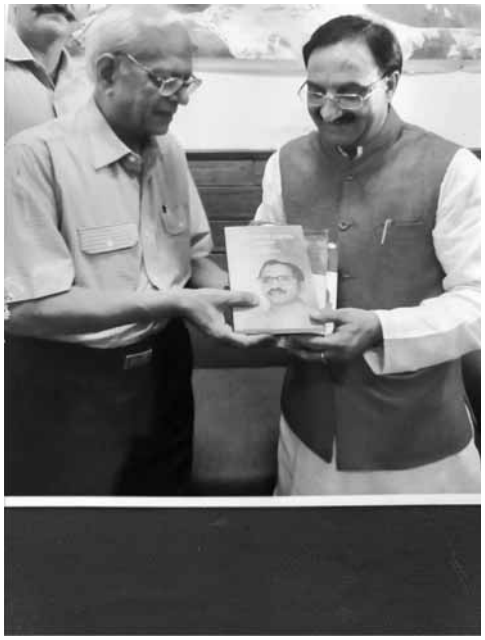

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डा. रमेश पोखरियाल निशंक को पुस्तकें भेंट करते हुए



चिंतन की मुद्रा में



पत्नी कुसुम गोयनका के साथ गुफ्तगूं करते हुए



पूरे परिवार व बच्चों के साथ



मॉरीशस के प्रधानमंत्री पी. जगन्नाथ एवं भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के साथ

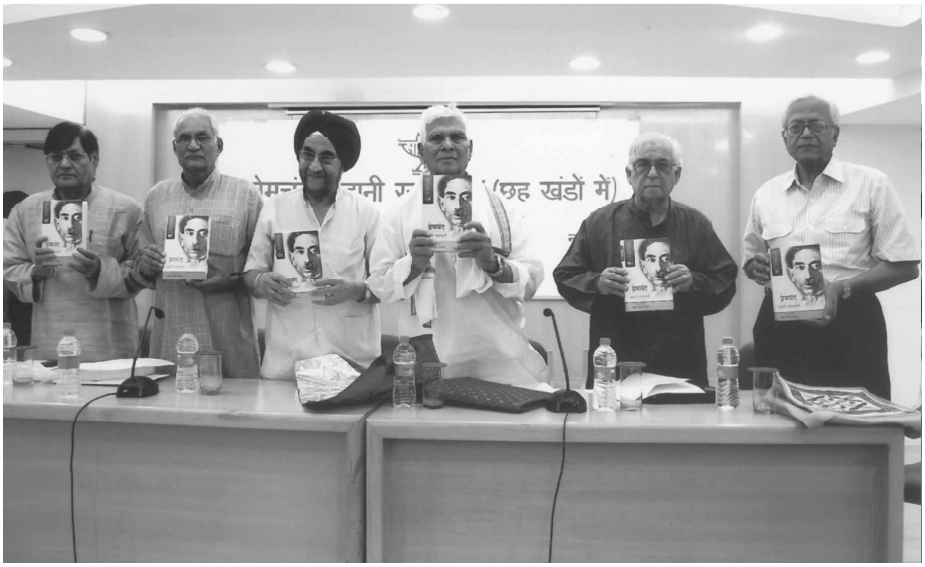

साहित्य अकादेमी सभागार नई दिल्ली में प्रेमचंद कहानी रचनावली के लोकार्पण अवसर पर साहित्यकारों के संग



सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के साथ

अंक के रचनाकार

- **नंद किशोर पाण्डेय-** निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 282005 (उ.प्र.) 0562-2530684
- **कमल किशोर गोयनका-** ए-98 अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052 9811052469
- **मंगलमूर्ति-** H-302 सेलेब्रिटी गार्डंस, सुशांत गोल्फ सिटी, अंसल एपीआई, लखनऊ-226030 (उ.प्र.) 7752922938
- **सभापति मिश्र-** सावित्री सदन, खदरान पो. हंडिया, जिला-इलाहाबाद-221503 9415634610
- **व्यास मणि त्रिपाठी-** एनजी-22 टाइप-2 नयागांव, चक्कर गांव, पोर्टब्लेयर-अंडमान-744112 9434286189
- **कमलेश भट्ट कमल-** 15/12 कारनेशन-2, गौड़ सौंदर्यम अपार्टमेंट, ग्रेटर नोएडा (वेस्ट) निकट गौड़ सिटी चौक, गौतमबुद्ध नगर-201318 9968296694
- **नवीन नंदवाना-** सहायक आचार्य हिंदी विभाग मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001(राज.) 9462751618
- **ए. अच्युतन -** आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, कालीकट विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय-673635 (केरल) 9447884370
- **आदर्श मिश्र-** सावित्री सदन, खदरान पो. हंडिया, जिला-इलाहाबाद-221503(उ.प्र.) 9794601144
- **विनय षडंगी राजाराम-** एच-8 (ए.बी.) सप्तवर्णी सूर्या आवासीय परिसर (सेक्टर-सी) राजा भोज, कोलार मार्ग, भोपाल-462040 (म.प्र.)
- **कृष्णवीर सिंह सिकरवार-** आवास क्रमांक- एच-3 राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय एयरपोर्ट, वायपास रोड, गांधीनगर, भोपाल-462033 (म.प्र.) 9826583363
- **पुष्पिता अवस्थी-** हिंदी यूनिवर्स फाउंडेशन, विंटर कोनिंग, 28,1722, CBZUID, Scitar woude, नीदरलैंड, 003172-753104
- **उषा राजे सक्सेना-** ई-मेल- usharajesaxena@gmail.com
- **पुष्पा सक्सेना-** 00114258695679
- **अनिल प्रभा कुमार-** ई-मेल aks414@hotmail.com 9736281324
- **अनीता कपूर-** ई-मेल-anitakapoor@gmail.com
- **अर्चना पैन्यूली-** ब्राई जी रोड 2160 कोपेनहेगन, डेनमार्क 4571334214
- **जयप्रकाश मानस-** एफ-3 आवासीय परिसर, छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मंडल, पेंशन-बाड़ा (विवेकानंद नगर) रायपुर-492001(छ.ग.) 7000405791

- **इंद्रनाथ चौधुरी-** 183 टैगोर नगर, दिल्ली-110009 9818404130
- **विजय बहादुर सिंह-** 29 निराला नगर, दुष्यंत कुमार मार्ग भोपाल-462003(म.प्र.) 9425030392
- **प्रेमशंकर त्रिपाठी-** आशीर्वाद अपार्टमेंट, सी.ए.5/10 देशबंधुनगर, भगौती, कोलकाता-700059 9830613313
- **कृपाशंकर चौबे-** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष जनसंचार विभाग, म.गां.अं.हिं.वि, वर्धा-442001 (महा.) 9836219078
- **श्री भगवान सिंह-** 102 अंबुज टावर हनुमान पथ, तिलकामांझी कालोनी, भागलपुर-81200 (बिहार) 9801055395
- **श्री देवेंद्र दीपक-** डी-15, शालीमार गार्डन, कोलार रोड, भोपाल-42 (म.प्र.), 9425679044
- **रमेश दवे-** एस.एच. 19 ब्लॉक 8 सहयाद्रि परिसर, भदभदा रोड, भोपाल-462003 (म.प्र.)
- **प्रदीप पंत-** सी-2/31 ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली-110065 9968204810
- **अर्चना पाण्डेय-** सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, खिदिरपुर कालेज, कोलकाता 9830839032
- **अभिमन्यु अनत-** रॉयल रोड, त्रिलोटए मॉरीशस
- **सत्यदेव टेंगर-** 2 फ्लोरए गजाधर बिल्डिंगए 2 एम.जी.आर. गोनीन स्ट्रीट, पोर्ट-लुईस, मॉरीशस, ई-मेल s.tengur@yahoo.com
- **कुसुम गोयनका-** ए-98 अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052

प्रकाशन विभाग

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

सदस्यता आवेदन पत्र

'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 400 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 370 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

(नोट : केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएंगें। कृपया मनीऑर्डर एवं चेक न भेजें।)

बैंक ड्राफ्ट 'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें।
किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट स्वीकार्य होगा।

प्रकाशन प्रभारी
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र)
फोन नं. 07152-232943

Bank Details for Online Payment :
Name: Finance Officer, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name: **Bank of India, Wardha** Account No.: **972110210000005**
IFSC Code No.: **BKID0009721** MICR Code No.: **442013003**

बहुवचन/पुस्तक-वार्ता पत्रिका के अंक ..... से ..... के लिए
रुपये ..... का बैंक ड्राफ्ट संख्या ..... दिनांक .....
संलग्न कर रहा हूँ/कर रही हूँ, कृपया मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भेजे :-

नाम : .....

पता : .....

दूरभाष : ..... ई-मेल : .....

दिनांक : ..... (सदस्य के हस्ताक्षर)